आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण



डॉ. ओंकार त्रिपाठी

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण

(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित)



सम्पादक : डॉ. ओंकार त्रिपाठी

वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

प्रकाशक :
वृन्दावन शोध संस्थान
रमणरेती, वृन्दावन
Phone : 91-565-2540628, 6450731 ✻ Fax : 0565-2540576
E-mail : info@vrivndavanresearch.net ● Website : www.vrindavanresearch.net

ISBN - 978 - 81 - 904946 - 4 - 9

संस्करण - प्रथम
वर्ष 2011-12

मूल्य :
रु. 500/-

मुद्रक :
रतन प्रेस
अठखम्भा, वृन्दावन
0565-2442061, 09837106167

समर्पण

श्रद्धास्पद पूज्य पिताश्री

स्वर्गीय वासुदेवमणि त्रिपाठी

एवं

ममतामयी माँ

स्वर्गीया श्रीमती राजदेई

की

पावन स्मृति में

समर्पित

राधा-कृष्ण की

अभिनव लीला पर

आधारित यह शोध ग्रन्थ।

-ओंकार त्रिपाठी

प्रकाशकीय

यह प्रसन्नता का विषय है कि वृन्दावन शोध संस्थान डॉ. ओंकार त्रिपाठी के ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण' का प्रकाशन कर रहा है। यह ग्रन्थ डॉ. ओंकार त्रिपाठी के दीर्घ अध्ययन एवं स्वात्मना मनन की निष्पत्ति है। एक सहृदय कवि के रूप में वे साहित्य के भाव के आस्वादक हैं। राधाकृष्ण भक्ति और इनके लीला रूप का आकर्षण भक्त कवियों के साथ ही आधुनिक हिन्दी के काव्यकारों अथवा कृतिकारों में भी रहा है। राधाकृष्ण के विविध प्रसंग साहित्यकारों और कवियों को आकर्षित करते रहे हैं, इसके फलस्वरूप इनसे संबंधित रचनाओं में काव्य और गद्यरूप में विद्वानों के द्वारा जो प्रसंग उद्घाटित किए गए है, उनमें कहीं रीतिकालीन काव्य की अनुगूँज सुनाई देती है तो कहीं भक्तिकाल का समर्पण, आधुनिक काल के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अनेक प्रकर के अभिनव प्रयोग भी किए हैं और इस प्रकार आधुनिक साहित्य की रचनाएँ पुरानी परम्पराओं से कुछ अलग हटकर भी साहित्य के अध्येताओं के सम्मुख अपने वैशिष्ट्य का प्रदर्शन करती हैं। कुल मिलाकर राधाकृष्ण तत्व पर लेखन साहित्यकारों और कवियों का प्रिय विषय रहा है। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं मं कार्यरत रहे तथा अनेक पुरस्कारों से अलंकृत विद्वान डॉ. ओंकार त्रिपाठी के द्वारा इस विषय का अध्ययन करने का प्रयास श्लाघनीय माना जाएगा।

डॉ. त्रिपाठी की यह कृति वृन्दावन शोध संस्थान के प्रकाशनों में अपना महत्वपूर्ण स्थान प्रदर्शित करेगी। वृन्दावन शोध संस्थान के अध्यक्ष श्री भवानी शंकर शुक्ल सदैव दुर्लभ साहित्यिक कृतियों के प्रकाशन हेतु तत्पर रहते हैं और इस ग्रन्थ का प्रकाशन भी उनकी प्रेरणा के फलस्वरूप सम्पन्न किया जा रहा है। हम भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय के प्रति अपना आभार ज्ञापित करते हैं, जिसके अनुदान से इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका है। इसके प्रूफ संशोधन करने में श्री दीनदयाल शर्मा ने पूरा योग दिया है। वृन्दावन शोध संस्थान के डॉ. ब्रजभूषण चतुर्वेदी तथा श्री रजत शुक्ला का भी पुस्तक के सम्पादन तथा प्रकाशन में विविध प्रकार से योगदान रहा है। साथ ही पुस्तक प्रकाशन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहभागी रहे समस्त महानुभावों के अतिरिक्त मुद्रक रतन प्रेस के प्रति भी हम अपना आभार प्रदर्शित करते हैं। आशा है, विद्वानों, अध्येताओं एवं हिन्दी साहित्य के शोधार्थियों के लिए ग्रन्थ निश्चित ही उपयोगी सिद्ध होगा।

हरिमोहन मालवीय
निदेशक
वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

प्राक्कथन

वृन्दावन शोध संस्थान भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर अनुसंधान तथा साहित्यिक ग्रन्थों का प्रकाशन निरन्तर करता है। भारतीय संस्कृति का संकलन, सर्वेक्षण और संरक्षण संस्थान के उद्देश्यों में निहित है। हम यह जानते हैं कि भारतीय संस्कृति के उन्नयन में ब्रज संस्कृति का अपना महत्वपूर्ण योगदान है, विशेषकर भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराधा की जन्मस्थली और लीलाभूमि होने के कारण ब्रजक्षेत्र भक्तों और साहित्यकारों की प्रेरणा भूमि रहा है। राधा-कृष्ण के विविध प्रसंगों पर प्राचीनकाल से अनेक विद्वानों तथा कवियों ने अपार रचनाएँ की हैं। हिन्दी साहित्य का इतिहास साक्षी है कि आदिकाल से लेकर भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल तक में राधाकृष्ण के लीला प्रसंग साहित्यकारों की रचना भूमि तैयार करने हेतु उन्हें प्रेरित करते रहे हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण' के माध्यम से विद्वान साहित्यकार डॉ. ओंकार त्रिपाठी ने आधुनिक काल में विभिन्न रचनाकारों के द्वारा राधा-कृष्ण का विविध रूपों में चित्रण दर्शाया है। अनेक अनालोचित पक्षों का उद्घाटन भी इस ग्रन्थ के माध्यम से सम्पन्न हुआ है। मुझे विश्वास है कि यह ग्रन्थ विद्वानों और हिन्दी साहित्य के अध्येताओं के लिए सार्थक सिद्ध होगा। ग्रन्थ प्रकाशन से सम्बद्ध सभी महानुभावों को मैं वृन्दावन शोध संस्थान की ओर से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

भवानी शंकर शुक्ल
चेयरमैन,
वृन्दावन शोध संस्थान, वृन्दावन

शुभाशंसा

मैंने डॉ. ओंकार त्रिपाठी द्वारा लिखित 'आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण' शीर्षक ग्रन्थ का आद्यन्त अवलोकन किया। यह एक शोध-समीक्षापरक कृति है। इसमें लेखक ने कृष्ण काव्य-परम्परा का इतिहास-विकास प्रस्तुत करते हुए राधाकृष्ण के चरित्र को आधुनिकता बोध के साथ स्थापित किया है। इस दृष्टि से यहाँ हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, धर्मवीर भारती और दिनकर आदि की अच्छी व्याख्या की गई है।

विगत् दशकों में राधा की अगाध प्रणय-भावना और श्रीकृष्ण का सम्मोहन जन-रंजन तत्त्व के रूप में स्थापित किया गया है। इसी भाव से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 'कृष्णकल्ट' आन्दोलन का सूत्रपात हुआ है। वस्तुतः भौतिक आपाधापी में आपाद मस्तक डूबी हुई नयी पीढ़ी नए चिन्तन की ओर सक्रिय है। देश-देशान्तर में प्रचलित इस्कॉन कृष्ण मन्दिरों की उपासना इसका प्रमाण है। अस्तु, लेखक ने इस शताब्दि-परिक्रमा को यहाँ सविस्तार सप्रमाण प्रस्तुत किया है।

इस ग्रन्थ के सातों अध्याय नवीन निष्कर्षों से ओतप्रोत हैं। लेखक ने सिद्ध किया है कि 'रास' की एक सार्वजनिक भूमिका रही है। उसने कृष्ण भक्ति से संबद्ध नारी-चरित्रों सुधारात्मक पक्ष की ओर विशेष ध्यानाकर्षण किया है और अध्यात्म की नयी व्याख्या की है। मेरे विचार से यह कृति सर्वथा श्लाघ्य तथा उपादेय है।

साभिवादन-

'साहित्यिकी'
डी. 54, निराला नगर
लखनऊ-20

प्रो. (डॉ) सूर्यप्रसाद दीक्षित
पूर्व पत्रकारिता, हिन्दी विभागाध्यक्ष
लखनऊ विश्वविद्यालय

अपनी बात

राधा-कृष्ण का प्रभाव लोकमानस पर अनादिकाल से अक्षुण्ण रहा है। पौराणिक राधा-कृष्ण भक्तकवियों के माध्यम से काव्य-कला-संगीत की सभी विधाओं में स्थापित एवं मान्य है। भारत की सभी भाषाओं, लोकभाषाओं, स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प में राधा-कृष्ण की छवि के अवगाहन से भारतीय समाज अपने को धन्य समझता रहा है। हिन्दी भक्तिकाव्य हो या रीतिकाल, सभी में राधा-कृष्ण का अनुगायन हुआ है।

खड़ी बोली काव्य में समर्थ रचनाकारों ने महाकाव्यों, खण्डकाव्यों एवं मुक्तकीय रचनाओं का सृजन किया है। जिनमें अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का प्रिय-प्रवास मान्य है। रामधारीसिंह दिनकर और मैथिलीशरण गुप्त भी इसी परम्परा के हैं। महाभारत के कृष्ण-चरित्र के आख्यानों के आधार पर काव्य-रूप प्रदान किया गया है। जो भारतीय लोकमानस पर अमिट छाप छोड़ता है। राधा-कृष्ण की भक्ति से अनुप्राणित रचनाएँ रची गई हैं। उद्धव-शतक की रचना परम्परा बहुत सशक्त रही है जिसके अग्रगण्य कवियों में श्री जगन्नाथदास रत्नाकर और श्री रामशंकर शुक्ल 'रसाल' का पुण्य स्मरण सदैव होता रहेगा। प्रायः आधुनिक ब्रजभाषा काव्य के समर्थ रचनाकारों ने ऊधव-गोपी संवाद का प्रसंग बड़े ललित ढंग से वर्णित किया है। अवधी भाषा में द्वारकाप्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' रामचरितमानस की परम्परा पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। राधा-कृष्ण की लीलागान परम्परा पर आधारित लोक-नाट्य के साथ-साथ रासलीला परम्परा के स्वाभाविक रूप को समर्थ रचनाकारों ने इसे रंगमंच पर प्रभावशाली ढंग से स्थापित किया।

महाभारत के कृष्ण और महाभारत के पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को लेकर कई रचनाएँ लिखी गई हैं। इस दृष्टि से धर्मवीर भारती रचित 'अंधायुग' की सराहना हिन्दी साहित्य-जगत में व्याप्त है। इसका देश-विदेश में मंचन भी

हुआ है। राधा पर आधारित डॉ. धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' आधुनिक भावबोध पर लिखी गई रचना है। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की 'राधा' का लालित्य, सौंदर्यबोध और रागानुराग पढ़कर आधुनिक भावक भी भाव-विभोर हो जाने के लिए बाध्य हो जाता है - नीली री मुरली! तूने मुझे पुकारा। क्या करूँ? कि मेरा तन हारा, मन हारा।।

इन सम्पूर्ण परम्पराओं ने मेरे मानस में यह भाव उत्पन्न किया कि मैं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में राधा-कृष्ण की रूपछविश्री का आप्यायन करूँ। मेरे सद्मित्रों ने मुझे इस कार्य के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप मैंने आधुनिक हिन्दी साहित्य में राधा-कृष्ण विषयक प्रबंध एवं मुक्तकीय काव्यों का अध्ययन किया।

अवध की राम परम्परा के अन्तर्गत 'रसिक सम्प्रदाय' की रचनाओं में उसी प्रकार का रस प्राप्त है जिस प्रकार का रस राधा-कृष्ण प्रसंग में है।

मेरा सौभाग्य है कि मुझे डॉ. रमाशंकर तिवारी जैसे मनीषी विद्वान का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ और उन्हीं की कृपा से मुझे इस ग्रन्थ की रचना में बड़ी सहायता प्राप्त हुई। मैं उनका पुण्यस्मरण करता हूँ। मेरे माता-पिता और पारिवारिक लोगों का सम्बल न मिलता तो यह ग्रन्थ इस रूप में प्रस्तुत न होता; उनका सम्बल मेरे लिए शक्तिदायी रहा है।

मैं वृन्दावन शोध संस्थान के अध्यक्ष एवं मनीषी विद्वान श्री भवानीशंकर शुक्ल जी का आभारी हूँ जिन्होंने अपना स्नेह देकर इस ग्रन्थ को वृन्दावन शोध संस्थान से प्रकाशित करने का अनुग्रह किया। वृन्दावन शोध संस्थान के निदेशक श्री हरिमोहन मालवीय जी के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ जिनके निर्देशन में इस ग्रन्थ का रूपायन हो सका।

डॉ. ओंकारनाथ त्रिपाठी

फैजाबाद

अनुक्रम

1 राधा-कृष्ण भक्ति का विकास :

वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में

भारतीय वाङ्मय में देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति राधा-कृष्ण का स्वरूप चिरकाल से अधिष्ठित है। उनका स्वरूप-विग्रह भारत की ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व की जनता के लिए कल्याण-आह्लाद-तोषानन्द-प्रदायक है। आदिकाल से ज्ञानी पण्डितों, बुद्धिमान तर्कशीलों ने यदि उन्हें योगेश्वर, धर्मोपदेष्टा, पूर्णमानवविग्रह, राजनीतिक नेता, संगीतविद्या-विशारद, सोलह कला का अवतार माना है तो भक्तिभावित जीवनसाधकों ने ब्रज-बल्लभ के कमलवत् चरणों को प्यासे का पानी, निराश्रय के आश्रयदाता, निर्बलों के बल, देवों के देव तथा परात्पर ब्रह्म स्वीकार किया है। वस्तुतः राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व के दो नित्य स्वरूप हैं। कृष्ण अग्नि हैं तो राधिका दाहिका शक्ति, कृष्ण चन्द्रमा हैं तो राधा चन्द्राभा, कृष्ण शक्तिमान् हैं तो राधा शक्ति हैं।[1] उन दोनों को अलग किया नहीं जा सकता। वेदों और पुराणों में कृष्ण के जिस स्वरूप का वर्णन है उसमें श्रीमद्भागवत तक राधा दुग्ध में घृत की तरह गुप्त हैं। भागवत के परवर्ती पुराण ब्रह्मवैवर्त में राधा का कृष्ण के साथ गौरवपूर्ण उल्लेख है। अतएव, राधा-कृष्ण-परम्परा के पूर्ववर्ती मूल स्रोतों में सर्वप्रथम कृष्णभक्ति के विकास का विवेचन अधिक समीचीन होगा।

वेदों में राधा-कृष्ण

कृष्ण के ही साथ जिन वेदों को अपौरुषेय और अनादि माना जाता है उनमें भी कृष्ण तथा राधा शब्दों का यथास्थान उल्लेख है और उनका सम्बन्ध भी आज के राधा-कृष्ण से है। राधा-कृष्ण से सम्बन्धित अन्यान्य अलौकिक अथवा लौकिक क्रियाकलापों आदि का भी संकेत मिलता है। पण्डित माधवाचार्य शास्त्री ने वेद-मन्त्रों में कृष्ण के अवतार की व्याख्या की है।[2] इसी प्रकार अन्य मन्त्रों में भी कृष्ण सम्बन्धी तथ्यों की स्थापना को मान्यता दी है। उनके अनुसार- *"घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पिते पुत्रानभि रक्षतादिदम्"*[3] (अर्थात् ग्वालिन कहती है- "हे भगवान् इस सुन्दर स्वादिष्ट गाय के माखन को खाकर जिस प्रकार पिता पुत्र की रक्षा करता है, इस प्रकार आप हमारी रक्षा करें) माखन लीला में," *यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामस्तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः*[4] (हे कुमारीगण! जिस तेरे) नग्न स्नान के कारण (प्रथमवास्यं) (कात्यायनी व्रतरूप) यश के नाशक (वासः) वस्त्र को (हम गोपों ने) (हरामः) (हरण

1- दाहशक्तिर्यथा वह्नेस्तथैषा मम वल्लभा। अनया सह विच्छेदं क्षणमात्रं न विद्यते॥ -पद्मपुराण; 2-यदप्रवीता दधते ह गर्भं सधचिज्जातोभवसीदुदूतः। - ऋग्वेद 4/7/1/9 अर्थात् हे भगवान् आपको (अप्रवीता) निबड़ बन्धन में बद्ध श्री देवकी जी गर्भ में धारण करती हुई और आप अवतरित होते ही तत्काल माता से पृथक् हो गये, अर्थात् गोकुल चले गये।- माधवाचार्य कृत "पुराणदिग्दर्शन" पृ०392; 3- अथर्व 2/13/1; 4- अथर्व 2/13/4

किया है) विश्वेदेवा: (वरुण आदि सब देवता) (त्वा) तुम्हारे (तं) उस व्रत की (अवन्तु) (रक्षा करें) में चीर हरण का संकेत है । वे नारायण को विष्णु मानते हैं।[5] श्रीमद्भागवतादि पुराणों में विष्णु के अवतार कृष्ण ने माखन चुराया था-यह सार्वजनीन सत्य है। इसका वैदिक स्वरूप भी मिलता है।[6] रासलीला में भगवान् अकेला नहीं रमण करता।[7] इसीलिए अपने स्वरूप से विभिन्न रूपों की सृष्टि करता है।[8] महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार महान् विद्वान श्री नीलकण्ठ जी ने ऋग्वेद के बहुत से मन्त्रों के भगवान् श्रीकृष्ण के लीलापरक अर्थ किये हैं।[9] कृष्ण लीला के मूलस्रोत जो अधिक सत्य और समीचीन प्रतीत होते हैं वे बीज रूप में वेदों में हैं। पुराणों में कृष्ण को विष्णु का अवतार बताया गया है। वेदों में इस विष्णु को विभिन्न शब्द-संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। कहीं उसे "त्रिविक्रमै"[10] तथा "उरुगायै"[11] और कहीं-कहीं "गोपा"[12] कहा गया है। कृष्ण का सम्बन्ध गायों से था। उन्हें वृष्णिवंशी भी बताया गया है। वामनावतार में विष्णु ने तीन पगों में ही तीनों भुवनों को नाप लिया था। वेदमन्त्रों में भी ऐसे प्रमाण हैं-"त्रीणि पदा विचक्रमे" तथा "त्रेधा विदधे पदम्"। उक्त तथ्यों को नीचे के मन्त्र पदों से मिलान करने पर सत्यता की परख की जा सकती है-

ता वां वास्तून्युणमसि गमध्यै, यत्रगावो भूरिशृंगा अयास:।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण:, परम पद्मवभाति भूरि॥ (ऋग्वेद 1/154/6)

नीचे कुछ वेद-मन्त्र-पदों में कृष्ण के अन्य सन्दर्भों का उद्घाटन हुआ है-

1- स्तोत्रं राधानांपते। (ऋग्वेद 1/30/29)
2- गवामयव्रज वृधि। (ऋग्वेद 1/10/7)
3. दास पत्नी अहि गोपा अतिष्ठित्। (ऋग्वेद 1/32/11)
4- त्वं नृचक्षा वृषभानुपूर्वी कृष्णास्वाग्ने अरुषो विभाहि। (अथर्व० 3/15/3)
5- तमेरुदाधार य: कृष्णासु रोहिणीषु। (ऋग्वेद 8/93/13)
6- कृष्णा रूपाणि अर्जुना विवोमदे। (ऋग्वेद 10/21/3)

यहाँ कृष्ण की ब्रज लीला से सम्बन्धित सभी नाम आ गये हैं, जैसे राधा, गौ, ब्रज, गोप, अहि (कालीनाग), वृषभानु, रोहिणी, कृष्ण और अर्जुन। वेदों में कालीय दमन और द्वारिकापुरी का भी प्रसंग हमारे सामने आता है-

कालिको नाम सर्पो नवनाग सहस्र बल:।
यमुने ह्रदे ह्यसौ जातो यो नारायण वाहने॥ (ऋक्परिशिष्ट)

अर्थात् नौ सहस्र हाथियों के बल वाला कालीय नामक नाग यमुना के ह्रद में रहता था। कृष्ण जी ने उसे वाहन बनाया अर्थात् सिर पर सवार होकर उसे नाथा। इसी प्रकार चीर-हरण का प्रसंग इस प्रकार है-

5- नारायण विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णु: प्रचोदयात्। - (तैत्तिरीयारण्यक 10/1/6) अर्थात् वासुदेव के पुत्र नारायण के अवतार श्रीकृष्ण जी का हम ध्यान करते हैं। वह विष्णु हमें सन्मार्ग पर प्रेरित करें। 6- तस्कराणां पतये नमो नम: (यजु: 13/21) अर्थात् चोरों के स्वामी भगवान् को नमस्कार है। 7- एकाकी न रमते (वृहदारण्यक 1/4/3), 8- ततो वपूँशिकृणुते पुरूणि (अथर्व 5/1/2), 9- हनुमान प्रसाद पोद्दार कृत-"राधा माधव-चिन्तन" पृष्ठ - 741, 10- यस्योरुषु त्रिषुविक्रमणेषु (ऋग्वेद 1/154/2), 11- प्रविष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षतं उरुगायाय वृष्णो। (ऋग्वेद 1/154/3), 12- त्रीणिपदा विचक्रमे विष्णुर्गोपाऽदाम्य: (ऋग्वेद 1/22/18)

(क) अहत वसानोऽवभृथाद्ववेति। (ताण्ड्य 16/13/6) अर्थात् बिना फटा वस्त्र ओढ़े याज्ञिक स्नान करना चाहिए।

(ख) एतद्वै यत्नै व्रतोपनयनम् (तैत्तिरीय 3/3/2/1) अर्थात् स्त्री के लिए भी नग्न स्नान न करना आवश्यक व्रतोपनयन है।

(ग) अप्स वै वरुण: (तैत्तिरीय 1/6/5/6) (क्योंकि) जलों में वरुण देवता का निवास है।

(घ) अनृते खलु वै क्रियमाणे वरुणे गृह्णाति। (तैत्तिरीय 1/7/2/6) अर्थात् जो पूर्वोक्त नियम को झुठलाता है उसे वरुण पकड़ता है।

इन प्रसंगों से प्रतीत होता है कि ऐतिहासिक पुरुष श्रीकृष्ण की प्रसिद्धि वैदिक काल में थी। धीरे-धीरे उत्कर्ष-अपकर्ष के क्रम में वैदिक कृष्ण गीता के उपदेष्टा, महाभारत में वेद-वेदाङ्ग ज्ञाता, राजनीतिक और ब्रह्मवैवर्त तथा भागवत पुराण में रास-रमणक हुए। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक वैदिक विष्णु और मध्ययुगीन कृष्ण या वासुदेव को एक ही मानते हैं।[13] डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ वैदिक साहित्य में उल्लिखित कृष्ण और पौराणिक कृष्ण को एक मानने को तैयार नहीं हैं। उनका तर्क है कि पुराणों में कृष्ण को कहीं भी मन्त्रदृष्टा नहीं कहा गया है और उनका सम्बन्ध ऋषि आंगिरस से नहीं जान पड़ता।[14] इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि कृष्ण का परात्पर वेद वेदाङ्ग तत्त्वज्ञ रूप मन्त्रदृष्टा की स्थिति से ऊपर की वस्तु है और वह देवकी पुत्र कृष्ण है कौन जिसे आंगिरस ने यज्ञदर्शन सुनाया? इसका भी उत्तर नहीं दिया गया। वस्तुत: आंगिरस के शिष्य (कृष्ण) और पौराणिक कृष्ण एक ही हैं। श्रीकृष्ण के दो होने की कल्पना नितान्त भ्रान्त एवं सर्वथा अप्रामाणिक है। डॉ० भण्डारकर द्वारा समर्थित ग्रियर्सन, जैकोबी आदि विद्वान यह विश्वास नहीं करते कि वृन्दावन का बालकृष्ण ही महाभारत में अर्जुन का सारथी एवं गीता का उपदेष्टा है। इसके समर्थन में डॉ० भण्डारकर कहते हैं कि वृष्णि राजपुत्र कृष्ण के गोकुल में पाले जाने की कथा महाभारत में वर्णित उनके उत्तरकालीन जीवन से एकदम मेल नहीं खाती और न महाभारत के किसी अंश से कृष्ण-स्तुति-कर्ता भीष्मपितामह के वक्तव्यों में कोई साम्य नहीं है जिससे कृष्ण के एकत्व का आभास हो।[15] महाभारत के सभापर्व के 41वें अध्याय में अग्रपूजा के अवसर पर शिशुपाल जब कृष्ण के ऊपर नाना प्रकार का दोषारोपण करता है तब उसका लक्ष्य बालचरित से ही है।[16] यहाँ श्रीकृष्ण की आश्चर्यपूर्ण बाल लीलाओं का उपहास किया गया है। सप्तम श्लोक में पूतना, केशी तथा वृषभासुर के वध का संकेत है। आठवें में निर्जीव शकट को पैर से तोड़ डालने का संकेत है। नवम् श्लोक व्यक्त करता है कि कृष्ण के द्वारा गोवर्धन पर्वत को हाथ पर धारण करना कोई अचरजपूर्ण कृत्य नहीं है क्योंकि इसे तो चींटियों ने खोखला बना डाला था।

शिशुपाल की यह निन्दापूर्ण वक्तृता श्रीकृष्ण के एकत्व स्थापना में पर्याप्त प्रमाण है। इससे स्पष्ट है कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जिस व्यक्ति की अग्रपूजा की गयी है, वह उस व्यक्ति से भिन्न नहीं है जिसने बाल्यकाल में पूतना, वृषासुर, केशी नामक राक्षसों का वध किया था, गोवर्धन पर्वत को हाथ पर उठा लिया था तथा उसके शिखर पर बहुत-सा अन्न अकेले खा लिया था और राजा कंस का वध किया

13-"राधावल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और अध्ययन"-पृ० 11, 14-हिन्दी साहित्य में कृष्ण-डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, पृ०-4, 15-"वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत" - रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, पृष्ठ 40-41, 16-महाभारत, सभापर्व 41/7, 8, 9, 10

था। ये ही श्रीकृष्ण की बाल्यकाल की आश्चर्यपूर्ण लीलायें हैं। परिणामत: महभारत और पुराणों के कृष्ण की एकता प्रत्येक दृष्टि से समर्थित एवं प्रमाणित है। ऐसा ही स्पष्ट मत श्री बालगंगाधर तिलक ने अपने "गीता रहस्य" में व्यक्त किया है-"हमारा मत यह है कि श्रीकृष्ण चार-पाँच नहीं हुए थे, वे केवल एक ही ऐतिहासिक पुरुष थे।" गीता रहस्य की टिप्पणी में तिलक जी और स्पष्ट कहते हैं-"डॉ० भण्डारकर ने अपने "वैष्णव, शैव आदि पन्थ" सम्बन्धी अंग्रेजी ग्रन्थ में इसी मत को स्वीकार किया है कि कृष्ण कई हैं परन्तु हमारे मत में यह ठीक नहीं है। यह बात नहीं है कि गोपियों की कथा में जो श्रृंगार का वर्णन है वह बाद में न आया हो परन्तु केवल उतने ही के लिए यह मानने की आवश्यकता नहीं है कि श्रीकृष्ण नाम से कई भिन्न-भिन्न पुरुष हो गये और इसके लिए कल्पना के सिवा और कोई आधार नहीं है।"[17]

डॉ० मुंशीराम शर्मा "सोम" ने मन्त्रपदों में आये हुए शब्दों का दूसरा अर्थ माना है जो वेद सन्दर्भों में उपयुक्त है। वेद के उन शब्दों का कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं है।[18] डॉ० शर्मा के अनुसार राधा-कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष हैं किन्तु अवतार भाव की कल्पना उनसे संलग्न कर दी गई। बाद में वैदिक विष्णु, वासुदेव आदि को ऐतिहासिक कृष्ण, वासुदेव से मिला दिया गया। ऐतिहासिक व्यक्तियों के एवं पदार्थों के नाम वेद के शब्दों को देखकर रखे गये हैं। वेद के शब्द पहले हैं और ऐतिहासिक व्यक्ति बाद में।[19] सात सौ वर्ष ईसापूर्व पाणिनि महोदय ने एक सूत्र में अर्जुन के साथ कृष्ण का प्रयोग किया है।[20] 1500 ईसा पूर्व छांदोग्योपनिषद् ने जिस घोर आंगिरस के शिष्य देवकी पुत्र कृष्ण की चर्चा की है[21] वे पुराणों में वर्णित देवकी तथा वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं प्रतीत होते हैं क्योंकि घोर आंगिरस के द्वारा कृष्ण को जो शिक्षा मिली वही उपदेश तो गीता में कृष्ण ने अर्जुन को दिया। आंगिरस ने जो शिक्षा दी वह निम्न है-

"अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्यदक्षिणा:" छांदोग्योपनिषद् 3/17/4

अर्थात् जो तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्य वचन है वही यज्ञ की दक्षिणा है। इन शब्दों से द्रव्यरूप दक्षिणा का निषेध तथा द्रव्यमय यज्ञ का खण्डन होता है। गीता के निम्न श्लोकों से इस शिक्षा का साम्य है-

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञान यज्ञः परन्तप। गीता 4-33
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्। —गीता 16-1

छान्दोग्योपनिषद् तथा गीता महाभारत के उक्त कृष्ण को आचार्य पं० बल्देव उपाध्याय और डॉ० मुंशीराम शर्मा एक ही मानते हैं।[22] यही कृष्ण विद्याध्ययनान्तर कुशल राजनीतिक नेता, योद्धा, वेद-वेदाङ्ग ज्ञाता हुए जिन्होंने पशुहिंसा पूर्ण यज्ञों का विरोध करते हुए अन्यान्य मानवीय उत्कर्षों का राजपथ बनाया। शनै:-शनै: जनता में उनका समादर होने लगा। यहाँ तक कि महाभारत में भीष्म जी ने वासुदेव कृष्ण की ईश्वर के रूप में स्तुति भी की है। आगे चलकर पौराणिक साहित्य में कृष्ण के भगवान् रूप का अधिक विकास हुआ।

17- तिलक कृत 'गीता रहस्य', पृष्ठ 548 (पाद टिप्पणी सहित); 18-सूर सौरभ-डॉ० मुंशीराम शर्मा,
पृ०-78। 19- इसके प्रमाण में डॉ० शर्मा ने सूरसौरभ के पृ० 79 पर मनु स्मृति का यह श्लोक उद्धृत किया
है-सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेद शब्देभ्य: एवादौपृथक् संस्थाश्च निर्ममे। मनुस्मृति 1-21;
20- "वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन" (अष्टाध्यायी 4-3-99) अर्थात् वासुदेव में जिनकी भक्ति है उन्हें वासुदेवक और
अर्जुन में जिनकी भक्ति है उन्हें अर्जुनक कहते हैं।; 21- "एतद्घोर आंगिरस: कृष्णाय देवकी पुत्राय उक्त्वा
उवाच"- छान्दोग्योपनिषद 3/17/6

पुराणों में कृष्ण

पुराणों में कृष्ण के जिस अलौकिक दिव्यातिदिव्य कर्मों, लीलाओं-रास, माखन चोरी, तृणावर्त, यमलार्जुन, पूतना प्रसंग, चीरहरण आदि सन्दर्भों का उल्लेख है, उन्हें उक्त परम्परागत कृष्ण में समाहित कर दिया गया। कृष्ण चरित्र का वर्णन जिन पुराणों में है उनमें भागवत, महाभारत, हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु, पद्म, वायु, वामन, ब्रह्मवैवर्त, गरुड़, गर्गसंहिता, योगवाशिष्ठ आदि मुख्य हैं। महाभारत के बाद कृष्ण के चरित्र को गोपियों से सम्बद्ध करने वाला प्रथम पुराण हरिवंश है। कृष्ण के विभिन्न अलौकिक चरित्रों का वर्णन करने वाले मुख्य रूप से दो-भागवत तथा ब्रह्मवैवर्त पुराण हैं। ब्रह्मवैवर्त में तो ब्रह्मा जी के द्वारा राधा-कृष्ण का विवाह भी कराया गया है। पुराणों की इन लीलापरक घटनाओं तथा ऐतिहासिक पुरुष श्रीकृष्ण-जैसा कि महाभारतादि में वेदवेदाङ्ग वेत्ता, योगेश्वर, पराक्रमी योद्धा के रूप में वर्णन है-को देखकर मन सहसा एकत्व स्वीकार नहीं करता। आखिर यह रासलीला तथा अन्य कृत्यों की शृङ्खला कृष्ण से कब जुड़ी?

श्रीमद्भागवत में बाल्यावस्था में कृष्ण की शिक्षा-दीक्षा का कोई विशेष उल्लेख नहीं है। कृष्ण का बालजीवन यशोदा-नन्द के यहाँ बीता। मथुरा में कंस वध के बाद वे दोनों कृष्ण और बलराम काश्यप गोत्रीय सांदीपनि मुनि के पास गये जो उज्जैन में रहते थे। दोनों की शुद्धभाव से युक्त सेवा से प्रसन्न होकर मुनि ने वेदों तथा वेदों का तात्पर्य बतलाने वाले शास्त्रों-धर्मशास्त्र मीमांसादि तथा राजनीति, धनुर्वेद आदि की शिक्षा दी।[23] छान्दोग्योपनिषद से भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि कृष्ण ने घोर आंगिरस से वेद की शिक्षा प्राप्त की थी।[24] इसी का समर्थन महाभारत भी करता है किन्तु श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण में वर्णित कृष्ण लीलाओं तथा महाभारत वेदवेत्ता, योगेश्वर कृष्ण के एकत्व में कुछ विद्वान सन्देह करते हैं। उनके अनुसार कृष्ण का यह रूप (लीला रूप) बाहर से आया है। पाश्चात्य विद्वान ग्रियर्सन, बेबर, केनेडी आदि बालकृष्ण की इस कथा को ईसामसीह की कथा का भारतीय रूप मानते हैं। धीरे-धीरे "क्राइष्ट" शब्द "कृष्ण" के रूप में परिवर्तित हो गया। डॉ० भण्डारकर के अनुसार इस कृष्ण लीला को सीरिया से चलकर आई हुई घुमक्कड़ आभीर जाति ने भारतवर्ष में प्रचलित किया। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी[25] और डॉ० मुंशीराम शर्मा[26] ने इसका कड़ा विरोध किया है। (ईसा पूर्व 400) भासकृत "बालचरितम्" नाटक में वर्णित गोपाल कृष्ण की कथा से भी डॉ० भण्डारकर के इस मत का खण्डन हो जाता है कि आभीर जाति से बालगोपाल की कल्पना की गई। विष्णु पुराण और वायु पुराण में आभीर वंश का उल्लेख है। भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध में पंचम अध्याय श्लोक 20 और 23 में वसुदेव आभीराधिपति नन्द को अपना भाई कहते हैं। आभीर वंश का उल्लेख महाभारत में भी है। इससे कैसे सिद्ध हो सकता है कि आभीर जाति सीरिया से आई। नि:सन्देह इसे कल्पना प्रसूत ही मानना चाहिए। आभीर जाति को बाहर से आई मानने वाले विद्वानों को क्या यह ज्ञात है कि ईसा पूर्व हाल कृत गाथा सप्तशती में राधा-कृष्ण के प्रेमी रूप का वर्णन है।[27] यदि कृष्ण की प्रसिद्धि ईसा पूर्व के कवियों में न होती तो हाल महोदय संकलन ही कैसे करते। यहाँ कृष्ण को राधा की आँख में पड़ी हुई धूल को निकालते हुए चित्रित किया गया है। अत: कृष्ण परम्परा भारत की है, इसमें यत्किंचिन्मात्र भी सन्देह करने की गुंजाइश नहीं है। भारत में कृष्ण भक्ति

22-पुराणविमर्श-पं.बल्देव उपाध्याय, पृ.190 तथा सूर सौरभ- डा.मुंशीराम शर्मा, पृ.72, 23. श्रीमद्भागवत 10/45/33-34, 24-छांदोग्योपनिषद(3/17/6) 25-दृष्टव्य -सूरसाहित्य-हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. 6-7, 26-सूर सौरभ डॉ. मुंशीराम शर्मा, पृ. 74

दक्षिण आलवार भक्तों से आई, ऐसा कुछ विद्वान मानते हैं। इसकी पुष्टि में उनका तर्क है कि कृष्ण का काला रंग होना दक्षिण की ओर संकेत करता है। दक्षिणी भारत के लोग प्राय: काले होते हैं। बद्रीनाथ तथा वृन्दावन के श्रीरंग मंदिर का मुख्य पुजारी अब भी दाक्षिणात्य ही होता है। भागवत माहात्म्य में वर्णित भक्ति भी दक्षिण से ही होती हुई वृन्दावन में आई। धीरे-धीरे इसी भक्ति में वेद के गोपा और ब्रज शब्दों को लेकर गोपलीला, रासलीला का प्रादुर्भाव कवि-कल्पना से हो गया। साथ ही राधा को भी कृष्ण से सम्बन्धित कर उनके अलौकिक प्रेम-विग्रह का अवलम्बन कर माधुर्य भक्ति की उपासना प्रचलित हो गई। भागवत धर्म के तीन सम्प्रदायों-निम्बार्क सम्प्रदाय, मध्व सम्प्रदाय और वल्लभ सम्प्रदाय ने राधा-कृष्ण की रूप माधुरी का चित्रण किया है। आगे चलकर यही राधा-कृष्ण सूर के प्रभु रीति में नायक-नायिका तथा प्रभु दोनों एवं आधुनिक काल में विभिन्न मानवीय सम्बन्धों के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

महाभारत

महाभारत में श्रीकृष्ण के मुख्यतया चार रूप उद्घाटित हुए हैं-

1-राजनीतिक विशारद, 2-कुशल योद्धा, 3-वेद-वेदाङ्गवेत्ता, 4-धर्मोपदेष्टा।

इन चारों का सम्बन्ध उनके जीवन के उत्तरार्द्ध से है। बाल्यकालीन लीलाओं का वर्णन महाभारत में नहीं है। महाभारत में गीता के रूप में कृष्ण जिस धर्म का उपदेश देते हैं वह बहुत कुछ उसी शिक्षा पर आधारित है, जो उन्हें छान्दोग्योपनिषद में घोर आंगिरस ऋषि द्वारा प्राप्त हुई थी। इसी शिक्षा-साम्य से विद्वानों ने यह मत स्थापित किया कि उपनिषद के कृष्ण और महाभारत के कृष्ण एक हैं। भीष्म द्वारा कृष्ण की स्तुति से ज्ञात होता है कि महाभारत में ईश्वरत्व का समावेश प्रारम्भ हो गया था। सर्वप्रथम हरिवंश पुराण में कृष्ण को गोपियों से अभिसम्बद्ध किया गया। विष्णु पर्व के 128 अध्यायों में कृष्ण जीवन की पूर्ण कथा दी गई है और कृष्ण के सौन्दर्य का भिन्न वर्णन हुआ है। पूतना-वध, शकट-वध, यमलार्जुन-पतन, माखन-चोरी, कालिय-दमन, धेनुक-वध, प्रलम्ब-वध, गोवर्धन धारण आदि लीलाओं का विस्तार से वर्णन है। श्रीकृष्ण इन्द्र-पूजा का विरोध कर नन्द को गोवर्धन की पूजा का विधान बताते हैं और गोपों को ही अपना सर्वस्व कहते हैं।

ब्रह्मवैवर्त

श्रीकृष्ण चरित्र का विशद् विवेचन करने वाला दूसरा पुराण ब्रह्मवैवर्त पुराण है जिसके कृष्ण जन्म खण्ड में कृष्ण विषयक सामग्री दी हुई है। पहले अध्याय में कृष्ण जन्म का कारण, चौथे में गोलोक का और पाँचवें में राधा के मन्दिर का वर्णन है। छठे अध्याय में अंशावतारों का वर्णन करते हुए राधा और कृष्ण के सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है। इस पुराण में कृष्ण लीलाओं का वर्णन हरिवंश पुराण के वर्णनों की अपेक्षा अधिक श्रृंगारिक और विस्तृत है।

पद्मपुराण

इस पुराण के पाताल खण्ड में कृष्ण चरित्र का वर्णन है। अध्याय 6 से 72 तक श्रीकृष्ण के माहात्म्य का वर्णन है, 73 से 83 तक वृन्दावन आदि का माहात्म्य और श्रीकृष्ण की लीला का विवेचन है।

27-मुहमारुएंण तं कराह गोरुअं राहियाए आणेन्तो (गाथा सप्तशती 1-89) (संस्कृत रूपान्तर-मुख मारुतेन त्वं कृष्ण गोरजं राधिकाया: अपनयन)

वामन तथा कूर्म पुराण

वामन पुराण में केवल केशी, मुर और कालनेमि का वर्णन है। कूर्मपुराण में श्रीकृष्ण द्वारा महादेव की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रों की कथा है।

गरुड़ पुराण

गरुड़ पुराण में कृष्ण लीलाओं का दिग्दर्शन कराया गया है जो अध्याय 144 में हुआ है। इसमें पूतना-वध, यमलार्जुनोद्धार, गोवर्धन-धारण, केशी-चाणूर इत्यादि का वध, कालियदमन और शकटासुर-वध का उल्लेख है। कृष्ण का सान्दीपन गुरु से शिक्षा प्राप्त करने का भी उल्लेख है। राधा को छोड़कर रुक्मिणी, सत्यभामा आदि 8 पत्नियों का विवरण है।

विष्णुपुराण

इस पुराण के चौथे अंश के 15वें अध्याय में शिशुपाल की मुक्ति का कारण बतलाते हुए श्रीकृष्ण-जन्म का उल्लेख हुआ है। पाँचवें अंश में कृष्ण का चरित्र विशेष रूप से दिया हुआ है तथा कृष्ण की बाल लीलाओं के साथ रास का भी वर्णन है।

श्रीमद्‌भागवत

महाभारत से लेकर पौराणिक युग तक जितना श्रीकृष्ण का विवेचन हुआ है, वह सब समन्वित रूप श्रीमद्‌भागवत में उपलब्ध हो जाता है। भागवतकार ने अवतारों का वर्णन करते हुए "एते चांशकला: पुंस: कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"[28] कहा है। महाभारत में कृष्ण के जिस नारायण रूप का उल्लेख हुआ है उसको भागवतकार ने इस प्रकार लिखा है कि नारायण के कृष्ण और शुक्ल-स्वरूप असुर-मर्दित पृथ्वी का भार उतारने के लिए कृष्ण और बलराम के रूप में आविर्भूत हुए हैं-भगवान् ने आदि में लोक-सृष्टि की इच्छा से महत्त्वादि सम्भूत षोडश कलात्मक प्रारूपावतार धारण किया।[29] भागवत श्रीकृष्ण के समग्र जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। उसमें हमें उनके निम्न रूप दृष्टिगत होते हैं-

1-अलौकिक कर्मा असुर संहारक कृष्ण, 2-बालकृष्ण, 3-गोपी बिहारी श्रीकृष्ण, 4-राजनीतिक वेत्ता, कूटनीति विशारद श्रीकृष्ण, 5-योगेश्वर श्रीकृष्ण, 6-परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण।

मुख्यत: कृष्ण के तीन रूप हम देखते हैं-

1-महाभारत के कृष्ण, 2-गीता के कृष्ण, 3-भागवत के कृष्ण।

भगवान् के पौरुष-व्यंजक रूप महाभारत में, परब्रह्मस्वरूप के गीता में और रसिक शिरोमणि रूप में दर्शन हमें भागवत में होते हैं। वैसे तो भागवत में कृष्ण के प्राय: सभी रूपों का विवेचन हुआ है किन्तु प्रधानता रसिकेश्वर स्वरूप की ही है। दशम-स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में निबद्ध कथायें बाल रूप की लीलायें हैं जो अलौकिकता का उद्घाटन करती हैं। कंस-वध की क्रियायें किशोरावस्था के अन्तर्गत भी आती हैं। जरासंध से युद्ध के अनन्तर उनके राजा पद की प्रतिष्ठा होती है और द्वारिका-दुर्ग-निर्माण काल से ही गीता की **"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्"** वाली उक्ति की चरितार्थता प्रारंभ हो जाती है, किन्तु बीच-बीच में अलौकिकता का भी समावेश रहता है। भागवत के घटनाचक्र वर्णनों में भी व्यासजी की रागात्मिका वृत्ति सजग हो गई है और भक्ति की दृढ़ता का सर्वत्र प्रकाशन करती है। जैसे-भौमासुर-वध के समय, वाणासुर संग्राम के समय, स्वर्ग से कल्पवृक्ष लाने एवं देवकी के मृतक पुत्रों को लाने के समय

28-श्रीमद्‌भागवत 2/7/26, 29-श्रीमद्‌भागवत 1/3/1

सर्वत्र अलौकिकता का सम्मिश्रण हुआ है। उपदेशात्मक प्रसंगों में परमतत्त्व एवं ज्ञानभक्ति-कर्म की अधिक व्याख्या हुई है। यहाँ हमें श्रीकृष्ण योगेश्वर, उपदेष्टा एवं विज्ञानी के रूप में मिलते हैं। भागवत के स्तुत्यात्मक स्थलों पर कृष्ण के परम ब्रह्म एवं वास्तविक रूपों की व्याख्या की गई है। जैसे प्रह्लाद, अम्बरीष, गजेन्द्र, ब्रह्मा, ध्रुव, इन्द्रादि की स्तुतियाँ लीला वपुधारी एवं परमतत्त्व का वर्णन प्रस्तुत करती हैं।

श्रीमद्‌भागवत में "जन्मकर्म च मे दिव्यम्" तथा "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" आदि की सार्थकता पूर्णतया सिद्ध हुई है। विद्वान पण्डितों ने विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक तर्कों से गीता एवं भागवत के कृष्ण में अभेद स्थापित किया है। श्रीमद्‌भागवत के कृष्ण पाण्डवों के सखा, कुरुक्षेत्र महायुद्ध के नियामक एवं महाभारत के महायोद्धा थे। वे गीता के उपदेष्टा हैं जो पापियों के सर्वनाश एवं साधुओं की रक्षा तथा धर्म की स्थापना के लिए प्रत्येक युग में प्रकट होते हैं। वे निष्काम कर्मयोगी का रूप धारण करते हैं। वे मथुरा और द्वारिका के महावीर राजराजेश्वर कृष्ण भी हैं और गोकुल ब्रज और वृन्दावन में विहार करने वाले नन्द नन्दन, गोपीवल्लभ, चितचोर और रसिक शिरोमणि गोपाल कृष्ण भी हैं।

वैदिक वाङ्मय में श्री राधा

वेदों में राधा से सम्बन्धित अनेक शब्द विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त हुए हैं। विद्वानों ने अपनी मति से उसके "राधा" अर्थ लगाए हैं। अथर्ववेद का निम्न मन्त्र द्रष्टव्य है-

राधे! विशाखे! सहवानु राधा। (अथर्व० 19/7/3)

इन्द्रं वयमनुराधं हवामहे। (अथर्व० 19/5/2)

अर्थात् हे राधे! विशाखे! श्री राधा जी हमारे लिए सुखदायिनी हों। हम सब भक्तजन राधा सहित श्रीकृष्ण भगवान् की स्तुति करते हैं।

इसी प्रकार "राधस्" शब्द का प्रयोग विभिन्न विभक्तियों में हुआ है-

"सञ्चोदयचित्रमर्वाग राध इन्द्रवरेण्यम् असदित ते विभु प्रभु"। (1/9/5)

"यस्यं ब्रह्मवर्धनं यस्यसोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः"। (2/12/14)

सखाय आनिषीदत सविता स्तोभ्यो नु नः दाताराधांसि शुम्भति। (1/22/8)

"राधस्" शब्द अपने तृतीयान्त "राधसा" रूप में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त है। (1/48/14, 3/10/20, 4/55/10, 10/23/1) आदि। चतुर्ध्यांत "राधसे" भी बहुशः उपलब्ध होता है- 1/17/7, 3/41/6, 4/20/2, 5/35/4, 10/17/13 आदि। षष्ठन्त "राधसः" का अधिक प्रयोग हुआ है-1/15/5, 4/20/7, 6/44/5, 10/140/5 आदि। "राधसाम" षष्ठी बहुवचन का प्रयोग एक स्थान पर है- (8/90/2) तथा सप्तम्यन्त "राधसि" भी एक ही बार ऋग्वेद में प्रयुक्त है (4/32/21)।

निघण्टु में "राधः" शब्द धन नाम से पठित है (2/10)। यह शब्द राध, साध संसिद्धौ से असुन् प्रत्यय जोड़ने से निष्पन्न होता है, इसलिए स्कन्द स्वामी ने इस पद के अर्थ की द्योतना की है-वह वस्तु, जो धर्म आदि पुरुषार्थों को सिद्ध करता है-सधनुवन्ति साधनुवन्ति धर्मादीन् पुरुषार्थानिति स्कन्दस्वामी। सकारान्त होने के अतिरिक्त यह आकारान्त भी है और इस प्रकार राधा शब्द का प्रयोग दो मंत्रों में किया गया प्राप्त होता है-

1-**स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर तस्य ते विभूतिरस्तु सुनृता।** यह मंत्र ऋग्वेद (1/30/5) में, सामवेद में अथर्व (20/45/2) तीनों वेदों में समान रूप से उपलब्ध होता है।

2-**इदं ह्यन्वोजसासुतं राधानांपते पिबात्वस्यगिर्वणः।** यह मंत्र ऋग्वेद के एक स्थल (3/51/10) पर तथा सामवेद के दो स्थलों (165, 737) पर प्रयुक्त मिलता है। दोनों मंत्रों में "राधानांपते" इसी रूप में प्रयुक्त है और दोनों जगह यह इन्द्र के विशेषण-रूप में आया है।

पं० बलदेव उपाध्याय "राधः" तथा "राधा" दोनों की उत्पत्ति "राध्वृद्धौ" धातु से ही मानते हैं, जिसमें "आ" उपसर्ग जोड़ने पर "आराधयति" धातुपद बनता है। फलतः इन दोनों शब्दों का समान अर्थ है आराधना, अर्चना, अर्चा। "राधा" इस प्रकार वैदिक "राध" या "राधा" का व्यक्तिकरण है। राधा पवित्र तथा पूर्णतम् आराधना की प्रतीक है। "आराधना" की उदात्तता उसे प्रेमपूर्ण होने में है। जिस आराधना या अर्चना में विशुद्ध प्रेम नहीं झलकता, जो उदात्त प्रेम के साथ नहीं सम्पन्न की जाती, क्या वह कभी सच्ची "आराधना" कहलाने की अधिकारिणी होती है? कभी नहीं। इस प्रकार "राधा" शब्द के साथ प्रेम के प्राचुर्य का, भक्ति की विपुलता का, भाव की महनीयता का सम्बन्ध कालान्तर में जुड़ता गया और धीरे-धीरे राधा विशाल प्रेम की प्रतिमा के रूप में साहित्य और धर्म में प्रतिष्ठित हो गई।"[28]

उपर्युक्त उद्धृत मंत्रों में इन्द्र "राधानांपते" नाम से सम्बोधित किये गये हैं। फलतः वेद में वे ही "राधापति" हैं। कालान्तर में जब इन्द्र का प्राधान्य विष्णु के ऊपर आया और कृष्ण का विष्णु के साथ सामंजस्य स्थापित किया गया, तब कृष्ण का "राधापति" होना स्वाभाविक है।

यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में पुरुष की दो पत्नियों का उल्लेख किया गया है- श्री और लक्ष्मी।

श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणिरूपमश्विनो व्यात्तम्। -शुक्लयजुर्वेद 31/22

महीधर ने श्री का अर्थ किया है, सम्पत्ति (यथा सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः। श्रीयते नयाश्रीः सम्पदित्यर्थ) और लक्ष्मी का अर्थ किया है— सौन्दर्य, वह वस्तु जिसके द्वारा कोई वस्तु मनुष्यों के द्वारा लक्षित की जाती है (लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः। सौन्दर्यमित्यर्थः)। वश्य होने के कारण पत्नी कहा गया। अर्थात् जिस प्रकार कोई जाया पति के वश में रहती है, उसी प्रकार सम्पत्ति और सौन्दर्य पुरुष के वश में रहते हैं। हरिव्यास देव ने वेदान्त कामधेनु की टीका "सिद्धान्त रत्नावली" में यहाँ श्री का तात्पर्य राधा से लिया है। अर्थात्, विष्णु की दो पत्नियाँ हैं-एक हैं राधा और दूसरी हैं लक्ष्मी। इस प्रकार, इस आचार्य के मत में "राधा" का संकेत इस वैदिक मंत्र में किया गया है। श्री रुक्मिणी जी को लक्ष्मी का तथा श्री राधा जी को "श्री जी" का अवतार बताया गया है। ब्रजमण्डल में इसीलिए राधा जी को प्रायः "श्री जी" के नाम से अभिहित किया जाता है।

"बृहद् ब्रह्मसंहिता" में राधा और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं माना है-

यः कृष्णः साथि राधा या राधा-कृष्ण एव सः॥

अर्थात् जो कृष्ण है सोई राधा है, जो राधा है सोई कृष्ण है अर्थात् एक है।

श्री राधिकोपनिषद

ऋग्वेद का राधिकोपनिषद श्री राधिका जी की महिमा एवं स्वरूप को प्रकट करता है। राधिकोपनिषद् गद्य में है। इसमें राधाकृष्ण की परमान्तरङ्गभूताह्लादिनी शक्ति बताई गई है। अथर्ववेद में भी राधा तापिनी

28- भारतीय वाङ्मय में श्री राधा-पं० बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ-31

उपनिषद् की कल्पना की गई है जिसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसमें राधिका की प्रशस्त स्तुति है जो सर्वश्रेष्ठ बतायी गई है। श्री राधा और कृष्ण दोनों एक ही रस के समुद्र हैं, केवल भक्तों को आनन्द देने वाली लीलाओं के लिए ही दो रूप बने हैं, वस्तुत: ये दोनों रूप भी देह और छाया के सदृश ही हैं। कभी किसी दशा में भी इनका वियोग नहीं होता। इनके चरितामृत को कर्णों द्वारा पीकर भक्त जन विशुद्ध पद की प्राप्ति कर लेते हैं, अर्थात् सदा के लिए अमर हो जाते हैं। अब इस विद्या की गुरु परम्परा है। यह तत्वज्ञान आदित्य से वशिष्ठ को उनसे वृहस्पति को, उनसे उनके शिष्य कच इन्द्रादि को प्राप्त हुआ।[29]

श्रीराधा की प्राचीनता

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण नित्य रसमय विग्रह हैं और रासेश्वरी राधिका भी नित्य आनन्दमयी हैं। राधा कोई मृण्मयी मूर्ति नहीं, वह चिन्मय विग्रहवती हैं। राधा भारतीय वाङ्मय के सरोवर में प्रस्फुटित होने वाली कनक-कंज कलिका हैं। वह काव्य की अधिष्ठात्री हैं, भक्ति की निर्झरिणी हैं, कला की उत्स हैं और प्रेम की प्रतिमूर्ति हैं। राधा एक अनुभूति है, एक भावना है, एक कल्पना है, एक चिन्तना है, एक माधुर्य है। राधा भारतीय भक्ति और अनुरक्ति की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है।

"कवीन्द्र वचनसमुच्चय" नामक सूक्ति संग्रह में जिसके रचयिता का पता नहीं चलता, में राधा-कृष्ण की लीला का सन्दर्भ प्राप्त होता है। ग्रन्थ में उल्लिखित कवियों के आधार पर यह दशवीं शती का माना जा सकता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

कोऽयं द्वारि हरिः प्रयाह्युपवनं शाखामृगेणात्रकिम्
कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि सुतरां कृष्णः कथं बानरः।
मुग्धेऽहं मधुसूदनो ब्रज लतां तामेव पुष्पान्विताम्
इत्थं निर्वचनीकृतो दयितयाह्रीणो हरिः पातु वः॥

यहाँ वक्रोक्ति के माध्यम से राधा और कृष्ण के वार्तालाप का सरस वर्णन है।

आचार्य आनन्दवर्द्धन द्वारा "ध्वन्यालोक" में प्राचीन काव्यों से उदाहरण दिये गये हैं। ग्रन्थकार कश्मीर-नरेश अवन्ति वर्मा (855-888 ई०) की सभा के प्रकाण्ड पण्डित थे। राधा के विषय में दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं-

तेषां गोपवधूविलास सुहृदां राधारहः साक्षिणां
क्षेमं भद्र कलिन्दशैलतनयातीरे लतावेश्मनाम।
विच्छिन्ने स्मरतल्यकल्पनमृदुच्छेदोपयोगेऽधुना
ते जाने जरठी भवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः। पृष्ठ - 77

29- येयं राधा यश्चकृष्णोरसाब्धिर्देहश्चैकः क्रीडनार्थं द्विधा भूत।
देही यथा छाया शोभमानः शृण्वन् पठन् याति तद्धाम शुद्धम्॥12॥
वशिष्ठं च वृहस्पति चार्वागध्यापयति यजमानस्यर्वाहस्पत्य च॥13॥
-इति अथर्ववेदीय श्री राधिकातापिनी उपनिषद्।

इस श्लोक में अचेतन पदार्थों, चेतन वस्तु के वृतान्त की योजना है। दूसरा पद्य ध्वनि के दृष्टान्त के सन्दर्भ में है-

दुराराधा राधा सुभग यदनेनापिमृजत्
स्तवैतत प्रायेणाजघनवसनेनाशु पतितम्।
कठोरं स्त्रीचेतस्तदलमुप चारैर्विरमहे
क्रियात् कल्याणं वो हरिरनुनयेण्वेनमुदितः॥ पृष्ठ 214-15

भट्ट नारायण कृत् "वेणीसंहार" नाटक की नान्दी में यह श्लोक उपलब्ध है-

कालिन्धाः पुलिनेषुकेलिकुपितामुत्सृज्य रासेरसं
गच्छन्तीमनु गच्छतोऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशित पदस्योद्भूतरोमोद्गते-
रक्षुण्णोऽनुनयः प्रसन्न दयितादृष्टस्य पुष्णातु वः॥

अर्थात् यमुना के किनारे रास क्रीड़ा में प्रेम तथा अनुराग छोड़कर कुपित होकर राधिका कहीं चली गयी। भगवान् उसे खोजने के लिए इधर-उधर घूमने लगे। राधा के पदचिह्नों पर अपना पैर रखते ही उन्हें रोमाञ्च हो गया। प्रेम की इस अलौकिक अभिव्यक्ति को देखकर राधा प्रसन्न हो गयी और कृष्ण को देखने लगी। इससे स्पष्ट है कि 8वीं शती के पूर्व राधा और रासलीला साहित्य जगत में प्रचलित हो चुकी थी।

पंचतन्त्र की रचना लगभग 1500 वर्ष पूर्व हुई थी। उसमें वर्णन है कि एक तन्तुवाय (बुनकर) का पुत्र श्रीकृष्ण सजकर अपने सूत्रधार मित्र की सहायता से लकड़ी के बने गरुड़ पर सवार होकर किसी राज अन्त:पुर में पहुँच गया और अपनी प्रणयिनी राजकन्या से बोला-

"सुभगे! सत्यमभिहितं भवत्या परं किन्तु राधा नाम ते भार्या गोकुलप्रसूता प्रथम आसीत्।"

इससे स्पष्ट है कि राधा का गोकुल में उत्पन्न होना लोक प्रसिद्ध घटना थी।

महाकवि भास द्वारा रचित "बालचरित" नाटक में गोपियों के रूप-सौन्दर्य का वर्णन है। विद्वानों ने भास का समय ईसा पूर्व चतुर्थी शती से लेकर ईसा की तृतीय शती मानते हैं। अस्तु यह रचना लगभग 1700 वर्ष पूर्व की है। देखिये गोपियों का रूप विन्यास-

एताः प्रफुल्लकमलोत्पल वक्त्रनेत्रा
गोपाङ्गनाः कनक चम्पकपुष्पगौराः।
नानाविराग वसना मधुर प्रलापाः
क्रीडन्ति वन्यकुसुमाकुलकेश हस्ताः॥ बालचरित 3/2

हाल की "गाहा सतसई" (गाथा सप्तशती) की रचना ईसा की प्रथम शती तो मानी ही जाती है, क्योंकि हाल का संस्कृत नाम शालिवाहन था जो ईसा की प्रथम शती में प्रतिष्ठानपुर में राज्य करते थे। उनका कथन है कि प्राकृत की करोड़ों गाथा से चुनकर उन्होंने यह सरस संग्रह किया है। अतएव इन गाथाओं को उनसे भी पहले की मानना पड़ता है। गाथासप्तशती इस "गाहा सत्तसई" में श्री राधिका (राहिका), कृष्ण (कण्ह) और श्रीकृष्ण जननी यशोदा (जसोआ) तथा ब्रज-वधू गोपाङ्गनाओं (बअबहूहिं) का स्पष्ट उल्लेख है-

अज्जबि बालो दामोअरो त्ति इअ जप्पिअइ जसोआए।
कण्ह-मुह-पेसिअच्छं निनुअं हसिअं बहवूहिं॥

श्लोक का संस्कृत रूप है-

अद्यापि बालो दामोदर इति इह जल्प्येते यशोदया।
कृष्णमुखप्रेषिताक्षं निभृतं हसितं ब्रजवधूमिः॥

एक अन्य श्लोक है-

मुहमारुएण तं कण्ह गोरअं राहिआए अवणेन्तो।
एदाणं बल्लवीर्णं अण्णाणं विगोरअं हरसि॥

इसका संस्कृत रूपान्तर है-

मुखमारुतेन त्वं गोरजो राधिकाया अपनयन्।
एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरवं हरसि॥

भाव है-हे कृष्ण तुम अपने मुख की हवा से, मुँह से फूँक मारकर, राधिका के मुँह में लगे हुए गोरज को हटा रहे हो। इस व्यापार से, प्रेम प्रकाशन के द्वारा तुम अन्य गोपियों का महत्त्व कम रहे हो।

बारहवीं शती में जयदेव कृत गीत गोविन्द में श्रीकृष्ण नायक तथा राधिका नायिका हैं। सम्पूर्ण काव्य राधा-कृष्ण की लीलाओं का विलास वर्णन है।

उपर्युक्त समस्त वर्णनों में सबसे प्राचीन रचना हाल की "गाथा शप्तशती" है। राधा का आविर्भाव प्रथम शती में हो चुका था। पं० बलदेव उपाध्याय भी राधा की प्राचीनता पर ऐसा ही विचार प्रकट करते हैं। राधा का निश्चित आविर्भाव प्रथम शती में हो चुका था और उसके उदय का क्षेत्र उत्तरी महाराष्ट्र या गुजरात का प्रान्त था। यहीं से यह कल्पना कालान्तर में ब्रजमण्डल में आयी, जहाँ बारहवीं शती में निम्बार्क ने अपनी दशश्लोकी में पहली बार धार्मिक जगत में कृष्ण की सहचरी के रूप में वृषभानुनन्दिनी राधा का उल्लेख किया।[30]

पुराणों में राधा

श्रीमद्भागवत

समस्त पुराणों में राधा-कृष्ण की ललित तथा मधुर लीलाओं का सर्वाधिक विशद् वर्णन करने वाला पुराण है श्रीमद्भागवत। इसमें राधा का नाम स्पष्टतया अंकित नहीं है। रासलीला प्रसंग में वर्णन है कि कृष्ण रास मण्डल में से एक अपनी प्रियतमा गोपी को साथ लेकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इससे सभी गोपियाँ व्याकुल हो जाती हैं और कृष्ण को ढूँढ़ने लगती हैं। खोजते हुए बालुकाराशि में उन्हें कृष्ण के पदचिह्न दिखाई पड़ते हैं। उसके समीप किसी ब्रजवाला का पदचिह्न दृष्टिगोचर होता है। उसके गौरव की प्रशंसा करती हुई गोपियाँ कह उठती हैं-

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥[31] भागवत 10/13/24

इस रमणी के द्वारा अवश्य ही भगवान् ईश्वर कृष्ण आराधित हुए हैं क्योंकि गोविन्द हमको छोड़कर उसे एकान्त में ले गये हैं। इस श्लोक में राधा का नाम झीने चादर में झलकता-सा प्रतीत होता है।

30- भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा-पृ, 24,

31- इस श्लोक की टीका में गौड़ीय गोस्वामियों ने राधा का स्पष्ट उल्लेख किया है। श्री सनातन गोस्वामी ने अपनी "वृहत्तोषिणी" व्याख्या में लिखा है-राधयति आराधयतीति श्री राधेति नामकरणस्य। श्री जीव गोस्वामी ने भी यही बात अपनी वैष्णव तोषिणी व्याख्या में दुहराई है। विश्वनाथ चक्रवर्ती तथा धनपति सूरि ने भी यहाँ राधा का नामकरण गुप्त भाव से स्वीकार किया है।

"अनया राधित:" का पदच्छेद दो प्रकार से किया गया है-अनया राधित: तथा अनया अराधित:। दोनों में ही समान भाव की अभिव्यक्ति होती है। अनेक विद्वानों का मत है कि शुकदेव जी ने राधा के गोपनीय भाव-धन को प्रकाशित करना उचित नहीं समझा फिर भी गूढ़रूप में प्रकट ही हो गया। भागवत के प्रवक्ता श्री शुकदेव जी राधा जी से गुरु भाव रखते थे-धर्म शास्त्रों में गुरु का नाम लेना पाप कहा गया है-

आत्नाम गुरेर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृहणीयाज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥

भागवत का प्रथम श्लोक मंगलाचरण के रूप में इस प्रकार है-

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट
तेने ब्रह्महृदाय आदि कवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषो
धाम्ना स्वेनसदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि॥ 1/1/1

परं शब्द से परा और पर दोनों का ही बोध होता है। परा श्री राधा और पर श्रीकृष्ण ही हैं। इस प्रकार यह भी अर्थ हो सकता है कि हम श्री राधा-कृष्ण युगल का ध्यान करते हैं।

श्रीकृष्ण के साथ राधिका का विवाह होने का बीज रूप में प्रमाण देखने को मिलता है-

विरचितमयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतर्भयात्।
कर सरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहिनः श्रीकरग्रहम्॥ श्रीमद्भागवत 10/31/5

अपने प्रेमियों की अभिलाषा पूर्ण करने वालों में अग्रगण्य यदुवंश शिरोमणि! जो लोग जन्म-मृत्यु रूप संसार के चक्कर से डरकर तुम्हारे चरणों की शरण ग्रहण करते हैं उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्र-छाया में लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम! सबकी लालसा को पूर्ण करने वाला वह कर कमल जिस हस्त कमल से राधिका जी का पाणिग्रहण (श्रीकरग्रहम्) हुआ है, हमारे सिर पर रख दो।

पद्म पुराण

पाताल खण्ड के अध्याय 69 में राधा आद्या प्रकृति तथा कृष्ण की वल्लभा मानी गई हैं। दुर्गा आदि त्रिगुणमयी देवियाँ उसकी कला के करोड़वें अंश को धारण करती हैं और उनकी चरण की धूलि के स्पर्श मात्र से करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते हैं-

तत्प्रिया आद्या प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्ण वल्लभा।
तत्कलाकोटि कोट्यंशा दुर्गाद्या स्त्रिगुणात्मिका॥
तस्या अङ्घ्रिरजः स्पर्शात् कोटि विष्णुः प्रजायेत॥ 118

राधा का आविर्भाव वृषभानु के यहाँ होता है परन्तु वह न बोलती, न सुनती और न चलती-फिरती है। नारद को ज्ञान होता है कि कृष्ण राधा सहित भूतल पर पधारे हैं। नारद ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वृषभानु के घर पहुँचते हैं जहाँ वृषभानु अपने पुत्री के विषय में कहते हैं, "भगवन्! मेरी एक पुत्री है, सुन्दर तो वह इतनी है, मानो सौन्दर्य की खानि कोई देवपत्नी इस रूप में उतर आई हो। पर आश्चर्य है कि वह अपनी आँखें सदा निमीलित रखती है। इसलिए हे भगवन! श्री चरणों में मेरी यह प्रार्थना है कि एक बार अपनी सुसम्पन्न दृष्टि उस बालिका पर डालकर उसे प्रकृतिस्थ कर दें।" नारद अन्त:पुर में जाकर देखते हैं-स्वर्णनिर्मित सजीव सुन्दरतम प्रतिमा-सी एक बालिका भूमि पर लोट रही है। नारदजी उसे जगज्जननी का रूप जान, वृषभानु को बाहर भेजकर स्तवन करने लगे-

तत्वं विशुद्धसत्वासु शक्तिर्विद्यात्मिका परा।
परमानन्द सन्दोह दधती वैष्णव परम॥
कलयाऽऽश्चर्य विभवे ब्रह्मरुद्रादि दुर्गमे।
योगीन्द्राणां ध्यानपथं नत्वं स्पृशसि कर्हिचित॥
इच्छा शक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेशितुः।
तवांशमात्रमित्वेवं मनीषा मे प्रवर्त्तते॥
आनन्द रूपिणीं शक्तिस्त्वमीश्वररि न संशयः।
त्वा च क्रीडते कृष्णो नूनं वृन्दावने वने॥
कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी।
तारुण्य वयसा स्पृष्टं कीदृक्ते रूपमद्भुयतम्॥ पद्मपुराण पाताल खण्ड

यहाँ नारद की स्तुति में इस कन्या को श्रीकृष्ण की आनन्दरूपिणी शक्ति, प्राणेश्वरी, वृन्दावन की क्रीड़ा-संगिनी तथा विश्वमोहिनी बताया गया है।

राधा-कृष्ण सबसे परे और सर्वरूप हैं। भगवान् शिव देवर्षि नारद से कहते हैं-

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता।
सर्वं लक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी॥ पद्मपुराण पाताल खण्ड 50/53

एक स्थान पर राधा-कृष्ण के माहात्म्य का वर्णन है।[32] उसमें राधाष्टमी का भी वर्णन उपलब्ध है। राधाष्टमी व्रत करने वाले वैष्णव कहे गये हैं।[33] धर्म-वृद्धि और अधर्म के ह्रास के निमित्त श्रीकृष्ण के प्राकट्य के साथ-साथ उनकी विभूतियाँ भी पृथ्वी पर उतरीं। उनमें प्रधान थीं श्री राधा। भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को आपका प्रादुर्भाव हुआ।[34]

विष्णुपुराण

विष्णु पुराण के पंचम अंश में तेरहवें अध्याय के 23 से 41 श्लोकों तक गोपियों की प्रणयलीलाओं का वर्णन है। श्रीमद्भागवत की तरह यहाँ भी एक विशेष प्रेम-पात्र गोपिका का सन्दर्भ है। गोपियाँ आगे कहती हैं कि उनके साथ कोई पुण्यवती मदमाती युवती भी गयी है। उसके ये छोटे-छोटे और पतले चरण चिह्न दिखाई दे रहे हैं।[35] यहाँ निश्चय ही दामोदर ने ऊँचे होकर पुष्प चयन किया है, इसी से यहाँ उन महात्मा के चरणों के केवल अग्रभाग ही अंकित हुए हैं।[36]

शिवपुराण

शिवपुराण के निम्न श्लोक में राधा का प्रादुर्भाव माना जा सकता है-

कलावती सुधा राधा साक्षात् गोलोक वासिनी।
गुप्त स्नेहनिबद्धा सा कृष्ण पत्नी भविष्यति। शिवपुराण, रुद्रसंहिता-2, पार्वती खण्ड-3, अध्याय-2

नारद पुराण

सनत्कुमार ने नारद से कहा कि अर्चावतार से कृष्ण की पूजा करनी चाहिए, भक्त प्रार्थना करता है

32- यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं तथा प्रियम्।-पद्मपुराण का माहात्म्य, 33- राधाष्टमी व्रतरतां विज्ञेयास्ते च वैष्णवाः राधाष्टमी व्रत माहात्म्य। पद्मपुराण ब्रह्म खण्ड अध्याय-1, 34-भाद्रे मासि सिताष्टाभ्यां जाता श्रीराधिका यतः। अष्टमी सोऽद्यं संप्राप्ता तां कुर्वा(यी)म प्रयत्नतः॥ तृतीय ब्रह्मखण्ड, अध्याय-7, 35-कापि तेत समायाता कृतपुण्या मदालसा। पदानि तस्याश्चैतानि घनान्यल्पतनूनि च॥ विष्णुपुराण 5/13/33, 36- विष्णु पुराण 5/13/34

कि निरन्तर हृदयगत हरिकृष्ण का चिन्तन कर शरण में प्राप्त होता हूँ, वे कृष्ण ही मेरा नित्य पालन करेंगे।[37] भक्त की पुकार है-

तवास्मि राधिका नाथ कर्मणाः मनसा गिरा।
कृष्ण कान्तेति चौवास्मि युवामेव गतिर्मकम्॥26॥[38]

"हे राधिका नाथ! हे कृष्ण कान्ते, हम कर्म से, मन से, वाणी से तुम्हारे हैं। तुम दोनों ही मेरी गति हो।" नारद पुराण में राधा जी के ही अंश से सरस्वती आदि पाँच प्रकृतियों के उत्पन्न होने का विधान है-

जृम्भाश्वासे तु कृष्णस्य प्रविष्टे राधिका मुखम्॥91॥
या तु देवी समुद्भूता वीणापुस्तकधारिणी।
तस्याः विधानं विप्रेन्द्र श‍ृणु लोकोपकारकम्॥92॥[39]

'कृष्ण की जँभाई की श्वास राधिका जी के मुख में प्रवेश होने पर वीणा पुस्तक लिए हुए जो देवी सरस्वती पैदा हुई, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ उस सरस्वती का लोकोपकार करने वाला विधान सुनो।'

ब्रह्मवैवर्त पुराण

ब्रह्मवैवर्त पुराण राधा-कृष्ण की लीलाओं का सम्यक् वर्णन प्रस्तुत करता है। पन्द्रहवें अध्याय में राधा के स्वरूप का चमत्कारी विवरण प्रस्तुत किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि कवि उन्हें आदर्श नारी का प्रतिनिधित्व मानकर अपना काव्य-कौशल अभिव्यक्त कर रहा है। इसी अध्याय में राधा के साथ कृष्ण का विधिवत् विवाह कराया गया है। 27वें अध्याय में राधा-कृष्ण के वार्तालाप का प्रसंग है जिसमें राधा-कृष्ण के अभिन्न सम्बन्ध को पार्वती ने प्रकट किया है-

यथाक्षीरे च धावल्यं यथा वह्नौ च दाहिका।
भुविगन्धो जले शैत्यं तथा कृष्णे स्थितिस्तव॥ 212॥

'जिस प्रकार दूध में धवलता, अग्नि में दाहकता, पृथ्वी में गंध, जल में शीतलता का निवास रहता है, उसी प्रकार कृष्ण में तुम्हारी स्थिति है।' इसके बाद के अध्यायों में रासलीला का विस्तृत वर्णन है (अध्याय 28 तथा 29)। अध्याय 92 में उद्धव जी ने राधा की जो स्तुति की है, उसमें परवर्ती भावों का विशेष मिश्रण मिलता है। संसार में जितनी शक्तियाँ हैं-सावित्री, दुर्गा, पार्वती, त्रिपुरा, सती, अपर्णा, गौरी आदि - उन सबके साथ राधा की एकता स्थापित की गई है और शक्ति तथा शक्तिमान में अभेदत्व सम्पन्न किया गया है (92/86/87)। अध्याय 111 में कृष्ण के नाना रूपों की निरुक्ति के साथ "राधा" शब्द की भी व्युत्पत्ति की गई है। इसके अनुसार "रा" शब्द विष्णु का तथा "धा" शब्द धात्री (माता या जननी) का वाचक बताया गया है। इस प्रकार राधा को विष्णु की जननी, ईश्वरी तथा मूल प्रकृति सिद्ध किया गया है-

राशब्दश्चमहाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्व प्राणिषु विश्वेषु धात्री मातृवाचकः॥57॥
धात्री माता रमे तेषां मूल प्रकृतिरीश्वरी।
तेन राधा समाख्याता हरिणाच पुरा बुधैः॥58॥

इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण राधा-माधव की लीलाओं से ओतप्रोत है। कुछ बातें तथा घटनायें यहाँ ऐसी हैं जो अन्य पुराणों में दृष्टिगोचर नहीं होतीं। कृष्ण के साथ राधा का विवाह भी ऐसा ही

37- प्रपन्नोऽस्मीति सततं चिन्तयेद्धृद्गतं हरिम्। स एव पालनं करिष्यति ममेति च॥25॥, 38- नारद पुराण पूर्वार्द्ध अध्याय-82, 39- नारद पुराण पूर्वार्द्ध अध्याय- 83

एक विचित्र प्रसंग है (अध्याय 15)। वर्णनों से प्रतीत होता है कि इस युग में राधा की महिमा अपने उत्कर्ष पर थी।

वाराहपुराण

वाराह पुराण के 164वें अध्याय में कृष्ण द्वारा बृषासुर को मारकर राधाकुण्ड का निर्माण किया, ऐसा सन्दर्भ है। राधाकुण्ड में स्नान करने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है। यह मोक्षराज तीर्थ है, मुक्तिदाता है और इसमें स्नान करने से ब्रह्म-हत्या के पाप का शमन हो जाता है-

स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थमद्धरतः।
राधाकुण्डमिति ख्यातं सर्वपापहरं शुभम्॥36॥
अरिष्ट राधाकुण्डाभ्यां स्नानात्फलमवाप्नुयात्।
राजसूयाश्वमेधानां नात्र कार्या विचारण॥37॥ वाराह पुराण 164वाँ अध्याय

स्कन्द पुराण

श्रीमद्भागवत के माहात्म्य का वर्णन करते हुए स्कन्द पुराण में व्यास जी कहते हैं कि राधा भगवान् श्रीकृष्ण की आत्मा हैं-

आत्मातु राधिका तस्य तथैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढ़वेदिभिः॥ स्कन्द पुराण, अध्याय-एक

पौराणिक भावना के अनुसार श्रीकृष्ण की राधिका स्वयं आत्मरूप हैं, जिसके साथ वे सर्वदा रमण किया करते हैं और इसी प्रकार वे "आत्माराम" शब्द के द्वारा प्रशंसित किये जाते हैं। श्रीकृष्ण ही राधा और राधा ही श्रीकृष्ण हैं। इन दोनों का प्रेम ही वंशी है-

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्यास्य प्रभावेण विरहोऽस्मान् न संस्पृशेत्॥
तस्या एवांश विस्तारा: सर्वा: श्रीकृष्णनायिका:।
नित्य सम्भोग एवास्ति तस्या: सामुख्य सोगत:॥

ब्रह्माण्ड पुराण

यहाँ कृष्ण ने अपने मुख से कहा है, "जिह्वा में, नेत्र में, हृदय में तथा सर्व अंगों में व्यापिनी राधा का मैं आराधन करता हूँ-

जिह्वा राधा सुतौ राधा नेत्रे राधा हृदि स्थिता।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया॥ ब्रह्माण्ड पुराण अध्याय 42

राधिका को नित्य कृष्ण की आत्मा और कृष्ण को निश्चय राधिका की आत्मा बताया है-

राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मको ध्रुवम्।

देवीभागवत

इसमें राधा को मूल प्रकृति के रूप में ही माना है। श्रीकृष्ण की भाँति राधा भी पराशक्ति की अवतार हैं। आद्या प्रकृति में पाँच रूप हैं- 1-दुर्गा, 2-राधा, 3-लक्ष्मी, 4-सरस्वती, 5-सावित्री।

गणेश जननी दुर्गा राधा लक्ष्मी: सरस्वती।
सावित्री च सृष्टि विधौ प्रकृति: पंचधास्मृता।1॥ नवमस्कन्द, प्रथम अध्याय

श्री देवी भागवत में भी राधा की उपासना तथा पूजा-पद्धति का विवरण मिलने से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उस युग में राधा को श्रीकृष्ण का साहचर्य प्राप्त हो गया था। नवम् स्कन्द के तृतीय अध्याय में महाविष्णु की उत्पत्ति चिन्मयी राधा से बतलाई गई है। यह महाविष्णु महान् विराट स्वरूप बालक के रूप में चित्रित किए गये हैं। परमात्म प्रकृतिसंज्ञक राधा से उत्पन्न यह बालक सम्पूर्ण विश्व का आधार बतलाया गया है। इसके प्रत्येक रोम कूप में असंख्य ब्रह्माण्डों की सत्ता है। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और शिव विद्यमान हैं। इस प्रकार इस बालक के शरीर में विद्यमान ब्रह्माण्डों की संख्या जताई नहीं जा सकती। इसी स्कन्ध के 50वें अध्याय में राधा के मन्त्र का स्वरूप, जपविधि तथा फल का विवरण विशेष रूप से दिया गया है। राधा मंत्र है - "श्री राधायै स्वाहा"। राधा की अर्चना के बिना कृष्ण की अर्चा में किसी का अधिकार नहीं है। इसलिए वैष्णवों का कर्त्तव्य है कि वे कृष्ण-पूजा से पहले राधा की पूजा अवश्य करें। राधाकृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय है। वे व्यापक परमात्मरूप कृष्ण राधा के अधीन सर्वदा बने रहते हैं और उनके बिना वे क्षणभर भी नहीं रहते-

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं बिना।
वैष्णवै: सकलैस्तस्मात् कर्त्तव्यं राधिकार्चनम्॥17॥
कृष्णप्राणाधिका देवी तद्धीनो विभुर्यत:।
रासेश्वरीतस्य नित्यं तथा विना न तिष्ठति॥18॥

भविष्य पुराण

भविष्य पुराण प्रतिसर्ग के 25वें अध्याय में वर्णन है कि उस अव्यय सनातन पुरुष के शरीर से दो विभाग हुए जो राधा-कृष्ण के नाम से कहलाए। एक सहस्त्र युग पर्यन्त जो घोर तप किया था उसी के कारण श्रीकृष्ण के शरीर से दो भाग राधा और कृष्ण पृथक्-पृथक् हुए-

तदव्ययात्वमुदभूतोराधाकृष्ण: सनातन:।
एकीभूतं द्वयोरंगे राधाकृष्णो बुधै: स्मृत॥ 156॥
सहस्त्रयुग पर्यन्तं यत्तेपे परमं तप:।
तदा स च द्विधाजातो राधाकृष्ण: पृथक् पृथक्॥157॥

आदिपुराण

इस पुराण में राधा के जन्म और विवाह का वर्णन है। भादों के महीने में शुक्ल पक्ष अष्टमी दिन रविवार को आधी रात के बाद ज्येष्ठा नक्षत्र के चौथे चरण में राधिका का जन्म हुआ। वैशाख माह के शुक्ल पक्ष की अक्षयतृतीया के दिन रोहिणी नक्षत्र में शुभ मुहूर्त्त और लग्न को देखकर गुणवान वृषभानु ने उत्तम वस्त्र अन्न इत्यादि देकर कन्या का विवाह कर दिया-

अष्टभ्यां भाद्र शुक्लस्य सा जाता रविवासरे।
रात्रौ पराह समये ज्येष्ठायाश्चान्तिमे पदे॥9॥
किमहं वर्णये भाग्यं राधाया: परमाद्भुतम्।
ब्रह्मादयोऽपि न विदु: परमानन्द मन्दिरम्॥10॥
ततोविवाहमकदोद्वृषभानुर्गुणोदय: ।
वैशाखे सितपक्षो तु तृतीया चाक्षयाहया॥11॥

रोहिणी स्वर्क्ष सम्पूर्णा जाया लग्न शुभावहा।
पारिबर्हादिकं दत्त्वा वस्त्रमन्नं समृद्धिमत्॥12॥ आदि पुराण, अध्याय 12

गर्गसंहिता

गोलोक खण्ड अध्याय 15 में गर्ग जी बृषभानु से राधा के विवाह के सम्बन्ध में कहते हैं कि हे बृषभानु इन राधा-कृष्ण का विवाह हम नहीं करा सकते। इन दोनों का विवाह यमुना के तट पर भांडीर वन के पास होगा। वृन्दावन के समीप जहाँ कोई भी मनुष्य नहीं ऐसे सुन्दर स्थल में आकर ब्रह्मा जी विवाह करायेंगे-

अहं न कारयिष्यामि विवाहमनयोर्नपि।
तयोर्विवाहो भविता भांडीरे यमुनातटे॥60॥
वृन्दावन समीपे च निर्जने सुन्दरस्थले।
परमेष्ठी समागत्य विवाहं कारयिष्यति॥61॥ अध्याय-15

इसी प्रकार गर्ग संहिता में गोलोक खण्ड, अध्याय 21 श्लोक 54, अध्याय 3 के श्लोक 5, 21, 40-41 में राधा का उल्लेख उपलब्ध है। गर्गसंहिताकार ने राधा के नाम की व्याख्या करते हुए उसे सम्पूर्ण कहा है- **रमया तुरकारः स्यादाकारस्त्वादिगोपिका।**
धकाराधरया हास्यादापयगाबिरजा नदी॥68॥

संक्षेपत: राधा-वर्णन का पुराणों में यही रूप है। जीवगोस्वामी ने "ब्रह्मसंहिता" की टीका में "राधा वृन्दावने इति मत्स्य पुराणात्" कहकर राधा की स्थिति मत्स्यपुराण में मानी है। "उज्ज्वल नीलमणि" में रूप गोस्वामी का कहना है कि "गोपालोत्तरतापिनी" उपनिषद में राधा "गान्धर्वी" के नाम से विश्रुत है तथा ऋक्-परिशिष्ट में राधा माधव के साथ कथित है-

गोपालोत्तरतापिन्यां गान्धवीति विश्रुता।
राधेत्यृक् परिशिष्टे च माधवेन सहोदिता॥

माधुर्य भक्ति में राधा-कृष्ण

(विभिन्न भागवत सम्प्रदायों के परिप्रेक्ष्य में)

अत्यन्त प्राचीनकाल से ईश्वर को प्राप्त करने के लिए भक्ति-भावित सन्तों ने धर्म-साधना के विभिन्न सोपानों का समाश्रयण किया है। इनमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य प्रमुख हैं। माधुर्यभक्ति मानव-हृदय की सहज मूल प्रवृत्ति है। प्रिय का प्रिय से संयोग, पारस्परिक रसत्व वार्तायें ही माधुर्य हैं। इस माधुर्य की निष्पत्ति हेतु एक-दूसरे का आकर्षण आवश्यक है। ईश्वर के प्रति यह प्रेमाभक्ति कृत्रिमता से असम्पृक्त है। मन की इस स्वाभाविक स्थिति में भक्त ईश्वर के रामजनित प्रेम के अभाव में रह ही नहीं सकता। ईश्वरोन्मुख होने के लिए संसार से विमुख होना पड़ता है। वैराग्य भक्त को ईश्वर केन्द्रित परिधि में ले जाता है। प्रभु-राग और जगत-राग एक साथ नहीं चल सकता। "ईशावास्यमिदं सर्वं" मानकर संसार के प्रति आसक्ति जगने पर तो सब कुछ "सिया राममय" हो जाता है और भक्त की प्रियता देवत्व के कारण ही स्थापित होकर भक्ति का उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण कर देती है।

भगवान् श्रीकृष्ण की कान्त भाव से उपासना करना माधुर्यभाव से अभिहित किया जाता है। कृष्ण विषयक इस प्रियता में माता-पिता, बन्धु-सखा, पति-पत्नी, सब अपने केन्द्र में रहते हुए मन की उस उच्चावस्था पर पहुँच जाते हैं जहाँ परमपिता परमेश्वर का परमानन्द स्वत: सुलभ हो जाता है। यही प्रियता श्रीकृष्ण और सुन्दरी गोपिकाओं के संभोग का कारण बनकर माधुर्य रस उत्पन्न कर देती है। भक्ति की यह चरम पराकाष्ठा मानी जाती है क्योंकि ऐसी स्थिति में मर्यादा और संकोच दूर हो जाते हैं और भगवान् की निरन्तर सेवा अबाध गति से होती रहती है, अस्तु सुख का रसास्वादन प्रगाढ़ हो जाता है।

यह माधुर्य रस सांसारिक दाम्पत्य रस से सर्वथा भिन्न है। लौकिक रस के जितने सम्बन्ध हैं वे सब स्वार्थमूलक होते हैं अर्थात् अपने सुख के लिए होते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति जो यह स्नेहभाव है वह स्वार्थभावना से सर्वथा उन्मुक्त और अलौकिक है। लौकिक दाम्पत्य-प्रेम अहंकारमूलक है और भगवत्सम्बन्धी माधुर्य भक्ति रस पर सुखमूलक होता है। एक को काम कहते हैं और दूसरे को प्रेम और दोनों में आकाश-पाताल की दूरी होती है। हृदय में जब प्रगाढ़ माधुर्यभाव बद्धमूल होकर प्रतिकूल दशा में विचलित नहीं होता, तब उसे "प्रेम" कहते हैं। प्रेम वर्द्धमान होकर स्नेह भाव, प्रणय राग और अनुराग दशा को प्राप्त हो जाता है और तब भक्त "महाभाव" की चरम सीमा पर पहुँच जाता है। यही सर्वसमाहारिणी इन्द्रियातीत भावमयी परास्थिति है जो परम भक्त रूपिणी श्री राधिका के जीवन तथा आत्मा का स्वरूप है। भक्त को भी यहीं पहुँचने का ध्येय बनाना चाहिए।

ऐसी माधुर्य भक्ति का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण से नैकट्य बनाने वाले भागवत सम्प्रदायों में निम्न मुख्य हैं-

1-निम्बार्क सम्प्रदाय, 2-गौड़ीय सम्प्रदाय, 3-राधावल्लभ सम्प्रदाय, 4-हरिदासी सम्प्रदाय, 5-वल्लभ सम्प्रदाय इन सभी सम्प्रदायों में राधा और कृष्ण को विभिन्न दृष्टियों से देखा गया है और उपासना की गई है। किसी सम्प्रदाय में कृष्ण महान् हैं तो किसी में राधा और किसी में दोनों की स्थिति सम्पृक्त है। राधा-कृष्ण के इन भिन्नश: रूपों का दिग्दर्शन अलग-अलग किया जा रहा है।

1-निम्बार्क सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को सर्वेश्वर आराध्यदेव तथा उनकी आह्लादिनी शक्ति को राधा माना गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म हैं जिनकी वन्दना ब्रह्मा, शिव आदि समस्त देवता करते हैं। उनकी शक्तियाँ अचिंतनीय हैं। कृष्ण परम उपास्य देवता हैं-

नान्या गतिः कृष्ण पदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवंदितात्।
भक्तेच्छयोपात्त-सुचिन्त्यविग्रहादचिन्त्य शक्तेरविचिन्त्य शासयात्॥ -दशश्लोकी, श्लोक 8

कृष्ण की प्राप्ति का साधन है-भक्ति, जो पाँच भावों से पूर्ण कही जाती है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा उज्ज्वल। राधा तथा गोपी उज्ज्वल रस के भक्त हैं। निम्बार्क ने युगल उपासना के साथ कृष्ण की माधुर्य तथा प्रेमशक्ति रूपा राधा की उपासना पर जोर दिया था क्योंकि वे राधा में ही भक्तों की सफल कामनाओं को पूर्ण करने की शक्ति मानते हैं-

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामतस सौभगाम्।
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेमदेवीं सकलेष्ट कामदाम्॥ -दशश्लोकी, श्लोक-5

श्री राधा और कृष्ण एक-दूसरे के प्रेम में सदा मत्त रहते हैं। उनका प्रेम एक रस है, अस्तु उसमें विषमता के लिए कोई स्थान नहीं है-

सेतो सेव्य हमारे श्रीपिय प्यारे वृन्दाविपिन विलासी।
नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी चरण अनन्य उपासी॥
मत्त प्रणय बस सदा एकरस विविध निकुंज निवासी। -युगल शतक: सिद्धान्त सुख, पृष्ठ-2

राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति जिन सहस्रों सखियों के द्वारा सेवित हैं वे परिचारिका सखियाँ भक्त स्थानीय हैं। ये भक्तगण इस युगल की "सकलेष्ट काम" की पूर्ति के लिए सदासेवा करते हैं। राधिका श्रीकृष्ण से अभिन्न और उनके ही समान सौन्दर्य सम्पन्न एवं हर्ष से सुशोभित हैं। राधा-कृष्ण की युगलमूर्ति की उपासना इष्ट है।

आचार्य निम्बार्क के अन्यतम शिष्य श्री औद्रम्बराचार्य ने अपने ग्रन्थ "औद्रम्बर संहिता" में राधा-कृष्ण के युग्मतत्त्व विशेष स्पष्टीकरण किया है। वे कहते हैं कि राधा-कृष्ण का यह युग्म सदा-सर्वदा विद्यमान रहता है, यह नित्य वृन्दावन में नित्य विहार करता है। राधा और कृष्ण समभावेन अवस्थित रहते हैं। दो दृष्टिगोचर होने पर भी वास्तव में दोनों एक रूप ही हैं। इनकी आकृतियाँ आपस में एक दृष्टि से नितान्त सम्पृक्त हैं। जिस प्रकार सरिता के वक्षस्थल पर प्रवाहित होने वाले दो कल्लोल (लहर) पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं परन्तु दोनों मिलकर इस प्रकार एक रूप हो जाते हैं कि उनका विश्लेषण किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता है-

जयति सततमाद्यं राधिका कृष्ण-युग्मं, व्रत सुकृत निदानं यत्सदैतिहयमूलम्।
विरल सुजनगम्यं सच्चिदानन्द रूपं ब्रजवलयविहारं नित्य वृन्दावनस्थं॥
(औद्रम्बर संहिता, युग्माराधन-व्रत)

श्री राधा को अनुरूप सौभगा तथा कृष्ण की स्वकीया मानकर ही उनका स्वरूप कृष्ण के समान ही माना है। कृष्ण-राधा की माधुर्य लीला सम्प्रदाय की प्रमुख भाव लीला है। यह सम्प्रदाय भागवत से प्रभावित है। भागवत का प्रमुख उद्देश्य ही जीवों को श्रीकृष्ण की भक्ति में प्रवृत्त करना है। एकाग्रचित्त होकर उनके नामों का कीर्तन और लीलाओं तथा स्वरूप का ध्यान निरन्तर उनकी ही पूजा है।[1] रसोपासना की प्रधानता का आधार है "रसो वै स:"। रसग्राही साधक को चाहिए कि वह श्री राधा के साथ हँसते और उनको हँसाते हुए रतिकेलि द्वारा रसावेश से चपल नयन मुरली मनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण का ध्यान करें।[2]

उनके वाम भाग में नील वस्त्रों से विभूषित तप्तकंचन के समान वर्ण वाली श्री राधा जी विराजमान हैं। उन्होंने अपने पटांचल से आधामुख-कमल ढक रखा है और श्री श्यामसुन्दर के मुखारविन्द में अपनी दृष्टि लगा रखी है। वे अँगूठा और तर्जन से प्राणनाथ प्रियतम श्रीकृष्ण के मुख में ताम्बूल अर्पित कर रही हैं। मोतियों का हार पहने हुए हैं। सुन्दर पीन और उन्नत पयोधर, झीनी कमर तथा पृथुल श्रेणीभाग वाली नवयौवन सम्पन्ना सर्वावयव-सुन्दरी श्री राधा जी आनन्दमग्न हैं। सखियाँ चामर, व्यंजन आदि से उनकी परिचर्या कर रही हैं। उनकी वय और गुण श्री राधा जैसे ही हैं।[3] आचार्य निम्बार्क राधा के स्वकीया रूप को ही मानते हैं। राधा और कृष्ण की लीलायें भक्तों को सुख पहुँचाने के लिए होती हैं। तभी तो वे ज्यों-ज्यों इस बिहार में संलग्न होते हैं त्यों-त्यों उनकी प्रेम-रस पान की लालसा और भी तीव्र होती जाती है-

1-तस्मादेकेन मनसा भगवान् सत्वतां पति:। श्रीतव्य कीर्तितव्यश्च ध्येय: पूज्यश्च नित्यश:॥ भागवत 1/2/14,
2-पद्म पुराण, पाताल खण्ड 81/42-43, 3-रहस्यषोडशी-16

उरझि रहे सुरझत नहिं क्यों हूँ दोऊजन तन-तन मन-मन मेलि।
तृपत न होत तृषातुर चितवन, हितू जहाँ श्री हरि प्रिया सहेलि॥[4]
इस सम्प्रदाय में राधा महान् हैं।

2-श्री गौड़ीय सम्प्रदाय

गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री चैतन्य महाप्रभु हैं। माध्वमत की शाखा होने पर भी चैतन्य मत का दार्शनिक दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न है। चैतन्यमत "अचिन्त्य भेदाभेद" के सिद्धान्त को मानता है। भगवान् श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व हैं, उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान में न तो भेद है और न अभेद, इन दोनों का सम्बन्ध अचिन्त्य है। इसीलिए इस मत की प्रसिद्धि "अचिन्त्यभेदाभेद" के नाम से अभिहित की जाती है। श्री रूप गोस्वामी ने स्पष्ट करते हुए कहा है-

एकत्वं च पृथकत्वं च तथांशत्वमुतांशिता।
तस्मिन्नेकत्र नायुक्तम् अचिन्त्यानन्तशक्तित:॥ - लघु भागवतामृत 1/50

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण में उनकी स्वरूप आदि शक्तियों से अभिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य होने से वह भिन्न प्रतीत होता है और उनसे भिन्न रूप से चिन्तन करना अशक्य होने के कारण वह अभिन्न प्रतीत होता है। अत: शक्ति और शक्ति-मान में भेद और अभेद दोनों सिद्ध होते हैं और ये दोनों ही अचिन्त्य शक्ति होने के कारण अचिन्त्य माने जाते हैं। चैतन्य मत के अनुसार ब्रज स्वामी नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराधनीय भगवान् हैं। उनका धाम है वृन्दावन। ब्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गई रमणीय उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रामाणिक उपासना है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाणशास्त्र है। प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। ऐसा भाव सम्प्रदाय के एक प्रसिद्ध श्लोक से ज्ञात होता है।[5] कृष्ण के प्रति अनुराग-रति ही भक्तिरस है। भक्तिरस रूपिणी यह प्रेमाभक्ति आगे अभ्यास-साधना पर चलकर स्नेह मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव को प्राप्त हो जाती है।[6] ये महाभावादि कृष्ण भक्तिरस के स्थायी भाव हैं। श्रीकृष्ण आनन्दघन हैं और राधा प्रेम की घनीभूत मूर्ति, दोनों का साहचर्य नित्य है। श्रीकृष्ण भोक्ता हैं,[7] श्री राधा भोग्या हैं। श्रीकृष्ण के मन में जब जैसी भावना उठती है, तब ही राधा उसको पूर्ण कर देती हैं। श्री राधा गोविन्द को मोहित कर देती हैं, श्री राधा गोविन्द की सर्वस्व हैं। वे श्रीकृष्ण की कान्ताओं से सर्वश्रेष्ठ हैं।[8] श्रीकृष्ण की इच्छाओं को पूर्ण करना ही इनकी आराधना है, अस्तु इन्हें पुराणों में राधिका कहा गया है-

कृष्ण वाञ्छा-पूर्तिकरे आराधने।
अतएव राधिका नाम पुराणे व्याख्याने॥ चैतन्य चरितामृत 1-5, 75

कृष्ण राधा के वशवर्ती हैं, इसलिए वे सर्वेश्वरी हैं।[9] श्री राधा मूल कान्ता शक्ति हैं। वह आत्मसुख के लिए नहीं, प्राणप्रिय श्रीकृष्ण को सुखी करने के लिए ही वे प्रेमक्रीड़ा में विभोर हैं।

4- महावाणी : सेवासुख, पृष्ठ-24,
5- आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं रम्या काचिद्रपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
शास्त्रं भागवत प्रमाणमूलं, प्रेमापुमर्थो महान् श्री चैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न: पर:।
6- साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय। रति गाढ़ हैले तार प्रेम तार नाम कय॥
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह, मान, प्रणय। राग, अनुराग, भाव, महाभाव हय॥ चैतन्य चरितामृत, मध्व लीला।
7- कृष्ण के कराय श्याम रस-मधुपान। निरन्तर पूर्ण करे कृष्णेर सर्व काम॥ चैतन्य चरितामृत 2-2-141
8- गोविन्द नन्दिनी राधा गोविन्द मोहिनी। गोविन्द सर्वस्व सर्वकान्ता शिरोमणि॥ चैतन्य चरितामृत 1-4-61
9- जगमोहन कृष्ण-तोहार मोहिनी। अतएक समस्तेप्परा ठकुराणी॥ चैतन्य चरितामृत 1-4-82

राधा का परकीया भाव

चैतन्य मत में राधा को परकीया रूप में स्वीकार किया गया है। अपने षट्-दर्शन में जीव गोस्वामी जी ने इस मत की समीक्षा करते हुए राधा को स्वकीया माना है। यदि कहीं पर परकीया-भाव उपलब्ध होता है तो उसका अभिप्राय लीलावाद से है अर्थात् अप्रकट लीला में राधा श्री ब्रजनन्दन की परम स्वकीया हैं।[10] प्रकट लीला में विलास की विचित्रता के लिए, विहार में नूतनता दिखाने के लिए परकीया रूप में वर्णित की गई हैं। जीव गोस्वामी का यह मत परकीयावाद और स्वकीयावाद मतों के मध्य सन्तुलन उपस्थित करता है। चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास जीवगोस्वामी यदुनन्दन आदि विद्वान परकीया भाव को ही प्रमुखता देते हैं। परकीया सामाजिक दृष्टि से लोक में आदर्शहीन मानी जाती है किन्तु श्रीकृष्ण के प्रति यह भाव गर्हित नहीं है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य-चरितामृत में परकीया-प्रेम को उत्कृष्टतम कान्ता-प्रेम कहा है क्योंकि इसमें रस का अधिक उल्लास होता है-

परकीयाभावे अति रसेर उल्लास। ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि बास।
ब्रज वधू गणोर एद् भाव निरवधि। तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवधि॥

-आदिलीला चतुर्थ परिच्छेद

परकीया के उल्लास का कारण यह है कि जिसे जिससे निषेध किया है उसके प्रति उसकी अभिलाषा अति उत्कट हो जाती है। जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में जिस राधा की माधव के साथ नाना केलियों का प्रदर्शन किया है, वह राधा परकीया के रूप में ही वहाँ चित्रित है। यदि वे स्वकीया रहतीं, तो दूती का भेजना, दूती को अभिसार के लिए सलाह देना, निकुंज में दूती के द्वारा मिलन आदि का कोई महत्त्व न रहता। राधा-कृष्ण की विरह भावना का यही चमत्कार है कि राधा परकीया हैं, इसीलिए विद्यापति और चण्डीदास ने भी इसी रूप को प्रतिष्ठित किया है।

3-राधावल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवंश हैं। ये राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे तथा युगल उपासना का उपदेश इनके सिद्धान्त का सार अंश था। कृष्ण की अपेक्षा श्री राधा रानी की पूजा तथा भक्ति को इन्होंने अधिक महत्त्वशालिनी तथा शीघ्र फलदायिनी स्वीकार किया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में लौकिक दृष्टि से राधा स्वकीया हैं परन्तु राधा-कृष्ण के नित्य विहार की स्थिति में स्वकीया परकीया भाव निर्विशेष है। परकीया भाव तो वहाँ एक पल भी नहीं ठहरता। राधा के सम्बन्ध में डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का अभिमत है, "हितहरिवंश जी की आराध्या इष्टदेवी राधा परात्पर तत्त्व श्रीकृष्ण की भी आराध्य हैं तथा अन्य आचार्यों द्वारा वर्णित राधा से भिन्न एवं स्वतंत्र हैं। वह एक साधारण गोपी नहीं वरन् रस की अधिष्ठात्री एवं प्रेममूर्ति हैं। इनके अंग-अंग में उज्ज्वल प्रेम रस का तथा लावण्य कृपापूर्ण वात्सल्य सार का अम्बुधि प्रवाहित होता रहता है। ये माधुर्य साम्राज्य की एकमात्र भूमि और रस की एकमात्र सीमा हैं। ये राधा वेदों से भी परम गुप्त अनुपम निधि हैं।[11]

राधा-कृष्ण की युगल उपासना में युगल की प्रधानता है। इसीलिए कृष्ण राधा के अनुसंग से पूजे जाते हैं। राधा-कृष्ण की आराध्या हैं प्रेमस्वरूपा हैं। श्री राधा के चरण कृष्ण को कोटि-कोटि प्राणों से भी प्यारे हैं-

10- अथ वस्तुत: परमस्वीया अपि प्रकट लीलायां परकीयमाणा: ब्रजदेव्य:। या एव असमोर्ध्व स्तुता:। प्रीतिसन्दर्भ, पृष्ठ-841, 11-राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य - डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृष्ठ - 216

श्रीगोविन्द ब्रज बर वधू वृन्द चूड़ामणिसो
कोटि प्राणाम्यधिक परम प्रेम पादाब्ज लक्ष्मीः।
कैकर्येणाद्भुतनव रसेनैव मां स्वीकरोतु
भूयोभूयः प्रति मदुरधि स्वामिसंप्रार्थयेहम्॥ श्रीराधासुधानिधि, श्लोक 256

अर्थात् गोपियाँ उस राधा की सेविका बनने के लिए याचना करती हैं जिनके चरण कृष्ण के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। यहाँ उसे कृष्ण की आराधना भक्त करता है जो राधा की स्वयं आराधना करते हैं। वे दोनों परम प्रेमी हैं, अभिन्न हैं। राधा-कृष्ण के क्रिया-कलाप "तत्सुख सुखित्व" भाव से सम्पन्न होते हैं।

राधा-कृष्ण की निकुंज लीला में केवल सहचरीगण को प्रवेश करने का अधिकार है। भक्त को राधा-कृष्ण का नैकट्य प्राप्त करने के लिए सहचरी बनना पड़ता है। इस विहार-लीला में शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य भाव वाले भक्तों का प्रवेश सम्भव नहीं हो सकता। स्वयं श्रीकृष्ण ही इन सखियों की चाटुकारिता में संलग्न रहते हैं क्योंकि उन्हें इससे प्रिया का अनुग्रह प्राप्त होता है। रासेश्वरी राधा को रास में प्रवेश कराने का अधिकार सखियों को होता है। वे बड़े चातुर्य से अपनी आराध्या राधिका को रास के लिए बुला लाती हैं। राधा की अनुकम्पा से ही कृष्ण की कृपा मिलने के कारण राधा की भक्ति का उच्चतम विधान है। कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिए राधिका जी का अनुग्रह अनिवार्य है।

इस केलि में सखियाँ युगल किशोर का आत्म-भूता हैं। अत: "स्व-पर" भेद से रहित हैं। इनका विहार निरन्तर चलता रहता है। नित्य विहार की झाँकी का मनोवैज्ञानिक रूप श्री ध्रुवदास द्वारा प्रस्तुत किया गया है-

न आदि न अन्त विहार करैं दोउ लाल प्रिया में भई न चिह्नारी।
नई नई भाँति नई नई काँति, नई नवला नव नेह बिहारी।
दियै चित आहि, रहे मुख चाहि, रहे तन प्रान सु सर्वसु हारी।
रहैं इक पास करैं मृदु हाँस, सुनौ ध्रुव प्रेम अकत्थ कथा री॥

यह नित्य विहार तत्त्वरूप, लावण्य, चातुर्य-केलि और प्रेम रस का सिन्धु है-

वैदग्ध्य-सिन्धुरनुराग-रसैक-सिन्धु वात्सल्य सिन्धुरति सान्द्र कृपैकसिन्धुः।
लावण्य सिन्धुरमृतच्छचिरूप सिन्धुः श्री राधि स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धुः॥

- श्री राधासुधानिधि, श्लोक-17

"जो चातुर्य की सिन्धु, प्रेम रस की सिन्धु, वात्सल्य भाव की सिन्धु, अतिकृपा की सिन्धु, लावण्य की सिन्धु और छवि रूप अमृत की अपार सिन्धु हैं वे केलि सिन्धुरूपा श्री राधा मेरे हृदय में स्फूर्ति हैं।" ये राधा या श्रीकृष्ण केवल इन सबके लिए सिन्धु ही नहीं सार भी हैं-

लावण्यसार-रससार-सुखैक सारे, कारुण्यसार-मधुरच्छवि-रूपसारे।
वैदग्ध्य-सार-रतिकेलि-विलास-सारे, राधामिधे मम मनो खिल सार सारे॥

-श्री राधासुधानिधि, श्लोक-25

श्री राधावल्लभ प्रेम और रस की अपूर्ण निधि हैं-

ऐके प्रेमी एक रस श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि करै जो और ठाँ झूठौ जानौं ताहि॥ -ध्रुवदास जी

राधा का परकीया भाव

चैतन्य मत में राधा को परकीया रूप में स्वीकार किया गया है। अपने षट्-दर्शन में जीव गोस्वामी जी ने इस मत की समीक्षा करते हुए राधा को स्वकीया माना है। यदि कहीं पर परकीया-भाव उपलब्ध होता है तो उसका अभिप्राय लीलावाद से है अर्थात् अप्रकट लीला में राधा श्री ब्रजनन्दन की परम स्वकीया हैं।[10] प्रकट लीला में विलास की विचित्रता के लिए, बिहार में नूतनता दिखाने के लिए परकीया रूप में वर्णित की गई हैं। जीव गोस्वामी का यह मत परकीयावाद और स्वकीयावाद मतों के मध्य सन्तुलन उपस्थित करता है। चैतन्य चरितामृत के लेखक कृष्णदास जीवगोस्वामी यदुनन्दन आदि विद्वान परकीया भाव को ही प्रमुखता देते हैं। परकीया सामाजिक दृष्टि से लोक में आदर्शहीन मानी जाती है किन्तु श्रीकृष्ण के प्रति यह भाव गर्हित नहीं है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य-चरितामृत में परकीया-प्रेम को उत्कृष्टतम कान्ता-प्रेम कहा है क्योंकि इसमें रस का अधिक उल्लास होता है-

परकीयाभावे अति रसेर उल्लास। ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि बास।
ब्रज वधू गणोर एद् भाव निरवधि। तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवधि॥

-आदिलीला चतुर्थ परिच्छेद

परकीया के उल्लास का कारण यह है कि जिसे जिससे निषेध किया है उसके प्रति उसकी अभिलाषा अति उत्कट हो जाती है। जयदेव ने अपने गीतगोविन्द में जिस राधा की माधव के साथ नाना केलियों का प्रदर्शन किया है, वह राधा परकीया के रूप में ही वहाँ चित्रित है। यदि वे स्वकीया रहतीं, तो दूती का भेजना, दूती को अभिसार के लिए सलाह देना, निकुंज में दूती के द्वारा मिलन आदि का कोई महत्त्व न रहता। राधा-कृष्ण की विरह भावना का यही चमत्कार है कि राधा परकीया हैं, इसीलिए विद्यापति और चण्डीदास ने भी इसी रूप को प्रतिष्ठित किया है।

3-राधावल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री हितहरिवंश हैं। ये राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे तथा युगल उपासना का उपदेश इनके सिद्धान्त का सार अंश था। कृष्ण की अपेक्षा श्री राधा रानी की पूजा तथा भक्ति को इन्होंने अधिक महत्त्वशालिनी तथा शीघ्र फलदायिनी स्वीकार किया है। राधावल्लभ सम्प्रदाय में लौकिक दृष्टि से राधा स्वकीया हैं परन्तु राधा-कृष्ण के नित्य विहार की स्थिति में स्वकीया परकीया भाव निर्विशेष है। परकीया भाव तो वहाँ एक पल भी नहीं ठहरता। राधा के सम्बन्ध में डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का अभिमत है, "हितहरिवंश जी की आराध्या इष्टदेवी राधा परात्पर तत्त्व श्रीकृष्ण की भी आराध्य हैं तथा अन्य आचार्यों द्वारा वर्णित राधा से भिन्न एवं स्वतंत्र हैं। वह एक साधारण गोपी नहीं वरन् रस की अधिष्ठात्री एवं प्रेममूर्ति हैं। इनके अंग-अंग में उज्ज्वल प्रेम रस का तथा लावण्य कृपापूर्ण वात्सल्य सार का अम्बुधि प्रवाहित होता रहता है। ये माधुर्य साम्राज्य की एकमात्र भूमि और रस की एकमात्र सीमा हैं। ये राधा वेदों से भी परम गुप्त अनुपम निधि हैं।[11]

राधा-कृष्ण की युगल उपासना में युगल की प्रधानता है। इसीलिए कृष्ण राधा के अनुसंग से पूजे जाते हैं। राधा-कृष्ण की आराध्या हैं प्रेमस्वरूपा हैं। श्री राधा के चरण कृष्ण को कोटि-कोटि प्राणों से भी प्यारे हैं-

10- अथ वस्तुतः परमस्वीया अपि प्रकट लीलायां परकीयमाणाः ब्रजदेव्यः। या एव असमोर्ध्वं स्तुताः। प्रीतिसन्दर्भ, पृष्ठ-841, 11-राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य - डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृष्ठ - 216

श्रीगोविन्द ब्रज बर वधू वृन्द चूड़ामणिसो
कोटि प्राणाभ्यधिक परम प्रेम पादाब्ज लक्ष्मीः।
कैकर्येणाद्भुतनव रसेनैव मां स्वीकरोतु
भूयोभूयः प्रति मदुरधि स्वामिसंप्रार्थयेहम्॥ श्रीराधासुधानिधि, श्लोक 256

अर्थात् गोपियाँ उस राधा की सेविका बनने के लिए याचना करती हैं जिनके चरण कृष्ण के लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। यहाँ उसे कृष्ण की आराधना भक्त करता है जो राधा की स्वयं आराधना करते हैं। वे दोनों परम प्रेमी हैं, अभिन्न हैं। राधा-कृष्ण के क्रिया-कलाप "तत्सुख सुखित्व" भाव से सम्पन्न होते हैं।

राधा-कृष्ण की निकुंज लीला में केवल सहचरीगण को प्रवेश करने का अधिकार है। भक्त को राधा-कृष्ण का नैकट्य प्राप्त करने के लिए सहचरी बनना पड़ता है। इस विहार-लीला में शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य भाव वाले भक्तों का प्रवेश सम्भव नहीं हो सकता। स्वयं श्रीकृष्ण ही इन सखियों की चाटुकारिता में संलग्न रहते हैं क्योंकि उन्हें इससे प्रिया का अनुग्रह प्राप्त होता है। रासेश्वरी राधा को रास में प्रवेश कराने का अधिकार सखियों को होता है। वे बड़े चातुर्य से अपनी आराध्या राधिका को रास के लिए बुला लाती हैं। राधा की अनुकम्पा से ही कृष्ण की कृपा मिलने के कारण राधा की भक्ति का उच्चतम विधान है। कृष्ण की कृपा प्राप्त करने के लिए राधिका जी का अनुग्रह अनिवार्य है।

इस केलि में सखियाँ युगल किशोर का आत्म-भूता हैं। अतः "स्व-पर" भेद से रहित हैं। इनका विहार निरन्तर चलता रहता है। नित्य विहार की झाँकी का मनोवैज्ञानिक रूप श्री ध्रुवदास द्वारा प्रस्तुत किया गया है-

न आदि न अन्त विहार करैं दोउ लाल प्रिया में भई न चिह्नारी।
नई नई भाँति नई भई काँति, नई नवला नव नेह बिहारी।
दियै चित आहि, रहे मुख चाहि, रहे तन प्रान सु सर्वसु हारी।
रहैं इक पास करैं मृदु हाँस, सुनौ ध्रुव प्रेम अकत्थ कथा री॥

यह नित्य विहार तत्त्वरूप, लावण्य, चातुर्य-केलि और प्रेम रस का सिन्धु है-

वैदग्ध्य-सिन्धुरनुराग-रसैक-सिन्धु वात्सल्य सिन्धुरति सान्द्र कृपैकसिन्धुः।
लावण्य सिन्धुरमृतच्छविरूप सिन्धुः श्री राधि स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धुः॥

- श्री राधासुधानिधि, श्लोक-17

"जो चातुर्य की सिन्धु, प्रेम रस की सिन्धु, वात्सल्य भाव की सिन्धु, अतिकृपा की सिन्धु, लावण्य की सिन्धु और छवि रूप अमृत की अपार सिन्धु हैं वे केलि सिन्धुरूपा श्री राधा मेरे हृदय में स्फूर्ति हैं।" ये राधा या श्रीकृष्ण केवल इन सबके लिए सिन्धु ही नहीं सार भी हैं-

लावण्यसार-रससार-सुखैक सारे, कारुण्यसार-मधुरच्छवि-रूपसारे।
वैदग्ध्य-सार-रतिकेलि-विलास-सारे, राधामिधे मम मनो खिल सार सारे॥

-श्री राधासुधानिधि, श्लोक-25

श्री राधावल्लभ प्रेम और रस की अपूर्ण निधि हैं-

ऐके प्रेमी एक रस श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि करै जो और ठाँ झूठौ जानौं ताहि॥ -ध्रुवदास जी

कवि व्यास जी के निम्नलिखित पद में श्रीकृष्ण-राधा की आराधना करते हुए किस प्रकार अधीन रहकर सुखानुभव करते हैं-

चाँपत चरन मोहन लाल।
पर्जक पौढ़ी कुँवरि राधा नागरी नवबाल॥
लेत करि करि परसि नैननि हावि लावत माल।
लाइ राखत हृदै सों, तब गनत भाग विसाल॥
देख पिय की आधीनता भई कृपासिन्धु दयाल।
"व्यास" स्वामिनि लिए भुज भरि अति प्रवीन कृपाल॥[12]

नवयुगल किशोर की प्रेमलीला का वर्णन करते हुए श्री हिताचार्यपाद कहते हैं-

मिथरे भङ्गी-कोटि-प्रवहदनुरागामृत रस-स्तरङ्ग-भ्रूभङ्ग क्षुभित बहिरभ्यन्तर भहो।
मदाघूर्णन्नेत्रं रचयति विचित्रंरतिकला-विलासं तत्कुञ्जे जयति नवकैशोरमिथुनम्॥

अर्थात् "युगल किशोर के पारस्परिक हाव-भाव के विस्तार से आज प्रेमामृतरस का प्रवाह-सा बह चला है। उस प्रवाह में दोनों की कुटिल भृकुटियों के नर्त्तन ही मानो तरंगें हैं। युगल किशोर के नयनरस के मद से घूर्णायमान हो रहे हैं। दोनों नवकुंज भजन में रति कला के विचित्र विलास की रचना करते हैं और इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट को प्राप्त हो रहे हैं।"

इस प्रकार यह सिद्ध है कि राधा और कृष्ण का नित्य विहार प्रेम-केलि के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। युगल किशोर एक प्रेम के ही दो रूप हैं। प्रेम ही नाना रूपों में विलसित है।

वल्लभ सम्प्रदाय

वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण महान् है। माधुर्य भक्ति में मधुर पक्ष के स्थान पर आचार्य वल्लभ ने कृष्ण के वात्सल्य पक्ष को अधिक श्रेयस्कर माना। उनकी दृष्टि में जनसामान्य के लिए माधुर्य भक्ति की अपेक्षा वात्सल्य भाव अधिक सरल एवं उपादेय है। आचार्य का कहना था कि मधुर भाव की उपासना का अधिकार केवल गोपियों को था और गोपियों की भी तीन कोटि हैं-व्रजांगना, गोपी और गोपांगना।

ब्रजांगना तो कृष्ण के बालरूप पर मोहित होती है और शेष दोनों कृष्ण को पति रूप में भजती हैं। किन्तु आचार्य के ग्रन्थों में कृष्ण के जिस रूप और भाव का चित्रण है वह माधुर्य भक्ति की परिधि में ही आता है। वृहत्स्तोत्र सरित्सागर (मधुराष्टक) के पृष्ठ 62 पर आचार्य वल्लभ जी को कृष्ण का सब कुछ मधुर ही दिखाई देता है-

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥

तथा

कालिंदोद्भूतायास्तटमनु चरन्ती पशुपजां।
रहस्येकां दृष्टवानसुभगवक्षोज युगलाम्॥
दृढं नीवी ग्रंथिं श्लथयति मृगाक्ष्याहठतरे।
रतिप्रादुर्भावो भवतु सतत श्री परिवृते॥ -वृहत्स्तोत्र सरित्सागर, पृष्ठ-60

12-भक्त कवि व्यास जी : प्रभूदयाल मीतल : पद 416

आचार्य जी के पुष्टि मार्ग में भक्त किसी साधन का परतन्त्र न होकर स्वयं स्वतंत्र होता है। जो कृष्ण को "जार" भाव से भजती थीं उन विवाहित गोपियों की अपेक्षाकृत कुमारी गोपिकायें लोक-वेद मर्यादा के बन्धन में न फँसने के कारण अधिक स्वतंत्र थीं। किन्तु दोनों प्रकार की गोपिकाओं ने कृष्ण को अनन्य भाव से वरण किया। माधुर्य भक्ति में प्रेम की यह पराकाष्ठा सर्वोत्कृष्ट है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं। उनका शरीर सच्चिदानन्दमय है। जब वह अपनी अनन्त शक्तियों के द्वारा अपनी आत्मा में आन्तर रमण किया करता है तब वह आत्माराम कहलाता है। जब बाह्य रमण की इच्छा से वह अपनी शक्तियों की बाह्य अभिव्यक्ति करता है तब कहलाता है पुरुषोत्तम। इस रूप में आनन्द की चरम अभिव्यक्ति के कारण वह "आनन्दमय" अगणितानन्द तथा परमानन्द स्वरूप कहलाता है।[13] श्रीकृष्ण पुरुष हैं और राधा प्रकृति हैं। यही उनका वास्तविक स्वरूप है। इसीलिए वे दोनों अभिन्न हैं-

ब्रजहिं बसै आपुहि बिसरायौ।
प्रकृति पुरुष एकहि कहू जानहु, बातनि भेद करायो।[14]

सिद्धान्त रूप में राधा श्रीकृष्ण की आनन्दात्मिका शक्ति हैं किन्तु लीला के क्षेत्र में अनन्य पूर्वा स्वकीया नायिका हैं।[15] कृष्ण भक्तों ने राधा का कृष्ण से परिणय भी करा दिया है-

जाकौ व्यास बरनत हैं रास।
है गंधर्व विवाह चित्त दै, सुनौ विविध विलास।[16]

वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने राधा को कृष्ण की दुलहिन के रूप में चित्रित किया है जिससे सिद्ध होता है कि राधा-कृष्ण की स्वकीया थीं। राधा गुणवती एवं सर्वांग सुन्दरी थीं। उसने अपना सर्वस्व कृष्ण के चरणों में अर्पित कर दिया है। इसीलिए कृष्ण-कृष्ण बहुनायक होकर भी सदा राधा के वश में रहते हैं। राधा के अपूर्व प्रेम की झलक हमें सूर की इन पंक्तियों में मिलती है-

राधा नन्द नन्दन अनुरागी।
भय चिन्ता हिरदै नहिं एकौ, स्याम रंग रस पागी॥
हृदय चून-रंग पय पानी ज्यों दुविधा दुहूँ की भागी।
तन मन प्रान समर्पन कीन्हों, अंग अंग रति खागी॥[17]

सिद्धान्ततः श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं किन्तु गोस्वामी विट्ठलनाथ ने राधा को सर्वस्व व आराध्या माना है। वे कहते हैं कि यदि राधा की कृपा प्राप्त हो जाये तो कुछ भी पाना शेष नहीं रहता-

कृपयति यदि राधा बाधिता शेष बाधा
किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे।
यदि वदति च किंचित् स्मरेहासोदित श्री
द्विजवरमणिपंक्त्या मुक्ति शुक्त्या तदाकिम्॥1॥[18]

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में श्रीकृष्ण की प्रधानता है क्योंकि यहाँ शक्ति, शक्तिमान के अधीन मानी गई है। वस्तुतः राधा और कृष्ण अभिन्न और एकरूप हैं। यही शुद्धाद्वैत का वास्तविक स्वरूप है।

13-पं० बल्देव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय : पृष्ठ 378, 14-सूरसागर : नन्द दुलारे वाजपेयी : पृष्ठ 841, 15-अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डॉ० दीनदयाल गुप्त : पृष्ठ 511, 16-सूरसागर : पृष्ठ 877, 17-सूरसागर, पृष्ठ 911, 18-राधा प्रार्थना : चतुःश्लोकी।

हरिदासी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास हैं। स्वामी हरिदास जी राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना का सखी भाव से प्रचार किया। राधा-कृष्ण की लीलाओं का अवलोकन ये सखी भाव से किया करते थे। स्वामी हरिदास ने शास्त्रीय विधि-विधानों को स्वीकार नहीं किया। उनके अनुसार रस रूप भगवान् को द्वैत-अद्वैत आदि किसी दार्शनिक-वाद के बन्धन में बाँधना सर्वथा अनुचित है। ईश्वर इन विभिन्न वादों से बिल्कुल स्वतन्त्र है। अपनी इच्छानुसार वे भक्त के हित के लिए दो विग्रह (राधा-कृष्ण) मानकर पृथ्वी पर अवतार लेते हैं किन्तु इस प्रकार की क्रीड़ा करते हुए भी वे स्वयं निर्लिप्त रहते हैं-

नाहीं द्वैताद्वैत हरि नहीं विशिष्टाद्वैत
बँध नहीं मतवाद में ईश्वर इच्छाद्वैत।
ईश्वर इच्छाद्वैत करैं सब ही कौ पोषन
आप रहैं निर्लेप भक्त सौं भावे तोषन॥[19]

राधा-कृष्ण को स्वामी हरिदास ने श्यामा-श्याम, कुंजबिहारी, जुगल किशोर आदि विभिन्न नामों से पुकारा है। राधा-कृष्ण का युगल रूप-

प्यारी जू हम तुम दोउं एक कुंज के सखा रूसे क्यों बने।
कोउ हितू मेरो न तेरो जो यह पीर जने॥
हौं तेरो बसीठ तू मेरी और न बीच सने।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत प्रीति बने॥[20]

हरिदास सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण का परस्पर सम्बन्ध स्वकीया-परकीया भाव निर्विशेष नित्य बिहारी भाव को स्वीकार किया गया है। उनका प्रेम विशुद्ध उज्ज्वल है जिसमें न काम है, न मल है और न मैथुन- **नित्य दिव्य देह विहरत बनमाहीं।**
इनके मन मैथुन कुछ नाहीं॥[21]

सखी सम्प्रदाय की निजी उपासना के विषय में कवि भगत रसिक का कथन इस प्रकार है-

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप।
नित्य किशोर उपासना जुगल मंत्र कौ जाप॥[22]

इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण को सदैव युगल रूप में कुंजों में विहार करते हुए देखा गया है। यही विहार-रत रूप अभीष्ट है इन सन्तों को।

कृष्ण की रूप-माधुरी के अनन्य उपासक कवियों में रसखान और मीरा का नाम भी आता है। किन्तु सम्प्रदायी विद्वानों ने इन्हें परिधि में स्वीकार नहीं किया है। रसखान और मीरा ने राधा-कृष्ण और गोपियों की मधुर लीलाओं का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है। मीरा ने कृष्ण को अपना पति ही स्वीकार कर लिया था-

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरे पति सोई॥[23]

19-भगवत रसिक की वाणी : पृष्ठ 83, 20-केलि-भाव, पद संख्या -79, 21-स्वामी विहारिन देव जी प्रथम चौबोला, 22-पं० बल्देव उपाध्याय : भागवत सम्प्रदाय : पृष्ठ 360, 23-मीरा की पदावली : पद संख्या 15

प्राचीन तथा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में राधा-कृष्ण

प्राचीनकाल-विद्यापति, चण्डीदास

प्राचीन हिन्दी साहित्य में कृष्ण काव्यों का श्रीगणेश और उनका विकास जानने के लिए अत्यल्प साहित्य उपलब्ध है। भागवत सम्प्रदायों के उन्नयन के पूर्व हिन्दी में किसी सबल एवं महत्त्वपूर्ण कृति का उल्लेख नहीं के बराबर है। हिन्दी साहित्य में राधा-कृष्ण की परम्परा का अवतरण संस्कृत साहित्य और अपभ्रंश-शौरसेनी से हुआ। राधा-कृष्ण की भक्ति लीला में डॉ० मुंशीराम शर्मा संस्कृत के गीता और भागवत का योगदान स्वीकार करते हैं-

"गीता और भागवत द्वारा निर्मित यह भक्ति-कल्लोलिनी, यवन विध्वंस से बढ़ावा पाकर द्रुतवेग पूर्वक संस्कृत-गिरि से अवतरित हुई और आचार्यों ने उसे सहस्र कवि कण्ठ धाराओं द्वारा मैदान में प्रवाहित कर दिया।"[24] अनुसंधान की इस दिशा में डॉ० शिवप्रसाद सिंह ने अपने ग्रन्थ "सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य" के अन्तर्गत कुछ विचार स्थिर किए हैं, जिससे ज्ञात होता है कि बारहवीं शताब्दी के बाद लगभग 200 वर्षों तक इस क्षेत्र में कोई विशेष उल्लेखनीय रचना नहीं हुई, यह काल मध्यकालीन भाषाओं से नब्य भाषाओं के रूप ग्रहण करने का समय था। इतना अवश्य है कि राधा और कृष्ण प्रचलन ब्रज भाषा में ईसा की बारहवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था। कुछ पंडितों का मानना है कि इस समय ब्रज भाषा की जननी शौरसेनी अपभ्रंश में भी कृष्ण कविताएँ लिखी गई हैं। पुष्पदन्त का महापुराण इनमें सर्वाधिक महिमामयी रचना है। इसमें राधा-कृष्ण के कुछ प्रसंगों की व्याख्या हुई है।[25] हिन्दी कृष्ण काव्यों की इस परम्परा पर अवधान केन्द्रित करने पर प्राय: सभी विद्वानों की दृष्टि संस्कृत के जयदेव, मैथिल कोकिल विद्यापति और चण्डीदास पर स्थिर हो जाती है। विद्यापति को लेकर हिन्दी और बंगला वालों में काफी मतवैभिन्य रहा। दोनों उन्हें अपनी ओर खींचने में प्रयत्नशील रहे। किन्तु यह वाद-विवाद अब समाप्त हो गया है। विद्यापति की पदावली हिन्दी भाषा के अधिक निकट है।[26] हिन्दी साहित्य में कृष्ण येन-केन-प्रकारेण समाहित हैं। उनकी अत्यन्त संक्षिप्त सूचना निम्न प्रकार है-

1-नारद पाञ्चरात्र, 2-गाथा सप्तशती (हालकृत), 3-पंचतंत्र, 4-आचार्य धनंजय का दशरूपक, 5-आनन्दवर्द्धन का ध्वन्यालोक, 6- वेणीसंहार - भट्ट नारायण कृत, 7-भोज का सरस्वती कण्ठाभरण, क्षेमेन्द्र का दशावतार, 9-विक्रमाङ्कदेव चरितम् - विल्हण कृत, 10-वज्जालग्गं गाथा छन्द में निबद्ध "गाहासत्तसई" के उपरान्त महाराष्ट्री प्राकृत का संग्रह ग्रन्थ "वज्जालग्गं"। 11-रुद्रट का काव्यालङ्कार, 12-जैनाचार्य हेमचन्द्र

इसी प्रकार हिन्दी में भी कुछ रचनायें हुई हैं जिसमें राधा-कृष्ण का सन्दर्भ आ गया है किन्तु अभिव्यंजना एवं काव्यत्व की दृष्टि से इन रचनाओं का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ने अपने शोधग्रन्थ "हिन्दी साहित्य में श्रीकृष्ण" में इन रचनाओं पर यत्किंचित प्रकाश डाला है। उनका कहना है कि हमारे संगीत विशारदों ने भी अपने संगीत से राधा-कृष्ण के विकास हेतु भूमिका प्रदान की थी। बैजू बावरा और गोपाल नायक ऐसे ही दो भक्त संगीतकार हैं जिन्होंने अपने पदों में आत्मनिवेदन, गोपी प्रेम तथा भक्ति के विविध पक्षों का चित्रण प्रस्तुत किया है।[27] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गीतिकाव्य

24-सूर सौरभ : डॉ० मुंशीराम शर्मा, पृष्ठ संख्या 101, 25-सूर का शृंगार वर्णन : डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ-12, 26-हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ-158, 27-हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ - 67

परम्परा को महत्त्व दिया है। वे कहते हैं-सूरसागर किसी चली आती गीति काव्य परम्परा का- चाहे वह मौखिक ही रही हो - पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है। - (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 165)

इस प्रकार की हिन्दी की फुटकर रचनाओं की सूचना निम्न है-

1- महाराष्ट्र के भक्त कवि नामदेव ने महाराष्ट्री प्राकृत जो शौरसेनी का एक रूप है, में कृष्ण सम्बन्धी कविता लिखी है। 2-"प्रद्युम्न चरित्र" किसी जैन भक्त कवि की रचना है। 3-श्री विष्णुदास कवि ने गीत-पद्धति पर महाभारत, स्वर्गारोहण, रुक्मिणी मंगल और स्नेह लीला नाम कृष्ण सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे हैं। 4-श्रीलालचन्द हलवाई द्वारा हरिचरित लिखा गया है। 5-श्री केशव कायस्थ 1474 में "कृष्ण क्रीड़ा काव्य" लिखा। 6-श्री भानुदास ने कृष्ण सम्बन्धी अनेक रचनायें ब्रजभाषा में प्रस्तुत की हैं।[28]

अब हम मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में राधा-कृष्ण पर विचार करने के पूर्व थोड़ी सी चर्चा आचार्य जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास की करेंगे जिनको हिन्दी साहित्य के समीक्षकों ने हिन्दी कृष्ण काव्यों की पूर्व भूमिका माना है।

उक्त तीनों कवियों ने राधा का वर्णन परकीया भाव से किया है और राधा में आबाध प्रेम होने के कारण मर्यादा को कोई स्थान नहीं है। इसीलिए श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी का कथन है कि जयदेव पर वात्स्यायन के कामसूत्र का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है और उन्होंने रति का वर्णन कामसूत्र के नियमों के अनुकूल किया है।[29] जयदेव स्वयं इस रचना का उद्देश्य बताते हुए पाठकों से कहते हैं-

यदि हरि स्मरणे सरस मनो, यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमलकान्त पदावलि, शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

गीत गोविन्द शृंगार प्रधान रचना है जिसमें राधा और कृष्ण प्रेमी-प्रेमिका के रूप में चित्रित हैं। संभोग एवं वियोग के बड़े मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित हुए हैं। राधा के मान पर कृष्ण की प्रार्थना शृंगारी भाव उत्पन्न कर देते हैं-

शशि मुखि। तव भाति भ्रङ्गभ्रू-युवजन मोहकराल कालसर्वी।
तद्वदित भयभंजनाय युवां त्वधरसीघ सुधैव सिद्ध मन्त्र॥[30]

हे चन्द्रमुखि! आपकी तिरछी भौंहें तरुण पुरुषों को मोहने में अति भयङ्कर काले सर्प की तरह हैं। इन भौंहों से उत्पन्न मूर्च्छा वाले युवकों के भय के नाश के लिए आपकी अधररूपी सुधा ही सिद्ध मन्त्र अर्थात् रामवाण (औषधि) है।

नन्द बाबा के एक आदेश से राधा-कृष्ण को एकान्त में मिलने का अवसर प्राप्त हो जाता है। मंगलाचरण का यह श्लोक द्रष्टव्य है-

मेथैमेद्दुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालदुमैर्नक्तं भीरूरयं त्वमेव तदिमं राधे! गृहं प्रापय।
इत्थं नन्द निदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुजदुमं। राधामाधवयोर्जयन्तियमुना कूले रहः केलयः॥[31]

जयदेव की राधा प्रारम्भ में कृष्ण से प्रौढ़ हैं। इसीलिए तो उन्हें अन्धकार में छोड़ने जाती हैं-

विद्यापति ने राधा-कृष्ण का वर्णन संस्कृत और प्राकृत की शृंगारिक रचनाओं के आधार पर किया है। चित्रण का आधार परम्परा में प्रचलित गीत और कथायें हैं। राधा की वय:सन्धि, नख-शिख, अभिसार,

28-उपर्युक्त समस्त कवियों एवं उनकी रचनाओं में वर्णित राधा-कृष्ण प्रसंगों का विशद् अवलोकन "सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य" डॉ० शिव प्रसाद सिंह एवं "हिन्दी साहित्य में कृष्ण"- डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, नामक ग्रन्थों में किया जा सकता है।, 29-गीति काव्य-लालधर त्रिपाठी प्रवासी-पृ० 97, 30-गीत गोविन्द, दशमसर्ग, श्लोक-3

मान, विरह, संयोग आदि के वर्णन में शिव भक्त विद्यापति ने अपूर्व प्रतिभा दिखायी है। कृष्ण के प्रथम दर्शन में राधा चकित होकर मुख नीचा कर लेती है। माधव अनुनय-विनय करते हैं। नवीन रमणी रस नहीं जानती-

यहि लहि राधा माधव भेंट, चकितहि चाहि नयन करु हेट।
अनुनय काकु करतहिं कान्ह, नवीन रमनि धनि रस नहि जान॥[32]

विद्यापति ने राधा-कृष्ण की युवावस्था को लेकर सौन्दर्य और प्रेम के गीत गाये हैं। इन गीतों में विशुद्ध शृंगार की रसीली व्यंजना है। अपना सारा काव्य कौशल राधा और कृष्ण के यौवन रस में प्रवाहित कर दिया है।

राधा का सौन्दर्य-

कि आरे! नव यौवन अभिरामा जत देखल तत कहए न पारिअ छओ अनुपम एक ठामा।
हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम, पिक बूझल अनुमानी॥[33]

राधा अहर्निशि माधव का ध्यान करती रहती है। विरहाग्नि से उसका यौवन क्षीण हो गया है और कृशांगी हो गई हैं। उसकी सखियाँ कमल से हवा करती हुई आशंका करती हैं कि कहीं कमल की वायु के वेग से राधा उड़ न जाय-

नील नलिनी लए जब कर बाए। हृदय रहए भय उड़िजन जाए॥[34]

संस्कृत में उरोजों की उपमा कमल से दी जाती है, परन्तु विद्यापति ने इन्हें नवीन रूप प्रदान किया है-

मेरु ऊपर द्वइ कमल फुलायल, नाल बिना रुचिपाई।
मनिमय हार धार बहु सरसी, तओ नहिं कमल सुखाई॥[35]

अर्थात् "सुमेरु पर्वत रूपी वक्षस्थल पर दो कमल पुष्प रूपी कुच-युग्म हैं, जो बिना नाल के ही सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। उस बाला के वक्षस्थल पर मणियों का जो हार सुशोभित है, वह उस पर्वतरूपी उन्नत वक्षस्थल से प्रवाहित होने वाली गंगा के समान है। गंगाजल में रहने के कारण ये कमल नाल-रहित होने पर भी सूख नहीं पाते।"

ऐसे ही चित्रों को देखकर कुछ समीक्षकों ने विद्यापति के कृष्ण सम्बन्धी संसार को कामदेव का संसार कहा है।[36] कुछ विद्वान विद्यापति की रचनाओं में आध्यात्मिक संकेत देते हैं। पदावली चाहे शृंगारिक हो या भक्ति का मार्ग खोलती हो, इतना तो निश्चित है कि मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्यों पर इसकी छाप अवश्य है। राधा-कृष्ण की यह परम्परा आगे चलकर भक्तिकाल के कवियों में अधिक विस्तार से प्रतिफलित हुई। एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि जयदेव और विद्यापति के काव्यों में गीता के उपदेष्टा और महाभारत के सूत्रधार कृष्ण का कोई स्वरूप उद्घाटित नहीं हुआ है।

पूर्व मध्यकाल

भक्तिकाल के कवियों ने राधा-कृष्ण के माधुर्य रूप का वर्णन बड़ी प्रखरता एवं गद्‌गद कण्ठ से किया है। श्रीकृष्ण के पूर्वार्द्ध जीवन का सन्दर्भ विशेषत: ब्रजलीला कवियों को अधिक मोहित कर सका

31-गीतगोविन्द प्रथम सर्ग श्लोक-1, 32-हिन्दी साहित्य में राधा - डॉ० द्वारिका प्रसाद मीतल, पृष्ठ 245, 33-हिन्दी और उसके कलाकार : फूल चन्द्र जैन "सारंग"-पृष्ठ - 22, 34-वही पृष्ठ-23, 35-तदैव।

वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों में कृष्ण प्रसंग के प्रायः सभी सूत्र उपलब्ध हैं। राधा इ ब्रजलीलाओं तक ही सीमित हैं। ब्रजलीलाओं के बाद मात्र एक बार प्रभास क्षेत्र में कृष्ण से भेंट हो ज है। बहुत दिनों के बाद कृष्ण मिले हैं। आज भी उसके स्नेह की वही ललक है, वही उमंग है, उसका कभी वासी नहीं होता। कृष्ण के जीवन का समग्र रूप हमें इस काल में पूर्णतः देखने को नहीं मिलता। कुछ भी प्रसंग हैं उनमें क्रमागतता और सूत्रबद्धता नहीं है। हाँ कहने के लिए तो भक्तों ने महाभारत का एकाध प्रसंग छेड़ दिया है किन्तु इन फुटकर तथ्यों से कृष्ण का समग्र चरित्र उभरकर सामने नहीं आ हरिदासी सम्प्रदाय और राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने तो राधा-कृष्ण के माधुर्य रूप तक ही अप लेखनी चलायी है। निम्बार्क के अनुयायियों ने भी राधा-कृष्ण के प्रेमी रूप से आगे नहीं बढ़ सके। चैत जी भी मधुर भाव के उपासक थे। यह विवरण हम भागवत धर्मों के परिप्रेक्ष्य में दिखा चुके हैं। सम्य अध्ययन एवं सौन्दर्य की दृष्टि से राधा और कृष्ण के स्वरूप के निर्धारण हेतु भक्त-वर्णित कथाओं को ह निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं-

1-गोकुल लीला, 2-मथुरा लीला, 3-द्वारिका लीला, 4-कुरुक्षेत्र।

गोकुल लीला

इस काल में कवियों ने कृष्ण की विविध लीलाओं का गान अपनी रुचि के अनुसार किया है। इ समस्त रचनाओं में सूरदास का भाव विविधताओं से भरा हुआ है। हिन्दी साहित्य के पंडितों ने सूरदास क भक्तिकाल का प्रतिनिधि कवि माना है। अस्तु लीला, निर्धारण प्रसंगों में हमने विशेषतः सूरदास से सन्द ग्रहण किया है।

मथुरा में जन्म के समय श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म के रूप में अवतरित होते हैं। हाथ में शंख, चक्र, गद पद्म धारण किये गोकुल ले चलने का संकेत देते हैं। नन्द के यहाँ पहुँचने पर लौकिक रीत्या जन्मोत्सव मनाया जाता है, नारछेदन[38] की प्रक्रिया और पालने में झूलने[39] की स्थिति आ जाती है। बस, यहीं से कृष्ण की उन लीलाओं का श्रीगणेश हो जाता है जिन्हें साधारण या लौकिक नहीं माना जा सकता। पूतना वध, श्रीधर अंगभंग,[41] कागासुर वध,[42] शकटासुर वध,[43] तृणावर्त वध,[44] आदि ऐसे कार्य कृष्ण कर दिखाते जिससे माता यशोदा असमंजस में पड़ जाती हैं। जब कृष्ण पाँवों से चलने लगते हैं तब नन्द का आँग वात्सल्य रस से सराबोर हो जाता है। अहर्निश यशोदा अपने बेटे के सहज कृत्यों को देखकर आत्मविभो हो उठती हैं। गर्ग ऋषि नामकरण करते हैं और अविनाशी तथा अविगत बताते हैं।[45] श्रीकृष्ण माखन-रोटी खाते हुए आँगन में खेल रहे हैं, पीली कछौटी पहने हैं, धूल से धूसरित हैं, पैजनी बज रही है। ऐसे अवस पर सौभाग्यशाली कौआ माखन-रोटी छीन ले जाता है।[46]

36-हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 159, 37-गोकुल प्रकट भये हरि आइ।-सूरदास 38-जसुदा नार न छेदन देहौं। मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ वहैं आज हौं लैहौं।-सूरदास, 39-जसोदा हरि पालनै झुलावैं।-सूरदास, 40-कपट करि ब्रजहिं पूतना आई। गई मुरछाई परी धरनी पर मनो भुजंगन खाई।-सूरदास, 41-जबहि नभन हरि ढिंग आयौ। हाथ पकरि हरि ताहि गिरायौ।-सूरदास, 42-काग रूप एक दनुज धर्‍यौ, कंठ चाँपि बहुवार फिरायौ, गहि पटक्यो नृप पास पर्‍यौ।-सूरदास, 43-नैकु फटक्यौ बात। सबद भयौ अघात, शिरयौ मेहरात सकटा संहार्‍यौ-सूरदास, 44-अति विपरीत तृनावर्त आयौ। मारयौ असुर सिला सौ पटक्यों आपु चढ़्यौ ता ऊपर धायौ। दौरे नन्द जसोदा दौरी, तुरतहि लैहिइ कंठ लबायौ।, 45-गर्ग निरूपि कह्यौ सब लच्छन, अविगत हैं अविनासी-सूरदास, 46-धूरि भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी। खेलत खात फिरैं अँगना पग पैजनि बाजति पीरी कछोटी॥ काग के भाग कहा कहिए हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी॥ -रसखान

मृत्तिका भक्षण, भैया से बड़ा तथा मोटा कर देने का आग्रह, चन्द्र को प्राप्त करने का प्रस्ताव आदि बालसुलभ चेष्टाओं से कृष्ण अपनी मैया को तृप्त कर देते हैं। यशोदा दूध पिलाने के लिए चोटी बढ़ने का लालच देती है।[47] सखाओं के साथ बालक्रीड़ायें करते हुए कृष्ण कृत्यों से अपनी दिव्यता का भी दर्शन कराते रहते हैं। नन्द जी पूजा में ध्यान किए हुए हैं। कृष्ण शालिग्राम को मुख में रख लेते हैं और खोजने पर शालिग्राम कृष्ण के मुख में पाए गए। यशोदा के डाँटने पर कृष्ण मुख खोलते हैं तो तीनों लोकों का दर्शन होता है।[48] माखन चोरी की लीला बड़ी मनोरंजक और भक्तों के मन को रमाने वाली है। ग्वालिन माखन खाते हुए पकड़ लेती है और यशोदा के पास कृष्ण को ले जाती है। कृष्ण का उत्तर कितनी चतुराई का है-

ख्याल परै ये सखा सबै मिलि बरबस मुख लपटायौ। - सूरदास

किन्तु एक दिन जब मटकी में हाथ डाले हुए कृष्ण को गोपी पकड़ ही लेती है तब भी कृष्ण निरुत्तर नहीं होते। झटके से कह उठते हैं-

मैं जान्यौ यह घर अपनो ही ता धोखे में आयौ।
देखत हों गोरस में चींटी काढ़न को कर नायौ॥ - सूरदास

इसी प्रकार उलूखल बन्धन, सखा के लिए सवारी बनना, निवार की उत्कण्ठा, यशोदा का गौचारण के लिए जाने हेतु जगाना, बकासुर, अघासुर, ब्रह्मा— बालक-वत्सहरण, धेनुक वध, कालिय दह लीला, दावानल, प्रलंब वध अन्य अनेक लीलाओं का वर्णन भक्तों ने किया है जहाँ सर्वत्र उनकी बालसुलभ चेष्टायें और दिव्यता झलकती-सी प्रतीत होती है।

ब्रज की गलियों में सहसा राधा से मिलन[49] और तुरन्त राधा का परिचय पूछ बैठते हैं।[50] दोनों के प्रश्नोत्तर में कितनी स्वाभाविक चतुराई है यह आनन्द का विषय है।

स्नेहिनी राधा का जीवन यहीं से कृष्ण के साथ जुड़ जाता है। भक्तों ने राधा-कृष्ण के अनेकशः प्रेम प्रसंगों का विवरण अपनी कल्पना के द्वारा प्रस्तुत किया है। नई-नवेली राधा और नये परिचित गोपाल एक-दूसरे के नये प्रेम-रस से सिक्त हो गये।[51] राधा ने अपनी भुजा स्याम की भुजा के ऊपर और श्याम की भुजा अपने वक्षस्थल पर रख ली।[52] राधा-कृष्ण का प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। एक-दूसरे के घर आना-जाना शुरू हो गया। राधा के प्रेम रस मदिरा का ऐसा प्रभाव है कि दूध दुहते समय कृष्ण रस्सी लेकर गाय की जगह बैल का पैर बाँधकर दोहनी माँगने लगते हैं और राधा की ओर देखते जा रहे हैं। ग्वाल-बाल ताली देकर हँसते हैं-

दुहत स्याम गैया बिसराई।

47- कजरी कौ पय पियहु लाल, तेरी चोटी बढ़ै। - सूरदास

48- पूजा करत नन्द रहे बैठे, ध्यान समाधि लगाई। चुपकहिं आनि कान्ह मुख मेल्यौ, देखों देव बड़ाई॥
बदन पसारि सिला जल दीन्हीं तीनों लोक दिखाए। - सूरदास

49- खेलत हरि निकसे ब्रजखोरी। औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विशाल भाल दिये रोरी।-सूरदास

50- बूझत स्याम कौन तू गोरी। कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नहीं कबहुँ ब्रजखोरी।
काहे को हम ब्रजतन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी,
सुनत रहति स्त्रवननि नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहौं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी॥-सूरदास

51- नवल गुपाल, नवेली राधा नये प्रेम रस पागे। - सूरदास,

52- अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धारिय॥ - सूरदास

नाई लै पग बाँधि बृषभ कै, दोहनि माँगत कुँवर कन्हाई।

कहत सखा हरि सुनत नहीं सो, प्यारी सौं रहे चित अरुझाई। - सूरदास

कभी-कभी राधा के प्रति इतना प्रेम उमड़ जाता है कि एक दूध की एक धार दोहनी में और एक धार राधा की ओर चला देते हैं-

धेनु दुहत अतिही रति बाढ़ी।

एक धार दोहनि पहुँचावत, एक धार जहाँ प्यारी ठाढ़ी। - सूरदास

कृष्ण के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण राधा मूर्छित होकर गिर पड़ी। सखि ने पूछा तो झट कह दिया "साँप ने काट लिया"। तुरत विष उतारने वाले गरुड़ की खोज हुई। सफल नहीं हुए। अन्ततोगत्वा कृष्ण गरुड़ी बनकर बुलाये गये। कुँवर कन्हाई ने मन्त्र पढ़ा, राधा का बार-बार आलिंगन किया तथा मुख चुम्बन किया। राधा का प्रेम-विष उतर गया। मरी हुई राधिका को कृष्ण ने जिला दिया-

बड़ौ मन्त्र कियौ कुँवर कन्हाई।

बार बार लै कंठ लगायौ मुख चूम्यौ दियौ घरहिं पठाई।

ऐसौ चरित तुरतही कीन्हौ कुँवरि हमारी मरी जिवाई। - सूरदास

पनघट एवं दान लीलाओं में कृष्ण की रसिकता अधिक मुखरित हो गई है। गोरस दान के बहाने वे गोपियों के यौवन का दान ले लेना चाहते हैं-

जोवन दान लेउँगौ तुमसौं।

जाकैं बल तुम बदति न काहुहिं कहा दुरावति हमसौं।

सूर सुनौ बिन दिये दान के, जान नहीं तुम पावहु॥ - सूरदास

रासलीला का वर्णन भक्तिकाल का एक प्रमुख विषय है। वंशी बजाकर शरद चाँदनी में कृष्ण गोपियों को बुला लेते हैं। गोपियाँ जिनकी संख्या सोलह हजार थीं, उपस्थित हो गईं। वे सभी अपना घर, पति, पुत्र-पुत्रियों को त्यागकर कृष्ण के स्नेह में खिंच गईं। कृष्ण गोपियों को उपदेश देते हैं, उस स्त्री को धिक्कार है जो पति को त्याग देती है। उस पति को धिक्कार है जो स्त्री को त्याग देता है।[53] तुम सब घर जाओ और कपट त्याग कर पति सेवा करो।[54] गोपियाँ कहने लगीं, "अब हम घर नहीं लौटेंगी, तुमने वेणु बजाकर बुलाया क्यों ?"[55] तब कृष्ण ने कहा - "तुम्हारा दृढ़ नियम धन्य है। बिना मोल मेरे हाथ बिक गई हो।"[56] तुमने मेरे लिए तप किया है, अत: मैं रास रचाऊँगा। चारों ओर से गोपियाँ मण्डलाकार हो गईं और मध्य में कृष्ण और उनके वाम भाग में राधा सुशोभित होने लगी[57] और रास प्रारम्भ हो गया।

इसी प्रकार मान लीला और संभोग प्रसंगों में राधा कृष्ण का प्रेमी हृदय एक-दूसरे से मिल जाता है। सूरदास ने संभोग एवं रति क्रीड़ा में आलिंगन एवं चुम्बन की स्वाभाविक चर्चा की है। अधिकांश कवियों ने रति वर्णन, रति-युद्ध का वर्णन किया है क्योंकि वे सभी माधुर्य भक्ति के उपासक हैं।

53-यह जवतिन कौ धरम न होइ। धिक सो नारि पुरुष जो त्यागे, धिक सो पति जो त्यागै जोई। - सूरदास, 54-कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ। - सूरदास, 55-भवनाहीं अब जाहि कन्हाई। सुनह स्याम अब करहु चतुराई क्यों तुम बेनु बजाइ बुलाई। - सूरदास, 56-कहत स्याम श्री मुख यह बानी। धन्य धन्य दृढ़ नेम तुम्हारौ, बिनु दामनि मो हाथ बिकानी। - सूरदास, 57-ब्रज-जुवति चहुँपास, मध्य सुन्दरस्याम, राधिका वाम अति छवि विराजैं। - सूरदास

मथुरा लीला

अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा जाते हैं। पहुँचते ही रजक का वध किया और कुब्जा को उर्वशी के समान रूपवती बना दिया। धनुभंग तथा कुवलयापीड़ हाथी का वध करके कृष्ण एक वीर के रूप में सुशोभित हो उठे।[58] मुष्टि, चाणूर तथा कंस का वध करके अपने नाना उग्रसेन को राजसिंहासन पर बैठा दिया।

इधर ब्रज में गोपियाँ और राधाकृष्ण के विरह में तप्त हैं। सारा ब्रजमण्डल विरह-व्याधि से पागल है। जो कुंजें कृष्ण के रहने पर सुखदा थीं वही आज जलाने वाली हो गई हैं। कृष्ण द्वारा प्रेषित ऊधौ ज्ञान की गठरी लेकर आते हैं किन्तु प्रेमरस की विरह धारा में वह बह जाती है। सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य कवियों में तथा नन्ददास के भँवरगीत में इसका प्रसंग है। विरह का अनूठा दृश्य है। तुलसीदास के कृष्ण गीतावली में भी स्फुट रचनाएँ मिलती हैं।

द्वारिका लीला

द्वारिकाधीश होने पर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल की भगिनी रुक्मिणी का हरण किया। रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को अपना सर्वस्व सौंप दिया था और आग्रहपूर्वक पत्र लिखकर बुलाया था।[59] रुक्मिणी का द्वारिका में स्वागत हुआ और वह कृष्ण की रानी बनी। जहाँ कृष्ण के उत्तरार्द्ध जीवन का अधिकांश प्रसंग पौरुष-व्यंजक एवं महनीय है। भौमासुर वध, राजा नृग का उद्धार, पौण्ड्रक वध, जरासंध वध, शिशुपाल वध, शाल्व वध,दंतवक्र वध करके कृष्ण ने अपने साहस एवं न्यायप्रियता का परिचय दिया। इस काल में हमें कृष्ण एक सच्चे मित्र के रूप में देखने को मिलते हैं। सांदीपनि गुरु के यहाँ एक साथ पढ़ने वाले सुदामा और कृष्ण में महान अन्तर हो गया है। एक राजा है और दूसरा निर्धन ब्राह्मण। पत्नी के कहने पर सुदामा धन याचना हेतु अपने पूर्व मित्र राजा कृष्ण के पास जाते हैं। अनेक कवियों ने इस पर काव्य लिखे हैं किन्तु नरोत्तमदास की अभिव्यक्ति सर्वोत्तम है। सुदामा नाम सुनते ही कृष्ण ऐसे दौड़े जैसे गरुड़ छोड़ विष्णु अपने भक्तों के लिए दौड़ते हैं।[60] कृष्ण ने गले लगा लिया और उनका भव्य स्वागत किया। एक मुट्ठी चावल खाकर कृष्ण ने उन्हें सर्वस्व दे दिया। विगत बातों का ध्यान करने लगे।[61] चना चुराकर खाने वाली बात सूरदास जी बचा गये हैं किन्तु नरोत्तम जी उजागर कर देते हैं-

आगे चना गुरु मातु दिये लये तुम चावि हमें नहिं दीने।

स्याम कह्यौ मुसुकाय सुदामा सों चोरी की बानि में हौं जु प्रवीने।

पोटरी कांख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने।

पाछिली बानि अजौं न तज्यौ तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने। - नरोत्तमदास

लौटकर जब सुदामा आते हैं तो उन्हें अपनी "मड़ैया" नहीं दिखाई पड़ती, वे चिंतित हो जाते हैं-

सुदामा मन्दिर देखि डर्‌यौ।

इहाँ हुती मेरी तनक मड़ैया, को नृप आनि छर्‌यौ।-सूरदास

58-पटक्यो भूमि, केरि मटक्यो लीन्हौ दन्त उपारि। सूर प्रभु छुवत धनु टूटि धरनि पर्‌यौ सोर सुनि भयो भ्रमित भारी। - सूरदास, 59-पाती दीजौ स्याम सुजानहिं। बांचत बेगि आइयौ भाधो, धरौ जात मेरे प्रानहिं। -सूरदास, 60-बोल्यो द्वारपाल सुदामा नाम पांडे सुनि। धाये छाँड़ि राज काज ऐसे जी की गति जानै को। - नरोत्तमदास, 61-वह सुधि आवत तोहि सुदामा। जब हम तुम बन गये लकरिपन पठये गुरु की भामा। चपल समीर भयौ तिहि रजनी, भीजे चारौ जामा। काँपत हृदय वचन नहिं आवत, आए सत्वर धामा। - सूरदास

कुरुक्षेत्र लीला

कृष्ण के मथुरा से द्वारिका चले जाने की सूचना पाकर नन्द-यशोदा, राधा-गोपिकायें सभी विरह-विह्वल हो गये। इतनी दूर अब जाना कैसे हो सकेगा। एक दिन रुक्मिणी ने कृष्ण से पूछा, "क्या देखकर राधा से रीझ गये थे?" ऐसा सुनकर कृष्ण की आँखें प्रेम अश्रु से भीग गईं। कृष्ण कहते हैं कि द्वारिका कंचन की बनी है, संसार के सभी भोग यहाँ हैं किन्तु मेरा मन राधा के मिलन में वंशीवट पर ही हरण हो गया है-

रुकमिनी मोंहि निमष न विसरत, वे ब्रजवासी लोग।
हम उनसो कछु भली न कीन्ही निशिदिन भरत वियोग।
जदपि कनक मनि रची द्वारिका, विषय सकल संभोग।
तद्यपि मन जु हरत बंसीबट, ललिता के संयोग। - सूरदास

कृष्ण आगे कहते हैं-

रुकमिनि चलौ जन्मभूमि जाहिं।
जद्यपि तुम्हरों विभव द्वारिका मथुरा के सब नाहिं।
जमुना के तट गाइ चरावत अमृत-जल अँचवाहिं।
कुंज केलि अरु भुजा कंधधरि, सीतल द्रुम की छाँहि।
जो क्रीड़ा श्री वृन्दावन में तिहूँ लोक में नाहिं। -सूरदास

सुनि सतभामा सोंह तिहारी।
जब जब मोंहि घोष सुधि आवत, नैंननि बहत पनारी।
वे जमुना वे सखा हमारे, नित नव केलि बिहारी।
वृन्दावन की गुल्म लता है मन मधुकर भी प्यारी।
सूरदास प्रभु उनहिं मिले ते, मैं सुर पुरी विसारी। - सूरदास

श्रीकृष्ण सूर्यग्रहण के पर्व पर कुरुक्षेत्र पहुँचते हैं। ब्रजमण्डल से भी सभी आते हैं। वहाँ राधा से कृष्ण की भेंट हो जाती है-

राधा माधव भेंट भई।
राधा-माधव माधव-राधा कीटभृंग मति ह्वै जु गई।
माधव राजा के रंग राचे, राधा माधव रंगाई।
माधव राधा प्रीति निरन्तर, रसना करि सो कहि न गई। - सूरदास

राधा-कृष्ण का श्रृंगारी व्यक्तित्व

भक्तिकाल में माधुर्य रस की ऐसी धारा बही जिसमें राधा के श्रृंगारी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। वेद-पुराणों में भी ढूँढ़ने पर जब कृष्ण नहीं मिले तो रसखान कहते हैं कि वे मुझे कुंजों में छिपे हुए राधिका के पैर पलोटते हुए दिखाई पड़े-

ब्रह्म में ढूँढ्यो पुरानन कानन वेद रिचा सुनि चौगुने चापन।
देखो ढुरो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन।

-सुजान रसखान सवैया 96, पृष्ठ 36

मीरा के इस कथन में राधा की वेदना देखी जा सकती है-

मैं हरि बिन कैसे जिऊँ री माय।
पिय कारण जग वैरी भई, जस काठइ घुन खाइ।
मीरा के प्रभु लाल गिरिधर मिलि गये सुखदाय।

कृष्ण रस सागर हैं और रास नृत्य के प्रधान केन्द्र हैं, लेकिन राधा वस्तुत: रासरस की नायिका हैं। अपनी स्वाभाविक चपल भाव-भंगिमाओं से कृष्ण का मन हर लेती हैं। वह कभी हर्षविभोर होकर कृष्ण को हृदय से लगा लेतीं, कभी उन्हें चूमतीं, खींचकर भुजाओं में बाँध लेती, कभी बेसुध होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। कभी कृष्ण के कण्ठ में भुजायें डाल देती हैं, उनके अंगों से लटक जाती हैं, कुचों के बीच उन्हें पकड़ लेती हैं और एक हाथ से उनका चिबुक तथा दूसरे से उनका सिर पकड़कर अपना अधरपान कराती हैं।[62] कृष्ण भी राधा से कम नहीं हैं। एक रसिक प्रणयी की भूमिका निभाने में वे प्रशिक्षित हैं। कृष्ण के इसी श्रृंगारी व्यक्तित्व पर सामान्य टिप्पणी करते हुए सूरकाव्य के मर्मज्ञ पंडित रमाशंकर तिवारी कहते हैं, "कृष्ण एक निराले प्रेमी रहे हैं। वे ब्रज युवतियों को लुभाते रहे हैं, फँसाते रहे हैं, डरवाते रहे हैं, नचाते रहे हैं, प्रभु-सम्मति उपदेश देते रहे हैं और फिर सामान्य विह्वल प्रणयी के समान उनके यौवन रस का उपभोग करते रहे हैं। उनके प्रेम मन्दिर में कपट के किवाड़ लग रहे हैं जिसके भीतर फँसाने के लिए उनकी मृदुल मुसकान तथा वेणु संगीत दो प्रमुख प्रपंची एजेण्ट अथवा परिचारक रहे हैं। उनके प्रेम का पारिभाषिक धर्म रहा है रसिकता।"[63]

राधा-कृष्ण का यही श्रृंगारिक स्वरूप रीतिकालीन कवियों के लिए काव्य-सर्जना हेतु उर्वरा भूमि प्रदान कर देता है।

उत्तरमध्य काल

भक्तिकाल में दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भक्ति की जो रसधारा विभिन्न भक्तों द्वारा बहाई गई उसमें मधु रस का वेग उद्दाम था, उसके ठहराव के लिए अनुकूल वातावरण नहीं था। फलत: भक्ति की आड़ में माधुर्य का उज्ज्वलस्वरूप वासनात्मक श्रृंगार में बदल गया। भक्ति मूलत: तिरोहित हो गई। आध्यात्मिक-पारलौकिक प्रेम सांसारिक और पार्थिव हो गया। नारी मनोरंजन एवं विलास की सामग्री बन गयी। राधा-कृष्ण के बहाने भक्ति का कवच पहनकर रसलोलुप समाज को रिझाने के लिए नायक-नायिका का वर्णन होने लगा। उस समय कवियों में प्रचलित कहावत "आगे केसकवि रीझि हैं तो कविताई, न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है" से ज्ञात होता है कि काव्य का उद्देश्य नारी सौन्दर्यांकन करके, विलासिता का चित्र खींचकर अपने आश्रयदाताओं को रिझाना था।

रीतिकाल के प्रतिनिधि महाकवि बिहारी लाल जी हैं। "सतसई" के मंगलाचरण में राधा की स्तुति की है।[64] राधा-कृष्ण के कारण ब्रज के निकुंजों में तीरथराज प्रयाग उपस्थित हो जाता है, इसलिए कवि उनसे प्रेम करने को कहता है-

तजि तीरथ हरि राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज केलि-निकुंज मग पग पग होत प्रयागु॥[65]

62-सूरसागर, 1679, 63-"सूर का श्रृंगार वर्णन : डॉ० रमाशंकर तिवारी" पृ० 288, 64-मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोय। जा तन की झांई परैं स्याम हरित द्युति होय॥ -बिहारी, 65-बिहारी रत्नाकर, दोहा एक,

भक्तिकाल में कृष्ण पुरुष हैं और राधा प्रकृति, किन्तु देव कवि राधा को माया और कृष्ण को पुरुष बताते हैं।[66] श्रीकृष्ण कभी-कभी वंशी बादन में इतना व्यस्त रहते हैं कि राधा से वार्तालाप का अवसर ही नहीं आता। इसीलिए तो-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहनि हँसै दैन कहै नटि जाय॥

श्रीकृष्ण दानलीला में पटु हैं। वे गूजरी से हठपूर्वक दही लेते हैं और बिना उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा किए आलिंगन कर और चुम्बन का व्यापार भी सम्पन्न कर देते हैं।[67] श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व माधुर्य से समन्वित है। दर्शक वैसे ही तृप्त हो जाता है जैसे पंकज के पराग से मतवाला भ्रमर।[68] काव्यशास्त्रियों ने नायक के मुख्यत: दो प्रकार बताए हैं। उन सबका समावेश कवियों ने किया है। अनुकूल नायक कृष्ण अपनी स्वकीया नायिका की सारी की सराहना करते हैं और राधा उनके पाग की सराहना करती है-

आपुस में रस में रहसें, बहसें बन राधिका कुंज बिहारी।
स्यामा सराहत स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी॥[69] - देव

राधा आधे बचन कहकर ही ब्रजराज को अपने वशीभूत कर लेती है-

आधे-आधे दृगनि रति, आधे दृगन सुलाज।
राधे आधे वचन कहि, सुबस किये ब्रजराज॥[70]

कृष्ण की प्रेमाभक्ति के मोहक रूप से मुसलमान कवि रसखान बहुत प्रभावित थे। उनके कृष्ण परम ब्रह्म हैं और सर्वेश्वर हैं-

शेष महेश गणेश दिनेश सुरेशहु जाहि निरन्तर गावे।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावें॥
नारद लै शुक व्यास रटै पचिहारे तऊ पुनि पार न पावें।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावें॥

अपने प्रिय कृष्ण की लकुटी और कामरिया तथा करील के कुंजों के ऊपर सब कुछ त्यागने को उद्यत हैं- **या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारो।**

आठउँ-सिद्धि नवौ निधि कौ सुख नन्द की गाय चराय बिसारों॥
रसखानि कबौ इन आँखिन सों, ब्रज को बन बाग तड़ाग निहारों।
कोटिक हौं, कलधौत के धाम करील की कुंजन ऊपर बारों॥

कृष्ण प्रेमस्वरूप हैं, इसीलिए कवि को प्रिय हैं, जो प्रिय है वही भगवान् है। अत: श्रीकृष्ण भगवान् है।[71] घनानन्द के कृष्ण प्रेमस्वरूप हैं। राधा और कृष्ण का प्रेम मानवीय उच्च स्तर का है किन्तु

66-माया देवी नायिका, नायक पुरुष सबै दंपतिन में प्रबल देव करै तिहि जाय-देव, 67-गूजरी ऊजेर जीवन को कछु, मोल कहो दधि को तब देहों। देव इती इतराहु नहीं, इन्हीं मृदु बोलन मोल बिके हों। मोल कहा, अनमोल विकाहुँगी, ऐंचि जबै अधरा रसु लेहौं। कैसी कही फिरि तो कहो कान्ह, अबै कछु होहु कका की सों कै हौं॥ - देव, 68-मोर पखा मति राम किरीट में कंठ बनी बनमाल सुहाई। मोहन की मुसकानि मनोहर कुंडल डोलनि में छवि छाई। लोचन लोल विसाल विलोकनि को न विलोकि भयो बस माई वा मुख की मधुराई कहा कहँ मीठी लगे अंखियन न लुनाई॥-मीतराम, 69-देवदर्शन, पृष्ठ 98
70-पद्माकर पंचामृत - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, दोहा 219, 71-इश्क मजाजी में जहाँ इश्क हकीकी खूब। सो सोची ब्रजराज है जो मेरा महबूब। हिन्दी साहित्य में कृष्ण - डॉ० सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, पृ० 270

राधा कहती है कि कृष्ण हमारा मन लेकर अपना कुछ नहीं देते। प्रेम में चतुराई नहीं होनी चाहिए-

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुन पौ झझकें कपटी जे विसांक नहीं॥
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो यहाँ एक से दूसरो आंक नहीं।
तुम कौन धौ पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं॥ - घन आनन्द

केशवदास राधा के रूप का वर्णन इस प्रकार करते हैं-

महिं मोहिति मोहि सकै न सकूनी चपला चल चित्त बखानत हैं।
रति कीरति क्यों हूँ न कान करै द्युति नन्द कला घट जानत हैं॥
कहि केशव और की बात कहा रमणी परमाहू न मानत हैं।
वृषभानु सुता हित मत्त मनोहर औरहि डीठन आनत हैं॥

साधारण नायक-नायिका के रूप में कवियों ने राधा-कृष्ण का जो वर्णन प्रस्तुत किया है उसमें भी यत्र-तत्र कृष्ण का भक्तिकालीन रूप उद्धृत हुआ है। बिहारी अपने मन में उसी कृष्ण को बसाना चाहते हैं जिसके सिर पर मुकुट, कमर में काछनी और हाथ में मुरली है-

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानक मो मन सदा बसो बिहारी लाल॥

प्राचीन तथा मध्यकालीन कृष्ण कविता पर पुराणों का प्रभाव

भारत देश में कृष्ण भक्ति का मूलाधार श्रीमद्भागवत है। कुछ अन्य पुराणों में भी इसके उत्स मिल जाते हैं। कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी कृतियों में भक्ति, दर्शन, सृष्टि-उत्पत्ति, अवतार वर्णन एवं राजवंशों का वर्णन आदि विषय समाहित किये हैं। शैव, वैष्णव एवं ब्रह्म पुराणों में सबसे अधिक प्रभाव कृष्ण भक्ति काव्यों पर वैष्णव पुराणों का है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्ति काव्यों का विशेष महत्त्व है। सूर की काव्य-बहुज्ञता भारतीय कवियों में प्रसिद्ध है। उनके जैसा कीर्तनिया, भक्त, दार्शनिक, मानव मन की परख करने वाला तुलसी को छोड़ दूसरा कवि दृष्टिगत नहीं होता। नन्ददास का पदलालित्य एवं भाव-सरणि हिन्दी संसार की निधि है। परमानन्द दास का "परमानन्द सागर" कृष्ण भक्ति-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। कृष्ण भक्ति ब्रजभापा के अतिरिक्त बंगाली, मैथिली एवं गुजराती में भी व्याप्त है। वस्तुत: हिन्दी-संसार में कृष्ण-काव्य एक अमूल्य निधि है।

वेद-काल से भक्ति की जो अविरल स्रोतस्विनी उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, स्मृतियों और पुराणों के माध्यम से प्रवाहित होती रही, उसने मध्यकाल तक आते-आते अपना स्वरूप और धर्मसाधना-मार्ग बदल दिया। मध्यकालीन भक्ति के प्रचण्ड प्रवाह में वह विलीन हो गई। फिर भी कृष्ण काव्यों पर पुराणों का प्रभाव अक्षुण्ण है। पुराणों की संख्या 18 बताई गयी है, जो निम्न हैं-

1-श्रीमद्भागवत, 2-विष्णु पुराण, 3-ब्रह्मवैवर्त पुराण, 4-वृहन्नारदीय पुराण, 5-पद्म पुराण, 6-वामन पुराण, 7-मत्स्य पुराण, 8-वाराह पुराण, 9-कूर्म पुराण, 10-स्कन्द पुराण, 11-गरुड़ पुराण, 12-भविष्य पुराण, 13-ब्रह्माण्ड पुराण, 14-ब्रह्म पुराण, 15-वायु पुराण, 16-मार्कण्डेय पुराण, 17-अग्नि पुराण, 18-लिंग पुराण उपर्युक्त अठारह पुराणों में से श्रीमद्भागवत, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त, नारद और पद्म पुराण का कृष्ण भक्ति काव्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इन पुराणों में विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा महिमा का सर्वाङ्ग सुन्दर वर्णन किया गया है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न है-

72-रसिक प्रिया, सवैया 29

श्रीमद्भागवत

भक्ति शास्त्र एवं संस्कृत साहित्य की यह अनुपम निधि है। इस पुराण का सर्वाधिक प्रभाव वल्लभ सम्प्रदाय पर पड़ा है। इसीलिए यह सम्प्रदाय अधिक सरस एवं रसस्निग्ध है। भागवत में सरस श्लोकों की प्रधानता है जिसमें भगवान् की आध्यात्मिक स्तुति की गई है। इस पुराण में अद्वैत तत्त्व का वर्णन होते हुए भी विशुद्ध भक्ति का चित्रांकन किया गया है। अद्वैत ज्ञान के साथ भक्ति का सामंजस्य उपस्थित करना, इसकी परम विशिष्टता है। हिन्दी कृष्ण भक्तिकाव्य इससे बहुत प्रभावित है जिसका दिग्दर्शन आगे है। यद्यपि इसमें विष्णु के बाईस अवतारों का वर्णन है तथापि श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन प्रमुख है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की एकता के सम्बन्ध में भगवान् कहते हैं—हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं, अत: जो हममें कुछ भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है।[73]

विष्णु पुराण

इसमें छ: खण्ड हैं जिन्हें अंश कहा गया है। पंचम अंश में श्रीकृष्ण के चरित्र का गान है जो भक्तों का आधार है। भागवत के समान कथा का वर्णन है किन्तु विस्तार नहीं है। इसके दार्शनिक सिद्धान्तों और कृष्ण चरित का प्रभाव हिन्दी भक्ति काव्य पर अधिक पड़ा। पूरे ग्रन्थ में प्रलय, भक्ति, मन्वन्तरों, आश्रमों, सृष्टि-उत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान-माहात्म्य और सोमवंशी राजा ययाति तथा अन्य क्षत्रिय राजवंशों—यदु, तुर्वसु, दुह्यु, धनु, पुरु आदि का वर्णन है। इसका कवित्व रमणीय एवं रसग्राही है। भक्ति और ज्ञान का सामंजस्य बड़ी सुन्दरता से प्रदर्शित है। वैष्णव पुराण होते हुए भी इसमें साम्प्रदायिकता की गंध नहीं है, भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं महादेव के साथ अपना अभेदत्व प्रदर्शित करते हुए कहते हैं-"आप यह भली प्रकार समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा मुझसे भिन्न नहीं हैं। हे हर! जिन लोगों का चित्त अविद्या से मोहित है वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनों में भेद देखते और बतलाते हैं।"[74]

ब्रह्मवैवर्त पुराण

इस पुराण के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण कहता है-"सावर्णि मनु ने नारद ऋषि के लिए कृष्ण भगवान् के श्रेष्ठ माहात्म्य को जिस पुराण में कहा है और जिसमें ब्रह्म वाराह के उपदेश बारम्बार वर्णित हैं, वह अठारह सहस्र श्लोकों का ब्रह्मवैवर्त पुराण कहा जाता है।"[75] इसके चार खण्डों में ब्रह्मा, देवी, गणेश और कृष्ण का वर्णन है। श्रीकृष्ण जन्म खण्ड का विस्तार लगभग आधे ग्रन्थ में है। इस पुराण की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें श्रीकृष्ण के चरित्र का सांगोपांग वर्णन है जिसमें राधा का भी प्राधान्य है। राधा-कृष्ण की लीला, स्वरूप तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में वैष्णव सम्प्रदायों में विशेषत: चैतन्य मत, वल्लभ मत तथा राधावल्लभी मतों में जिन साधनभूत रहस्यों का आजकल प्रचार है उनका मूल ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है। कृष्णगोपी और कृष्ण की शक्तिभूता राधा के चरित्र का विस्तृत वर्णन इस पुराण में किया गया है। राधा गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण की हृदयेश्वरी प्राणवल्लभा हैं।

श्रीदामा के शाप से राधा इस भूतल पर अवतीर्ण होती हैं।[76] इस पुराण के 15वें अध्याय में राधा-कृष्ण के विवाह का वर्णन है। इसीलिए उनका स्वकीया रूप ही यहाँ मान्य है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य इससे बहुत प्रभावित है। "राधा" शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से वर्णित है-

73-श्रीमद्भागवत 4/7/54, 74-विष्णु पुराण 5/33/48-49, 75-मत्स्य पुराण, अध्याय 53, 76-ब्रह्मवैवर्त पुराण-4/59/6, 77-वही-4/17/223

राधेत्येवं संसिद्धा राकारो दानवाचकः। स्वयं निर्वाण दात्री या सा राधा परिकीर्तिता ॥[77]
रा च रासे च भवनाद धा एवं धारणादहो। हरे रालिंगानादारात् तेन राधा प्रकीर्तिता ॥[78]

अर्थात् रास में विद्यमान रहने तथा भगवान् श्रीकृष्ण को आलिंगन देने के कारण ही श्रीमती राधा इस नाम से प्रसिद्ध हैं।

वृहन्नारदीय पुराण

इस पुराण में श्रीकृष्ण अवतार की कथा वर्णित नहीं है। मत्स्य पुराण के अनुसार "जिस पुराण की कथा में नारद ने वृहत्कल्प के प्रसंग में धर्म का उपदेश दिया है, वह नारदीय पुराण कहा जाता है। इसका प्रमाण पच्चीस सहस्र श्लोकों का है।"[79] इसके दो भाग हैं। प्रथम में मोक्षधर्म स्वर्ग, वर्ण व्यवस्था, नक्षत्र तथा दूसरे में कल्प निरूपण, व्याकरण निरूपण, निरुक्त, ज्योतिष, ग्रह विचार, मंत्रसिद्ध, देवताओं के मंत्र, अनुष्ठानों की विधि तथा अठारहों पुराणों की विषयानुक्रमणिका का वर्णन है। इसके दूसरे भाग से हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य अधिक प्रभावित है।

पद्म पुराण

इस पुराण में पाँच खण्ड हैं। पद्मपुराण विष्णु भक्ति का प्रतिपादन करने वाला एक वृहद् पुराण है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में विष्णु भक्ति की बहुत अधिक प्रधानता है, फिर भी अन्य देवताओं के प्रति अनुदार भावों का प्रदर्शन कहीं भी नहीं किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से यह पुराण बहुत सुन्दर है। शिव और विष्णु की एकता का प्रतिपादन किया गया है।

उपपुराण

अठारह पुराणों के अतिरिक्त 18 उपपुराण भी हैं। इनमें से अधिक नाम वहीं हैं, जो महापुराणों के हैं। इनमें कालिका पुराण विशेष उल्लेखनीय है किन्तु इससे कृष्ण भक्ति काव्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। उपपुराणों के अन्तर्गत हरिवंश पुराण भी आता है। सभी उपपुराणों में कर्मकाण्ड की विधियाँ अधिक हैं।

प्राचीन तथा मध्यकालीन कृष्णकाव्य

भक्तिकाल

भक्तिकाल के पूर्व संस्कृत भाषा में "गीत गोविन्द" लिखकर आचार्य जयदेव ने विद्यापति को बहुत प्रभावित किया। "गीत गोविन्द" में कृष्ण को एक प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। राधा के चरित्र को मधुर एवं प्रेमल बनाकर प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय जयदेव को ही है। विद्यापति ने शिव भक्ति और राधा-कृष्ण के प्रेमपूर्ण मिलन के शृंगारी पद गाये हैं। कृष्ण और राधा के समस्त चित्रों में वासना का रंग अधिक गहरा है। कृष्ण और राधा साधारण नायक-नायिका की भाँति हैं। उन्होंने वय: सन्धि, नखशिख, मान, अभिसार, संयोग-वियोग आदि के वर्णन में अपनी पूर्ण प्रतिभा का प्रयोग किया है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य की परम्परा में सूरदास कनिष्ठिकाधिष्ठित हैं। ये अष्टछाप के सर्वाधिक लोकप्रिय विश्रुत कवि हैं। सूरदास के ग्रन्थों में "सूरसागर"[80] "सूरसारावली" और "साहित्य लहरी" मुख्य हैं।

78-ब्रह्मवैवर्त पुराण-4/17/224, 79-यत्राह नारदो धर्म्मान् वृहत्कल्पाश्रयानिह। पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥-मत्स्यपुराण, अध्याय-35, 80-"कुछ विद्वान "साहित्य लहरी" और "सूरसारावली" को भी सूर की प्रामाणिक रचना मानते हैं, किन्तु डॉ० रमाशंकर तिवारी ने अपनी पुस्तक "सूर की काव्यमाधुरी" में बड़े विस्तार के साथ गम्भीर साक्ष्यों का नियोजन कर यह सिद्ध किया है कि "सूरसारावली" प्रसिद्ध सूरदास की रचना नहीं है। उन्होंने अन्य विद्वानों के साथ यह भी माना है कि "साहित्य लहरी" भी प्रसिद्ध सूरदास की रचना नहीं है।"

सूरसागर का आलम्बन श्रीमद्भागवत है। इसमें 12 अध्याय हैं जिनमें क्रमशः विनय, भक्ति, विष्णु के अवतारों तथा अन्य पौराणिक कथाओं का निरूपण है। सूरसागर के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध में गोकुल और ब्रज में बिहार करने वाले श्रीकृष्ण का चित्र है और उत्तरार्द्ध में द्वारिका गमन से अन्त तक की कृष्ण की जीवनी है। सूर ने श्रीकृष्ण के शिशु और बालजीवन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। श्रीमद्भागवत में राधा का वर्णन नहीं है किन्तु सूर ने जयदेव और विद्यापति की परम्परा से प्रभावित होकर राधा का विस्तृत चित्रण किया है। राधा का प्रेम कृष्ण के प्रति बाल्यकाल से ही है। इसी से "लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसे छूटे" के सिद्धान्त पर राधा जीवनपर्यन्त श्रीकृष्ण के प्रति स्नेहा-सिक्त बनी रहीं। यहाँ राधा स्वकीया के रूप में चित्रित है जबकि जयदेव आदि ने परकीया के रूप में वर्णन किया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण का विवाह ब्रह्मा के द्वारा कराया गया है जिसका प्रभाव सूर पर परिलक्षित होता है।

सूरदास के बाद साहित्यिक दृष्टि से नन्ददास का स्थान है। अष्टछाप के कवियों में इनका दूसरा स्थान है। इनके ग्रन्थों में "रासपंचाध्यायी" "सिद्धान्तपंचाध्यायी" और "भँवरगीत" अधिक प्रसिद्ध हैं। "रासपंचाध्यायी" भागवत के रास प्रसंग पर आधारित है जिसमें संयोग-वियोग तथा प्रकृति के सुन्दर चित्र हैं। शब्दों का प्रयोग, चित्रण कला, ईश्वरोन्मुख प्रेम और अनुप्रास की छटा इस काव्य की विशेषता है। परमानन्द दास अष्टछाप के तीसरे कवि हैं जिनका साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व है। अष्टछाप के कवियों के बाद हितहरिवंश का स्थान है। इनका "हित चौरासी" ब्रजभाषा का सुन्दर काव्य है। भक्ति परम्परा में मीराबाई का विशिष्ट स्थान है। गिरिधर गोपाल की प्रेमयोगिनी मीरा कृष्ण के माधुर्य भाव की उपासिका है। इनके पदों में भक्ति एवं श्रृंगार रस की प्रधानता है। श्रृंगार में वासना का नामोनिशान नहीं है। मीरा के काव्य में आत्मनिवेदन, पीड़ा, कसक, विरह और वेदना का रस है जो आध्यात्मिकता का प्रकाशन करता है। मीरा के पदों का सबसे अधिक प्रामाणिक संस्करण "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" से प्रकाशित हुआ है जिसके सम्पादक परशुराम चतुर्वेदी हैं।

"रसखान" कृष्ण के प्रेम में सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं। इनके प्रेम का रस सभी कवियों से ऊँचा है। इनकी दो रचनायें "प्रेमवाटिका" और "सुजान रसखान" प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य की परम्परा में चाचा हित वृन्दावन, ध्रुवदास, नरोत्तमदास, कविगंग, बलभद्रमिश्र, सेनापति, रहीम, रसखान आदि अनेक कवि हुए हैं जिन्होंने कृष्ण-भक्ति से पूर्ण रचनायें की हैं। नरोत्तम दास का "सुदामा चरित" सरस एवं मार्मिक रचना है। रहीम अकबर के दरबारी कवि थे। ये तुलसी के स्नेह-भाजन थे। ब्रजभाषा और अवधी पर उनका समान अधिकार था। "रहीम दोहावली" "बरवै नायिका भेद" और "मदनाष्टक श्रृंगार सोरठा" इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। सेनापति के "कवित्त रत्नाकर" में भी भक्ति सम्बन्धी पद मिलते हैं।

घनानन्द या आनन्द घन सत्रहवीं शताब्दी के कवि माने जाते हैं। इन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है और राधा-कृष्ण के बिहार का चित्रण किया है। हितहरिवंश की परम्परा में ध्रुवदास भी आते हैं। इन्होंने राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाओं का वर्णन किया है। श्री हठी जी का "राधा सुधाशतक" राधा की भक्ति-भावना का चित्रण करता है। इस काल में अनेक कवि हुए जिन्होंने प्रेम का उन्मुक्त वर्णन किया है। राधा-कृष्ण के नामों का सहारा लेकर लौकिक प्रेम का वर्णन किया। ऐसे कवियों को भक्ति की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

पुराणों के प्रभाव की प्रकृति एवं स्वरूप

प्राचीन एवं मध्यकालीन कृष्ण कविता पर पुराणों का प्रभाव विविध रूपों में परिलक्षित होता है। पुराणों के ब्रह्मवाद, भक्ति, अवतारवाद एवं सृष्टि सम्बन्धी वर्णनों का पूरा-पूरा प्रभाव कृष्ण-भक्ति साहित्य पर पड़ा है। इस प्रभाव को अध्ययन की दृष्टि से निम्न खण्डों में समाहित किया जा सकता है-

1-दार्शनिक प्रभाव, 2-भक्ति सम्बन्धी प्रभाव, 3-अवतारवाद का प्रभाव, 4-सृष्टि तथा राजवंशों का प्रभाव, 5-काव्य सम्बन्धी अंशों का प्रभाव।

यद्यपि पुराणों के प्रभावों का यह सन्दर्भ अति विस्तृत है जिसका सम्यक् विवेचन इस अध्याय के छोटे अंश में कर पाना बड़ा कठिन है, तथापि उसका अति संक्षिप्त रूप आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुराणों में सर्वत्र कृष्ण को ब्रह्म रूप में मान्यता प्राप्त है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के लिए भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण के नाम का प्रस्ताव किया जाता है। भीष्म के इस कथन से उनके ब्रह्मत्व पर प्रकाश पड़ता है-

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्यः। कृष्णस्य हि कृतेविश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
एष प्रकृतिख्यक्ता कर्त्ता चैव सनातनः। परश्च सर्वभूतेभ्यस्मात् पूज्यतमो हरिः॥[81]

विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण ब्रह्म के रूप में चित्रित हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। वे ही अपने भक्तों को संसार सागर से तारने वाले हैं।[82] अन्यत्र भी जनार्दन देव को ही सृष्टि का रचयिता, पालनकर्त्ता और संहारक कहा गया है। वे ही जगत रूप भी हैं।[83] वृहन्नारदीय पुराण के विष्णु भी परब्रह्म हैं-"जो जगत के कर्ता ब्रह्मा जी हैं वे इनकी नाभि से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए ये विष्णु जी ही परमात्मा रूप हैं-इनसे परे अन्य कोई नहीं।"[84] ब्रह्मवैवर्त पुराण में कई स्थलों पर ब्रह्म के रूप में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा बताई गई है।[85] भागवत के दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं-"मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ, इसलिए मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हीं से सब वस्तुयें बनी हैं और यही उन वस्तुओं के रूप में हैं, वैसे ही मैं मन, प्राण, पंचभूत, इन्द्रिय और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।"[86] भागवत के विभिन्न स्थलों पर ब्रह्म की ही पुष्टि की गई है।[87] पद्म पुराण में भी विष्णु को परब्रह्म माना गया है और कृष्ण विष्णु के अवतार हैं ही। एक स्थल पर लिखा है-"ये साक्षात् परमात्मा विष्णु भगवान् हैं वे जगत के लिए ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रकट होते हैं। यद्यपि ये अजन्मा, वेद, यही स्वर्ग भी हैं, इसमें संशय नहीं।"[88] श्री हरि के अंश से कोटि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर होते हैं व सृष्टि, पालन, नाश करते हुए उसमें ठहरे रहते हैं, परन्तु यह सब उन्हीं हरि से उत्पन्न हैं।"[89]

पुराणों के उपर्युक्त परमब्रह्म श्रीकृष्ण हिन्दी कृष्ण काव्यों में भी उसी रूप में वर्णित हैं। सूरदास ने श्रीकृष्ण के अन्तर्यामी स्वरूप और विराट रूप का वर्णन दशम स्कन्ध सूरसागर में अनेक स्थलों पर विस्तार से किया है। श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म, अच्युत, निराहार बताते हुए सूरदास कहते हैं-

81-महाभारत, सभापर्व 38/23-24, 82-विष्णु पुराण 1/2/1-2, 83-विष्णु पुराण 1/22/40, 84-वृहन्नारदीय पुराण 3/25, 85-ब्रह्मवैवर्त पुराण (कृष्ण जन्म खण्ड) 1/36-37, 86-भागवत 10/47/29, 87-वही 4/7/50, 51, 52; वही 3/9/21; वही 4/22/40, 88-पद्म पुराण (स्वर्ग खण्ड) 1/82-83, 89-पद्मपुराण (पाताल खण्ड) 69/111

अक्षर, अच्युत, निराकार, अविगत है जोई।
आदि अन्त नहिं जाहि आदि अन्तहिं प्रभु सोई॥[90]

अन्य- **कोटि ब्रह्माण्ड करत छिन भीतर, हरत बिलम्ब न लावै।**
ताको लिए नन्द की रानी, नाना रूप खिलावै॥[91]

नन्ददास के अनुसार ईश्वर अजन्मा है-"अज गहिए जगदीश"[92] और वह अनन्त रूप होते हुए भी एक है-"हरि अनन्त अरु एक।"[93] यह जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण है-

जो प्रभु ज्योति जगतमय, कारण करण अभेद।
विघन हरण सब सुख करन, नमो नमो तिहिदेव॥[94]

परमानन्ददास श्रीकृष्ण को परमब्रह्म गुणरहित तथा सगुण दोनों बताते हैं। निर्गुणी ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है-

हँसत गोपाल नन्द के आगे नन्द स्वरूप न जाने।
निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीला साहिब सुत करि माने।
परमानन्द स्वामी मन मोहन खेल रच्यो ब्रजनाथ।

परमानन्ददास, पदसंग्रह, पद सं० 17 (दीनदयाल गुप्त)

यद्यपि मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है, तथापि उनके गिरिधर गोपाल अविनाशी ब्रह्म हैं-

प्रभु तुम पूरण ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो। मीरा व्याकुल विरहिनी, अपनी करि लीजै हो॥[95]

रसखान के कृष्ण भी विष्णु के अवतार, ब्रह्मा और शंकर से श्रेष्ठ तथा पूर्ण ब्रह्म हैं-

गावैं गुनी गनिका गंधर्व और सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस कौं ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

-रसखान और उनका काव्य, पृष्ठ 85 चन्द्रशेखर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

नरोत्तम दास श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी ब्रह्म के रूप में चित्रित करते हैं-

अन्तर्यामी आप हरि जानि भक्ति की पीर। सोवत लै ठाढ़ो कियो, नदी गोमती तीर॥[96]

और ये वही ब्रह्म हैं जिनके चरण से समस्त संसार का कष्ट विनष्ट होता है-

जिनके चरणन को सलिल, हरत जगत संताप। पाँय सुदामा विप्र के, धोवत हैं हरि आप॥[97]

रहीम एक ही दोहे में कृष्ण के ब्रह्मत्व को प्रकट करते हैं-

बिन्दु में सिन्धु समान, को कासो अचरज कहैं। होनहार हिरान, रहिमन आपुहि आपु में॥

पुराणों में ईश्वर और जीव का अभेदत्व दिखाया गया है। विष्णु पुराण और भागवत का एक-एक उदाहरण निम्न है- **सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः।**
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक्पृथक्॥22॥ विष्णु पुराण, 2/16/22

90-सूरसागर, ना०प्र०सभा, पद सं० 1793, 91-वही, ना०प्र०सभा, पद सं० 744, 92-अनेकार्थमंजरी, 93-नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ मंजरी ना०प्र०सभा काशी, 94-नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ मंजरी ना०प्र०सभा काशी पृष्ठ 49, 95-मीराबाई की पदावली, प०सं० 129, परशुराम चतुर्वेदी।, 96-सुदामा चरित्र-नरोत्तम दास, वे०प्रे० दोहा सं० 12, 97-सुदामा चरित्र-नरोत्तम दास, वे०प्रे० दोहा सं० 23

अर्थात् जिस प्रकार एक ही आकाश श्वेत-नील आदि अनेक भेदों वाला दिखाई देता है, उसी प्रकार भ्रान्त दृष्टियों को एक ही आत्मा अलग-अलग दिखाई पड़ती है।

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगतः सर्ववित्परः।
धत्तेऽसावात्मनो लिंगमायया विसृजन्गुणान्॥ - भागवत 7/2/22

अर्थात् वास्तव में आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देह-इन्द्रिय आदि से पृथक् है। भगवान् स्वयं कहते हैं-"मित्र जो मैं (ईश्वर) हूँ, वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो, मैं भी वही हूँ जो तुम हो। ज्ञानी पुरुष हम दोनों में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं देखते।"[98]

पुराणों के जीव सम्बन्धी इस धारणा से हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य प्रभावित है। सूरदास के मत से ईश्वर घट-घट में रमा है-

सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड पुनि माया सब विधिकाल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गुपाल॥[99]

ब्रह्म की तरह जीवन भी नित्य और सत्य है। शरीर क्षणभंगुर है। संसार के नाम और रूपों के साथ इस शरीर का सम्बन्ध है। नाम और रूप तो नाशवान है किन्तु जगत और जीवन की सार सत्ता स्थायी है। सूर के पदों में ऐसी भावना कई पदों में है। भक्त नन्ददास ने भी जीव और ईश्वर की एकता को स्वीकार किया है। वे कहते हैं-

व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप, वेद वदत प्रभु तुम्हरो रूप।
तुम सब भूतनि कौ विस्तार, देह प्रान इन्द्री अहंकार॥

(दशमस्कन्ध भाषा, नन्ददास ग्रन्थावली, पृष्ठ-253)

भागवत के श्लोक (7/2/22) का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। परमानन्द जी के कुछ पदों में जीव-ईश्वर के अंश-अंशी भाव की प्रतीति होते हैं-

माई हौं अपने गोपालहि गाऊँ।
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो, जे जोगी ते जोग।
कर्म होय ते कर्म विचारो जे भोगी ते भोग।

x x x x x

अपने अंश की सुति जती है, मांगि लियो संसार।
परमानन्द गोकुल मथुरा में, उपज्यो यही विचार॥ - परमानन्द दास, पद संख्या-110

मीरा की निम्न पंक्तियों में जीव-ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार की गई है-

तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं जैसे सूरज घामा।

-मीराबाई की पदावली, पं०सं० 115-परशुराम चतुर्वेदी

श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में माया, मोक्ष, जगत आदि का वर्णन सर्वत्र विद्यमान है। इन सबका प्रभाव कृष्ण भक्ति काव्यों पर पड़ा है। सूरदास ने अविद्या माया और इस मायाजन्य संसार को अनेक पदों में भ्रमात्मक और मिथ्या कहा है-

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया, मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया।

98-भागवत 4/28/62, 99-सूरसागर, पृष्ठ 38

संसारी जीव को झूठी माया सच्ची प्रतीत होती है।[100] यह माया लोक और सृष्टि (जगत) का सृजन करती है।[101] सूरदास के लिए सबसे बड़ा मोक्ष गोपाल का गुणगान है।[102] रसखान तो श्रीकृष्ण का साहचर्य ही चाहते हैं। मीरा का भी आनंद श्रीकृष्ण पर ही आधृत है। पुराणों में वृन्दावन का वर्णन है।[103] वृन्दावन के प्रति सूर कहते हैं-

"वृन्दावन मोको अति भावत।" "धनि यह वृन्दावन की रेणु।"[104]

रसखान वृन्दावन के करील-कुंजों में अधिक रम गये हैं-

रसखानि कबौं इन आँखिनि सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूँ कलधौत के धाम करील के कुंजनि ऊपर वारौं॥

पुराणों के राधा-वर्णन को प्रायः सभी कवियों ने अपना आलम्बन बनाया है। सूरदास कहते हैं-

"कृष्णभक्ति दीजै श्री राधे सूरदास बलिहारी।"

परमानन्ददास "धनि राधिका के चरण" कहते हैं तो मीरा कहीं अपने को राधा कहती है और कहीं मीरा-

आवत मोरी गलियन में गिरधारी।
मैं तो छुप गई लाज की मारी।
आवत देखी कृष्ण मुरारी, छिप गई राधा प्यारी॥
राधा प्यारी अरज करत हैं सुन ले कृष्ण मुरारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी॥[105]

रसखान और घनानन्द ने भी राधा का वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में रास का वर्णन विस्तार से है। भागवत के पाँच अध्यायों में रास का वर्णन उच्चकोटि का है। नन्ददास ने रास पंचाध्यायी ही लिख डाली। सूर ने रास को अद्भुत कहा है-

आजु हरि अद्भुत रास उपायो।
एकहि सुर सब मोहित कीन्है मुरली नाद सुनायो।[106]

रास का रहस्य बिना ईश्वर की कृपा के कोई जान नहीं सकता-

"रास रसरीति नहिं बरनि आवै।"[107]

पुराणों में ईश्वर के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन है। वैष्णव पुराणों में सगुण रूप की भक्ति को अधिक लाभकारी बताया गया है। क्योंकि योगाभ्यासी भक्त पहले पहल निर्गुण रूप का चिन्तन नहीं कर सकते, इसीलिए हरि के विश्वमय स्थूल रूप का ही चिन्तन करना चाहिए।[108] भागवत में भी भगवान् के चरणों की आराधना का माहात्म्य है।[109] सूर "गोकुल सबै गोपाल उपासी" और "अविगत गति कछु

100-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, ना०प्र० सभा।, 101-लोक सृष्टि सिरजित यह माया। तुमते दूर कलमयी काया। हे सरवज्ञ, अग्यजन मेरे। जाने नहिन धर्म प्रभु केरे॥ - नन्ददास ग्रन्थावली, दशम स्कन्ध माला, अध्याय-28, ना०प्र०सभा।, 102-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, पृष्ठ 1621, ना०प्र०सभा।, 103-ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, पद्म पुराण, पातालखण्ड, अध्याय-69 - नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।, 104-सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना०प्र० सभा।, 105-मीराबाई की पदावली, पद सं० 172, 106-सूरसागर दशम स्कन्ध, पद सं० 1758, पृ० 652, ना०प्र० सभा काशी।, 107-सूरसागर दशम स्कन्ध पद सं० 1624, पृ० 652 ना०प्र० सभा काशी, 108-विष्णु पुराण 6/7/55, 109-श्रीमद्भागवत 4/22/40, 110-परमानन्द पद संग्रह, पद सं० 486, 111-मीराबाई की पदावली, पद सं० 15, 112-श्रीमद्भागवत 3/29/7-14, 113-श्रीमद्भागवत 7/15/23-24

कहत न आवै" कहकर निर्गुण की दुःसाध्यता तथा सगुण के सौकर्य की बात कही है। सूर की भाँति नन्ददास ने भी निर्गुण को दुर्घट बताया है, "अब विधि कहत कि निर्गुण ज्ञान, तिहिं समान दुर्घट नहीं आन।" परमानन्ददास और मीरा ने भी सगुण की महत्ता को व्यक्त किया है-

निसि दिन चरन कमल अनुरागी स्यामास्याम उपासी।[110]
मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।[111]

रसखान और रहीम तो कृष्ण के सगुण रूप पर बलि-बलि जाते हैं। रहीम की सगुणोपासना कितनी पवित्र है-

अंजन देहु तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आंखिन में हरि बसो, रहिमन बलि बलि जाय॥

श्रीमद्भागवत में भक्ति मुख्यतः चार प्रकार की बताई गई है।[112] तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण। सूर ने इन चारों प्रकार की भक्ति का उल्लेख किया है। एक अन्य स्थल पर भक्ति के नौ प्रकार बताये गये हैं।[113] इन नवों का समर्थन करते हुए दसवीं भक्ति प्रेम लक्षणा बताई है-

श्रवण कीर्तन स्मरण पादरत, अरचन बन्दन दास।
सख्य और आत्म निवेदन, प्रेम लक्षणा जास॥[114]

पुराणों की इस नवधा भक्ति का प्रभाव सभी कृष्णभक्त कवियों पर पड़ा है। इसे हम आगे संक्षिप्त उदाहरणों के माध्यम से दिखा रहे हैं-

श्रवण— **जो यह लीला सुने सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।**[115]

X X X X X

जो पद स्तुति सुने सुनावै, सूरसो ज्ञान भक्ति को पावै।[116]

कीर्तन— **सब विधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन लीला पद गावै।**[117]

X X X X X

जो सुख होत गोपाल हि गाए।[118]

X X X X X

"दिन दश लेइ गोविन्द गाइ।"[119]

स्मरण— **"हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई।"**[120]

पादसेवन—"भज मन नन्द नन्दन चरन" - सूरदास

"मन रे परस हरि के चरन" - मीरा

पादसेवन— राम कृष्ण पद प्रेम बाढ्यौ, लीला रस बाध्यौ। - परमानन्द दास

अर्चना— तुमको टेरि-टेरि मैं हारी - परमानन्द दास

वन्दन— चरण कमल बन्दौं हरि राई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार-बार बन्दौं तिहि पाई॥

114-सूर सरावली, वे०प्रे०, पृ० 5 तथा 96, 115-सूरसागर, नवम स्कन्ध, ना०प्र०सभा० काशी, 116-सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना० प्र० सभा काशी, 117-सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पृ०-1, पद सं०-2, ना०प्र०सभा काशी, 118-वही, पद सं० 349, ना०प्र० सभा काशी, 119-वही, पद सं० 315, ना०प्र० सभा काशी, 120-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध पद सं० 4923, ना०प्र० सभा काशी।

आत्मनिवेदन— **अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।**
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय को माल॥
सूरदास की सवै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल।[121]

इसी प्रकार दास्य और सख्य भाव भी भक्ति की प्रचुरता आलोच्य कृष्ण भक्ति काव्यों में है। भक्ति भाव की रसानुभूति एवं भक्ति के विविध भावों से सभी पुराण भरे पड़े हैं। नन्ददास ने इन्हीं विविध भावों का संकेत "रूपमंजरी" और रास पंचाध्यायी में किया है—

जिहि जिहि भाँति भजै जो मोहिं। तिहि तिहि विधि सो पूरन होंहिं॥ - रूपमंजरी
सर्वभानु भगवान् कान्ह जिनके मनमाहीं।

-नन्ददास ग्रन्थावली, रास पंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, ना०प्र०सभा काशी

सूरदास भी यही कहते हैं-

काम क्रोध में नेह सुहृदयता काह विधि कहै कोई।
धरै ध्याय हरि को जो दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई॥ सूरसागर दशम स्कंध, ना०प्र० सभा काशी

दास्यभाव

भक्ति के विविध भावों के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में कहा गया है-

कामं क्रोधं मयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च। नित्यं हरौ विद्धतो यान्ति तन्मयतां हिते॥[122]

अर्थात् काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृदभाव, इनमें कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय तो ये भाव लौकिक रूप को छोड़ ईश्वरमय हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में दास्यभाव के अनेक स्थल हैं।[123] सूरदास के अनेक पद दास्यभाव के प्राप्त होते हैं।[124] दास्यभाव में भक्त अपने स्वामी के समक्ष अपने दोषों को भी व्यक्त करता है-

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करो नन्दलाल।[125]

इसी प्रकार परमानन्द दास कृष्ण से विनय करते हैं[126] और भगवान् की भक्ति-सामर्थ्य का भाव प्रकट करते हैं-

जापर कमला कान्त ढरैं।
लकरी घास को बेचन हारो ता सिर छत्र धरैं।
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो चाहैं सोइ करैं।
परमान्द सदा यह सम्पत्ति, मनमें कबहूँ ढरैं। - परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० 483

मीरा गिरिधर नागर की दासी है-

मीरा दासी राम की जी, राम गरीब निवाज।

121-सूरसागर पद संख्या 153, ना०प्र० सभा काशी, 122-श्रीमद्भागवत 10/29/15, 123-श्रीमद्भागवत 10/40 एवं 10/14, 124-सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद सं० 171 ना०प्र० सभा काशी।, 125-सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद सं० 153 ना०प्र० सभा काशी, 126-परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० 313

जनमीरा को राख ज्यों, कोई बाँह गहे की लाज।[127]
मीरा के प्रभु हरि अविनाशी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।[128]
हाँ हो म्यारा नाथ सुनाथ विमल नहिं कीजिए। मीरा कृष्ण की दास, दरस अब दीजिए।[129]

मीरा ने स्वयं को अपने साहब, "ठाकुर", नाथ और गिरिधर गोपाल की दासी कहा है।

रसखान भी कहते हैं कि शरीर के द्वारा निष्पन्न सभी कर्म श्रीकृष्ण भगवान् से सम्बन्ध होने चाहिए-

बैन वही उनको गुन गाइ, औ काम वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरै, अरु पाँय वही जु वही अनुगामी।
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों "रसखानि" वही रसखानि जु है रसखानि बहै रसखानी॥

सख्यभाव

"ब्रज-निवासी वे नन्द-गोप आदि धन्य हैं जिनका मित्र परमानन्द पूर्णसनातन ब्रह्म है।" यह प्रसंग भागवत में निम्न प्रकार है-

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोप ब्रजाकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्द पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥ भागवत 10/14/32

सुदामा की सख्य भक्ति का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध के अस्सीवें अध्याय में विस्तार से है। सूर ने सख्य भाव का वर्णन "सुदामा दरिद्र भंजन" प्रसंग में किया है। सुदामा को देखकर कृष्ण का मित्र भाव उमड़ पड़ता है-

दूरि ते देखें बलवीर।
अपने बालसखा सुदामा, मलिन वसन अरु छीन सरीर।
पौढ़े हुते प्रत्येक परम रुचि चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाय अनमने लीवे मिलन नैन भरि आए नीर।

तथा

ऐसी प्रीति की बलि जाऊँ,
सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाऊँ।

"सुदामा-चरित" के अन्तिम छन्दों में कवि नन्द दास सख्य भक्ति का महत्त्व बताते हैं-

"ऐसे जो कोऊ हरि को भजै, हरि उदारता ते सुख सेजे।"[130]

वात्सल्यभाव

माता-पिता अपने पुत्र की सेवा निष्काम भाव से करते हैं क्योंकि स्नेहपात्र अबोध और अशक्त रहता है। भागवत में कपिल अपनी माता देवहूति से कहते हैं-"हे माता! जिन लोगों का गुरु, इष्टदेव, प्रिय आत्मा, पुत्र और सखा मैं ही हूँ उनको मेरे कालचक्र से भय नहीं होता।"[131] सूर के काव्य में वात्सल्य वर्णन की भरमार है। सूर का मातृ-हृदय अपने बेटे के लिए विभिन्न कल्पनायें करता है-

मेरो नाह्नरिया गोपाल बेगि बड़ो किन होई।

127-मीराबाई की पदावली, पद संख्या 42, 128-वही, पद संख्या 67, 129-वही, पद संख्या 55, 130-नन्ददास ग्रन्थावली, सुदामा चरित, पृ० 215, ना०प्र० सभा काशी।, 131-श्रीमद्भागवत 3/25/38,

इहि मुख मधुरे बयन हँसि कब हूँ जननि कहोगे मोहिं।[132]
X X X X X
ललन हौं या छवि ऊपर वारी।
लट लटकनि मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।[133]
यद्यपि मन समुझावत लोग,
शूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।[134]

यशोदा माता कन्हैया को जगाती हैं-

चिरैया चुहचुहानी सुनि चकई की बानी,
कहति यशोदा रानी जागो मेरे लाला
रवि की किरन जानी कुमुदनी सकुचानी,
कमलिनि विकसानी दधि मथे बाला।[135]

श्रीमद्भागवत की माधुर्य भक्ति का प्रभाव भक्तिकालीन हिन्दी कृष्ण कविता पर बहुत पड़ा है। स्वकीया भाव से एक गोपी कहती है-

हम अलि गोकुल नाथ अराध्यो,
मन वच क्रम हरि सों पतिव्रत प्रेम योग तप साध्यो।[136]

स्वकीया प्रेम की अभिव्यक्ति मीरा की भी है-

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हारो सांचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
X X X X X
मेरी उनकी प्रीति पुरानी उण बिन पल न रहाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार-बार बलि जाऊँ।[137]

कुछ पदों में परकीया भाव भी झलकता है-

"लाज सरम कुल की मरजादा, सिर तै दूर करी।"[138]
X X X X X
लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिय के पलँगा जा पौढूँगी, मीरा हरि रंग राचूँगी।[139]

श्रीमद्भागवत में भगवान् के बाईस अवतारों की गणना की गई है। सभी वैष्णव पुराणों में कृष्णावतार का वर्णन अधिक हुआ है। हिन्दी कृष्ण कविता में केवल 17 अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है। अवतारों का वर्णन प्रमुख रूप से सूर ने ही किया है। जिन अवतारों का वर्णन भक्त कवियों ने किया है वे इस प्रकार हैं-"श्रीकृष्ण अवतार, रामावतार, वाराह अवतार, दत्तात्रेय अवतार, यज्ञ पुरुष अवतार, पृथु अवतार, ऋषभ देव अवतार, नृसिंह अवतार, गज मोचन अवतार, कूर्म अवतार, वामन अवतार, मत्स्य अवतार, परशुराम अवतार, धन्वन्तरि अवतार, मोहिनी अवतार, व्यास अवतार, सनकादि अवतार।"

132-सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना० प्र० सभा, काशी, 133-वही, पृष्ठ 392, ना०प्र० सभा, काशी, 134-वही, 4148, ना०प्र०सभा, काशी।, 137-मीराबाई की पदावली, पद सं० 17, 138-वही, पद सं० 32, 139-वही, पद सं० 14
135-नन्ददास ग्रन्थावली, पदावली, पद सं० 32, ना०प्र०सभा० काशी।, 136-सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद सं०

श्रीकृष्ण अवतार के साथ कवियों ने रामावतार का भी वर्णन किया है। सूर कहते हैं-

अयोध्या बाजत आज बधाई।
गर्भमुच्यौ कौसिल्या माता, राम चन्द्र निधि आई॥ - सूरसागर नवम स्कन्ध, पद सं० 17

नन्ददास एक ही पद में राम-कृष्ण दोनों का भजन करते हैं—

राम कृष्ण कहिए उठि भोर।
ओहि अवधेश ओहि ब्रजजीवन, धनुष धरन अरु माखन चोर॥
X X X X X
इतमें कौसल्या गोद खिलावै, उतमें यशोदा झुलावै हिंडोर॥

- नन्ददास ग्रन्थावली, पदावली पद संख्या 3

सूर ने प्राय: सभी उक्त अवतारों का वर्णन किया है। नन्ददास और मीरा ने कुछ अवतारों का वर्णन किया है। विस्तार भय से सभी अवतारों का विवेचन नहीं हो पा रहा है। सृष्टि उत्पत्ति एवं राजवंशों का वर्णन सूर के अतिरिक्त और किसी कवि ने नहीं किया है। सूर ने स्वायम्भुव मनु, उत्तानपाद, प्रियव्रत, वैवस्वतमनु आदि वंशों का वर्णन किया है। दक्ष प्रजापति ने मनु-नन्दिनी प्रसूति से विवाह करके 16 कन्यायें पैदा कीं।[140] उनमें से सती महादेव की पत्नी हुईं। विष्णु पुराण के अनुसार दक्ष प्रजापति ने प्रसूति से 24 कन्यायें उत्पन्न कीं। उनमें से सती शिव को व्याही गईं। सूरदास जी दक्ष के 7 कन्याओं के होने की बात कहते हैं-

दक्ष के उपजीं पुत्री सात, तिनमैं सती नाम विख्यात।
महादेव कौं सो तिन दई, पुनि सो दक्ष यज्ञ मैं भुई॥ - सूरसागर, चतुर्थ स्कन्ध, पद संख्या-4

पुराणों में काव्य सम्बन्धी अंशों का प्रभाव सबसे अधिक नन्ददास पर पड़ा है। नन्ददास ने श्रीमद्भागवत से भाव के साथ-साथ शब्दावली भी ज्यों की त्यों ले ली है। कृष्ण बाँसुरी बजाकर रास हेतु जब गोपियों का आह्वान करते हैं तब श्रीकृष्ण मिलन की आतुरता में गोपियाँ अपने वस्त्राभूषणों को व्यतिक्रम से पहन लेती हैं-

"व्यत्यस्त वस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः।"[141]

अर्थात् उल्टे ढंग से वस्त्रादि धारण कर कृष्ण के पास पहुँचने के लिए चल पड़ीं। नन्ददास उक्त वर्णन निम्न प्रकार से करते हैं-

जदपि कहूँ के कहूँ बहु आभरन आनि बनाये।
हरि पिय पैं अनुसरन जहाँ के तहाँ चलि आये॥[142]

उनके माता, पिता, भाई, पति आदि ने उन्हें कृष्ण के पास जाने से रोका किन्तु वे रुकी नहीं-

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दापहृतात्मानो नान्यवर्तन्त मोहिताः॥[143]

140-भागवत 4/1/47, 141-वही 10/29/7, 142-नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पद सं० 33, 143-भागवत 10/29/8, 144-नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धान्त पंचाध्यायी, छन्द 35

नन्द का वर्णन लगभग ऐसा ही है-

मातु पिता, पति, कुलपति, सुत पति रोक रहे सब।
नहिंन रुकीं रस धुकीं जाय सो मिली तहाँ सब॥[144]

रासलीला के समक्ष आभूषणों की झन्कार का वर्णन भागवत में इस प्रकार है-

बलयानां नूपुराणां किंकिणींनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले॥ - भागवत, 10/33/6

इसे नन्ददास इस प्रकार कहते हैं जैसे उनके कथन में भागवत के शब्दों का ज्यों का त्यों चयन कर लिया गया हो-

नूपुर, कंचन, किंकिनि, करतल, मंजुल मुरली। ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर मुरली।[145]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण कविता पर पुराणों का प्रभाव सम्यक् रूपेण पड़ा है। सूर भागवत के प्रभाव को स्वयं स्वीकार करते हैं। देखिये कुछ उदाहरण-

जैसे शुक को व्यास पढ़ायो। सूरदास तैसे कहि गायो॥114।
सूर कह्यो भागवत अनुसार॥117॥
सूर कहै भागवत अनुसार॥140॥ प्रथम स्कन्ध
सूत शौन्कनि कहि समझायो। सूरदास त्यों ही करि गायो॥5॥ द्वादश स्कन्ध

सूरसागर के प्रथम स्कन्ध का प्रथम पद **"मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्, यत्कृपातमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥"**

श्लोक की छाया है-

चरण कमल बंदौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के प्रारम्भ में इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है-

मूक होई बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवहु सकल कलिमल-दहन॥

यद्यपि सूरदास का काव्यालम्बन श्रीमद्भागवत ही है तथापि सूरसागर को भागवत का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता। यह एक स्वतंत्र रचना है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।[146]



145-नन्ददास ग्रन्थावली, रास पंचाध्यायी, अध्याय 5, पद सं० 606, 146-सूर सौरभ-डॉ० मुंशीराम शर्मा, "सोम", पृष्ठ 110-111

2 आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण-परम्परा

प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्यों का दिग्दर्शन स्पृहणीय है। संवत् 1900 अर्थात् 1843 ई० से आधुनिक काल की सीमा अभीष्ट है।

इस काल में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पुनरुत्थान के कारण अनेक साहित्यिक आन्दोलन हुए और प्रत्येक आन्दोलन के प्रभावस्वरूप लिखे गये साहित्य में विशेष विचारधारा का प्रतिपादन एवं आधुनिक और प्राचीन विचारों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु युग में प्राचीन धार्मिक गाथाओं के प्रति मोह विद्यमान रहा किन्तु द्विवेदी युग में प्राचीन आख्यानों में युगीन विचारधारा के प्रतिपादन के लिए चारित्रिक और कथात्मक परिवर्तन की प्रणाली का उद्भव हुआ। इन समस्त कृष्ण-काव्यों में प्राचीन एवं नवीन विचारों से मण्डित राधा-कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों का विविध रूपों में वर्णन हुआ है। अब ब्रजभाषा, अवधी एवं खड़ी बोली में निबद्ध रचनाओं का संक्षिप्त परिचय काल-क्रम में प्रस्तुत किया जायेगा।

(क) ब्रजभाषा काव्य

प्रबन्ध-काव्य

1-उद्धवशतक (जगन्नाथदास रत्नाकर) 1929 ई०

उद्धवगोपी-सम्वाद पर आधारित यह एक प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य है। सन् 1900 ई० के बाद प्रथम दशक में समय-समय पर इसके छन्द लिखे जाते रहे हैं। "रत्नाकर" जी की काव्य-यात्रा का यह एक गौरवपूर्ण पड़ाव है। इसमें भाव एवं कलापक्ष का सुन्दर समन्वय है। कृष्ण यहाँ ब्रह्म के रूप में चित्रित हुए हैं और राधा उनकी आह्लादिनीशक्ति की प्रतीक हैं। इसीलिए उद्धवशतक के कृष्ण का मन राधा के सौन्दर्य की स्मृति से ही जहाज की भाँति डूबने लगता है। कृष्ण-काव्यों की "भ्रमरगीत" परम्परा का पूर्ण निर्वाह इस काव्य में हुआ है।

2-फेरिमिलिबो (पं० अनूप शर्मा, प्रबन्ध काव्य) 1941 ई०

यह एक चम्पू काव्य है। श्रीमद्भागवत में एक कथाप्रसंग है सूर्यग्रहण-महत्त्व का जिसमें सभी ब्रजवासी कुरुक्षेत्र में स्नान हेतु उपस्थित होते हैं और श्रीकृष्ण से उनका पुनर्मिलन होता है। बस इसी कथा को अनूप जी ने दूसरे ढंग से कहा है। जब खड़ी बोली में रचनाधर्मिता जोर पर थी और साधारण जनता में यह धारणा बन गई थी कि ब्रजभाषा में कविता करने का समय चला गया है। विद्वानों ने भी सत्यनारायण कविरत्न और रत्नाकर जी को ब्रजभाषा का अन्तिम कवि घोषित कर दिया था। ऐसे समय में अनूप जी ने फेरिमिलिबो लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि ब्रजभाषा में कविता करने का समय समाप्त नहीं हुआ है। काव्य योजना की दृष्टि से ऐसा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में नहीं है। इस पर देव पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। अनूपभाव, अनूपभाषा, अनूप शैली, अनूप प्रबन्ध, सब कुछ अनूप ही है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, कृष्ण और ब्रजवासियों के पुनर्मिलन के विषय में इतना सुन्दर ग्रन्थ किसी भाषा में नहीं लिखा गया है।

शूल हात नवनात दाख मर मोहन के मुख जाग।[134]

यशोदा माता कन्हैया को जगाती हैं-

चिरैया चुहचहानी [illegible]

[illegible] अध्ययन आज भारतवर्ष [illegible] में किया जा रहा है, जो आधुनिक युग में, ज्ञान की गवेषणा [illegible] भावभूमि प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार "सत्यमेव जय[illegible] आधारित है। राधा-कृष्ण के रूप में सर्वत्र इसकी उद्घोषणा करना कवि नहीं भूलता। भार[illegible] का परवर्ती संस्कृत साहित्य, जिन्हें ईश्वर मानता है, उन्हीं श्रीकृष्ण के मानवीय चरित्र का निरूप[illegible] "मधुपर्क" में किया गया है।

कृष्ण का मित्रमण्डल वैदिक युग के अनुकूल था। भगवान् श्रीकृष्ण के युग में स्त्रियों की स्थिति आज की भाँति दयनीय नहीं थी। स्त्री जीवन, वैदिक युग में प्रतिष्ठासम्पन्न था। वेदमन्त्रों के ऋषि के पद का गौरव इस युग में सबसे बड़ा गौरव माना जाता था। इस युग में अनेक स्त्रियाँ इस सबसे बड़े पद पर अभिषिक्त दिखाई पड़ती हैं। वैदिक युग का द्वापर में भी बहुत अधिक प्रभाव था। इसलिए महिलायें न तो परदे में रहती थीं और न घूँघट इत्यादि की बात ही उस द्वापर युग में कोई सोच पाता था। लड़कियाँ लड़कों के साथ पढ़ती-लिखती थीं। उठती-बैठती थीं। सभाओं में जाती थीं। भाषण देती थीं। खेलती थीं। तैरती थीं और अभिनय तथा नृत्य में भी भाग लेती थीं। यही नहीं वे युद्ध भी करती थीं। घोड़े पर चढ़ती थीं और वायुयान भी चलाती थीं। स्त्रियों के वायुयान चालन और युद्ध का वर्णन भी वेदों में विद्यमान है। वैदिक युग से प्रभावित द्वापर के समाज में इसीलिए श्रीकृष्ण जी के मित्रमण्डल में जहाँ युवक थे, वहाँ युवतियाँ भी थीं। कृष्ण का व्यक्तित्व ऐसा था कि उनका पूरा का पूरा मित्रमण्डल उनसे अभिन्न हो गया था। स्त्री-मित्रों में जिस युवती का प्राधान्य था उसके नाम की चर्चा न तो विष्णु पुराण में है और न श्रीमद् भागवत में, किन्तु परवर्ती पुराण में उसका नाम राधा है। आज राधा-कृष्ण परस्पर इतने सम्पृक्त हो चुके हैं कि उनको एक-दूसरे से हटाया नहीं जा सकता। "मधुपर्क" के गायक "करील" जी ने राधा और कृष्ण के ऐसे ही सम्पृक्त स्वरूप को उजागर करके नवीन लोकहित विचारों का सृजन किया है। वस्तुतः यहाँ सम्पूर्ण ग्रंथ में राधा-कृष्ण राष्ट्रीय पुरुष के रूप में चित्रित हुए हैं।

4-उद्धव शतक (डॉ० रामशंकर शुक्ल "रसाल") 1970 ई०

प्रस्तुत काव्य उद्धव-गोपी-सम्वाद-प्रसंग की आधार-भूमि पर सुपल्लवित-पुष्पित हुआ है। चारु-चमत्कार और विलक्षणविद्वत्ता की पृष्ठभूमि पर अंकित 252 मुक्तक छन्दों को प्रबन्ध-कथात्मक तथा सम्वादात्मक रूप देकर सम्पूर्ण काव्य में विप्रलम्भ शृंगार की अन्तर्धारा प्रवाहित की गई है। कथा-योजना सूर जैसी ही है किन्तु अभिव्यक्ति की चमत्कार-चारुता "रत्नाकर" से आगे दृष्टिगत होती है। "रत्नाकर" जी ने कथा-प्रसंग में नवीनता लाते हुए आरम्भ में यमुना-स्नान करते समय श्रीकृष्ण के ब्रज की ओर से बहते आते कमल को सूँघकर बेहोश हो जाने की कल्पना की और उद्धव के भेजे जाने का नवीन आधारभूत कारण खोज लिया किन्तु "रसाल" जी ने कृष्ण-प्रेम का कोई अन्य कारण नहीं खोजा है।

कवि की मान्यता है कि कृष्ण अपनी भक्ति-भूषिता गोपियों को सदैव स्वस्मृति में रखते हैं, उनकी स्मृति किसी कारणरूप वस्तु को देख-सुनकर नहीं उठती। कृष्ण सीधे-सीधे पूर्व सुख की स्थायी-स्मृति के आधार पर उद्धव से अपना ब्रज-प्रेम प्रदर्शित करते दिखाई देते हैं। उद्धव को उन्हें समझाने का अवसर मिल जाता है किन्तु भाव-विह्वल कृष्ण के आगे वे अपने ज्ञान का अधिक प्रदर्शन नहीं कर पाते। उन्हें ब्रज आने के लिए तैयार होना ही पड़ता है। ब्रज आते समय कृष्ण की आतुरता और उनके रथ के पीछे-पीछे लगे चलने का दृश्य बड़ा अद्भुत है। कृष्ण की औत्सुक्यपूर्ण मुख-मुद्रा ऐसी प्रतीत होती है मानो कृष्ण ही उद्धव के द्वारा ब्रज भेजे जा रहे हैं-

ऊधौ जात ऐसे जैसे स्याम के पठावन कौं।
स्याम जात ऐसे जैसे स्याम ही पठाए जात॥

प्रस्तुत काव्य में भावोत्कर्ष के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण उद्धव से अपने मन की व्यथा का वर्णन करना तो चाहते हैं परन्तु उसके लिए उन्हें शब्द नहीं मिलते, वाणी अभिव्यक्ति में असमर्थ जान पड़ती है। अन्तर्मन की गम्भीर व्यथा-गाथा को गिरा से नहीं कह पाते। हृदय की पीड़ा, अन्तर की टीस, व्यथासिक्त अनुभूति को प्रकट करना असम्भव-सा हो गया है। गोपियों की आह-कराह और राधा का हृदय-दाह, उसके उच्छ्वास आदि का स्मरण उनकी व्याकुलता को और भी बढ़ाता ही है-

गोपिन की आह औ कराह-भरी साँसें हमैं,
दाह-भरी राधा की उसासैं तौ बुलावैं हौं।

दार्शनिक दृष्टि से यह काव्य परम्परावादी ही है। उद्धव का उपदेश "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", एकोऽहं द्वितीयो नास्ति तथा ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जैसे सूत्रों तक ही सीमित रहता है।

5-उद्धव-शतक (गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी) 1981 ई०

"रत्नाकर" और "रसाल" जी की शतक परम्परा से प्रभावित होकर चतुर्वेदी जी ने इसकी रचना की है किन्तु इसकी भाव-भूमि परम्परा से भिन्न है। इसमें 101 छन्द हैं। चतुर्वेदी जी का वैशिष्ट्य प्रकृति की रमणीयता, वंशीरव की प्रभावकारिता, गायों की विह्वलता, पाती की भाव-संकुलता तथा नई लाक्षणिकता में सन्निहित है। निर्गुण और सगुण के द्वन्द्व में पाण्डित्य एवं तार्किकता का प्रदर्शन नहीं है। भागवत की भाव-भूमि की दो पंक्तियाँ निम्न हैं-

कोऊ छन-छन मनसिज-मन-हारी, कोऊ ढूँढ़ै कन-कन, बन-बन बनवारी को।

मुक्तक काव्य

1-भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा भाग)

इस ग्रन्थ का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा द्वितीयावृत्ति में सम्वत् 2010 में सम्पन्न हुआ। इसमें आधुनिक काल के जनक भारतेन्दु जी के अनेकशः प्रेमगीतों का संग्रह है। जिन रचनाओं में राधा-कृष्ण के किसी भी प्रसंग का उद्घाटन हुआ है वे निम्न हैं-

भक्त सर्वस्व-1870 ई०, प्रेममालिका-1871 ई०, प्रेमाश्रु वर्णन-1873 ई०, प्रेम माधुरी-1875 ई०, प्रेम तरंग-1877 ई०, प्रेम प्रलाप-1877 ई०, गीतगोविन्द-1878 ई०, सतसई सिंगार-1878 ई०, होली-1878 ई०, मधु मुकुल-1880 ई०, राम संग्रह-1880 ई०, विनयप्रेम पचासा-1881 ई०, प्रेम फुलवारी-1883 ई०, कृष्ण-चरित्र-1883 ई०, देवी छद्म लीला-1873 ई०, तन्मय लीला-1974 ई०, दान लीला-1974 ई०, वेणु गीति-1877 ई०।

3-मधुपर्क (देवीरत्न अवस्थी "करील") 1967 ई०

19 सर्गों में लिखा गया यह प्रबन्ध काव्य चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित है। सन् 1952 ई० से 1962 ई० के दशक में इसकी रचना हुई जिस पर स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। "मधुपर्क" भगवान् श्रीकृष्ण के पुण्यचरित्र के मानवीकरण का एक सशक्त प्रयास है। राधा और कृष्ण के माध्यम से कवि ने अपने पाठकों हेतु उन विचारों और भावनाओं को अग्रसर किया है, जो उन्हें अखिल भारतवर्ष को भारतवर्ष के रूप में समझने में सहायता दे सके। कवि की मान्यता है कि भारतवर्ष के साहित्य का उत्कृष्टतम भाग उन वैदिक ग्रन्थों में सुरक्षित है, जिनका अध्ययन आज भारतवर्ष ही नहीं प्रत्युत् संसार के उन सभी उन्नत देशों में किया जा रहा है, जो आधुनिक युग में, ज्ञान की गवेषणा में अग्रगण्य माने जाते हैं। इस ग्रन्थ की भावभूमि प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार "सत्यमेव जयते नानृतम्" पर आधारित है। राधा-कृष्ण के रूप में सर्वत्र इसकी उद्घोषणा करना कवि नहीं भूलता। भारत वर्ष का परवर्ती संस्कृत साहित्य, जिन्हें ईश्वर मानता है, उन्हीं श्रीकृष्ण के मानवीय चरित्र का निरूपण "मधुपर्क" में किया गया है।

कृष्ण का मित्रमण्डल वैदिक युग के अनुकूल था। भगवान् श्रीकृष्ण के युग में स्त्रियों की स्थिति आज की भाँति दयनीय नहीं थी। स्त्री जीवन, वैदिक युग में प्रतिष्ठासम्पन्न था। वेदमन्त्रों के ऋषि के पद का गौरव उस युग में सबसे बड़ा गौरव माना जाता था। इस युग में अनेक स्त्रियाँ इस सबसे बड़े पद पर अभिषिक्त दिखाई पड़ती हैं। वैदिक युग का द्वापर में भी बहुत अधिक प्रभाव था। इसलिए महिलायें न तो परदे में रहती थीं और न घूँघट इत्यादि की बात ही उस द्वापर युग में कोई सोच पाता था। लड़कियाँ लड़कों के साथ पढ़ती-लिखती थीं। उठती-बैठती थीं। सभाओं में जाती थीं। भाषण देती थीं। खेलती थीं। तैरती थीं और अभिनय तथा नृत्य में भी भाग लेती थीं। यही नहीं वे युद्ध भी करती थीं। घोड़े पर चढ़ती थीं और वायुयान भी चलाती थीं। स्त्रियों के वायुयान चालन और युद्ध का वर्णन भी वेदों में विद्यमान है। वैदिक युग से प्रभावित द्वापर के समाज में इसीलिए श्रीकृष्ण जी के मित्रमण्डल में जहाँ युवक थे, वहाँ युवतियाँ भी थीं। कृष्ण का व्यक्तित्व ऐसा था कि उनका पूरा का पूरा मित्रमण्डल उनसे अभिन्न हो गया था। स्त्री-मित्रों में जिस युवती का प्राधान्य था उसके नाम की चर्चा न तो विष्णु पुराण में है और न श्रीमद् भागवत में, किन्तु परवर्ती पुराण में उसका नाम राधा है। आज राधा-कृष्ण परस्पर इतने सम्पृक्त हो चुके हैं कि उनको एक-दूसरे से हटाया नहीं जा सकता। "मधुपर्क" के गायक "करील" जी ने राधा और कृष्ण के ऐसे ही सम्पृक्त स्वरूप को उजागर करके नवीन लोकहित विचारों का सृजन किया है। वस्तुत: यहाँ सम्पूर्ण ग्रंथ में राधा-कृष्ण राष्ट्रीय पुरुष के रूप में चित्रित हुए हैं।

4-उद्धव शतक (डॉ० रामशंकर शुक्ल "रसाल") 1970 ई०

प्रस्तुत काव्य उद्धव-गोपी-सम्वाद-प्रसंग की आधार-भूमि पर सुपल्लवित-पुष्पित हुआ है। चारु-चमत्कार और विलक्षणविद्वत्ता की पृष्ठभूमि पर अंकित 252 मुक्तक छन्दों को प्रबन्ध-कथात्मक तथा सम्वादात्मक रूप देकर सम्पूर्ण काव्य में विप्रलम्भ शृंगार की अन्तर्धारा प्रवाहित की गई है। कथा-योजना सूर जैसी ही है किन्तु अभिव्यक्ति की चमत्कार-चारुता "रत्नाकर" से आगे दृष्टिगत होती है। "रत्नाकर" जी ने कथा-प्रसंग में नवीनता लाते हुए आरम्भ में यमुना-स्नान करते समय श्रीकृष्ण के ब्रज की ओर से बहते आते कमल को सूँघकर बेहोश हो जाने की कल्पना की और उद्धव के भेजे जाने का नवीन आधारभूत कारण खोज लिया किन्तु "रसाल" जी ने कृष्ण-प्रेम का कोई अन्य कारण नहीं खोजा है।

कवि की मान्यता है कि कृष्ण अपनी भक्ति-भूषिता गोपियों को सदैव स्वस्मृति में रखते हैं, उनकी स्मृति किसी कारणरूप वस्तु को देख-सुनकर नहीं उठती। कृष्ण सीधे-सीधे पूर्व सुख की स्थायी-स्मृति के आधार पर उद्धव से अपना ब्रज-प्रेम प्रदर्शित करते दिखाई देते हैं। उद्धव को उन्हें समझाने का अवसर मिल जाता है किन्तु भाव-विह्वल कृष्ण के आगे वे अपने ज्ञान का अधिक प्रदर्शन नहीं कर पाते। उन्हें ब्रज आने के लिए तैयार होना ही पड़ता है। ब्रज आते समय कृष्ण की आतुरता और उनके रथ के पीछे-पीछे लगे चलने का दृश्य बड़ा अद्भुत है। कृष्ण की औत्सुक्यपूर्ण मुख-मुद्रा ऐसी प्रतीत होती है मानो कृष्ण ही उद्धव के द्वारा ब्रज भेजे जा रहे हैं-

ऊधौ जात ऐसे जैसे स्याम के पठावन कौं।
स्याम जात ऐसे जैसे स्याम ही पठाए जात॥

प्रस्तुत काव्य में भावोत्कर्ष के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण उद्धव से अपने मन की व्यथा का वर्णन करना तो चाहते हैं परन्तु उसके लिए उन्हें शब्द नहीं मिलते, वाणी अभिव्यक्ति में असमर्थ जान पड़ती है। अन्तर्मन की गम्भीर व्यथा-गाथा को गिरा से नहीं कह पाते। हृदय की पीड़ा, अन्तर की टीस, व्यथासिक्त अनुभूति को प्रकट करना असम्भव-सा हो गया है। गोपियों की आह-कराह और राधा का हृदय-दाह, उसके उच्छ्वास आदि का स्मरण उनकी व्याकुलता को और भी बढ़ाता ही है-

गोपिन की आह औ कराह-भरी साँसें हमैं,
दाह-भरी राधा की उसासैं तौ बुलावैं हौं।

दार्शनिक दृष्टि से यह काव्य परम्परावादी ही है। उद्धव का उपदेश "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", एकोऽहं द्वितीयो नास्ति तथा ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जैसे सूत्रों तक ही सीमित रहता है।

5-उद्धव-शतक (गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी) 1981 ई०

"रत्नाकर" और "रसाल" जी की शतक परम्परा से प्रभावित होकर चतुर्वेदी जी ने इसकी रचना की है किन्तु इसकी भाव-भूमि परम्परा से भिन्न है। इसमें 101 छन्द हैं। चतुर्वेदी जी का वैशिष्ट्य प्रकृति की रमणीयता, वंशीरव की प्रभावकारिता, गायों की विह्वलता, पाती की भाव-संकुलता तथा नई लाक्षणिकता में सन्निहित है। निर्गुण और सगुण के द्वन्द्व में पाण्डित्य एवं तार्किकता का प्रदर्शन नहीं है। भागवत की भाव-भूमि की दो पंक्तियाँ निम्न हैं-

कोऊ छन-छन मनसिज-मन-हारी, कोऊ ढूँढ़ै कन-कन, बन-बन बनवारी को।

मुक्तक काव्य

1-भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा भाग)

इस ग्रन्थ का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा द्वितीयावृत्ति में सम्वत् 2010 में सम्पन्न हुआ। इसमें आधुनिक काल के जनक भारतेन्दु जी के अनेकश: प्रेमगीतों का संग्रह है। जिन रचनाओं में राधा-कृष्ण के किसी भी प्रसंग का उद्घाटन हुआ है वे निम्न हैं-

भक्त सर्वस्व-1870 ई०, प्रेममालिका-1871 ई०, प्रेमाश्रु वर्णन-1873 ई०, प्रेम माधुरी-1875 ई०, प्रेम तरंग-1877 ई०, प्रेम प्रलाप-1877 ई०, गीतगोविन्द-1878 ई०, सतसई सिंगार-1878 ई०, होली-1878 ई०, मधु मुकुल-1880 ई०, राम संग्रह-1880 ई०, विनयप्रेम पचासा-1881 ई०, प्रेम फुलवारी-1883 ई०, कृष्ण-चरित्र-1883 ई०, देवी छद्म लीला-1873 ई०, तन्मय लीला-1974 ई०, दान लीला-1974 ई०, वेणु गीति-1877 ई०।

उपर्युक्त रचनाओं में राधा-कृष्ण का प्रेम-वर्णन प्रमुख है। रीतिकालीन कवियों की भाँति राधाकृष्ण के बहाने वासनात्मक मनोवृत्तियों का प्रकाशन इसमें लेशमात्र भी नहीं है। भारतेन्दु जी की अनन्य भक्ति इन समस्त कृतियों में सर्वत्र देखी जा सकती है। ये वैष्णव भक्त थे। अत: लीलागान परम्परा के चित्रण में इनकी सहजानुभूति रमी है। जिस कृष्ण के वे सखा थे और जिस राधा रानी के वे गुलाम थे उनके प्रति उनकी सहज भक्ति सर्वत्र प्रकाशित हुई है। राधा-कृष्ण के प्रेम-वर्णन की परम्परा प्राचीन है। इन रचनाओं में राधा-कृष्ण के किसी आधुनिक रूप का उद्घाटन नहीं हुआ है।

2-श्री सर्वेश्वर (ब्रज बिहार अंक) श्री नारायण स्वामी, 1883 ई०

मार्च 1971 ई० को प्रकाशित शोधपूर्ण धार्मिक मासिक पत्र सर्वेश्वर के अंक में स्वामी नारायण जी की वाणी छपी है। इसका रचनाकाल 1883 ई० है। भक्ति परम्परा के अनुसार इसमें राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इसी परम्परा में निम्न रचनायें समय-समय पर लिखी गईं-

3-श्री राधिका सुखमा (पं० लोकनाथ चौबे) 1889 ई०

4-श्री ब्रजबिहार (पं० रंगीलाल) 1894 ई०

5-गोविन्द विलास (ठा० गोविन्द सिंह) 1896 ई०

6-श्री गोकुल बाल बिहार (वैष्णव भगवान दास) 1906 ई०

7-श्रीकृष्ण जन्मोत्सव (देवी प्रसाद प्रतिम) 1922 ई०

8-पूर्ण संग्रह (राय देवी प्रसाद पूर्ण) 1925 ई०

पूर्ण संग्रह नामक यह पुस्तक गंगा पुस्तक माला-कार्यालय अमीनाबाद, लखनऊ से प्रकाशित है। इसमें राय देवीप्रसाद पूर्ण की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह है। इसके संग्रहकर्ता श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी हैं। "कान्ह तुम्हारी गैयाँ कहाँ गईं" शीर्षक में गाय के प्रति श्रीकृष्ण के प्रेम को प्रकट किया गया है। भारतीयों के लिए गौ-महत्त्व का उपदेश, सुदामा चरित्र, कृष्ण जन्म पर बधाई आदि प्रसंगों में कृष्ण का चरित्र गान है।

9-प्रेम की पीर (भोलानाथ जी "भोरी सखी") 1932 ई०

राधावल्लभी सम्प्रदाय में दीक्षित भक्तकवि भोला जी के इसमें अधिकांशत: विनय के पद हैं। सच्चे भक्त की महान् व्याकुलता इसमें भरी हुई है। इस वियोग व्याकुलता में कृष्ण के प्रति पूर्ण अतृप्ति सदैव विद्यमान रहती है।

10-ब्रजभारती (उमाशंकर वाजपेयी) 1936 ई०

वह छवि, मुरलीधर मोहन और वंशीध्वनि शीर्षकों में श्रीकृष्ण के सौंदर्य के मनमोहक वर्णन के साथ ही साथ उनके अलौकिकत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

11-निकुंज केलि माधुरी (माधवदास) 1940 ई०

दोहा, चौपाई, सोरठा एवं विविध छन्दों में ग्रन्थ की रचना हुई है। यह एक भावुक सन्त हृदय की रचना है। राधा-कृष्ण से सम्बन्धित अष्टयाम लीलाओं का वर्णन निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुआ है।

12-भ्रमरदूत (सत्यनारायण "कविरत्न") 1941 ई०

"कविरत्न" जी ने अपने अनुभव से इस रचना में ब्रजप्रदेश की दुर्दशा का निरूपण करके व्यंजना से भारत भूमि की दयनीय दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। द्वारका में जा बसे हुए कृष्ण के पास यशोदा संदेश भेजती हैं। यह रचना नन्ददास के "भ्रमरगीत" के ढंग पर की गई है।

13-मुक्तक माला (डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी) 1945 ई०

14-दुलारे दोहावली (दुलारे लाल भार्गव) 1945 ई०

15-प्रेमधन सर्वस्व (पं० बदरीनारायण चौधरी) 1945 ई०

उपर्युक्त रचनाओं में राधा-कृष्ण लौकिक प्रेम के आलम्बन हैं। डॉ० त्रिपाठी और पं० बदरी नारायण उपाध्याय ने सवैया छन्द में कृष्ण के सौन्दर्य एवं प्रेम का वर्णन किया है। दोहा छन्दों में भार्गव जी की कृष्ण भक्ति का एक उदाहरण निम्न है-

बस न हमारौ बस कहहु, बस न लेहु प्रिय लाज,
बसन देहु ब्रज में हमैं, बसन देहु ब्रजराज।
पट मुरली माला मुकुट धरि कटि कर, उर, भाल,
मन्द मन्द हँसि बसि हिये, नन्द दुलारे लाल।

16-स्याम संदेसो (अमृत लाल चतुर्वेदी) 1950 ई०

इसका कथा भाग पूर्व परिचित है। "ऊधौ को उपदेस सुनो ब्रजनागरी" और "सखा सुनु स्याम के" कहकर कवि मनीषियों ने जो रसधारा बहाई है, चतुर्वेदी जी ने उसमें अपनी भी धारा प्रवाहित कर दी है।

17-घनश्याम सागर (कवि घनश्याम) 1951 ई०

इसमें कुल सात तरंग हैं जिनके अन्तर्गत विविध विषयों की कवित्त शैली में वर्णन है। "कृष्ण लीला तरंग" में राधा-कृष्ण की होरी, रास आदि का उल्लेख है।

18-अजस मोचन (डॉ० रामशंकर शुक्ल "रसाल") 1952 ई०

बाल्यावस्था में दही, मही और गोपियों के चित्त को चुराने वाले कृष्ण के ऊपर प्रौढ़ावस्था में जब स्यमन्तक मणि की चोरी का आरोप सत्यजित ने लगाया तब उदारचेता-नेता श्रीकृष्ण ने इसका परिमार्जन किया। वस्तुत: उन्होंने चोरी न की थी और यह मिथ्यापवाद उनके सम्बन्ध में चल पड़ा था। कृष्ण के समक्ष असत्य टिक नहीं सकता। वे कहते हैं :-

वैसे तो हम दही-मही के चोर रहे हैं।
तदपि न यों कहुँ बृथा चोर हम गये कहे हैं॥

19-गोपाल विलास (कार्ष्णि गोपालदास) 1953 ई०

सवैया, दोहा, चौपाई और पदों के माध्यम से नित्य लीला लीन भगवान् श्रीकृष्ण और राधा की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है।

20-श्रीकृष्ण-कौस्तुभ (बाल मुकुन्द चतुर्वेदी) 1954 ई०

श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र विविध छन्दों में वर्णित है। प्रस्तुत ग्रन्थ पाँच भागों में विभाजित है। कुल 16 कलाओं में ग्रन्थ पूर्ण हुआ है जिसमें षोडश कलावतार भगवान् श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण जीवन झाँकी मिलती है।

21-प्रेम रस मदिरा (कृपालु दास) 1954 ई०

राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का अनेक रूपों में सुललित पदों में वर्णन कर भक्तप्रवर कवि ने जैसे अमूर्त ब्रह्मानन्द को मूर्तिमान कर दिया है। प्रेम रस मदिरा में उस वातावरण की पुनरावृत्ति मिलती है जो सोलहवीं शताब्दी में सूरदास, हरिवंश और हरिदास जैसे भक्तों ने निर्मित किया था। वर्तमान युग के भक्त

कवि ने कृष्ण भक्ति के समन्वयात्मक रूपों को ग्रहण किया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है। राधा-कृष्ण के प्रेमी-भक्तों की जिह्वा पर ये पद अवश्य उतर आयेंगे-

गयो हरि मोपै जादू डार।
आजु सखि ह्वै गये नैना चार, सखी मैं बिकी आजु बिनु दाम।
लूटि मोहिं लै गयो नन्द कुमार

22-राधा (डॉ० किशोरी लाल गुप्त) 1954 ई०

"राधा" एक मुक्तक प्रबन्ध है। इसका प्रत्येक छन्द बंधन मुक्त है किन्तु सूरसागर की भाँति ये कथा को विकसित करते चलते हैं। इसमें राधा के प्रेम की प्रगाढ़ता एवं दृढ़ता का चित्रण है। सवैया छन्द में इसके सभी पद गेय हैं। "राधा" में कृष्ण, रुक्मिणी, नारद और राधा का वर्णन है। मंगलाचरण में कवि राधा से प्रार्थना करता है-

साहित जा हित साध्यो सनेह सों,
या मन कौं, न गिन्यो भव बाधा।
राधा बिहारी की बाधा हरौ,
हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा।

23-ब्रजमाधुरी निकुंज (द्वारकेश लाल) 1960 ई०, 24-रास पंचाध्यायी (प्रभुदत्त ब्रह्मचारी) 1960 ई०, 25-कृष्ण कारे हैं (तुलसी राम वैश्य) 1963 ई०, 26-कूबरी (राम नारायण अग्रवाल) 1965 ई०, 27-केशव (दाऊदयाल गुप्त) 1966 ई०, 28-स्याम सतक (दाऊदयाल गुप्त) 1966 ई०, 29-अध्यात्म भागवत (बाल मुकुन्द चतुर्वेदी) 1967 ई०, 30-श्यामाँगावयन (कविरत्न "नवनीत") 1967 ई०, 31-सनेह सतक (कविरत्न "नवनीत") 1967 ई०, 32-ब्रजमाधुरी सुधा (द्वारकेश लाल) 1968 ई०, 33-तू मौन खड़ा क्या सोच रहा (रामदयाल) 1969 ई०, 34-अमर-पद (भक्त कवि "अमर") 1971 ई०

उपर्युक्त सभी कृतियाँ राधा-कृष्ण के किसी-न-किसी प्रसंग का समाश्रयण लेकर उनका भक्तिपूर्वक गौरव-गान करती हैं।

35-युगलपद बन्दन (कृष्ण माँ) 1973 ई०

बाल तपस्विनी कृष्णा माँ द्वारा रचित इस ग्रन्थ में 132 पद हैं जो परिष्कृत सरस एवं व्याकरणसम्मत ब्रजभाषा में लिखे गये हैं। भगवान् की दृष्टि से भक्त कवयित्री कृष्णा माँ ने अपने पद संग्रह को पाँच भागों में विभक्त किया है-विनय, चेतावनी, विरह, रूपमाधुरी समर्पण। "विरह" में भगवान् कृष्ण के दर्शन मिलने की वेदना व्यक्त हुई है। "रूपमाधुरी" में कृष्ण और राधा के अपार सौन्दर्य को शब्दों द्वारा सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है। "समर्पण" में कवयित्री ने श्यामा-श्याम के प्रति अपने को सर्वात्मभाव से समर्पित कर दिया है।

36-हृषीकेश-रचनावली (हृषीकेश चतुर्वेदी) 1973 ई०

चौबे जी राधा-कृष्ण के उपासक हैं किन्तु सीताराम से उन्हें चिढ़ नहीं है। "रामकृष्ण-काव्य" में उन्होंने दोनों का समन्वय कर दिया है। इसे साधारण रीति से पढ़कर असाधारण रीति से समझना होता है। जैसे "लखि सुघर मन्थरा चाल, मोहित राय भये"। राजा दशरथ मन्थरा की सुयोजित चाल देखकर मूर्छित हो गये, यह तो हुई रामायण और नन्द राय जी श्रीकृष्ण की सुन्दर मन्थर गति देखकर प्रेममग्न हुए, यह हुई कृष्णायन। इस रचनावली में राधा-कृष्ण के अन्यान्य रूपों का गेय शैली में चित्रण किया गया है।

37-माधव-माधवी (डॉ० माधवी लता शुक्ल) 1991 ई०

काव्य कोकिला श्रीमती माधवी लता शुक्ल का यह भक्ति काव्य संग्रह सूर और मीरा की पदावली में लिखा गया है। 108 पदों के इस छोटे संग्रह में मधुर रस के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों का चरम उत्कर्ष घटित हुआ है। संयोग पक्ष जितना मोहक है, वियोग पक्ष उतना ही दाहक। इस काव्य संग्रह की मूलभावना का सार इस पद में समाहित है-

माधव प्रीति अनोखी पाई।
चहुँ दिशि दीखहिं राधारानी, चहुँ दिशि कृष्ण कन्हाई।
श्रवनन गूँजत नाम श्याम को, स्वर वंशी सुखदाई।
पात पात पै लिखहिं राधिका, डारनि पै यदुराई।

38-द्रौपदी दुकूल (रामलाल)

इस पुस्तक के रचनाकाल का संकेत नहीं मिलता है किन्तु पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने इसकी भूमिका लिखी है। यह सत्य है कि रचना आधुनिक काल की है। सवैया छन्द में लिखी गई यह रचना श्रीकृष्ण के भक्त-उद्धारक रूप का उद्‌घाटन करती है।

39-उराहनौ (किशोरी लाल गुप्त)

यह भ्रमरगीत के लोक प्रिय कथा पर आधारित ब्रजभाषा काव्य है। 109 सवैया-घनाक्षरी छन्दों में रचित इस कृति की विशिष्टता यह है कि इसमें कवि की अभिव्यक्ति सहज एवं सुबोध बन पड़ी है। श्लेष, यमक, अनुप्रास की छटा सर्वत्र दर्शनीय है।

अवधी-काव्य

प्रबन्ध-काव्य

1-कृष्णायन (द्वारका प्रसाद मिश्र) 1945 ई०

अवधी भाषा में लिखा गया यह प्रबन्ध काव्य हिन्दी काव्य-जगत का अनूठा रत्न है। तुलसी के रामचरितमानस की शैली पर इसकी रचना दोहा, चौपाई छन्दों में सम्पन्न हुई है। इसमें श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र की झाँकी है। कवि सूर और तुलसी से बहुत प्रभावित है-

तुलसी शैलिहिं मोहिं प्रिय लागी,
भाषहुँ बिन विवाद रस-पागी।
सूरदास पद-ज्योति सहारे,
बरने बाल चरित मैं सारे।

हिन्दी साहित्य में अवधी भाषा की यह प्रथम रचना है जिसमें श्रीकृष्ण के समग्र जीवन को लेकर प्रबन्ध रचना की गई है। अनेक भक्तों ने अपने इष्टदेव की बाल-लीला और यौवन-लीला को लेकर विविध गीतों और मुक्तक काव्यों की रचना की किन्तु कृष्ण ने ज़ीवन के जिस रूप को अपनाया वह महाकाव्य की भूमि पर पल्लवित न हो सका। कारण यह था कि उसमें मानव जीवन की अनेकरूपता को व्यक्त करने की क्षमता न थी। प्रियप्रवास भी इस अभाव की पूर्ति न कर सका क्योंकि उसमें भी कृष्ण मुख्यतया गोपीजनवल्लभ के रूप में ही हमारे सामने उपस्थित हुए। श्री मिश्र जी ने इस अभाव की पूर्ति की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है।

इस काव्य में महाभारत के योगिराज कृष्ण, राधावल्लभ कृष्ण और बाल गोपाल-नन्दलाल कृष्ण के जीवन-चरित्र का अदभुत संयोग है। श्रीमद्भागवत, महाभारत और सूरसागर की कथावस्तु को गुम्फि कर इसकी काव्य-कथा का विकास किया गया है। सम्पूर्ण काव्य "रामचरितमानस" के अनुरूप सा काण्डों में विभाजित है। अवतरण काण्ड में मथुरा की पूर्व स्थिति और ब्रज की बालक्रीड़ा है। "मथुरा" काण्ड की प्रमुख घटना कंस-वध है। "द्वारका" काण्ड में शक्ति संचय के हेतु मथुरा त्यागने और पाण्डवों के सम्पर्क की कथा है। "पूजा" काण्ड की कथा राजसूय यज्ञ और द्यूत तथा संक्षेप में वन एवं विराट प की कथा है। "गीता" काण्ड में कवि ने गीता का छायानुवाद प्रस्तुत किया है। "युद्ध" काण्ड में युद्ध का चित्रण है किन्तु कथा विकास में कृष्ण का महत्त्व निर्विवाद रूप से अक्षुण्ण रहता है। "आरोहण" काण्ड में कथा का उपसंहार है। भगवान् कृष्ण गृह कलह के उपरान्त मैत्रेय की ज्ञान विवेचना के बाद स्वर्गारोह करते हैं। कृष्ण के द्वारा आर्य राष्ट्र की संस्थापना के लिए राष्ट्रीय भावना पर बल दिया है। कवि बुद्धि साम्राज्य की भर्त्सना करता है-

बुद्धि-भावना सन्तुलन आर्य धर्म आधार।
नष्ट भावना आज प्रभु! शेष बुद्धि व्यभिचार॥

यह युग-प्रवर्तक ग्रन्थ है। इसमें कृष्ण चरित्र के साथ ही साथ भारत की धार्मिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा का, वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्निर्माण किया गया है। प्राचीन तत्त्वों और आदर्शों का चित्रण-सुबोध रूप में मिलता है। कवि का प्रयास यह है कि जो भेद जनता की विचारधारा और साहित्य के बीच किन्हीं कारणों से आ गया है वह मिट जाय और साहित्य का जो कर्तव्य "कान्ता-सम्मित उपदेश देने का है वह पूर्ण हो जाये। मंगलाचरण में ही श्री मिश्र जी कृष्ण के जीवन का उद्देश्य स्थापित कर देते हैं। श्री मिश्र जी स्वतन्त्रता आन्दोलन की लड़ाई में कई बार जेल जा चुके हैं, इसीलिए वे परतंत्र भारत माँ की संतान अपने को मानते हैं और बन्दिनी देवकी के पुत्र कृष्ण को बन्दिनी-तनय स्वीकारते हैं-

जन्मेउ बन्दी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हित,
बन्दहुँ सोई घनश्याम, मैं बन्दी, बंदिनि-तनय।

2-कृष्णसागर (जगन्नाथ सहाय) 1875 ई०

"कृष्णसागर" में भगवान् कृष्ण के जीवन की कथा विभिन्न छन्दोंमें वर्णित है। कृष्णकाव्यों में प्रथा है कि उद्धव या अक्रूर पाण्डवों के पास जाकर वहाँ युधिष्ठिर, विदुर या कुन्ती को सारी कथा सुनाते हैं इस तरह द्वारका के साथ पाण्डवों का प्रसंग जुड़ जाता है। कृष्ण सागर में भी यही परम्परा अपनाई गई है पाण्डवों की कथा का प्रारम्भ कुन्ती के निवेदन से होता है-

एक बार तेई भीम को दीन्हेसि गरल खिलाय।
अपर लाख के कोट रखि, पावक दियो लगाय॥ - कृष्णसागर, पृष्ठ-34

कृष्ण की स्तुति ईश्वर रूप में की गई है।

3-कृष्णायन (बिसाहू राम) 1903 ई०

"कृष्णायन" की रचना कृष्ण चरित्र के आधार पर रामायण की भाँति सात काण्डों में विभक्त है। तुलसी की भाँति कवि बिसाहूराम ने भी प्रारम्भ में खलों तथा सज्जनों की वन्दना की है। काव्य में सात काण्ड हैं-बालकाण्ड, रहस्यकाण्ड, मथुरा काण्ड, मंगल काण्ड, पाण्डव काण्ड, युद्ध काण्ड और उत्तर काण्ड। "कृष्णायन" में कवि ने कंस की अनीतियों से कथा प्रारम्भ करके कृष्ण जन्म के कारणों पर

प्रकाश डाला है। कथानक का विकास कृष्ण के द्वारका वास, महाभारत युद्ध और पाण्डवों के राज्याभिषेक तथा हरि के अन्तर्धान होने तक विस्तृत किया गया है। कथा-कथन का क्रम जन्मेजय-वैशम्पायन, शुकदेव-परीक्षित और सूत-शौनक संवाद के आधार पर चला है। कथा में प्रवाह सरलता और तुलसी की भाँति विनयशीलता है। काव्यत्व उच्चकोटि का नहीं है, किन्तु कथा के प्रसंगों का वर्णनात्मक पद्धति से भली प्रकार वर्णन किया गया है।

4-विश्रामसार (श्रीलाल उपाध्याय) 1914 ई०

फैजाबाद निवासी तथा काशी प्रवासी पं० श्रीलाल उपाध्याय ने 20 जुलाई, 1913 ई० को "विश्राम सागर" ग्रन्थ की रचना की। यह सन् 1914 ई० में बनारस से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं-

1-ऐतिहासायन, 2-कृष्णायन, 3-रामायण

ये रामसनेही सम्प्रदाय के कवि हैं।[1] कृष्णायन खण्ड में प्रारम्भ में राधा, कृष्ण, यशोदा, नन्द आदि की वन्दना की गई है। कथा-क्रम में कृष्ण जन्म से लेकर कृष्ण के गोकुल, मथुरा और द्वारका गमन तक की कथा को सम्मिलित किया गया है। काव्य की भाषा अवधी है किन्तु कृष्णायन खण्ड में ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में राधा और कृष्ण को केन्द्र मानकर विपुल काव्य रचना हुई है। इन रचनाओं की विशेषता यह रही है कि भक्त कवियों ने कृष्ण के पूर्वार्द्ध जीवन का वर्णन करके राधा से सम्बन्ध जोड़ा है और आधुनिक वैज्ञानिक युग की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों से प्रभावित होने वाले कवियों ने विशेषत: महाभारतीय कथा के आधार पर कृष्ण के उत्तरार्द्ध जीवन का वर्णन प्रस्तुत किया है। कुछ कवियों ने स्वतंत्र रूप से "राधा" पर काव्य रचना की है। इनमें प्रमुख हैं-डॉ० किशोरी लाल गुप्त, दाऊदयाल गुप्त और श्रीजानकी वल्लभ शास्त्री। सर्वाधिक रचनायें भ्रमरगीत परम्परा के अन्तर्गत हुई हैं। रचनाओं का नामकरण भले ही भ्रमरगीत से सम्बन्धित न हो किन्तु उनकी विवेचनात्मक काव्य सामग्री के भाव भ्रमरगीत के ही हैं। ऐसे कवियों में मुख्य हैं-रत्नाकर, रसाल, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, अमृतलाल चतुर्वेदी और सत्यनारायण कविरत्न। महाभारतीय कथा के आधार पर लिखे गये काव्यों में राधा को स्थान नहीं मिला है। कृष्ण तो सर्वत्र कहीं-न-कहीं किसी कोण से प्रस्तुत हो गये हैं। जैसे-जयभारत, जयद्रथ-वध, द्वापर, रश्मिरथी, अन्धायुग, दानवीर कर्ण आदि में मुख्य कथानक से कृष्ण जुड़े हुए हैं।

खड़ी बोली काव्य

प्रबन्ध काव्य

1-प्रियप्रवास (अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध") 1913 ई०

यह खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। हरिऔध जी ने केवल नर रूप में कृष्ण का और भारत भूमि की अनुपम रत्न के रूप में राधा का चित्रण किया है। "प्रियप्रवास" की राधा भक्तिकाल की विरह विह्वला अथवा रीतिकाल की काम-क्रीड़ा कामिनी नहीं हैं, अपितु आधुनिक युग की लोक-सेविका एवं प्रेम की साक्षात् मूर्ति हैं। इसमें कुल 17 सर्ग हैं। आधुनिक युग में राधा और कृष्ण के नवीन रूप-चित्रण का यह नवीन द्वार खोलता है। बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जातीयता तथा राष्ट्रीयता आदि प्रवृत्तियों से प्रेरणा

1-अवधी कृष्ण काव्य और उसके कवि-डॉ० मुरारी लाल शर्मा, पृष्ठ 349

लेकर हरिऔध जी ने कृष्ण को एक महामानव का रूप प्रदान किया है। समस्त अलौकिक तत्वों का निवारण करके कृष्ण को लौकिक रूप प्रदान किया गया है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की मथुरा-यात्रा है और इसी से इसका नाम "प्रियप्रवास" रखा गया। मथुरा यात्रा के अतिरिक्त अन्य ब्रजलीलायें भी यथा स्थान इसमें निबद्ध हैं। सम्पूर्ण काव्य शास्त्रीय छन्दों की परिधि में अग्रसर होता है। संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग इस महाकाव्य की मुख्य विशेषता है। राधा के सौन्दर्य एवं व्यवहृत भाव का एक चित्र निम्न है-

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणिसी लावण्य-लीलामयी।
श्री राधा-मृदुभाषिणी मृग-दृगी-माधुर्य की मूर्ति थी।

मुक्तक-काव्य

1-जयद्रथ-वध (मैथिलीशरण गुप्त) 1910 ई०

प्रस्तुत काव्य महाभारतीय कथानक पर आधारित है। इसमें कुल सात सर्ग हैं। तृतीय सर्ग में कृष्ण द्वारा अर्जुन तथा पाण्डवों की सान्त्वना चित्रित है। सातवें सर्ग में जयद्रथ-वध के बाद हर्षित युधिष्ठिर कृष्ण को जो सम्बोधन देते हैं, उससे उनके ब्रह्मत्व का प्रकाशन होता है-

हे सच्चिदानन्द प्रभो, तुम नित्य सर्व सशक्त हो।
अनुपम, अगोचर, शुभ, परात्पर ईश-वर अव्यक्त हो।
आद्यन्त-हीन, अचिन्त्य, अद्भुत, आत्म-भू अखिलेश हो॥

2-मुकुल-(सुभद्रा कुमारी चौहान) 1930 ई०

इसमें मानिनि राधे, राखी, विदाई, विदा और विस्मृति की स्मृति शीर्षक वाली कवितायें हैं जिनमें राधा और कृष्ण के कुछ कोमल प्रसंग हैं।

3-रम्यरास (राजा चक्रधर सिंह) 1934 ई०

निगम कल्पतरु का गलितफल समझा जाने वाला पुराण श्रीमद्भागवत रसिक भावुक सज्जनों के लिए मुक्तिपर्यन्त आनन्द देने वाला कहा गया है। इसके दश स्कन्ध में वर्णित रास-पंचाध्यायी "रम्यरास" की आधारभूमि है। सर्वत्र माधुर्य एवं प्रसाद गुण द्रष्टव्य है। रासलीला का परम्परागत वर्णन सौष्ठवपूर्ण है। इसमें आद्यन्त वंशस्थ वृत्त रखा गया है। भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। यही इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

4-द्वापर (मैथिलीशरण गुप्त) 1936 ई०

विभिन्न पात्रों के नाम पर कविता का वर्गीकरण किया गया है। कृष्ण "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज" की उद्घोषणा करते हैं-

कोई हो, सवधर्म छोड़ तू, आ, बस मेरे शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह, जिसे मेरे हाथों तू न तरे।

राधा भी कृष्ण की पुकार पर आत्मसमर्पण कर देती हैं। कृष्ण की मुरली पर उसका सब कुछ न्यौछावर है-

शरण एक तेरे मैं आई, धरे रहे सब धर्म हरे।

बजा तनिक तू अपनी मुरली, नाचे मेरे मर्म हरे।

5-पुरुषोत्तम (तुलसीराम शर्मा "निदेश") 1939 ई०

श्रीकृष्ण के चरित के विविध अंगों को लेकर लिखा गया 272 पृष्ठों का यह एक विशाल ग्रन्थ है। विभिन्न पात्रों के माध्यम से आधुनिक भावों की व्यंजना हुई है। जैसे श्रीकृष्ण उद्धव द्वारा गोपियों को सन्देश भेजते हैं-

दीन दरिद्रों के देहों को मेरा मंदिर मानो। उनके आर्त उसासों को ही वंशी के स्वर जानो॥

इसी प्रकार द्वारका के दुर्ग पर बैठकर कृष्ण भगवान् बलराम का ध्यान कृषकों की दशा की ओर इस प्रकार आकर्षित करते हैं-

जो ढकता है जग के तन को जो रखता लज्जा सबकी।
जिसके पूत पसीने द्वारा बनती है मज्जा सबकी।
आज कृषक वह पिसा हुआ है इन प्रमत्त भूपों द्वारा।
उसके घर की गायों का रे! दूध बना मदिरा सारा॥

7-संचिता (ठा० गोपालशरण सिंह) 1939 ई०

सन् 1914 से 1939 ई० तक की सभी रचनायें गोपाल शरण सिंह जी की इसमें निबद्ध हैं। "राधा-रोदन" शीर्षक के अन्तर्गत राधा की व्याकुलता तथा कृष्ण के न मिलने पर मृत्यु प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त है। "प्रियप्रवास" की राधा की भाँति संचिता की राधा साहसी, धैर्यशालिनी एवं लोकहित कारिणी नहीं है। उसके प्रेम की पीर एवं विरह-वेदना इतनी जटिल एवं असह्य है कि वह कह उठती है-

सह सकती है अबला कब तक, विरह व्यथा धृति धारे।
कहो नाथ! क्या सदा रहोगे, अब तुम मुझे बिसारे?
मुझे मृत्यु दो तुम्हीं आज अब दयाधाम त्रिपुरारे?

8-कानन कुसुम (जयशंकर प्रसाद) 1939 ई०

इसमें मोहन, कुरुक्षेत्र और श्रीकृष्ण जयन्ती की कवितायें संग्रहीत हैं। छायावाद युग के जनक प्रसाद जी कृष्ण से प्रेम की भीख माँगते हैं। "कुरुक्षेत्र" नामक कविता में कृष्ण के समग्र जीवन का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत है।

अपने सुप्रेम रस का प्याला पिला दे मोहन। तेरे में अपने को हम जिसमें भुला दें मोहन॥

9-जयभारत (मैथिलीशरण गुप्त) 1952 ई०

"जयभारत" पूर्णत: महाभारतीय कथा पर आधारित है। इसमें रणनिमन्त्रण, शान्ति सन्देश, अर्जुन का मोह, अनाहूत शीर्षक वाली कविताओं में कृष्ण चरित्र का वर्णन आया है।

10-राधा (दाऊदयाल गुप्त) 1952 ई०

"राधा" काव्य ग्रन्थ में राधा का चरित्र-चित्रण गर्ग संहिता एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण के आधार पर लिखा हुआ प्रतीत होता है। विरह के बाद राधा-कृष्ण का मिलन कराना इस रचना की मुख्य विशेषता है। श्री गुप्त जी ने राधा का पारम्परिक वर्णन किया है। राधा और कृष्ण एक-दूसरे से मिले हुए हैं-

सोचते नन्द राधिका-कृष्ण, देह दो किन्तु एक ही प्राण।

11-रश्मिरथी (रामधारी सिंह "दिनकर") 1952 ई०

"रश्मिरथी" महाभारत के प्रमुख पात्र कर्ण के जीवन पर आधारित खण्डकाव्य है। इसमें कुल सात

सर्ग हैं। तृतीय सर्ग में कर्ण-कृष्ण संवाद की योजना है। संदेश-वाहक के रूप में कृष्ण जब दुर्योधन के ऊपर कुपित होते हैं तब उनके ब्रह्मत्व का प्रकाश सर्वत्र फैलने लगता है।

12-अन्धायुग (धर्मवीर भारती) 1954 ई०

यह एक कृष्ण-काव्य है। भागवत में कृष्ण के वध-कर्ता का नाम जरा था, लेखक ने उसे वृद्ध याचक की प्रेतकथा मान लिया। "अन्धायुग" में कृष्ण मर्यादा-रक्षक एवं महामानव, लोकनिर्माता एवं ईश्वर के रूप में चित्रित हुए हैं। कृष्ण प्रभावशाली पात्र होते हुए भी कथानक के क्रिया-व्यापार में सक्रिय रूप से संयुक्त नहीं हैं। यद्यपि कृष्ण को दिव्य पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, तथापि कतिपय पात्रों की दृष्टि में वे अनेक दुर्बलताओं से युक्त हैं। बलराम उन्हें मर्यादा-हीन, कूटबुद्धि कहते हैं। इसके विपरीत विदुर उन्हें प्रभु कहते हैं। "अन्धायुग" में भारतीय सांस्कृतिक चेतना का प्राचीन और अर्वाचीन सन्दर्भों के व्यापक परिप्रेक्ष्य में काव्यात्मक निरूपण हुआ है।

13-राधा का मान (राजेश दीक्षित) 1955 ई०

स्नेह की मूर्ति राधा के मान का सात पृष्ठों में वर्णन किया गया है। दीक्षित जी की भाषा भावों का अनुगमन करती है। इसके नूतन भाव और प्रकृति चित्रण बड़े ही मनमोहक हैं। मानवती राधा को जब कृष्ण पकड़ लेते हैं तब प्रकृति स्वत: भाव-विह्वल-क्रियाशील हो जाती है। यहाँ का निम्न छन्द तुलसी के "नदी उमगि अंबुधि कहँ धाई, संगम करै तलाब तलाई।" का स्मरण करा देता है-

अपनी प्रियतमा चांदनी को, हिमकर ने बढ़कर पकड़ लिया।
बरबस मन मार रह गईं तब, हरि ने बाँहों में जकड़ लिया।
तरु झुके लताओं पर सहसा, सागर सरिता को चूम उठा।

14-सूर्य का स्वागत (दुष्यन्त कुमार) 1957 ई०

नई कविता के अन्तर्गत इसमें संगृहीत कवितायें व्यंग्य प्रधान हैं एवं परम्परा पर कुठाराघात करने वाली हैं। सत्यान्वेषी और दिग्विजय का अश्व कविता में कृष्ण के पारलौकिक रूप का दिग्दर्शन होता है-

सुनो, कृष्ण हूँ मैं, भूल से साथियों ने
इधर फेंक दी थी जो गेंद, उसे लेने आया हूँ
आया था, आऊँगा, लेकर ही जाऊँगा।

यहाँ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के घोड़े की बलि का विरोध प्रस्तुत किया गया है।

15-श्रीकृष्ण चरित (पं० रूपनारायण पाण्डेय) 1957 ई०

राधेश्याम रामायण की तर्ज पर लिखा हुआ यह लीलागान परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण काव्य है। इसमें सर्वत्र रस की धारा प्रवहमान है। श्रीकृष्ण जन्म से लेकर रुक्मिणी परिणय तक की लीलाओं का वर्णन गेयता की दृष्टि से अति उत्तम है। कृष्ण और राधा का वर्णन ईश्वर और उनकी आह्लादिनी शक्ति के रूप में हुआ है।

16-कनुप्रिया (धर्मवीर भारती) 1959 ई०

श्री धर्मवीर भारती की कनुप्रिया आधुनिक हिन्दी साहित्य की नवीन दिशा-बोधक कृति है। आधुनिक हिन्दी काव्यों में कृष्ण काव्यों की एक लम्बी श्रृंखला है जिसमें राधा और कृष्ण का पारम्परिक एवं नवीन उद्भावनाओं से मण्डित चित्रण हुआ है। "अनुप्रिया" इन सबसे भिन्न दूर स्थित अपनी पहचान बनाती है। कृष्ण की आराधिका तन्मयी राधा के माध्यम से भारती जी जीवन के कुछ मूल्यवान साधना

बिन्दुओं को खोज निकालने में समर्थ हुए हैं। आत्मसाक्षात्कार एवं तन्मयता के क्षणों में सार्थकता प्राप्त होती है और मनुष्य सहज मन से जीवन जी लेता है। इसी मन की स्वात्मिक सहज कसौटी पर राधा समस्त को कसना चाहती है। अनुभव के द्वारा मनुष्य को यह ज्ञात होता है कि सत्य और कुछ नहीं, केवल उसे जो मिला है वही सत्य है। "कनुप्रिया" को अनुभव होता है कि सत्य केवल व्यक्ति का भोगा हुआ अनुभव है, केवल "मैं" है और कुछ नहीं-

"शब्द, शब्द, शब्द
तुम्हारे शब्द अगणित हैं कनु संख्यातीत
पर उनका अर्थ मात्र एक है-
मैं, मैं, केवल मैं।"

17-"दानवीर कर्ण" (गुरुपद सेमवाल) 1959 ई०

कर्ण की दानशीलता और उसके चरित्र के अन्य गुणों को ध्यान में रखकर "महाभारत" की कथा के आधार पर इस काव्य की रचना हुई है। इस काव्य का मुख्य प्रश्न है कि क्या "महाभारत" का युद्ध श्रीकृष्ण की विभ्रांत वैज्ञानिक वृत्ति, कुन्ती की दुष्कर निर्दयता, दुर्योधन के लोभ, पाण्डवों का ओजस्वी दर्प और कर्ण की आत्मश्रेष्ठता की भावना का ही परिणाम था या कुछ और? कवि काव्य के मध्य गद्य की टिप्पणियाँ देकर प्रबन्ध की दुर्बलता को द्योतित करता है। कवि ने कृष्णत्व पर आघात किया है।

युद्ध को यदि रोक देते निज अतुल बल बुद्धि से।
तो भला नहिं मानते जन ईश उनकी सिद्धि से॥

18-विरहिणी ब्रजांगना (अनुवादक कवि "मधुप" बंगीय कवि माइकेल मधुसूदन कृत) 1964 ई०

बंगीय कवि मधुसूदन दत्त कृत् "बिरहिणी ब्रजांगना" का पद्यानुवाद कवि मधुप जी ने प्रस्तुत किया है। 32 पृष्ठों की पद्य रचना साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी) से प्रकाशित है। इसे यह मानकर मैंने अपनी अध्ययन-परिधि में रखा है कि यद्यपि मूल लेखक बंगीय हैं तथापि हिन्दी में अनूदित होकर ग्रन्थ हिन्दी काव्य में समावेशनीय बन गया है। प्रणयोन्मत्त ब्रजांगनायें कृष्ण के वियोग में अपने करुण क्रन्दन से सबको द्रवित कर देती हैं। राधा-रमण को राधा कैसे तज सकती है-

राधा कैसे तज सकती है राधा-रमण प्राण-धन को?

19-उत्तरजय (नरेन्द्र शर्मा) 1966 ई०

दुर्योधन के आहत-हत होते ही, यों तो महाभारत का युद्ध समाप्त हो जाता है किन्तु महारथी अश्वत्थामा के युद्ध-जनित महारोष के कारण युद्ध की अन्तिम रात्रि पांचाल शिविर के लिए संहार की काल रात्रि ही बन जाती है। महाभारत के अन्तिम निर्णायक युद्ध का इसमें वर्णन है। विभिन्न पात्रों का पारस्परिक वार्तालाप होता है जिससे कुछ जीवन सिद्धांतों का प्रतिपादन होता है। कृष्ण के ईश्वरत्व पर सन्देह करता हुआ शकुनि-तनय भट उलूक युधिष्ठिर से कहता है-

भरी सभा बीच खींच द्रुपदा का केश-गहन।
अरे क्लीव! अपमानित तेरी जीवनी शक्ति-
निर्बल का संबल कब बनती है कृष्ण भक्ति?
मन से तू नर बन जा, कृष्ण बने नारायण।

20-योग-निद्रा (कृष्णानन्द पीयूष) 1967 ई०

श्रीकृष्ण के प्रभासतीर्थ में जरा नामक व्याध के बाण से बिद्ध होकर "योग-निद्रा" को प्राप्त करने के क्षण तक की कथा का आधार लेकर यह कथा-काव्य रचा गया है। धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" की तरह "योग-निद्रा" भी जीवन की सन्ध्या में जीवन के खोखलेपन का उन्मीलन करती है। यहाँ उन्हीं खोखले जीवन रहस्यों के आधार पर श्रीकृष्ण की सम्यक् मीमांसा उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है। "योग-निद्रा" एक अर्थ में महत्तम पुरुष की लघुता की एक आलोकित जीवन-गाथा है। संसार में जो कुछ घटित होता है, वह सबमें प्रभु की इच्छा होती है। कृष्ण उच्छवास के स्वर से कहते हैं-

रहती पास सुभद्रा को कहता, "अभिमन्यु का हत्यारा मैं ही था।"
रहती पास आज यदि उत्तर-सुचरिता, तो कहता-"बहू कैसे कहूँ,
तेरे सुहाग की लाली हरी मैंने ही।"

21-देवकी (उमाकान्त मालवीय) 1970 ई०

श्रीमद्‌भागवत और महाभारत की उपेक्षिता एक साधारण माँ देवकी की मन:स्थितियों का चित्रण इस रचना में हुआ है। कथानक में अलौकिकता नहीं वरन् लौकिक धरातल पर ही देवकी की पीड़ा को स्वर देने की चेष्टा की गई है। इन प्रसंगों में देवकी के कथन से राधा और कृष्ण के चरित्रों का यत्किंचित् मात्र उद्‌घाटन होता है और कृष्ण के प्रति उसका वात्सल्य रस उमड़ पड़ता है। इतिहास में ऐसी नारी खोजने पर भी नहीं मिलेगी, जिसने सात सन्तानों के मूल्य पर एक बेटा पाया हो और वह भी तुरन्त आखों से ओझल हो जाये। असुरों के नाश के बाद देवकी सन्तोष की साँस लेती है-

"कृष्ण!
तुम्हारे लिए, दिया गया, सात बेटों का मूल्य, सात बेटों की बलि
अब मुझे अधिक नहीं लगता है, वह मूल्य चुकाना"

22-राधा (जानकीवल्लभ शास्त्री) 1971 ई०

एक नवीन रचना कौशल के द्वारा शास्त्री जी ने "राधा" के संवेदनात्मक अनुभूति का विषय बताया है। कवि की भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं भावों की अनुगामिनी है। आत्मा का अनन्त आह्वान है नीली मुरली। मायारूपी जीव वहाँ तक भागना चाहते हैं। राधा अपना तन-मन हार जाती है-

नीली री मुरली! तूने मुझे पुकारा।
क्या करूँ कि मेरा तन हारा, मन हारा।

"राधा" एक अनुभूति है, एक भाव है, एक संस्कृति है जिसका रसास्वादन कोई संवेदनशील सहृदय पाठक ही कर सकता है। 109 पृष्ठों में निबद्ध इस काव्यकृति में राधा और कृष्ण दोनों उद्‌भासित हुए हैं।

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त भी अन्य रचनायें हैं जिन तक मेरी दृष्टि गई है और वे सभी कृष्ण-कथा के अन्तर्गत समाहित हैं जिनकी संक्षिप्त सूचना निम्न है-

1-श्याम सुधा (श्यामाकान्त पाठक), 2-अंगराज (आनन्द कुमार), 3-कर्ण (केदार नाथ मिश्र "प्रभात"), 4-श्याम-संदेश (श्यामसुन्दर लाल दीक्षित), 5-मधुपुरी (गयाप्रसाद द्विवेदी "प्रसाद"), 6-श्रीकृष्ण जन्मभूमि (गोस्वामी शरण बिहारी), 7-महारथी (मोहनलाल अवस्थी "मोहन"), 8-राधा-कृष्ण (राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह), 9-महारास (नरेशचन्द्र मिश्र "भंजन"), 10-गोपिका (सियारामशरण गुप्त)

विशिष्ट फुटकर कविताएँ

वीरान हो, वृन्दावन हो, (माखन लाल चतुर्वेदी), मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा (माखन लाल चतुर्वेदी), वेणु लो, गूँजे धरा (माखन लाल चतुर्वेदी), गो-गण सँभाले नहिं जाते मतवाले नाथ (माखन लाल चतुर्वेदी), उड़ने दे घनश्याम गगन में (माखन लाल चतुर्वेदी), माधव दिवाने हाव-भाव (माखन लाल चतुर्वेदी), तू ही क्या समदर्शी भगवान्? (माखन लाल चतुर्वेदी), दिग्विजय का अश्व (दुष्यन्त कुमार), क्यूरियो मार्ट में अर्जुन की तलाश (लक्ष्मीकान्त वर्मा), सूर्यपुत्र के तीन मर्म कथन (केशु), तदात्मानं सृजाम्यहं (दुष्यन्त कुमार), कलियुगी अवतार (वचनदेव कुमार), जीवित हूँ (शैलेश मटियानी), कामरी वारे पै का मरी जात है (हस्तलिखित) पं द्विजदेव (नन्द चौक, गोकुल), यमुना के प्रति (सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला")

(ख) उपर्युक्त रचनाओं में दृष्टिभेद

भक्तिमूलक तथा कवित्वमूलक

"भक्ति" शब्द "भज् सेवायाम्" धातु से निष्पन्न होता है। सेवा का परिणाम प्रेम होता है जो भक्ति की अन्तिम साधना की सीमा है। नारद ने भी भक्ति सूत्र में कहा है-"सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा" अर्थात् उस परमेश्वर में अतिशय प्रेमारूपता ही भक्ति है और "अमृत स्वरूपा च" अर्थात् वह अमृतरूप है। महर्षि शाण्डिल्य ने "सा परानुरक्तिरीश्वरे" अर्थात् ईश्वर में परम अनुराग ही भक्ति है। भक्ति के स्वरूप निर्धारण में प्रह्लाद जी का कथन भक्तों को सदैव समीचीन रहा है-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥ श्रीमद्‌भागवत 7/5/23

भगवान् विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभावादि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण तथा भगवान् की चरण-सेवा, पूजन और वन्दन एवं भगवान् में दासभाव, सखाभाव और अपने को समर्पण कर देना-यह नौ प्रकार की भक्ति है। गोस्वामी तुलसीदास कृत् "रामचरितमानस" में शबरी के प्रति भगवान् श्रीराम चन्द्र कहते हैं- **प्रथम भगति सन्तन कर संगा, दूसरि रति मम कथाप्रसंगा।**

आगे भगवान् श्रीराम के कुल नौ प्रकार की भक्ति का स्वरूप बताते हैं।

"भक्ति" के उपर्युक्त स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्यों की समीक्षा करने पर बहुत कम रचनायें इसकी सीमा में आयेंगी। हाँ, भक्ति के परम साधना "प्रेम", निष्ठा, तन्मयता, प्रभु के प्रति व्याकुलता, भगवदाश्रित होना आदि के वर्णन को ध्यान में रखकर बिलगाव किया जाये तो कुछ काव्यग्रन्थ भक्तिमूलक माने जा सकते हैं।

वस्तुत: आलोच्य काव्यों को भक्तिमूलक और कवित्वमूलक श्रेणियों में बाँटना बड़ा कठिन है, क्योंकि भक्तिमूलक काव्यों में काव्यशिल्प भी है और कवित्वमूलक काव्यों में भक्ति भी है। जहाँ कवि का अनास्थावादी दृष्टिकोण नहीं है, वहाँ भक्तिमूलक माना जा सकता है। वैसे राधा और कृष्ण के अलौकिक रूप का संकेत येन-केन-प्रकारेण सर्वत्र विद्यमान है। जिन काव्यों में भक्ति की प्रमुखता है और कवित्व पक्ष दबा हुआ है उसे मैंने भक्तिमूलक काव्य की श्रेणी में रखा है और जिन कृतियों में कृष्ण को ब्रह्मरूप में चित्रित किया गया है किन्तु उसका काव्य-शिल्प सुष्ठु एवं उच्चकोटि का है उसे कवित्वमूलक काव्य माना है। अब आगे दोनों काव्य-धाराओं पर विचार किया जायेगा।

भक्तिमूलक काव्य

यद्यपि बीसवीं शती भक्ति के अनुकूल नहीं है किन्तु फिर भी कुछ निष्ठावान भक्तों की वाणी से कवित्व फूट पड़ा है जिसमें विष्णु के अवतार, श्रीकृष्ण और उनकी लक्ष्मीस्वरूपा राधा का चित्रांकन हुआ है। ये कवि दो प्रकार के हैं। एक तो वे जो किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित हैं और दूसरे वे जिनकी रचना स्वतंत्र रूप से राधा-कृष्ण की भक्ति का अनुगमन करती है। प्रथम कोटि में श्री सर्वेश्वर (ब्रजबिहार अंक)। भारतेन्दु के कुछ प्रेमगीत, गोविन्द विलास, श्री गोकुल बाल बिहार, ब्रजबिहार (रंगीलाल कृत), प्रेम की पीर, ब्रजमाधुरी सुधा, श्रीकृष्ण कौस्तुभ, गोपाल विलास, घनश्याम सागर और प्रेमरस मदिरा आदि कृतियाँ प्रमुख हैं। द्वितीय श्रेणी की प्रतिनिधि रचनायें हैं-फेरिमिलिबो, स्याम संदेसौ, जुगलपद वंदन, माधव-माधवी, उद्धव-शतक (रत्नाकर रसाल), श्रीकृष्ण चरित आदि।

"प्रेमरस मदिरा" में 16 कलश हैं।[1] ये सोलहों कलश अपनी विशेष मादकता लिए हुए हैं, सत्रहवें कलश में शेष मदिरा है। उस मदिरा में माधुर्य है, बेसुध कर देने की क्षमता है, जिसके पीने के बाद केवल एक ही भावना रह जाती है, वह है युगल का प्रेम, हमारी सभी कामनायें समाप्त हो जाती हैं और हम श्री राधा और श्रीकृष्ण के अनुराग सागर में डूब जाते हैं।[2] सिद्धान्त माधुरी के अनेक पद कृपालु जी की भक्तिभावना को व्यक्त करते हैं-

रटो रे मन! छिन-छिन राधे नाम।[3]
छोड़ मन! जग-मृगजल की आस।[4]
अरे मन अवसर बीत्यो जात।
काल कवल-बस विधि, हरि, हर सब, तोरी कहा बिसात।
लहि पारस नर-तनु सुर-दुर्लभ, गुंजन-हित भटकात। - प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ-35

वैसे तो सभी वैष्णव सम्प्रदायों में कुंजलीला का विशेष महत्त्व है किन्तु निम्बार्क मतावलम्बी निकुंज लीला में सहयोग देना भक्त का पुनीत कर्तव्य मानते हैं। श्रीकृष्ण और राधा की जोड़ी कुंजबिहार में मग्न है:-

विहरे दोउ सुकुमार, सुमनसेज पै रस भरे।
बार-बार बलिहार गौर, गौर श्याम छवि अति लसै
राधावल्लभलाल, कृष्ण वल्लभा लाड़िली।
आनन्द रूप रसाल, जोरी सुन्दर रस भरली॥[5]

युगल बिहार की सेवा भक्त का नैत्यिक कर्म है।[6] भक्तिमूलक काव्यों में लीलागान परम्परा का निर्वाह सर्वत्र हुआ है। इन रचनाओं में गोविन्द विलास[7], गोपाल विलास[8], ब्रजबिहार[9] और घनश्याम सागर मुख्य हैं। पनघट-लीला-वर्णन में श्री नारायण जी के कृष्ण, सूर के कृष्ण से कम नहीं हैं-

1-रसिया माधुरी, सिद्धान्त माधुरी और प्रेम माधुरी आदि नामों के 16 खण्ड हैं।, 2-लगी री मोहिं, श्याम-दृगन की चोट। पलक न हाय! पलक दृग लागत, भये पलक ते ओट। व्याकुल बिनु अपराध प्रान भये, कीन दृगन ने खोट॥ - प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ 330, 3-प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ 25, 4-प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ 29, 5-श्री निकुंज केलि माधुरी, पृष्ठ 35, 6-प्रेम की पीर, पृष्ठ-41, 7-पृष्ठ 51 से 247 तक-इसमें कृष्ण की पौरुष व्यंजक लीलायें नहीं हैं, 8-पृष्ठ 26 से 155 तक, 9-पृष्ठ 4 से 220 तक,

आज श्याम मोरी गागर फोरी।
गागर फोरी भला सो तो फोरी, ताहू पै लंगर बहियाँ मरोरी।
लोक लाज कुलरीति मर्यादा, एक साथ उन तृण सम तोरी॥ - ब्रजबिहार, पृष्ठ 46

नवधा भक्ति में शरणागत होना भक्त की विशेषता है। "जप तप नेम धर्म व्रत तीरथ" पर उसका विश्वास नहीं है[1]। वह श्रीकृष्ण के चरणों में ही रमना चाहता है। संसार में जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म बढ़ जाता है, तब ईश्वर अवतार लेकर नर-लीलायें करता है। तुलसीदास का प्रभाव कृष्ण भक्त कवियों पर बहुत पड़ा है। एक उदाहरण निम्न है-

जब जब होय धर्म की ग्लानी, बाढ़ै असुर अधम अभिमानी।
तब तब ही अवतार हमारौ, यह प्रन अटल टरै नहिं टारौ।
रक्षण सन्त हटावन पापा, थापन धर्म अखंड प्रतापा। - श्रीकृष्ण कौस्तुभ, पृष्ठ-53

जयदेव की "गीत गोविन्द" के "मेघैर्मेदुरमम्बर वनभुव: श्यामस्तमाल द्रुमै:" का भावानुवाद करके भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के राधा-कृष्ण की ऐकान्तिक क्रीड़ा का स्वाभाविक चित्रण किया है।[2] और ऐसी केलि-क्रीड़ाओं से भारतेन्दु जी अपनी भव-भीति टालना चाहते हैं।

दूसरी कोटि के भक्त कवियों की रचनाओं में उद्धव-शतक रत्नाकर कृत, उद्धव-शतक "रसाल" कृत, फेरिमिलिबो पं० अनूप शर्मा कृत, जुगलपद बंदन-कृष्णा माँ कृत और माधव-माधवी माधवी लता शुक्ल कृत मुख्य हैं। "मधुपर्क" यद्यपि कृष्ण के लोकरक्षक रूप का वर्णन करता है किन्तु कृष्ण को वह जीव में और जीव को कृष्ण में समाहित मानता है। भारतीय चिन्तन परम्परा के अनुसार बिन्दु और सिन्धु की भाँति जन और जनार्दन दोनों एक हैं। उनमें स्व और पर का भेद नहीं है।[3] किन्तु रत्नाकर की गोपियाँ सगुण उपासना में जीव की सत्ता बनाये रखना चाहती हैं। उद्धव को वे समझाती हैं-

जैहै बनि बिगरि ना वारिधिता वारिधि की।
बूँदता बिलैहै बूँद विवस विचारी की॥ - उद्धव-शतक, पद-37

कृष्ण-भक्ति भावना को ब्रजभाषा की माधुरी के माध्यम से व्यक्त करने में कृष्णा माँ को मीरा की भाँति सदा स्मरण किया जायेगा। कृष्णा माँ नन्दनन्दन की बाल-उपासिका हैं। उनके बिना उनका जीवन नीरस है।[4]

प्रभु-राग में शान्तरस का महत्त्व निर्विवाद है। माधवी लता शुक्ल ने इसके कुछ मर्मस्पर्शी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं-

माधव! अब न जगत मन भाये।
व्याकुल नाथ सहज मन मेरो, पुनि नैना भरि आये।
रोम रोम जागी ज्वाला सी, मोह कठिन भरमाए। - माधव माधवी पद सं०-30

दास्य भाव का एक दृश्य-

1-नाथ! अब और कहूँ नहिं जाऊँ। -ब्रजमाधुरी सुधा, पृष्ठ 104, 2-मेघन तें नभ छाय रहे, बन-भूमि तमालन सों ई कारी। साँझ समै डरिहै, घर याहि कृपा करिकै पहुँचावहु प्यारी॥ यों सुनि नन्द-विन देश चले दोउ कुंजन में वृषभानु दुलारी। सोइ कलिंदी के कूल इकन्त की केलि हरैं भव-भीति हमारी। भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 306, 3-उनमैं स्व पर कौन भेद नैंकु सजनी। उनके नेतृत्व पर बलि बलि जैहैं हम॥ मधुपर्क, चतुर्थसर्ग, पृ० 63, 4-तुमबिनु नीरस जीवन प्यारे। सुरति सनेहमयी रजनी के, तुम राकेश बनौ मतवारे। पंख-विहीन-विहग-विह्वल ज्यौं ज्यौं "कृष्णा" बिनु नन्द दुलारे। -जुगलपद बन्दन, पद-61

माधव! तुम राजा हम चेरी।
भोर भये, निज नित अँगन बुहारूँ, करि तुलसी की फेरी।
भैरवि गाऊँ तुम ही जगाऊँ, रहहूँ चरण तल हेरी।
यमुना जल सों चरण पखारौ नयनन नीर चढ़ेरी।। - माधव-माधवी पद सं०-3

यद्यपि कवयित्री मधुरभाव की उपासिका है, फिर भी उन्होंने वात्सल्य भावना के सुन्दर पद लिखे हैं- **माधव! जागहु आज गोसांई।**

बोलत काग, चिहुंकि रहे पंछी झूमि रही अमराई। - माधव-माधवी पद सं० 60

कृष्ण और राधा जहाँ रहते हैं वह भूमि धन्य है और धन्य हैं वह ब्रजधाम जहाँ भक्तों को अतुल विश्राम मिलता है-

धन्य स्याम को प्रेम भर्‌यो तिय हिय में पूरो।
आधो रुक्मिनि पास, न राधा पास अधूरो।
धन्य-धन्य ब्रजधाम जहाँ विश्राम अतुल है।
भूतल में बस एक मुक्तिदायक गोकुल है। - फेरिमिलिबो, पृष्ठ 174

पं० अनूप शर्मा ने फेरिमिलिबो में राधा के प्रेम की विजय बताई है। प्रभास क्षेत्र में राधा जब कृष्ण के हाथों को अपने हाथों में थाम कर प्रणय कोप से भौंहें तान पूछती है-

"कहौ, कहाँ वह रास, अहो, विधुहास विमोहन।
कहौ, कहाँ वह जो, भोग कुबरी को मोहन?"[1]

मुस्कराते हुए कृष्ण राधा को अपनी पलकों में बन्द करके अलौकिक भाव मुद्रा में रोमांचित हो जाते हैं और अखण्ड सुख में प्रेम की विजय हो जाती है।

"दीने पलक-कपाट राखि राधैं दृग-अंचल।"[2]

उपर्युक्त आलोच्य काव्यों में रस विधान, अलंकार योजना और छन्द विधान भी प्राप्त होता है किन्तु भक्ति पक्ष अधिक सबल है।

कवित्वमूलक काव्य

कवित्वमूलक काव्यों पर भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई और विगत दो विश्वयुद्धों का विशेष प्रभाव पड़ा है। ऐसे काव्यों का वर्गीकरण मैंने इस दृष्टि से नहीं किया है कि कवित्वमूलक काव्यों में भक्ति नहीं है और भक्तिमूलक काव्यों में कवित्व नहीं है। काव्यों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में ऐसी लक्ष्मण-रेखा खींची नहीं जा सकती किन्तु नवीन सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर जो काव्यधारा प्रवाहित हुई उसमें कवित्व-शिल्प उच्चकोटि का है। इसीलिए इन काव्यों को भक्ति-परक काव्यों से मैंने अलग रखा है। ऐसी रचनाओं में खड़ी-बोली अधिक प्रचलित है जबकि भक्ति-मूलक काव्यों पर ब्रजभाषा की पकड़ मजबूत है।

आलोच्य काव्यों की प्रकृति और कथानक भिन्न होने के कारण इनमें भी दो वर्ग दृष्टिगत होते हैं। एक तो वे काव्य हैं जो महाभारतीय कथा के आधार पर पुष्पित और पल्लवित हैं। इन काव्यों में युद्ध वर्णन और पाण्डवों के साहचर्य-प्रसंगों में कृष्ण की भूमिका वर्णित है। ऐसे अधिकांश काव्यों में राधा का स्पष्ट

1-फेरिमिलिबो, पृष्ठ संख्या-215, 2-वही, पृष्ठ संख्या-216

उल्लेख नहीं है। मात्र कृष्णायन महाकाव्य और श्रीकृष्ण चरित में राधा का चरित्र उद्घाटित हुआ है। ये काव्य निम्न हैं-

कृष्णायन (द्वारका प्रसाद मिश्र), जयद्रथ वध (मैथिलीशरण गुप्त), द्वापर (मैथिलीशरण गुप्त), जय भारत (मैथिलीशरण गुप्त), रश्मिरथी (रामधारी सिंह "दिनकर") अन्धायुग (धर्मवीर भारती), दानवीर कर्ण (गुरुपद सेमवाल), उत्तरजय (नरेन्द्र शर्मा), पुरुषोत्तम तुलसी राम शर्मा "दिनेश" श्रीकृष्णचरित (रूपनारायण पाण्डेय), सूर्य का स्वागत (दुष्यन्त कुमार)।

दूसरे वर्ग में वे रचनायें आती हैं जिनका कथानक राधा और कृष्ण को केन्द्र मानकर विकास भाव है। इनमें राधा के नाम पर अधिकांश लेखन हुआ है जैसे कनुप्रिया, राधा (जानकीवल्लभ शास्त्री और दाऊदयाल गुप्त) और राधा का मान। योगनिद्रा में श्रीकृष्ण अपने जीवन की संध्या में स्वकथन द्वारा विगत सम्पूर्ण घटनाओं, तथ्यों एवं सम्बन्धित पात्रों का स्मरण करते हैं। ऐसी कुछ विशिष्ट रचनायें निम्न हैं—प्रियप्रवास (हरिऔध), कनुप्रिया (धर्मवीर भारती), राधा (जानकी वल्लभ शास्त्री), राधा (दाऊदयाल गुप्त), देवकी (उमाकान्त मालवीय), योगनिद्रा (कृष्णानन्द "पीयूष"), विरहिणी-ब्रजांगना (कवि मधुप), राधा का मान (राजेश दीक्षित), संचिता (गोपाल शरण सिंह), रम्यरास (राजा चक्रधर सिंह)

"प्रियप्रवास" में बुद्धितत्त्व का प्रथम योगदान भगवान् कृष्ण के अलौकिकत्व को दूर कर उनके मानवीकरण और "मर्यादावाद" में दिखायी देता है। कवि ने प्रथम सर्ग में कृष्ण को एक जनप्रिय, जनहितैषी, परम मनोहर किशोर के रूप में चित्रित किया है और मध्यकालीन दार्शनिक भक्तों द्वारा प्रतिपादित "परब्रह्मत्व" को लुप्त कर दिया है। "प्रियप्रवास" के नायक श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण के चरित्र की नूतनता और महत्ता "प्रियप्रवास" का एक प्रमुख आकर्षण है। "प्रियप्रवास" के पूर्व कृष्ण के चरित्र-चित्रण की परम्परा से हटकर हरिऔध जी ने सर्वथा नवीन रूप में कृष्ण का चरित्र प्रस्तुत किया है। जब हम ब्रजजनों की रक्षा के लिए कृष्ण को दावानल बुझाते हुए, कालियनाग का दमन करते हुए, कंस द्वारा भेजे गये राक्षसों का वध करते हुए देखते हैं अथवा उनकी न्यायप्रियता, ब्रजजनों के प्रति स्नेहशीलता और अप्रतिम उत्तरदायित्व की भावना देखते हैं तो हम उदात्त पदार्थों के दर्शन-जन्य अनुभव में निमग्न हो जाते हैं। "प्रियप्रवास" नाम से यह स्पष्ट होता है कि इस काव्य में शृंगार रस व्यंग्य है। चतुर्थ सर्ग में विप्रलम्भ की व्याकुलता पराकाष्ठा पर है। कृष्ण के मथुरा प्रस्थान के समय राधा की दशा हिमपात से म्लानन कलिका की सी है।[1] उसके मन में उचाट है, सभी दिशायें कृष्ण-वियोग से रो रही हैं।[2] भावव्यंजना का सर्वोत्कृष्ट रूप यशोदा की भावदशा में दृष्टिगत होता है-

पत्रों पुष्पों रहित विटपी विश्व में हो न कोई।
कैसी ही हो सरस सरिता वारि-शून्या न होवे।
ऊधो सीपी सदृश न कभी भाग फूटे किसी का।
मोती ऐसा रतन अपना आह ! कोई न खोवे। - प्रियप्रवास, पृष्ठ 130

इस काव्यग्रन्थ में संस्कृत के छन्दों का विशेषत: मात्रिक छन्दों का प्रयोग हुआ है जिसके कारण प्रियप्रवास को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्राप्त हो गया है। कवि ने छन्दाविषयक सभी नियमों का प्रयोग किया

1-विकसिता-कलिका हिमपात से, तुरत ज्यों बनती अति म्लान है। सुन प्रसंग मुकुन्द प्रवास का। मलिन ज्यों वृषभानु सुता हुई।।, 2-प्रियप्रवास, पृष्ठ 41, प्रिय प्रवास चतुर्थ सर्ग, पृष्ठ 40

है। यदि प्रथम सर्ग में एक छन्द का प्रयोग किया गया है तो नवम् सर्ग में नाना छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रकृति-चित्रण और द्रुतविलम्बित छन्द का एक उदाहरण इस प्रकार है-

विपिन बीच विहंगम-वृन्द का। कलनिनाद विवर्द्धित था हुआ॥
ध्वनिमयी-विविधा विहगावली। उड़ रही नभ-मण्डल मध्य थी॥ - प्रियप्रवास, पृष्ठ-1

प्रियप्रवास में अलंकारों की बहुलता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, अनुप्रास आदि अलंकार सर्वत्र दिखायी पड़ते हैं-

लाली थी सरोज-पग की भूपृष्ठ को भूषिता।
विम्बा विद्रुम को अकान्त करती थी रक्तता ओष्ठ की।
हर्षोत्फुल्ल-मुखारविन्द-गरिमा सौन्दर्य आधार थी।
राधा की कमनीय कान्त छवि थी कामाँगनामोहिनी।

यहाँ प्रथम पंक्ति में रूपक, द्वितीय में व्यतिरेक और चतुर्थ पंक्ति में अतिशयोक्ति अलंकार है।

महाकाव्यत्व के सभी गुणों से उपेत होने के बावजूद भी प्रियप्रवास में कुछ दोष है। कथा का विस्तारवाद पाठक को ऊब पैदा करता है। इसकी काव्यकला में सूक्ष्मतर नहीं है। मनोहर कल्पना की उड़ान नहीं है। पदार्थ के समग्र चित्रण का प्रयत्न अधिक है। चरित्र-चित्रण में अन्तर्द्वन्द्व नहीं है। शब्दों, भावों, विशेषणों और उपदेशों की पुनरावृत्ति मिलती है। राधा जहाँ कृष्ण से मिलन की इच्छा प्रकट करती हैं वहाँ किसी आर्य समाज की उपदेशिका-सी प्रतीत होती है। इसके बावजूद भी प्रारम्भिक महाकाव्यों की दृष्टि से तथा अपने समय के अन्य काव्यरूपों के विकास की दृष्टि से प्रियप्रवास एक सफल महाकाव्य है। हिन्दी के महत्वपूर्ण महाकाव्यों में इसकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण है।

कृष्णायन की प्रथम विशेषता यह है कि उसमें कृष्ण कथा बड़े मौलिक रूप से चित्रित की गई है किन्तु श्री मिश्र जी ने पूर्व परम्परा का परित्याग नहीं किया है। वे कहते हैं-

परम्परा प्रिय मति में पाई, पैतृक सम्पति नहीं तजि जाई।[1]

श्री मिश्र जी की प्रतिभा ने द्वापर की उस कृष्णचरित वंशी ध्वनि में इस युग के अनुकूल नवीन संगीत सुना और नवीन संगीत सुना और नवीन आशामय संदेश उन्होंने शक्तिशालिनी वाणी द्वारा इस कृष्णायन के रूप में व्यक्त किया-

बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर, जदपि प्राचीन। भक्त श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन॥[2]

"कृष्णायन" का परिष्कृत दर्शन उसकी एक प्रमुख विशेषता है। सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय संयम, पवित्रता और चोरी न करना ये पाँच उत्तम धर्म हैं।[3] यह ग्रन्थ सर्वजन संवेद्य भाषा "अवधी" में लिखा गया है। कवि कहता है-

एक यहहि अभिलाषा मोरी, सुनहिं कृष्ण यश लाख करोरी।[1]

यह भाषा तुलसीदास की भाषा है जिसने अच्छी तरह अन्तर्प्रान्तीय प्रवेश पा लिया है। अतः प्रान्तीय प्रवेश में और अधिक सुविधा हो इसलिए कवि ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया है। प्रसाद गुण युक्त होते हुए भी काव्य में पर्याप्त अलंकारिता है। गुणों में भी जहाँ ओज की आवश्यकता है वहाँ

1-कृष्णायन, पृ.2, 2-वही, पृ.2, 3-सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-संयम, शौचास्तेय पंच धर्मोक्तम्।-कृष्णायन पृ.462

उच्चकोटि का ओज है और जहाँ माधुर्य की आवश्यकता है वहाँ अच्छा माधुर्य है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा की छटा सर्वत्र दर्शनीय है। काव्य में कुछ सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं-

1-वधेउ व्योग हरि ग्रीव मरोरी, इक्षुदण्ड जिमि जीव विचोरी।
2-शीर्ष शिखा लघु उठि अस लागी, धूम परोह मनहुँ को पागी।
3-धारत भुवन भार हरि तैसे, बहत वलय नर कर निज जैसे।

कितनी हृदयग्राही कमाल की उपमायें हैं। अब उत्प्रेक्षाओं का सौष्ठव देखिये-

1-प्राविट घन किरीट धनु लागा, पूर्ण बाण जलभीष्म तडागा।
2-क्षिप्रहस्त शर पै शर धावत, ज्या मिसि मनहुँ धनुष पशगावत।
3-अर्घ्य पुष्प स्वागतवचन, खगस्वर अलिगुंजार,
सीखेहु शाखिहु नत फलन, मनहुँ अतिथि सत्कार।

रूपक

कुमुद देह पूर्णेन्दु मुख कर पद उषा विलास,
वेणि, श्रेणि अलि, मधु अधर, शरद चन्द्रिका हास। (रुक्मिणी)

इस ग्रन्थ में रस और व्यंग्य के भी अच्छे उदाहरण विद्यमान हैं। इसका शृंगार बड़ा शिष्ट है। हास्य रस विशेषतः बाक् चातुरी पर आधृत है। निर्वेद या शान्त रस अत्यन्त प्रभावी एवं अद्भुत रस चमत्कार पूर्ण है। करुणरस हृदयस्पर्शी है। वीर, भयानक, रौद्र और वीभत्स रस युद्ध के वर्णनों में ओतप्रोत है। वात्सल्य, सख्य और भक्ति या माधुर रस तो इस ग्रन्थ का प्राण ही है। आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्यों में यह ग्रन्थ अपनी विचित्रता के कारण अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। प्रत्येक ग्रन्थ का कोई-न-कोई उद्देश्य होता है। कवि के हृदय में एक गहरी अनुभूति है कि अपने पददलित राष्ट्र का त्राण कृष्ण सरीखा ही कोई नेता कर सकता है, जिसके हृदय में आर्य धर्म और संस्कृति का गौरव हो, जो एकछत्र राष्ट्र का अनन्य भक्त हो और जो कृष्ण की भाँति नितान्त निःस्पृह हो। वह अनार्य संस्कृति से दूर रहना चाहता है और देश से आसुरी संस्कृति को निकाल फेंकना चाहता है। आर्य संस्कृति में मनुष्येतर जीवों, यहाँ तक कि वृक्षों पर भी दया की भावना है, अनार्य संस्कृति में मनुष्य के प्रति मनुष्य का बन्धु-प्रेम नहीं है। दोनों में जन्म सिद्ध कोई भेद नहीं है-

शृंग अनार्य-ललाट न जामा, आर्य-भाल नहिं विधु अभिरामा।

अनार्य संस्कृति का तत्त्व आरोहण काण्ड में चार्वाक की वक्तृता में और आर्य का उद्धव, व्यास, भीष्म, कृष्ण के उद्गारों में तथा युधिष्ठिर के आचरण में मिलता है। कृष्णायनकार ने इस ग्रन्थ के पढ़ने की योग्यता निम्न बताई है-

"जिनहिं न धर्म न संस्कृति ज्ञाना, जिनहिं गरल सम शास्त्र पुराणा,
जीवन तरुहिं समूल बिनाशी, जे नव बीज वपन अभिलाषी।
नात पुरातन जिन सब तोरा, तिन हित यह प्रयास नहिं मोरा।" - कृष्णायन, पृष्ठ-2

"रम्य रास" कोई इतिहास प्रधान काव्य नहीं है। काव्य सौष्ठव की दृष्टि से इसका पर्याप्त महत्त्व है। सम्पूर्ण काव्य वंशस्थ छन्द में लिखा गया है। इसमें शृंगार रस का अच्छा परिपाक हुआ है। शृंगार रस के प्रायः सभी अंग प्रकट कर दिये गये हैं। गर्व हेतुक मान का परिणाम क्या होता है, देखिये-

"सुना", चलें क्यों कर कृष्ण! हैं थकीं, कहा कि "कन्धों पर बैठ लो, चलो"
बढ़ीं समारोहण हेतु राधिका, तुरन्त ही श्याम अदृश्य हो गये।[1]

पदलालित्य, काव्यालंकार, अर्थगौरव, मनोभाव विश्लेषण तथा महारास का अपूर्व सन्देश संस्कृतनिष्ठ भाषा में सर्वत्र व्यक्त हुआ है। उपमा और उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण निम्न है—

सजे हुए थे शिखि-पंख केश में, तड़ित्प्रभा सा पटपीत था लसा।
गले लगी थी बनमाल सोहती, ब्रजेश वर्षा छवि-धाम थे बने॥[2]

"रम्यरास" की उद्घोषणा है कि प्रभु का सच्चा भक्त वही है जो कुटुम्बसेवा करता है, समाज की सदैव सेवा करता है-

कुटुम्ब-सेवा हित जन्म है हुआ। स्वजाति का त्याग इन इष्ट है कभी॥
वही कहाता प्रभु-भक्त सत्यतः। सदैव है सेवक जो समाज का॥[3]

श्री धर्मवीर भारती की कृति "अन्धायुग" और "कनुप्रिया" आधुनिक हिन्दी जगत की दिशा-बोधक रचनायें हैं। काव्यरूप, पौराणिक प्रसंग के प्रतीकात्मक प्रयोग, नाटकीयता, चरित्र-चित्रण, अभिव्यक्ति शैली तथा मानव मूल्यों की स्थापना की दृष्टि से वह बाह्यभाव्य "नई-कविता-युग" का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। "कनुप्रिया" महाभारत पौराणिक आख्यान का रोमाण्टिक रूपान्तरण है। प्रेम की मूर्ति भावविह्वल राधा (कनुप्रिया) की नाटकीय मनःस्थितियों और भाव-मुद्राओं को मुक्त छन्द में रचित गीतियों की शृंखलाओं में गूँथा गया है। राधा बौद्धिक तर्कों की अपेक्षा सहज रागात्मक आधार पर कृष्ण के दो भिन्न रूपों-रसिक और योद्धा पर विचार करती है। कृष्ण के साथ अन्तःकेलि के दौरान तन्मयता के चरम क्षण में अस्तित्व की सार्थकता खोजने वाली कनुप्रिया को पाप-पुण्य, धर्माधर्म, न्याय-दण्ड, क्षमाशील वाला युद्ध अर्थहीन प्रतीत होता है। उसे कृष्ण का प्रगाढ़ केलि क्षणों में उसको अपनी बाँहों में गूँथने वाला रसिक रूप ही रुचता है। वह कृष्ण को उपदेशी देती है, "सो जाओ योगेश्वर-जागरण स्वप्न है, छलना है, मिथ्या है।"[4] राधा को सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि कृष्ण तो मन्त्र पढ़े बाण के समान छूटकर चले गये और "अब सिर्फ मैं हूँ, यह तन है और याद है।"[5] कनुप्रिया की अभिव्यंजना शैली, प्रतीक विधान, बिम्ब विधान, भाषा की संवेदनशीलता और कथन की सूक्ष्मता कवित्व की दृष्टि से श्रेष्ठ है। बिम्ब विधान का एक दृश्य सुन्दर है-

अक्सर जब तुमने वंशी बजाकर मुझे बुलाया है,
और मैं मोहित मृगी सी भागती चली आई हूँ।
और तुमने मुझे अपनी बाँहों में कस लिया है,
तो मैंने डूब कर कहा है-
"कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गन्तव्य।"

वस्तुतः कनुप्रिया श्यामसंगिनी राधा के स्नेह की कनु गूँज है, तड़पन है, विरह की छाया है।

"अन्धायुग" में कहीं-कहीं कवि ने एक ही उपमेय के लिए दुहरे उपमान जुटाकर भावाभिव्यक्ति को अत्यन्त प्रभावी बना दिया है। यहाँ एक उदाहरण दर्शनीय है-

"कुचले हुए साँप-सा,
भयावह किन्तु,
शक्तिहीन धनुष, जैसा है मेरा मन।"[5]

1-रम्यरास, पद सं. 71, 2-वही, पद सं. 10, 3-वही, पद सं. 37, 4-कनुप्रिया, पृ. 77, 5-वही, पृ॰63

यहाँ कवि ने एक उपमान (अश्वत्थामा का) भयावह किन्तु शक्तिहीन धनुष के लिए एक स्थूल उपमान-कुचला हुआ साँप तथा एक सूक्ष्म उपमान (अश्वत्थामा का कुचला हुआ) मन की योजना करके दुहरे प्रभाव की सिद्धि की है। यहाँ द्रष्टव्य है कि जहाँ धनुष की तुलना (कुण्ठित) मन और कुचले हुए साँप से हुई है, वहाँ साथ ही मन की तुलना कुचले हुए साँप और भयावह किन्तु शक्तिहीन धनुष से हो गई है। अलंकारों के कुछ उदाहरण निम्न हैं-

उत्प्रेक्षा-

"नर रक्त से वह तलवार उसके हाथों में
चिपक गई थी ऐसे
जैसे वह उगी हो
उसी के भुजमूलों से।"[2]

सांगरूपक-

"मैं दोपहियों के बीच लगा हुआ
एक छोटा निरर्थक शोभा-चक्र हूँ
जो पहियों के साथ घूमता है
पर रथ को आगे नहीं बढ़ाता
और न धरती ही छू पाता है।"[3]

काव्यलिंग-

मैं था जन्मान्ध
कैसे कर सकता था
ग्रहण मैं
बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को?[4]

"अन्धायुग" में प्रतीकों की योजना अत्यन्त सुन्दर, स्वतंत्र व स्वच्छन्द है, रूढ़ नहीं। यथा-धृतराष्ट्र व गांधारी के लिए-"बुझती लपटें" सर्वथा मौलिक प्रयोग है-

अन्दर केवल दो बुझती लपटें बाकी।[5]

इसी प्रकार बिम्ब योजना के भी दृश्य अनेकशः हैं।[6] प्रतीक विधान की भाँति माधुर्य प्रसाद, ओज गुणों की सुन्दर योजना हुई है। यद्यपि इस काव्य में ओज गुण की प्रधानता है किन्तु प्रसाद गुण भी सर्वत्र विद्यमान है। "अन्धायुग" अभिव्यक्ति का सबल माध्यम है फिर भी कहीं-कहीं काव्य-दोष भी लक्षित होते हैं-

जाकर अन्धों से
सत्य कहने की
मर्मान्तक पीड़ा है जो
उससे तो वध ज्यादा सुखमय है।[7]

1-अन्धायुग-पृष्ठ 35-36, 2-वही, पृष्ठ 83, 3-वही, पृष्ठ, 4-वही, पृष्ठ 19, 5-वही, पृष्ठ-29, 6-वही, पृष्ठ 48, 7-वही, पृष्ठ 40

संजय की इस उक्ति में धृतराष्ट्र व गांधारी के लिए 'अन्धों' शब्द का कटु तिरस्कार युक्त प्रयोग ग्राम्यत्व दोष की कोटि में आता है। भारती जी ने इसमें मुक्त छन्द का प्रयोग किया है। "राधा का मान" और "विरहिणी ब्रजांगना" का काव्यशिल्प सामान्य कोटि का है। जानकी वल्लभ शास्त्री कृत "राधा" की भाषा प्रसाद, माधुर्य एवं ओज गुणों से युक्त है। भाषा की सौरभ-सम्पदा से शास्त्री जी का विशाल अनुभव प्रकट होता है। भाषा एक प्रवाह है, मांसलता है, तन्मयता है। शास्त्रीय जी की भाषा भावों की उद्वाहिका है। राधा कहती है-

कछुई-सी सिमटी रहती हूँ अपने में,
ऐसी अठखेली बहती हूँ सपने में।[1]

सम्पूर्ण काव्य "राधिका" "पीयूष वर्ष" और "रूपमाला छन्दों" में लिखा गया है। स्नेहिनी चिन्तनशीला राधा जीवन के पथ पर रीती है। शब्दों का कैसा विरोधात्मक चमत्कार है-

मैं पनघट-पथ पर खड़ी लिए घट रीतें। जल का कलकल कहता है, कितने पल बीते।[2]

विरहिणी राधा के चित्रण में प्रतीक एवं बिम्ब विधान का कैसा स्वर पुंजीभूत हो गया है-

आकाश नहीं, तो क्या नीहार निहारूँ? सुर चढ़ा हुआ है, कैसे तार उतारूँ?
मरु का रेतीला गला कभी खुलता है? सागर का मन्द कहीं भीतर घुलता है?[3]

"कैसे तार उतारूँ" में राधा की मर्मान्तक पीड़ा की व्याकुलता वास्तव में बेसुध हो गई है। सौन्दर्य-विधान में शब्दों का चयन कितना सार्थक एवं सादृश्यमूलक है-

कौशेय वसन पल्लवित लता-सा लगता, कवरी में कुसुम, निशा में तारक जगता।
अंजन-रंजित नयनों में मद-सा छाता, टुक झुके गले में तार हार लहराता।[4]

विप्रलम्भ में राधा पूर्व दृश्यों का स्मरण करती हैं। उसकी माँ उसे सीमा में रखना चाहती थी-

माँ कहती हैं, "सिन्दूर बिन्दु लगने दे, मर्यादित महिमा सोई है, जगने दो।
आसुरी-बाँसुरी आप बिसर जायेगी, यह मन्द दृष्टि ही आप प्रखर जायेगी।"[5]

रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति आदि अलंकार तथा सामाजिक पदावली का प्रयोग कृति की उत्तमता को व्यक्त करती है। उदाहरणस्वरूप-

उच्छवास-श्वास की तृप्त तृषा का तर्पण। गुण-कर्म-हरण वह सर्वेन्द्रिय-ज्ञानार्पण।[6]

"राधा" की एक-एक पंक्ति श्राव, रस, अलंकार एवं कवित्व शक्ति से मण्डित है। वस्तुत: शास्त्री जी की सशक्त लेखनी से जो सशक्त भाव-शब्द निकले हैं उसे पढ़ने से पाठक का मानस अतृप्त-सा बना रहता है और काव्य सागर में डुबकी लगाने की निरन्तरता विस्मृत नहीं कर पाता। शब्द एवं भावरस का यह अमृत सागर है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में अपनी प्रकृति की यह प्रथम रचना है, जहाँ तक मेरी जानकारी है। भाषा प्रयोग, विशेषण वक्रता, शब्द शक्ति संयोजना, बिम्ब योजना, प्रतीक विधान, ओज, माधुर्य प्रसाद गुण भाषा द्वारा अपेक्षित वातावरण निर्माण, चित्रशैली, अलंकार विधान तथा छन्द के प्रयोग आदि सभी दृष्टियों से श्री जानकी वल्लभ शास्त्री की "राधा" की भाषा काव्य-श्रीवृद्धि एवं भावाभिव्यक्ति की सफल पोषिका है।

1-राधा-जानकी वल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-31, 2-वही, पृष्ठ-3, 3-वही, पृष्ठ-4, 4-वही, पृष्ठ-16, 5-वही, पृष्ठ-31, 6-वही, पृष्ठ-35

"योग-निद्रा" मुक्तक-स्वच्छन्द छन्द में दीर्घ कविता के रूप में चित्रित है। श्रीकृष्ण अपने जीवन की सन्ध्या में जब विगत दिनों को स्मृति-पटल पर लाते हैं तो उन्हें जीवन की लघुता का आभास होता है। श्रीकृष्ण, गान्धारी, कुन्ती, राधा, द्वापर तथा जरा नामक व्याध के माध्यम से कवि ने जीवन के शाश्वत प्रश्नों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। राधा कहती हैं-

समस्त गोकुल में मैं पगली कहाती रही,
परकीया का प्रेम,
उदाहृत मुझ पर ही हुआ,
पर तुम तो दूर सोये रहे,
सत्यभामा की माँग सजाते रहे
रहा सहा स्नेहदान,
कुब्जा को देते रहे,
और इधर मैं,
सूने वृन्दावन में
पगली हो भटकती रही।[1]

जरा नामक व्याध से घायल श्रीकृष्ण महाभारत के युद्ध के परिणाम पर चिंतन करते हुए पश्चात्ताप करते हैं-

चाहता यदि मैं संकल्पित हो, बचा देता देश,
राष्ट्र विघटित न होता ऐसे, होती न माँगें सूनी बहनों की,
मातायें बंध्यायें होती नहीं, धरती न होती ऐसे बंजर।[2]

महाभारत युद्ध में जो कुछ हुआ, उचित नहीं था। इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हुए कृष्ण कहते हैं-

हम सभी-उसी नष्ट-नीड़ के पंछी हैं, नीड़ जिसे नष्ट किया अपने ही हाथों से।
अनिकेता हो भटक रहे हैं तभी भूले से, सम्पूर्ण राष्ट्र को खंडित किया मैंने॥[3]

भाव, भाषा तथा काव्य शिल्प की दृष्टि से योगनिद्रा हिन्दी की आधुनिक काव्य प्रवृत्ति का प्रतिनिधि काव्य ग्रन्थ है। असाधारण व्यक्तित्व वाले श्रीकृष्ण को साधारण स्थिति में रखकर कवि पाठकों के लिए चिन्तन के नये द्वार खोलता है। "देवकी", जयद्रथवध, द्वापर, जय-भारत, रश्मिरथी, राधा का मान आदि कृतियाँ उक्त काव्य-शृंखला की एक-एक कड़ी हैं। आधुनिक कृष्ण काव्यों की आधुनिकतम परिवेश की गौरवमयी परम्परा को अक्षुण्ण रखने का श्रेय इन काव्यों पर है।

आधुनिक हिन्दी कविता में कृष्ण-काव्यों की भक्तिमूलक और कवित्व-मूलक जिन विभिन्न रचनाओं का उल्लेख ऊपर किया गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण-कथा की ओर कवियों का आकर्षण अधिक था। मैंने आगे अपने अध्ययन में दोनों प्रकार की प्रमुख एवं अपने समय की प्रतिनिधि रचनाओं को स्थान दिया है, शेष का परिचय मात्र दे दिया है।

***

1-योगनिद्रा, पृ० 45, 2- वही, पृष्ठ 33-34, 3- वही, पृष्ठ 34

3

आधुनिक हिन्दी कविता में वर्णित राधा-कृष्ण चरित्र का अनुशीलन :

(क) राधा-कृष्ण का दार्शनिक निरूपण

कृष्ण

अंग्रेजों के परतन्त्रता-पाश में बँधी हुई बंदिनी भारत माँ के बन्दी सुपुत्र पं० द्वारका प्रसाद मिश्र उस घनश्याम की वन्दना करते हैं जिसका जन्म माता-पिता के मुक्ति के हेतु बंदीधाम में हुआ था। मंगलाचरण के आदि में ही प्रथम कलाकार (विधाता) ने रस-विधान श्रीकृष्ण की वन्दना की है जो अपनी लीला हेतु सृष्टि का संचालन करते हैं-

"जन्मेउ बन्दी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हेतु,
बन्दहुँ सोइ घनश्याम, मैं बन्दी, बन्दिनि-तनय।
जेहि संसृति-विस्तार, कीन्हेउ क्रीड़ा हेतु निज,
बन्दहु रस-आगार, कलाकार सोइ प्रथम करि ॥"[1]

श्रीकृष्ण सोलह कला के अवतार हैं; पूर्ण ब्रह्म हैं-

"भयेउ कला षोडश सहित, कृष्ण चन्द्र अवतार,
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, बरनहुँ मति अनुसार।"[2]

बन्दी-धाम में परब्रह्म श्रीकृष्ण का अवतार विश्व उद्धार हेतु होने पर माता देवकी और पिता वसुदेव बालक की असुरक्षा के कारण ग्लानियुक्त हैं। माता-पिता के दुःख को नष्ट करने वाले शिशु रूप कृष्ण भगवान् अपने चतुर्भुज रूप में रूपायित हो जाते हैं-

"निमिषहिं महँ शिशु वेष दुरावा, रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा।
जलधर देह, कमल दल लोचन, विद्युत वसन, भाल गोरोचन।
कौस्तुभ कंठ वक्ष बनमाला उर श्री वत्स इन्द्र-द्युति-जाला।
शिर किरीट, कुण्डल श्रवण, ब्रह्मसूत्र कटिधाम,
शंख, चक्र, वारिज, गदा, चतुर्हस्त अभिराम ॥"[3]

संसार में एक ही तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है, कृष्ण सबमें हैं और सभी चराचर जगत कृष्ण में है। माता को भयाकुल देखकर कृष्ण कहते हैं-

"मैं तुम मांहि, तुमहु मोहि माहीं, स्वल्पहु विस्मय-कारण नाहीं।
एकहि तत्त्व व्याप्त जग सारा, नहिं कहुँ मैं, तुम मोर, तुम्हारा ॥"[4]

यह सम्पूर्ण चराचर जगत एक कारागार है। ऐसे चराचर जगत् की जो सृष्टि करता है, जो सांसारिक लीलायें अपनी इच्छानुसार करता है, उसे कौन बाँध सकता है-

"यह समस्त संसार, भीतहिं बन्दीधाम सम।
को तेहि बाँधन हार, खुलि खेलत भव-नाट्य जो।"[5]

1-कृष्णायन, पृष्ठ-1, 2-पृष्ठ-2, 3-पृष्ठ-13, 4- पृष्ठ-13, 5-पृष्ट-14

शिशु कृष्ण की अलौकिकता यमुना पार होते समय दृष्टिगत होती है जब चरणस्पर्श से यमुना उथली होकर वसुदेव जी का मार्ग प्रशस्त करती हैं।[6] पं० द्वारका प्रसाद मिश्र श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म मानते हैं। कृष्ण गुण-कर्म रहित हैं, अज हैं, परम तत्त्व हैं तथा जो शिव ब्रह्मा के द्वारा जाने नहीं जा सकते, जिसकी क्रीड़ा का परिणाम यह संसार है, ऐसे कौतुकी भगवान् कृष्ण को माँ यशोदा वत्स, लाल, सुत, छौना आदि कहकर खिलौना प्रदान करती हैं।[7] श्रीकृष्ण प्रलयकाल तक जागरण अवस्था में रहते हैं, सम्पूर्ण सृष्टि के सोने पर भी जो जागते रहते हैं, ऐसे परम ब्रह्म श्रीकृष्ण को माँ यशोदा पलना पर लोरी गाकर सोवाती हैं[8] व नामकरण संस्कार में वसुदेव जी अपने पुरोहित गर्गाचार्य जी को बुलाते हैं। श्री गर्ग जी "कृष्ण" नाम की घोषणा करते हैं। इस बालक को विष्णु का अवतारी पुरुष और कंस का घातक बताते हुए गर्गाचार्य जी रहस्य का उद्घाटन करते हैं।[9]

एक बार ब्रह्मा जी कृष्ण की अलौकिकता की पहचान हेतु ग्वाल-बाल, वत्स गायों को ब्रह्मलोक चुरा ले गये थे। इसका आभास भगवान् हरि को हो गया। फलतः अपनी कौतुकी शक्ति से बनवारी श्रीकृष्ण उन्हीं-उन्हीं रूपों में ग्वाल-बालादि की रचना कर दी। ब्रह्मा घबड़ा गये, भयभीत होकर ग्वाल-बाल, वत्स, गौ आदि लेकर कृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुए। ब्रह्मा की प्रार्थना से कृष्ण के अलौकिक रूप, ईश्वर होने का स्पष्ट संकेत मिलता है-

"मैं विधि एक लोक निर्माता, रोम रोम प्रभु बँधे विधाता।
तुम योगेश, योग साकारा, योग शक्ति सिरजत भवसारा।
संस्सृति अणु-अणु व्याप्त तुम, प्राण रूप भगवान्।
चीन्हेउ प्रभुहिं न वेष यहि छमहु मोर अज्ञान ॥"[10]

गोचारण प्रसंग में ब्राह्मणों की पत्नियाँ ग्वाल-बालों तथा कृष्ण को भोजन देकर उनका सत्कार करती हैं। घर लौटकर कृष्ण के साक्षात्कार की बात कहती हैं। ब्राह्मणों को पछतावा होता है कि कृष्ण हमें नहीं मिले। वे कृष्ण को विभु ब्रह्म की संज्ञा से अभिहित करते हैं-

"जप तप यज्ञ समाधि बिनु, इनहिं मिले विभु आप।
भक्ति रहित हम वेद पढ़ि, दीन्हेउ जन्म गँवाय ॥"[11]

इन्द्र-गर्व-शमन होने पर कृष्ण के चरणों में इन्द्र प्रार्थना करके अपनी ढिठाई पर पश्चात्ताप करते हैं। कृष्ण और इन्द्र की वार्ता तथा इन्द्र के द्वारा कृष्ण के अभिषेक की बात ब्रज में फैल जाती है। सभी

6-"बाढ़ेउ जल मुख लगि पल माहीं, बूड़त उबरत पग न थिराहीं।
परसे सरिपद, प्रभु हुँकारा, उतरेउ वारिहु लागे पारा।"- (कृष्णायन, पृ०-14)
7-"जो गुण कर्म विहीन अजाता परम तत्त्व विधि-शिव अज्ञाता।
क्रीड़ा जासु सृष्टि यह सारी, रचत सकौतुक देत संहारी।
कहि कहि वत्स! लाल! सुत! छौना, दीन्हे तेहि बहुमातु खिलौना।" -(कृष्णायन, पृष्ठ 16),
8-"जागत जो लयकाल हूँ, संसृति सकल सोवाय। पलना रही सोवाय तेहि, यशुमति लोरी गाय।"-कृ., पृष्ठ-16
9-"भाषेउ ऋषि धरि धैर्य हठाता" जन्मे परब्रह्म साक्षाता। असुर विनाशन, जनहितकारी, नाम कृष्ण, विष्णुहिं अवतारी। कंस विनाश जासु कर होई, शिशु-स्वरूप प्रकटेउ ब्रज सोई। पूर्व जन्म यशुमति तप कीन्हा, दूध पियावन हितवर लीन्हा। बाल-केलि लीला मयी, सकल अलौकिक कर्म। पालहु विस्मय भीति तजि, प्रकटहु नहिं विभु-मर्म। वही, पृ. -19 10-वही, पृष्ठ-30, 11-वही, पृष्ठ-37।

कृष्ण को ब्रह्म का अवतार घोषित करते हैं।[12] कृष्ण स्वयं मथुरा दही बेचने वाली ब्रजनारियों से अपने स्वरूप का कथन करते हैं। इससे अनेक अनादि, अलख, अनामी रूप का आभास होता है-

"दूध दही तुम बेचन हारी, सकहु चीह्नि नहिं मोहिं गँवारी।
मैं त्रय लोक, सूर्य, शशि-स्वामी, अविदित, अलख, अनादि, अनामी।"[13]

संसार में एक ही तत्त्व व्याप्त है किन्तु भेद-दृष्टि से पुरुष और नारी भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ते हैं। कृष्ण कहते हैं-

"धर्म सत-क्रिया सदृश्या हम, बोध बुद्धि अनुहारि।
व्याप्त विश्वभरि तत्त्व इक, दिखत पुरुष अरु नारि॥" - (कृष्णायन, पृष्ठ-54)

अपने कर्मों की ओर संकेत करते हुए राधा से हरि कहते हैं-"मेरा पूर्णकला अवतार है, मेरे विविध चरित्र हैं, मेरा निवास असंख्य स्थलों पर है, मैं जन्म कहीं लेता हूँ और शैशव-यापन कहीं करता हूँ। कहीं युद्ध करता हूँ तो कहीं समर से पलायन करता हूँ। कहीं पुर संस्थापन, कहीं सन्धि, कहीं विजय प्राप्त करता हूँ। कहीं वेणु बजाता हूँ तो कहीं चक्र चलाता हूँ। कहीं प्रेम करता हूँ तो कहीं विवाह करता हूँ। कहीं शाक खाता हूँ तो कहीं मधु पकवान खाता हूँ। जिस प्रकार जगत का जीवन जटिल है उसी प्रकार मेरे कर्म भी जटिल हैं। ज्ञानीजन ही इस चरित्र के मर्म को जान पाते हैं।"[14] कृष्ण को कंस धनुष यज्ञ के मल्ल-अखाड़ों में बुलाना चाहता है। उद्धव जी आज्ञा पाकर गोकुल की ओर अग्रसर होते हैं। मार्ग में हरि-यश का ध्यान आने पर उनके ब्रह्मत्व का आभास करते हैं और यह कहते हैं कि कृष्ण धरणी के भय-भार को नष्ट करने आये हैं-

"सुनियत कृष्ण ब्रह्म अवतारा प्रकटे हरन धरणि-भय-भारा।
वधहिं जो कंसहिं मधुपुर आयी, मिलहिं मोहि यश विश्व भलाई।"[15]

एक ब्रज गोप कहता है कि कृष्ण विधाता हैं। इनके माता-पिता नहीं हैं। जहाँ चाहते हैं जन्म लेते हैं और क्षणमात्र में उसका परित्याग कर देते हैं-

"बोलेउ कोउ-ये आपु विधाता, इनके कोउ न नात पितु माता।
X X X X X
जन्महि जब चाहहिं जहाँ, त्यागहिं पुनि पल माहिं।
नेह-नीति जानहिं नहीं वसति दया उर नाहिं।" - (कृष्णायन, पृष्ठ-62)

मथुरा के पुरजन इन्हें कहीं देवता और कहीं व्यापक भगवान् की संज्ञा से अभिहित करते हैं-

"प्राकृत नर न बन्धु ए दोऊ मनुज रूप धृत सुर ये दोऊ।
कहत अन्य पुरजन मति माना, मानत हम ये विभु भगवाना।" -(कृष्णायन, पृष्ठ-75)

एक स्थान पर उद्धव जी नन्द से कहते हैं कि कृष्ण अनादि, अरूप, अकारण नारायण, अच्युत, जगतारण व्यापक ब्रह्म हैं-

"कृष्ण अनादि, अरूप, अकारण, नारायण, अच्युत, जगतारण।
व्यापक ब्रह्म सदा सब पाहीं, बिरह-प्रसंग तहाँ कछु नाहीं।"-(कृष्णायन, पृष्ठ-126)

12-"फैलेउ पल महँ वृत्त ब्रज, श्याम ब्रह्म अवतार" -कृष्णायन, पृ०-46, 13-वही, पृष्ठ-47, 14-वही, पृष्ठ-54, 15-वही, पृष्ठ-59

अर्जुन से कृष्ण जी कहते हैं कि मैं प्राणियों का ईश्वर एवं जन्मविहीन आत्मा वाला हूँ। जब पृथ्वी पर धर्म का ह्रास होता है और सज्जन पापियों से त्रसित होते हैं तब मैं अपनी इच्छा तथा माया से सगुण अवतार लेता हूँ।[16]

पुराणों में ऐसे ही ईश्वर की कल्पना की गई है। अर्जुन को समझाते हुए कृष्ण कहते हैं-"मुझे जो सर्वत्र देखता है और सम्पूर्ण विश्व को मुझमें देखता है उसमें मैं और वह मुझसे कभी बिछुड़ता नहीं। जो एकत्व भाव से मेरा भजन करता है वही योगी मुझमें निवास करता है।[17] जिस प्रकार एक सूत्र में मणियाँ गुँथी रहती हैं, उसी प्रकार मुझसे सम्पूर्ण चराचर जगत गुँथा हुआ है। मैं जल का रसरूप एवं कवि शशि की प्रभा हूँ। वेदों में मैं ओंकार हूँ, अग्नि का तेज, पृथ्वी की गंध, मनुष्यों का पौरुष, तपस्वियों का तप, सभी प्राणियों का बीज मैं ही हूँ।[18] मैं त्रिगुणात्मक माया से परे हूँ, निर्गुण हूँ।"[19] शर-शैय्या पर सोये हुए भीष्मपितामह अपने सम्मुख उपस्थित कृष्ण को देखकर स्तुति करते हैं-"हे स्वामी! आप सर्वप्रथम विश्व की रचना करने वाले हैं। सृष्टि का पालन एवं संहार आप ही करते हैं। विधाता, विष्णु एवं शंकर रूप आपको नमस्कार है। आप सर्वज्ञ और सबके लिए अगम्य हैं। आप सर्वेश, अनीश्वर, अज्ञात, स्वयंभू, सर्व विधाता हैं।"[20] तपोमूर्ति मैत्रेय जी "तुम विभु, मैं प्रभु! भक्त तुम्हारा" कहकर कृष्ण के परात्पर ब्रह्म का आभास कराते हैं।[21] स्वर्गारोहण के अवसर पर मैत्रेय जी से कृष्ण जी का जो वार्ता-उपदेश हुआ है, वह कृष्णायन का हृदय-तत्त्व है। कृष्ण कहते हैं कि पाषाण की पूजा करके लोग मेरी ही पूजा करते हैं क्योंकि मैं सभी वस्तुओं में व्याप्त हूँ।[22] कृष्णायन में ऐसे अन्यान्य प्रसंग आये हैं जहाँ कृष्ण के ब्रह्मत्व का उद्घाटन हुआ है। यत्र-तत्र तो मिश्र जी स्वयं पाठक को ध्यान दिलाते रहते हैं कि कृष्ण पूर्ण विभु हैं। यशोदा कृष्ण को जगत के प्राणी मात्र का बीज मानती हैं।[23] एक स्थान पर राधा परम प्रभु को अपने प्राणेश ब्रजेश में देखती हैं।[24] प्रियप्रवास में अनेक स्थलों पर कृष्ण के ब्रह्मतत्व की पूर्ण झलक दृष्टिगत होती है। राधा के प्रियतम विभुरूप में सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं और सम्पूर्ण विश्व उन्हें समाया हुआ है।[25] इस प्रकार कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। रत्नाकर जी के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। उद्धव जी ने ब्रह्म को व्यापी एवं अनन्त कहकर योग के द्वारा त्रिपुटी में रखकर आन्तरिक चक्षुओं से देखने का उपाय बताया है।[26] द्वापर की कुब्जा को कृष्ण विश्व बिहारी के रूप में दिखाई पड़ते हैं।[27] कुब्जा के मानसिक प्रियतम नर के रूप में नारायण ही हैं।[28] फेरिमिलिबो में राधा से नारद जी कृष्ण के विराट रूप का उद्घाटन करते हैं।

एक ही समय में नारद जी कृष्ण को तीस कार्य करते देखते हैं। कृष्ण के इस विराट रूप का संकेत कथात्मक रूप में नारद ने किया है जिससे उनके व्यापक रूप ब्रह्मत्व का प्रकाशन होता है।[29] कृष्ण की स्तुति करते हुए नारद जी कृष्ण को अनादि संभव की संज्ञा से अभिहित करते हैं। कृष्ण विश्वरूप, सुरभूय, मायापति, प्रलय-उत्पत्ति के कारण हैं। जग-वन्दनीय रूप धारण किये हुए दुष्टों का संहार करते हैं।[30] योगी-सिद्ध-साधु जिसे जप-तप के द्वारा प्राप्त करते हैं, उसे रुक्मिणी आदि सहजतया मनोरंजन का साधन बनाती है। मन, वाणी, कर्म के द्वारा जहाँ पहुँचा नहीं जा सकता, ऐसा उनका स्थान है। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के श्रीकृष्ण स्वामी हैं। सम्पूर्ण जगत में उनकी व्याप्ति है। वे अनूप हैं, अविकारी हैं,

16-कृष्णायन, पृष्ठ-311, 17-कृ. पृष्ठ-317, 18-कृ. पृष्ठ-319, 19-कृ. पृष्ठ-319, 20-कृ. पृष्ठ-458, 21-कृ. पृष्ठ-501, 22-कृ. पृष्ठ-508, 23-प्रियप्रवास, पृष्ठ-80, 24-प्रि. पृष्ठ-80, 25-प्रि. पृष्ठ-255, 26-उद्धव शतक, रत्नाकर, पद-38, 27-द्वापर, पृ.143, 28-पृ.144, 29-फेरिमिलिबो, पृष्ठ 89-90, 30-पृ.91

अनामय हैं, अप्रमेय हैं। सूर्य श्रीकृष्ण के नेत्र हैं, दिशायें ही कर्ण हैं, हृदय प्रदेश धर्म का आसव है।[31] सर्वतोभावेन पं० अनूप शर्मा ने कृष्ण को ब्रह्म, विभु, ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

ब्रजकोकिल पं० सत्यनारायण "कविरत्न" ने भी कृष्ण भगवान् के अलौकिक और पारब्रह्म रूप का संकेत किया है। श्रीकृष्ण की स्तुति में वे कहते हैं, "भगवन्! आपकी शक्ति एवं लीलाओं की थाह नहीं है। आप विधाता हैं। मकड़ी के जाल की भाँति आप जगत-जाल की सृष्टि एवं विस्तार करते हैं। सम्पूर्ण जगत की सृष्टि निष्काम भाव से लीलापूर्वक करके उसे तत्क्षण नष्ट भी कर देते हैं, ऐसा वेदों का मत है। संसार में आप और आपसे संसार व्याप्त है। आप सबमें वास करते हैं। इसीलिए आपको वासुदेव कहा जाता है। संसार के सभी रंगों का सम्मेलन आपके शरीर में है। इसीलिए ही आप घनश्याम (श्याम मूर्ति रंग-बिरंगे मेघों की भाँति सुन्दर) कहे जाते हैं। आप परम पुरुष (परमात्मा) होकर प्रकृति-नटी के साथ अपार लीला करते हैं। सबमें आप व्याप्त हैं किन्तु अविकारी हैं, यही आश्चर्य है। आप विष्णु एवं विश्व रूप भगवान् हैं।[32] एक अन्य स्थल पर भ्रमरदूत प्रसंग में कृष्ण को आनन्द पुंज नित्य एक रस बताया गया है। पुराणों के अनुसार धर्म के ह्रास एवं अधर्म की वृद्धि होने पर पृथ्वी का भार उतारने हेतु, परमात्मा स्वरूप धारण करता है। कविरत्न जी के कृष्ण भी ऐसे ही हैं। वे कंस विनाशक, भू-भार उतारने वाले, पापियों, दुष्टों का उद्धार करने वाले, जन मन-रंजन, गुन-आगर, नागर, नंदकिशोर हैं।[33] आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना की प्रधानता भी रही है। भारतेन्दु जी ऐसे ही भक्त हैं जो युगलमूर्ति की कृपा से अपने जीवन को सफल बनाना चाहते हैं। वे इस ईश्वर की जय-जयकार करते हैं जो ब्रजरूपी समुद्र के मध्य यशोदारूपी सीप से प्रकट होने वाली ब्रजांगनाओं के शृंगारस्वरूप अलौकिक मुक्तामणि (श्रीकृष्ण) के समान हैं।[34]

श्री ब्रजराज के चरणचिह्नों का जो मन लगाकर गुणगान करेगा, वह निश्चय ही इस भवसागर को गोपद की तरह पार कर जायेगा।[35] भारतेन्दु जी के कृष्ण-अजामिल जैसे पापियों को तारने वाले दयानिधान, केशव, करुणभक्तमय हारी, जग-जाल से छुड़ाने वाले, द्रुपदसुता का चीर बढ़ाने वाले, सुदामा को राजा बनाने वाले, गज-गनिका का उद्धार करने वाले, सम्पूर्ण कलाओं से पूर्ण, अर्जुन को अपनी प्रतिज्ञा (मेरे भक्तों का भी विनाश नहीं होता) बताने वाले, वंशी बजाकर वृक्षों को भी रोमांचित करने वाले, स्थावर को जंगम और जंगम को थावर बनाने वाले प्रभु हैं।[36]

कर्ण ने कई स्थानों पर कृष्ण को केशव, अच्युत, भगवान्, गोविन्द, मधुसूदन कहकर सम्बोधित किया है।[37] कृष्ण के ऊपर दोषारोपण करता हुआ कर्ण कहता है कि स्वयं भगवान् कृष्ण उसके साथ धोखा कर रहे हैं। कृष्ण स्वयं दुर्योधन के ऊपर कुपित हो अपने जिस स्वरूप का दरबार में विस्तार किया था, उससे उनके विराट रूप, अनन्त शक्ति, परात्पर ब्रह्म रूप का उद्घाटन हुआ है। दुर्योधन से कृष्ण कहते हैं, "मुझमें आकाश वायु ही नहीं सम्पूर्ण संसार निमग्न है। मुझमें स्वर्ग और संहार-शक्ति भी है। ग्रह, नक्षत्र, चर-अचर जीव, नश्वर मनुष्य, सुर-जाति, सैकड़ों सूर्य, चन्द्र, नदियाँ, समुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रुद्र, लोकपाल आदि सब मेरे अंश हैं। मुझमें गत, आगत और अनागत काल तथा जगत की आदि सृष्टि सभी है।[38] कृष्ण की जिह्वा से सघन अग्नि निकलती है, उनकी साँसों में पवन का जन्म होता है। उनकी सृष्टि

31-फेरिमिलिबो, पृष्ठ 91-92, 32-ब्रजमाधुरी सार, पृष्ठ-368, 33-वही, पृष्ठ-372, 34-भक्त सर्वस्व-भारतेन्दु, दोहा सं०-4, 35-वही, दोहा सं०-23, 36-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-63, 52, 47, 28, 27, 37-रश्मिरथी, पृष्ठ-43, 89, 130, 45, 38-वही, पृष्ठ-45, 26, 27

जिधर पड़ती है उधर ही प्रकृति हँसने लगती है और जैसे नेत्र बंद करते हैं तैसे ही सारी सृष्टि निर्जीव हो जाती है। सृष्टि संचालन इन्हीं के हाथ में है।"[39]

कविवर मैथिलीशरण गुप्त जी कृष्ण को अचिन्त्य, आद्यन्त हीन, अनुपम, अगोचर आदि कहकर अलौकिक शक्ति की ओर संकेत करते हैं। जयद्रथ वध के बाद युधिष्ठिर कृष्ण से प्रार्थना करते हैं, "हे चराचर नाथ! भक्तवत्सल माधव! विश्वेश! सर्वेश! वेदों में तुम विभु हो।[40] हे प्रभो! तुम अनुपम, नित्य, अगोचर, शुभ परात्पर हो। संसार से छुटकारा देने वाले हैं। पद्मलोचन! तुम एक होकर भी अनेक वेष धारण करते हो। तुम आत्मभू, अनादि, अचिन्त्य, अखिलेश हो। तुम्हीं सृष्टि के संचालक, पालक और विनाश कर्ता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) हो! मायापति! जनार्दन! पूर्ण पुरुषोत्तम! आपकी जय हो।"[41] भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर को गले लगाकर आलिंगन किया। श्रीगुप्त जी ने इस मिलन को ईश्वर-जीव का विचित्र संगम कहा है।[42] अमृतलाल चतुर्वेदी के उद्धव जी कृष्ण को अवतारी एवं सम्पूर्ण जल-थल, जीव-जन्तु को मोहने वाला बताते हैं। कृष्ण जगत के संचालक हैं।[43] यहाँ गोपियों के कृष्ण उद्धव के निर्गुण ब्रह्म से बहुत आगे हैं। उद्धव जी निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि स्याम, देव, ऋषि सभी उस निर्गुण को सिर झुकाते हैं।[44] इसके उत्तर में गोपियाँ कहती हैं कि कृष्ण तो अपनी अनन्या आराधिका राधा के चरणों में भी मस्तक झुकाते हैं।[45] हम लोग तो मात्र कृष्ण को ही जानती हैं जो आपके ब्रह्म से भी कम नहीं है। गोपियों के कृष्ण एक अलौकिक ब्रह्म हैं।[46]

धर्मवीर भारती के "अंधायुग" में विदुर के द्वारा कृष्ण के अलौकिकत्व को दर्शाया गया है और गांधारी द्वारा अनास्थावादी आधुनिक दृष्टिकोण रूपायित किया गया है। "समापन" के आदि-वन्दना के रूप में कृष्ण के जिस शब्द ब्रह्म, करुण रहस्यभरण का उल्लेख किया गया है उससे उनके ईश्वरत्व एवं पूर्ण ब्रह्म-विग्रह का स्फुरण हुआ है।[47] कृष्ण स्वयं रणभूमि में अर्जुन से अपने परात्पर ब्रह्म का संकेत करते हैं।[48] गांधारी की ईश्वर के प्रति उपेक्षित आधुनिक दृष्टि में कवि अनास्थावादी विचारों की उपेक्षा नहीं कर सका है।[49] रायगढ़ नरेश राजा चक्रधर सिंह का "रम्यरास" भागवत के "रास पंचाध्यायी" के आधार पर लिखा गया है। इससे सर्वत्र कृष्ण के प्रति कवि आस्थावान है। कृष्ण को आदिनाथ, प्रभो, जगतपति आदि ईश्वरत्व प्रदान करने वाले शब्दों से सम्बोधित किया गया है।[50] यह रास ईश का रास है। इसे देखने के लिए स्वर्ग के देवगण विमानाधिरूढ़ होकर पुष्पवृष्टि करते हैं।[51] ब्रजेश संस्तुति में गोपियों द्वारा कृष्ण के परब्रह्म रूप का चित्रण हुआ है।[52] राधा भाव-तन्मयता में अपने को कृष्ण शक्ति, योगमाया एवं संबल होने की घोषणा करती है। कृष्ण विराट, सीमाहीन हैं।[53] राधा और कृष्ण एक-दूसरे के सहयात्री हैं। अनन्तकाल से वे एक साथ चलते रहे हैं। यह ऐसी जीवन-यात्रा है जिसका अन्त कभी नहीं होता।[54] कृष्ण सृष्टिकर्ता हैं, उनकी इच्छा से सृष्टि होती है और कृष्ण की इच्छा का अर्थ है–राधा की इच्छा। इस प्रकार राधा ही सृष्टि कारण है–

"तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है,
मात्र तुम्हारी इच्छा

39-रश्मिरथी, पृष्ठ-28, 40-जयद्रथ वध, पृष्ठ 92-93, 41-जयद्रथ वध, पृष्ठ 93-94, 42-जयद्रथ वध, पृष्ठ 94, 43-स्याम संदेसौ, पृष्ठ-29, 44-वही, पृष्ठ-60, 45-"सीस के नवाइबे की ऊधौ आप भली कही। राधिका के पाँव सीस स्याम ने नवायौ है।"-स्याम संदेसौ, पृष्ठ-61, 46-वही, पृष्ठ-62, 47-अंधायुग, पृष्ठ-121, 48-वही, पृष्ठ-26, 49-वही, पृष्ठ-24, 50-रम्यरास, छन्द सं० 43, 43, 46, 51-वही, छन्द सं०-126, 52-वही, छन्द संख्या-101, 53-कनुप्रिया, पृष्ठ-38, 54-वही, पृष्ठ-39

और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ हूँ
केवल मैं ! केवल मैं ! केवल मैं !" (कनुप्रिया, पृष्ठ-47)

विष्णु रूप कृष्ण के साथ क्षीरसागर में शेष शैय्या पर क्रीड़ा करने वाली राधा ही है-

"जिसकी शेष शैय्या पर
तुम्हारे साथ युग-युगों तक क्रीड़ा की है
आज उस समुद्र को मैंने स्वप्न में देखा कनु।" -(कनुप्रिया, पृष्ठ-79)

राधा

पुराणों में राधा-माधव के अभेदत्व का सर्वत्र प्रतिपादन बहुशः हुआ है। कृष्ण ब्रह्म हैं तो राधा उनकी प्रकृति हैं। कृष्ण विष्णु हैं तो राधा उनकी लक्ष्मी हैं। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में दोनों की एक-रूपता सहजतया निबद्धित है। आधुनिक हिन्दी कविता में भी इस परम्परा का यथाक्रम निर्वाह हुआ है। रास प्रसंग में स्वांकासीन राधा से कृष्ण कहते हैं-"हम दोनों एक हैं, ऐसा सम्पूर्ण वेदशास्त्रों का मत है। जैसे क्षीर में धवलिमा, अग्नि में दाहिका शक्ति है, वैसे तुम मुझमें हो। तुम्हारे वियोग में मेरी कोई गति नहीं है। मैं सूर्य हूँ, तुम दिनप्रभा हो। मैं चन्द्रमा हूँ, तुम चन्द्राभा हो। मैं स्रष्टा हूँ, तुम सृष्टि हो। मैं दीपक हूँ तुम शिखा हो। मैं जल हूँ, तुम शीतलता हो। मैं अग्नि हूँ, तुम स्वाहा हो। मैं धनेश हूँ, तुम अनुपम ऋद्धि हो। मैं अर्थ हूँ, तुम वाणी हो।"[55] राधाकृष्ण की भक्ति हैं जिसके नेत्र नेह-सागर हैं। ब्रज की रक्षा हेतु राधा का प्राकट्य हुआ है। प्रेम-वृक्ष को दृग्-वारि से सींचना राधा का अभीष्ट था। कृष्ण ऐसा ही परामर्श राधा को राक्षसों के संहार के पूर्व देते हैं।[56] कृष्ण कहते हैं कि राधा की कृपा से जगत धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करता है।[57] कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के अवसर पर राधा और कृष्ण का मिलन अलौकिकता का द्योतक है। भगवान् श्रीकृष्ण राधा-रूप तथा राधा कृष्ण-रूप के दृश्य का प्रदर्शन करते हैं। सांसारिक भ्रम का पर्दा अर्थात् कायारूपी माया का सर्वनाश हो जाता है, भगवान् श्रीकृष्ण और राधा का यह अनुपम मिलन मुक्त जीव और भगवान् का मिलन है।[58] राधा और कृष्ण एक प्राण-के दो रूप-विग्रह हैं।[59] श्रीकृष्ण स्वयं राधा और अपने स्वरूप के तात्त्विक सम्बन्ध का उल्लेख करते हैं-"मैं और राधा एक ही हूँ। हम दोनों में द्वैतभाव की कल्पना संसार की भ्रान्ति मात्र ही है। सभी ब्रजवासी इस रहस्य को जानकर सुख-शान्ति प्राप्त कर सकेंगे।"[60] "द्वापर" में भी मैथिलीशरण गुप्त के द्वारा राधा-कृष्ण को अभिन्न घोषित किया गया है।[61] आधुनिक युग के आदिकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में राधा का दार्शनिक रूप चित्रित नहीं हुआ है। भारतेन्दु जी राधा-माधव युगल-मूर्ति के सच्चे उपासक थे। "भक्त सर्वस्व" में राधा के युगल चरण तथा

55- कृष्णायन : अवतरण काण्ड, पृष्ठ-54,
56- "तुम ब्रज बसहु, करह रखवारी, सींचहु प्रेम-बिटप, दृग-वारी।
उत मैं करहुँ शूल निर्मूला, फूलहिं प्रेम-वृक्ष इत फूला।" - कृष्णायन, पृष्ठ-55
57- धर्मादिक फल लागहिं चारी, लहरिं प्रिया जग कृपा तुम्हारी। - कृष्णायन : अवतरण काण्ड, पृष्ठ-55,
58- "राधा-माधव मिलन अनूपा, हरि राधा, राधा हरि-रूपा।
बिनसेउ काया-माया-भाना, भेंटे मुक्त-जीव भगवाना।" -कृष्णायन, गीता काण्ड, पृष्ठ-294
59- "जानत ब्रज हरि-राधिका, एक प्राण, दुइ देह।" -कृष्णायन, पृष्ठ-295
60- "एकहि मैं अरु राधिका, द्वैत-भाव भव-भ्रान्ति,
ब्रजजन समुझि रहस्य यह, लहिहैं पुनि सुख शान्ति।" -184 कृष्णायन, पृष्ठ-126
61- "एक मूर्ति, आधे में राधा, आधे में हरि पूरे" - द्वापर, पृष्ठ-203

"विनय प्रेम पचासा" में वृन्दावन-देवी के रूप में जय-जयकार किया गया है।[62] राधा की भक्ति में एक पद देखिये-

हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्री नन्दनन्दन के बृषभानु लली ठकुरानी के॥
निरभय रहत बदत नहिं काहू डर नहिं डरत भवानी के।
"हरीचन्द्र" नित रहत दिवाने सूत अजब निवानी के॥

अपने व्यक्तिगत स्वभाव के परिचय-पत्र में भारतेन्दु जी राधा को अपनी इष्टदेवी के रूप में मानते हैं। वे संसार में रसिकों के सब कुछ हैं और यदि किसी के गुलाम हैं तो वह हैं राधा रानी के। एक अन्य स्थल पर राधा की वन्दना करते हुए अपनी भक्ति भावना व्यक्त करते हैं-

"ब्रज के लता-पता मोहिं कीजै।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै॥
आवत जात कंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख यह वर "हरिचन्द" को दीजै॥"

धर्मवीर भारती की राधा का शक्ति रूप में चित्रण हुआ है। राधा-कृष्ण से कहती हैं, "मैं तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीलाओं की एकांत संगिनी हूँ। राधा-कृष्ण की योगमाया, संबल हैं। सम्पूर्ण सृष्टि में राधा की परिव्याप्ति है।[63] अनादि काल से कृष्ण के साहचर्य में चलने वाली राधा-कृष्ण के अलौकिकत्व में सहयोग प्रदान कर एक सच्चे सहभागी के कर्त्तव्य का निर्वाह करती हैं।[64] कृष्ण की इच्छा मात्र से सृष्टि का सृजन-विनाश एवं विस्तृत जीवन-प्रक्रिया का अस्तित्व निर्मित है। कृष्ण की इच्छा राधा हैं। अस्तु, राधा ही सृष्टि की संचालिका हैं।[65] राधा और कृष्ण की अतृप्त क्रीड़ा की अनन्त पुनरावृत्तियों को सृष्टि-क्रम बताया गया है। राधा और कृष्ण का केलि क्रीड़ा में प्रवृत्त होना सृष्टि का प्रारम्भ एवं क्रीड़ा अवसान ही सृष्टि-लय है।[66] राधा के संकेत से ब्रह्माण्ड दिशा बदल सकते हैं।[67]

माधव की गति असीम है, वे अचिन्त्य, अगोचर, असीम, अव्यय, अद्वैत, अनादि और अनन्त हैं।[68] उनका गीताकार योगेश्वर रूप विराट है।[69] राधा उन्हें विश्व-विलासी, पारावार विहारी, नित्यानन्दी, निर्मोही और स्वेच्छाचारी मानती हैं।[70] राधा-कृष्ण को देश-काल के बाहर बताती हैं-

"तुम हो निरुपाधि, कि देश काल के बाहर,
चिद्घन प्रकाश आकाश अनन्त प्रभास्वर। - (राधा-जानकी वल्लभशास्त्री, पृष्ठ-98)

"जरा" नामक व्याध जब कृष्ण के चमकते हुए तलवे को कृष्ण सार-शावक का शीर्षभाल समझकर अपने तूणीर से अन्तिम वाण का सन्धान करता है, तब आकाश में बिजली कौंध जाती है, भीषण आवाज होती है, शोक-सूचक वाद्य सुनाई पड़ते हैं। सहसा चिन्ताकुल व्याध के कथन से कृष्ण के दार्शनिक स्वरूप का प्रकाशन होता है-

वह न हिरण-शावक था कोई, वह तो थे श्रीकृष्ण,
चिर योगी, अनासक्त, स्थित प्रज्ञ द्वापर के मधुसूदन।[71]

62-भारतेन्दु काव्यामृत : सम्पादक - प्रो० रामचन्द्र श्रीवास्तव "चन्द्र" पृष्ठ 1 तथा 39, 63-कनुप्रिया : धर्मवीर भारती, पृष्ठ 23, 38, 64-वही, पृष्ठ-39, 65-वही, पृष्ठ-47, 66-वही, पृष्ठ-46, 67-वही, पृष्ठ-51, 68-माधव-माधवी-डॉ० माधवी लता शुक्ल, पद-28, 69-देवकी : उमाकान्त मालवीय, पृष्ठ-170, 70-राधा : जानकी वल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-98, 71-योगनिद्रा : कृष्णानन्द पीयूष, पृष्ठ-6

(ख) लीलागान परम्परा तथा उद्भावनायें

"लीला" शब्द "केलि एवं विलास" का सूचक है। लीला का सम्बन्ध अवतारवाद से है। यह देवत्व से मानव बनने की कहानी है। वल्लभाचार्य ने विलास की अतृप्यमाण इच्छा को लीला कहकर लीला की व्याख्या प्रस्तुत की है।[1] ब्रह्म की अतृप्यमाण इच्छा जब केलिविलास का समाश्रयण चाहती है, तब ब्रह्म अपनी अभिन्न शक्तिरूपा सहयोगिनी के साथ वसुन्धरा पर पृथ्वी के ही दु:ख निवारणार्थ अवतार रूप को स्वीकार करता है और तब वह लीलापुरुषोत्तम अपनी शक्ति से पूर्ण विलय प्राप्त करता है। लीला के सम्बन्ध में डॉ० रमाशंकर तिवारी का मन्तव्य यहाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य है- "वस्तुत: स्त्री-पुरुष जब केलियों में अपने व्यक्तित्वों को एक-दूसरे में पूर्ण विलय कर देते हैं, तभी लीला की आत्मा का प्रादुर्भाव होता है।"[2] लीला शृंगार के सम्बन्ध में डॉ० तिवारी आगे कहते हैं, "अतएव, जिस शृंगार में विलास की निरन्तर लहलहाती लता का कुसुमित सौष्ठव चमक उठे, वही लीला शृंगार कहा जायेगा।"[3] भगवान् के अनन्त अवतार हैं और अनन्त लीलायें हैं, अवतार लेने के अनन्त कारण भी हैं। गीता में अवतार के तीन कारण बताये गये हैं। सगुण साकार भगवान् के अवतार का मुख्य कारण साधुओं का परित्राण, दैत्यों का विनाश एवं धर्म संस्थापना है।[4] वस्तुत: दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों में तपते हुए जीवों को देखकर एवं वेद-शास्त्रों के निर्माण करने पर भी जीवों का उद्धार न होते देखकर भगवान् सगुण साकार बनकर अवतार रूप में मधुर-मधुर लीलाओं द्वारा उन मायोन्मत्त जीवों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जीव भी नाम, रूप, गुण एवं लीलादिकों का अवलम्बन कर कृतकार्य हो जाता है।

हिन्दी कृष्ण-काव्यों में लीलागान का जो कुछ विस्तार हुआ है उसके मूल में विशेषकर हमारे धर्म-प्राण पुराणों-विष्णु, हरिवंश, ब्रह्मवैवर्त पुराण सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं माननीय हैं, इनसे हिन्दी के प्राय: सभी कृष्ण-भक्त कवि प्रभावित हुए हैं। मध्ययुगीन सूर आदि कवियों के लीलागान का आधार-बिन्दु श्रीमद्भागवत ही रहा है, भले ही उनकी अपनी कुछ मौलिकता रही हो। हिन्दी साहित्य में लीलागान की परम्परा भक्ति-भावना से प्रतिफलित हुई है।

आधुनिक कृष्ण-काव्यों में भी कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का चित्र प्रस्तुत हुआ है। ऐसी लीलाओं का चित्र प्रस्तुत करने वाले प्राय: भक्त कवि ही हैं। भक्तों के अतिरिक्त भी उन सभी कवियों के काव्यों में लीलागान परम्परा का कुछ सीमा तक निर्वाह हुआ है, जिनका उद्देश्य कृष्ण चरित्र का अनुशीलन एवं राधा-कृष्ण को नया रूप देना था। ऐसे कवियों में प्रमुख हैं पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र, देवी रत्न अवस्थी "करील" एवं हरिऔध। आगे हम श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण की लीलाओं को आधार-बिन्दु मानकर आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्यों के लीलागान का चित्रांकन करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि इन आधुनिक कवियों की लीलागान-सरिता में कितना दूध है और कितना पानी, कितना सनातन है और कितना नया, कितना परम्परा से प्राप्त है और कितना मौलिक उद्भावनाओं से सराबोर, कितना भक्ति-विह्वल हृदयों का उद्गार है और कितना आधुनिकता से प्रेरित।

1-भागवत के तीसरे स्कन्ध की सुबोधिनी टीका।, 2-सूर का शृंगार वर्णन : डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ-80, 3-वही, पृष्ठ-80, 4-"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपिसन् प्रकृति स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।" "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।" "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।" -गीता, अध्याय-4/6, 7, 8

कृष्ण लीला के विभाग

लीला की प्रकृति एवं लीला-स्थल के आधार पर लीलाओं के दो विभाजन किये जा सकते हैं। लीला की प्रकृति वाले विभाजन के मूलत: दो विभाग हैं-प्रथम के अन्तर्गत कृष्ण के विस्मयकारी संहार कार्य हैं जिसका श्रीगणेश पूतना-उद्धार से होकर कंस एवं उसके सहयोगियों के वध तक समाप्त हो जाता है और द्वितीय में कृष्ण का शुद्ध आनन्द रूप प्रकाशित हुआ है जिसे सुख-क्रीड़ायें कह सकते हैं। ऐसी लीलायें जन-जन के मन-मन को आह्लादित करती हैं। इन लीलाओं में जन्म, गोकुल में प्राकट्य, नालछेदन, छठी, नामकरण, अन्नप्राशन, वर्षगाँठ, कनछेदन आदि तथा उनके नित्य-कर्म-पालन, झूलना, घुटनों-चलना, पैरों-चलना, खेलना, चन्द्र-प्रस्ताव, कलेवा, भोजन, छाक, मृत्तिका-भक्षण, माखन चोरी, गोचारण, वन से प्रत्यागमन आदि मुख्य आनन्द लीलायें हैं।

लीला-स्थल के आधार पर निम्नलिखित विभाग किया जा सकता है जिस डॉ० जगदीश गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध "कृष्ण-भक्ति-काव्य" के पृष्ठ 54 पर एक श्लोक उद्धृत कर स्पष्ट किया है।[1]

1-ब्रज-लीला, 2-मथुरा-लीला, 3-द्वारका-लीला

पुन: ब्रज-लीला के दो विभाग किये गये हैं। इन लीलाओं में कृष्ण की लौकिक एवं अलौकिक सभी लीलायें समाहित हैं-

1-गोकुल-लीला

(अ) अलौकिक, (ब) लौकिक

2-वृन्दावन-लीला

(अ) अलौकिक, (ब) लौकिक

आगे लीला के इसी क्रम में आधुनिक कृष्ण-काव्यों की लीलागान परम्परा का यथाचित्रण रूपायित किया जा रहा है।

गोकुल की अलौकिक लीलाएँ

कृष्ण-जन्म

कंस ने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाया और राज्य-शासन-सूत्र हाथ में लिया। सम्पूर्ण सदाचारी, धर्म-रत राज्य कर्मचारियों को निर्वासित कर दानवों, असुरों तथा यवनों को राज-पद पर आसीन कर दिया। धर्म केवल उपहास बनकर रह गया। ब्राह्मणों तथा विष्णु भक्तों को राजपुरुष अधिक त्रास देने लगे और नष्ट करने लगे। मखशालाओं, हरिमन्दिरों एवं गुरुकुलों में शृगालों तथा उलूकों का वास हो गया। निशिदिन कंस के द्वारा पाप-कर्म को बढ़ावा देने के कारण मानव-जीवन अभिशाप बन गया, जिसका गुरु यवनेश, श्वसुर राक्षस हो, ऐसे कंस के पाप-कर्म का विवरण कौन प्रस्तुत कर सकता है। राज-भक्ति ही हरिभक्ति हो गई, राजेच्छा ही जन-धर्म, जन-कर्म तथा राजवचन श्रुति-ऋषि-गिरा बनकर रह गई।[2] भारतमाता, जब इसे सहन न कर सकी, तब जन-रक्षक श्री हरि का स्मरण किया, क्षीर-सागर में सुहावना शब्द हुआ-

1-"गोकुले मथुरायां च द्वारावत्यां तत: क्रमात्।
कृष्ण लीलात्रिधा प्रोक्ता तत्तद्भेदैरनेकधा॥" - श्रीकृष्ण लीला संग्रह : श्रीधरकारिका, 2-कृष्णायन, पृष्ठ-8,

"अवगत मोहिं महि-क्लेश अनन्ता, खल-पद-दलित धर्म श्रुतिसन्ता।
बन्दी भवन मनुजता आजू, जल थल व्योम व्याप्त पशु-राजू।
हरिहौं बेगि धर्म महिभारा, लैहौं पूर्ण कला अवतारा।
तजहु न धर्म, आत्म-सन्माना, बिनु घन तिमिर न स्वर्ण बिहाना।"[7]

उधर हरि ने देवताओं को यादव, गोप आदि वेष धारण करने हेतु गोकुल में भेजा, वेद-ऋचायें गोपियाँ बनीं और इधर कृष्ण विश्व-उद्धार-हित बालक रूप में अवतार लेते हैं। बन्दीगृह में बालक की शोभा देखकर वसुदेव-देवकी का हृदय-कुमुद खिल गया किन्तु कंस की नृशंसता का स्मरण कर उर-शूल से पीड़ित हो गया। असहाय दम्पति को देखकर भगवान् ने अपना चतुर्भुज रूप प्रकट किया।[8] श्रीमद्भागवत में कृष्ण का अवतार सर्वप्रथम चतुर्भुज रूप में होता है, पश्चात् देवकी और वसुदेव की प्रार्थना पर कृष्ण बालक रूप धारण कर माता-पिता की इच्छा उसी प्रकार पूर्ण करते हैं जिस प्रकार श्रीराम कौशिल्या को सन्तुष्ट करते हैं। इस परम्परा का अनुसरण भक्त कवि ठा० गोविन्द सिंह, पं० रूप नारायण पाण्डेय, श्री बाल मुकुन्द चतुर्वेदी तथा श्री गोपाल दास ने किया है। उक्त कवियों के कृष्ण चतुर्भुज रूप में प्रकट होते हैं और बाद में माता-पिता की प्रार्थना एवं भयाक्रान्तावस्था से बालक रूप धारण करते हैं।[9] इसके विपरीत पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र के कृष्ण बालक रूप में प्रथम ही प्रकट होते हैं और बाद में अपना मूल रूप दिखाकर दम्पति को चमत्कृत करते हैं। प्राय: सभी कवियों ने जन्म के समय किंकर्तव्यविमूढ़ वसुदेव को कृष्ण द्वारा यह परामर्श प्रस्तुत कराया है कि वे नवजात शिशु को यमुना के उस पार गोकुल में नन्द के यहाँ सुरक्षित रखकर वहाँ से सद्य: उत्पन्न कन्या को वापस ले आवें। "श्रीकृष्ण-चरित" में चतुर्भुजी भगवान् से देवकी बाल्यावस्था तक ब्रज में रहकर प्राणरक्षा करने की प्रार्थना करती है।[10] नवजात शिशु को लेकर वसुदेव गोकुल की दिशा में चल पड़े। यमुना में प्रवेश करते ही "वारि-प्रवाह" वृद्धि पाने लगा मानो यमुना जी "हरिपद परसन हेतु" हृदय में उल्लास भर रही हों। भगवान् ने चरण स्पर्श करा दिया, यमुना का वारि-प्रवाह शिथिल पड़ गया और तब हुलास मन से नन्द आगे बढ़े।[11]

सुप्त योगमाया को लेकर नन्द वापस हुए और प्रात: होते ही कन्या जन्म की सूंचना कंस को प्रेषित की। अनेक तर्क-कुतर्क के बाद कंस ने जब शिला पर कन्या को पछाड़ना चाहा, तब कन्या ने कहा कि तेरा वधिक अन्यत्र उत्पन्न हो गया है। ऐसा कहकर कन्या आकाश में चली गई है।[12] यहाँ यमुना-जल

7-कृष्णायन, पृष्ठ-8, 8-"निमिषहिं मँह शिशु वेष दुरावा, रूप चतुर्भुज प्रभु प्रगटावा।" - (कृष्णायन, पृष्ठ-13)
9-(अ) "आजानु बाहु की चार भुजा दो शंख चक्रम करती धारण।
दो में शोभित ये गदा पद्म यों प्रकट हुए श्री नारायण।" श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ-37
(ब) "माता रुचि बालक बने सध जात आकार। माया मन मोहित किए, छीने ज्ञान विचार।
ताछी छिन घर नंद के, भयौ शक्ति अवतार। काहू ने जान्यौ नहीं, या कौ भेद अपार॥" श्रीकृष्ण-कौस्तुभ, पृष्ठ-139
(स) 'परम पुरुष परमात्मा, निज सुत को तब जान। हस्त जोड़ वसुदेव ने, करा कृष्ण गुणगान॥'-गोपाल विलास, पृ०27
10-"इसलिए आप यह रूप छोड़ साधारण बालक बन जाओ।
हम सबकी जान बचाने को बचपन तक ब्रज में हो आओ॥" - श्रीकृष्ण-चरित, पृष्ठ-27
11-"बाढ़ेउ जल मुख लगि पल माहीं बूड़त उबरत पग न थिराहीं।
परसे सरि पद, प्रभु हुँकारा उतरेउ वारिहु आगे पारा।
बढ़त चले गोकुल नियराना, लखि नंद सदन हृदय हुलसाना।" - कृष्णायन, पृष्ठ-14
12-"कंस! व्यर्थ मोहिं चहेउ पछारा, उपजेउ अनतहि मारन हारा।
करि न सकत खल! अब शिशु-हानी, लखत न मृत्यु शीश मँडरानी।" कृष्णायन, पृष्ठ-15

बढ़ने के सन्दर्भ में एक का विचार है कि अपने भावी पति श्रीकृष्ण चन्द्र का चरण-स्पर्श करने की इच्छा रखने वाली यमुना उस समय संकोच में पड़ गई जिस समय ध्यान से देखा कि भावीपति महोदय श्वसुर वसुदेव के सिर पर हैं।[13]

नन्दगृह में जन्मोत्सव

तंद्रा के गत होने पर यशोदा ने शिशुमुख देखा, उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। नन्द ऐसे प्रसन्न हुए मानो कोई निधि पा गये हों। मंगलतूर्य बजने लगा। यह वृत्त सर्वत्र ब्रजमण्डल में फैल गया कि महरि ने एक पुत्र को जन्म दिया है। बन्दीजन यशगान और ब्राह्मण स्तवन पढ़ने लगे। नन्द के भाग्य की सराहना सभी करने लगे-

"आपुने-आपुने भाग्य की बात है, भाल के अंक टरै नहीं टारे।
पूत भयो वसुदेव के गेह में, नौबत बाजत नन्द के द्वारे।" -(श्रीकृष्ण कौस्तुभ, पृष्ठ-157)

घर-घर में बन्दनवार सजाये गये, होम-धूम एवं श्रुति-ध्वनि से गृह-गृह गूँज गया, बधाइयों का एक क्रम ही चल पड़ा।[14] दही, हल्दी, गुलाल-गंध, श्रीखण्ड, कपूर और मृगमद से ब्रज-गलियों में कीच उत्पन्न हो गया।[15] पूजन के समय बूढ़े नन्द पर कुछ गोप पुत्रोत्सव पर व्यंग्य प्रेषित करते हैं। नन्द का उन्हें उत्तर देना कितना सार्थक है-

"अब लगि तुम बूढ़ौ कह्यौ, अब कहियो मति बात।
बूढ़ेन कैं कहूँ होत सुत, ये मन धारौ तात॥" -(श्रीकृष्ण-कौस्तुभ, पृष्ठ-168)

नन्द विप्रों एवं गुरुजनों को कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।[16] जिन ब्राह्मणों के आशीर्वाद से यह दिन देखने को उन विप्रों का सर्वप्रथम चरण-स्पर्श कर नन्द ने दान दिया। दान में अलंकृत सवत्सधेनु (सद्य: ब्याई हुई), भूमि, वस्त्र, मणि, रत्न, वाहन, यान, अन्न विशेष रूप से दर्शनीय हैं। गोपियों का यूथ भवन में आने लगा और सभी गोपियाँ यशोदा एवं रोहिणी की गोद को दूब तथा नारियल से भरने लगीं।[17] बालक कृष्ण को देखकर बलराम प्रश्न करते हैं "को यह मातु! कहाँ ते आवा? ***बाबा ग्रहि केहि हाट बिसावा? लागत यह अति सुघर सलोना, लइहौं ऐसेहि महूँ खिलौना।"*** यशोदा ने हँसते हुए उत्तर दिया- ***"तुम्हरेहि खेलन हेतु मँगाया"***[18] ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण के तनिक बड़े होने पर बलराम द्वारा कृष्ण के चिढ़ाने का जो उपक्रम सूर आदि कवियों ने किया है उसका बीज रूप बलराम में पहले से ही था।

पूतनावध

अभी कृष्ण पालने में ही थे कि कंस प्रेरित पूतना बालहत्या के उद्देश्य से गाँव-गाँव विचरती हुई गोकुल आ गई।[19] गोकुल में यशोदा ने स्वागत किया। कुल-बाला जानकर नन्दगृह में उसे अत्यधिक सत्कार दिया गया।[20] अपना उद्देश्य भी पूतना ने बताया और तब सोते कृष्ण को यशोदा ने दिखा दिया। यशोदा कुछ काम करने घर में चली गई। पूतना को अवसर मिल गया—

छलिनि विषस्तन शिशु मुख दीन्हा बज्र शरीर श्यामनिज कीन्हा।
दिग्ध पयोधर दृढ़ गहेउ, सहठ कीन्ह पय पान। प्रलपति विलपति पूतना, देत न पै प्रभु जान।[21]

13-श्रीकृष्णचरित, पृष्ठ-40, 14-कृष्णायन, पृष्ठ-16, गोपाल विलास, पृष्ठ-37, वही, पृष्ठ-51, 15-श्रीकृष्ण कौस्तुभ, पृष्ठ-169, 16-वही, पृष्ठ-168, 17-श्रीकृष्णचरित, पृष्ठ-47, 18-कृष्णायन, पृष्ठ-17, 19-गोपाल विलास, पृष्ठ-56, 20-वही, पृष्ठ-17, 21-वही, पृष्ठ-17

विष के साथ कृष्ण ने पूतना का प्राण भी कर्षित कर लिया। प्राणान्त समय पूतना अपना प्राकृतिक स्वरूप प्रकट कर देती है। शिशु कृष्ण को खेलते हुए एवं विशालकाय पूतना के दानवी शव को देखकर ब्रज-गोप-बालाओं के आश्चर्य का पारावार न रहा। गोपाल विलास से यह प्रसंग कुछ भिन्न है। माँ यशोदा दोनों शिशुओं को (कृष्ण-बलराम) पूतना की गोद में स्वयं दे देती हैं।[22] "श्रीकृष्ण चरित" में पूतना-मरण के बाद की घटनाओं एवं गोकुल की हलचल का विशद्-वर्णन किया गया है जबकि "प्रियप्रवास" में इस घटना का संकेत मात्र है। भागवत में पूतना को "कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी" कहा गया है और ब्रह्मवैवर्त पुराण में कंस की भगिनी तथा हरिवंश में धात्री चित्रित की गई है।[23] बाद में उसके दाह संस्कार होने का भी वर्णन भागवत में है। कंस की भगिनी होने का तथा दाह संस्कार होने का संकेत गोपाल विलास में है।[24] स्तन में विष लगाने, सुन्दरी स्त्री का वेष धारण करने तथा बाद में प्रकट होने वाले उसके दानवी रूप का वर्णन सर्वत्र है। श्रीकृष्ण चरित में भी दाह संस्कार विधिवत् कराया गया है।[25]

शकटासुर

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के सातवें अध्याय में पूतना वध के तत्काल बाद यह प्रसंग वर्णित है किन्तु यहाँ शकट के असुरत्व का कोई वर्णन नहीं है और न ही इस घटना से कंस का कोई सम्बन्ध ही दर्शाया गया है। आधुनिक हिन्दी कविता में इसका वर्णन भिन्नश: हुआ है। कृष्णायन के अनुसार शकटासुर "शकट" का रूप धारण कर गृह में छिप जाता है। सहज-सामान्य शकट समझकर यशोदा उस पर नाना प्रकार दधि-भाजन स्थापित कर देती हैं। शकट के समीप ही बालक को पालने में सुलाकर स्वयं गृहकार्य में व्यस्त हो जाती हैं। मायापति कृष्ण चरण-प्रहार से शकट को उलट देते हैं, दधि-भाजन नष्ट हो जाते हैं, अपार शब्द होता है। इस भेद को कोई जान न सका।[26] श्रीकृष्ण चरित में पालने के ऊपर "छकड़ा" रखने की बात कही गयी है, जिस पर अधिक वजनी एवं मोटे समान रखे हुए हैं। शकटासुर छकड़े को उलटकर उसके बोझ से शिशु को मारना चाहता है। उसके द्वारा यह अनर्थकारी क्रिया सम्पन्न करने से पूर्व ही कृष्ण छकड़े को पैर से ढकेलकर शकटासुर की हड्डियों को चूर-चूर कर प्राणान्त कर देते हैं।[27] गोपाल विलास में "उत्कच" नामक दानव के आने की बात कही गई है। कृष्ण द्वारा पाद-प्रहार से शकट उलटकर असुर को मार डालने का प्रसंग सर्वत्र है।[28]

तृणावर्त

कंस द्वारा प्रेरित चक्रवात वपु वाला तृणावर्त ब्रज पर चढ़ाई करता है। चारों ओर अँधेरा हो गया। उड़ता हुआ वह असुर नन्द-गृह में आकर आँगन में खेलते हुए कृष्ण को आकाश में उड़ा ले गया। श्याम-गरिमा से दानव व्याकुल हो गया। कलाबाजी से श्याम ने उसे शिला पर पटक दिया और हठात् ग्रीवा दबाकर प्राण निकाल लिया। पालने में बालक को न देखकर यशोदा व्याकुल हो जाती हैं-

"श्याम! श्याम! हा श्याम! पुकारहिं को निधनी के धनहिं उवारहिं।
गृह-गृह ब्रज बिलखति महतारी, करुणहिं क्रन्दति जनु तनुधारी।" (कृष्णायन, पृष्ठ-19)

22-गोपाल विलास, पृष्ठ-56, 23-श्रीमद्भागवत, 10/6/2 ब्रह्मवैवर्त-अध्याय-10, हरिवंश-अध्याय-63, 24-गोपाल विलास, पृष्ठ-58, 25-श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 56-57, 26-कृष्णायन, पृष्ठ-18, 27-श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ-64, 28-कृष्णायन, पृष्ठ-18, गोपालविलास, पृष्ठ-59, श्रीकृष्णचरित, पृष्ठ-65

अन्त में मृतक दानव के वक्ष पर खेलते हुए कृष्ण पाये गये। शरीर में चोट देखे जाने लगे। सभी गोप एवं गोपियों का आक्रोश यशोदा के ऊपर बरस पड़ा। कितना मार्मिक प्रसंग है-

"दैत्य दुरन्त कीन्ह अपघाता, केहि विधि बचेउ बाल मृदु गाता।
यशुमति! तोहि न आवति लाजा, भयेउ सुतहु ते बढ़ि गृह काजा।
जो तेहि भारु भयेउ कन्हैया, बेचि देहि ब्रज बहुत लेवैया।" (कृष्णायन, पृष्ठ-19)

सभी गोप "भूलि तजहु कबहुँ एकाकी" कहते हुए यशोदा को सचेत करते हैं। यही प्रसंग कुछ भिन्नता के साथ "गोपाल विलास" और "श्रीकृष्ण चरित" में भी वर्णित है। श्रीमद्भागवत के अनुसार तृणावर्त दैत्य था और कंस के द्वारा प्रेरित किया गया था।[29] द्वारकाप्रसाद मिश्र के अतिरिक्त सभी ने यशोदा की गोद से कृष्ण के भारी होने का वर्णन किया गया है जैसा कि भागवत में वर्णित है। यशोदा को छोटे शिशु के भारी होने से आश्चर्य होता है और असह्य होने पर वे उन्हें सुला देती हैं, तृणावर्त उड़ा ले जाता है। तृणावर्त के वध का वर्णन प्राय: सभी कवियों का एक जैसा है। हाँ, किसी ने संकेतात्मकता का सहारा लेकर कथा को आगे बढ़ा दिया है और किसी ने कथा-प्रवाह का रमणीय चित्रण प्रस्तुत किया है।

मृत्तिका-भक्षण एवं यशोदा को जगत-दर्शन

श्रीमद्भागवत में मृत्तिका-भक्षण के पूर्व भी जँभाई लेते हुए कृष्ण के मुख में यशोदा को विश्व एवं आकाशादि के दर्शन होते हैं। कृष्ण के मिट्टी खाने का प्रसंग स्वतंत्र वर्णित नहीं है वरन् बल्देव आदि अन्य गोपों द्वारा की गई शिकायत से उसकी व्यंजना हुई है। आधुनिक कृष्ण काव्यों में भी बलराम की शिकायत पर ही यशोदा कृष्ण को दण्ड देने के लिए उद्यत होती हैं। गोपाल विलास और कृष्णायन के कृष्ण माटी न खाने की सफाई भी देते हैं-

"मैया नेक न माटी खाई।
मैं नवनीत दही से पूर रजकी कहाँ समाई
समुझ सोच देखो तुम मन में बालन तूँ बैकाई।" - गोपाल विलास, पृष्ठ-94
"कह हरि" खेल हारि रूठे, लाये दण्ड दिवावन झूँठे। (कृष्णायन, पृष्ठ-22)

सफाई देते हुए कृष्ण मुख खोल देते हैं और चतुर्दश लोक का दर्शन यशोदा को कराते हैं किन्तु कृष्णायन की यशोदा कृष्ण की शिकायत को साधारण मानकर विश्वास कर लेती हैं कि बलराम आदि की शिकायत मिथ्या है। विश्वास के साथ कृष्ण को खेलने भेज देती हैं किन्तु सजगता से निरीक्षण भी करने लगती हैं। फिर क्या था, माटी खाने के अभ्यस्त कृष्ण कार्य प्रारम्भ कर देते हैं-

"सहसा पुनि हरि माटी खाई, देखत महरि रोष करि धायी।
पकरेउ भुज लीन्हीं कर सांटी, पुनि पुनि कहति "निकारहु माटी"।
कैसे अब तुम मोहिं झूठे हौ, खोलहु मुख अब कहाँ दुरैहौ। (कृष्णायन, पृष्ठ-23)

वदन-विस्तार कर कृष्ण यशोदा को विश्व-दर्शन करा देते हैं।[31]

29-"दैत्यो नाम्ना तृणावर्त: कंसभृत्य: प्रणोदित:।" श्रीमद्भागवत 10/7/20, 31-कृष्णायन, पृष्ठ-23, श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ-78

ऊखल-बन्धन तथा यमलार्जुन-मोक्ष

कृष्ण की दधिचोरी के उलाहने स्वीकारते यशोदा खीझ चुकी थी। कुछ गोपियों ने कृष्ण को चोरी करते रँगे हाथ पकड़ लिया और यशोदा के सम्मुख ले गईं। गोपियों के उपालम्भ सुनते ही यशोदा "रिस-ज्वाल" से तप्त हो जाती हैं। डोरी खोजकर कन्हाई को बाँधती हैं, रस्सी दो अंगुल कम हो जाती है। घर-घर से रस्सी माँग कर लाती हैं किन्तु फिर भी डोरी पूर्ण नहीं होती। माँ की विकलता देखकर कौतुकी भगवान् अंत में स्वयं को बँधा लेते हैं। बँधे कृष्ण को यमलार्जुन वृक्ष के निकट ऊखल में जब यशोदा बाँधती हैं, तब "तरुवर पात" डोलने लगते हैं। कृष्ण भी "कुबेर-सुवन" नल-कूबर को पहचान जाते हैं। यशोदा भी ***"न अब उरहन में सहिहौं, चोरी साँटी मारि भुलैहौं। लागहिं अगणित यहि घर गइया सेवक गोप असंख्य दुहैया। चलहिं मगर घर सहस मथानी, सीखी सुत चोरी के बानी। कोऊ छोरै जनि ढीठ कन्हैया।"***[32] कहकर गृह-कार्य हेतु वहाँ से अनुपस्थित हो जाती हैं। कृष्ण के नेत्रों में आँसू और मुख पर ईषद् दधि के छींटे विद्यमान हैं। इसी बीच गोपियाँ भी आ जाती हैं। वे यशोदा से कृष्ण-मुक्ति की संस्तुति करती हैं, "माई! हम आपके पाँव पड़ती हैं, कन्हैया को छोड़ दीजिए। कुँवर कन्हाई हिचकियाँ लेकर रो रहे हैं। अपने घर से हम और माखन लायेंगी और अपने ही हाथों से हरि को खिलायेंगी। ऐसे कुल-दीप मणिधाम पर हम सब सम्पूर्ण गोधन को न्यौछावर करती हैं।"[33] इतना सुनते ही यशोदा क्रोध से अधिक उबल पड़ी-

"तनिक तुम्हार कान्ह दधि खावा, घर-घर गोकुल नाम धरावा।

सही न रंच श्याम लरिकाई, अब मोहिं माखन देत मँगाई।

तब मन तनिक न धीरज आना, अब मोंहि चली सिखावन ज्ञाना।" कृष्णायन, पृष्ठ-25

इतने में ही गोपियाँ बलराम को भी सूचना दे देती हैं, ***"भोरहिं ते तुम्हार लघु भैया, बाँधेउ ऊखल यशुमति मैया।"*** बलराम तत्काल घटना-स्थल पर आते हैं, दृश्य देखते ही नेत्र अश्रुजल से भर जाते हैं। बलराम माता से पूछते हैं- ***"काहे हरिहिं दीन्ह अस त्रासा, गोरस केहिकर केतिक नासा।"*** उधर अवसर पाकर लीलापति कृष्ण ऊखल को दोनों वृक्षों से अटकाकर झटक देते हैं और नल-कूबर मोक्ष प्राप्त कर अपने लोक को प्रस्थान करते हैं।[34]

कृष्ण की खोज होने लगी और बिना आँधी के वृक्ष-पात पर आश्चर्य व्यक्त किया जाने लगा। कृष्ण के अनिष्ट की आशंका व्याप्त थी कि इसी बीच वृक्षों के मध्य ऊखल से यथावत् बँधे हुए पूर्ण सुरक्षित कृष्ण दृष्टिगोचर हुए। भय, प्रीति एवं विस्मय से पूर्ण नन्द बन्धन से मुक्त करते हैं। लीलाधर कृष्ण गोकुलवासियों को चकित करते हुए कहते हैं, ***"मैं गयेउँ डराई, लुकेउँ विकल ऊखल तल जाई।"***[35] कृष्णायन का ऊखल-बन्धन का कारण पूर्णतः मौलिक है। भागवत के अनुसार कृष्ण घर में माखन चुराते हैं जिसके क़ारण यशोदा उन्हें ऊखल में बाँधती हैं। गोपाल विलास और ब्रज बिहार में भागवत का अनुसरण किया गया है।[36] ऊखल बन्धन प्रसंग में कृष्ण को दामोदर कहा गया है।

32-कृष्णायन, पृ.25, 33-वही, पृ.25 तथा प्रेमरसमदिरा, पृ.142, 34-कृष्णायन, पृ.26, 35-वही, पृ.26

गोकुल की लौकिक लीलाएँ

नामकरण एवं अन्नप्राशन

वसुदेव कुलगुरु गर्गाचार्य को मथुरा में बुलवाते हैं और पुत्र का पूर्ण रहस्य स्पष्ट करते हैं। गुरु को गोकुल में नन्द के यहाँ भेज देते हैं। नन्द और यशोदा गर्गाचार्य के चरणों पर बालक रख देते हैं। गुरु के बालक को साक्षात् ब्रह्म बताया और कहा कि यह बालक असुर विनाशक, जनहितकारी, विष्णु का अवतार हैं; इसका नाम कृष्ण है। यही बालक आगे चलकर कंस का वध करेगा। पूर्व जन्म में यशोदा ने तप करके दूध पिलाने का वरदान प्राप्त किया था, जिसके कारण यह बालक आप सबको मिला है।[38] कृष्णायन का उपर्युक्त प्रसंग भागवत के अनुरूप है। गोविन्द विलास और भागवत में वसुदेव द्वारा नन्द के यहाँ गर्गाचार्य को भेजने की बात कही गई है। जब कृष्ण कुछ बड़े होते हैं तब नन्द स्वयं शुभ मुहूर्त पर अन्न से कृष्ण का मुख झूठा कराते हैं-

"भयेउ अन्न प्राशन मन भावा, शिशु मुख नन्द आपु जुठरावा।" - कृष्णायन, पृष्ठ 19

भागवत में अन्नप्राशन का उल्लेख नहीं है, ब्रह्मवैवर्त में नन्द स्वयं अपनी बिरादरी को बुला लाते हैं और मणि-कंचन के थालों में षटरस व्यंजन रखते हैं। कृष्ण के अन्नप्राशन में नन्द कोई उत्सव नहीं करते।

वर्षगाँठ

जन्म नक्षत्र पर वर्षगाँठ मनाई जाती है। विप्रों को भोजन, गोदान कराया जाता है नन्द के द्वारा। कृष्ण और बलराम को स्नान करवाकर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया जाता है।[39]

बाललीला

श्रीमद्भागवत में कृष्ण की बाल-लीलाओं का सर्वाधिक चित्रण हुआ है। आधुनिक हिन्दी कविता में अनेक कवियों ने बाललीलाओं का खुलकर वर्णन किया है किन्तु उनमें पं० द्वारका प्रसाद मिश्र का वर्णन जितना मनोवैज्ञानिक, बालसुलभ एवं मनमोहक है उतना अन्यों का नहीं। अब हम एक-एक क्रम से उन सभी लीलाओं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे और यथास्थान पुराणों से उनकी समता एवं भिन्नता भी प्रदर्शित करते चलेंगे।

घुटनों-पैरों के बल चलना

"बन्धुक सुमन" के समान अरुण-चरणों से नन्द-आँगन में अब कृष्ण "घुटरुन" चलने लगे हैं। एक ओर से यशोदा और दूसरी ओर से नन्द बुलाकर होड़ लगाते हैं। चतुर कृष्ण माता-पिता को रिझाते हैं, बारी-बारी से दोनों दिशाओं में दौड़ते हैं। प्रांगण से आगे द्वार के निकट आने पर देहरी के समीप अटक जाते हैं। बार-बार धरणी पर गिरते हैं और रुदन मचाते हैं। यशोदा की देहरी ऐसे भगवान् नहीं पार कर पाते हैं, जिन्होंने तीन पग में निखिल संसार को नाप लिया था।[40]

यशोदा किसी को चलना नहीं सिखाती जबकि सूर ने कृष्ण को चलना सिखाया है। गोपाल विलास की यशोदा कृष्ण को चलना सिखाती हैं।[41] प्रेमरसमदिरा में कृष्ण का अजिर-बिहार सुहावना है।[42]

36-गोपाल विलास, पृष्ठ-97 तथा ब्रजबिहार, पृष्ठ-11, 37-गोपाल विलास, पृष्ठ-100, 38-कृष्णायन, पृष्ठ-19, 39-गोपाल विलास, पृष्ठ-105, 40-कृष्णायन, पृष्ठ-20, 41-गोपाल विलास, पृष्ठ-105, 42-अजिर महँ बिहर, "ब्रह्म साकार।" प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-121,

हाथ में नवनीत लिए प्रतिबिम्ब दर्शन

एक दिन प्रात: एक ग्वालिन के घर में कृष्ण ने प्रवेश किया। कृष्ण को देखकर ग्वालिन छिप गई। मथानी के पास कृष्ण आ गये। माखन से भरी कटोरी से माखन निकालकर खाने लगे। इधर-उधर देखा, निर्जन पाया। संयोग से स्वर्ण खम्भ में अपनी परछाईं देखकर, उसे अन्य बालक समझकर कुछ सामयिक प्रश्न कर बैठते हैं, "पूछत- को तुम ? कवन पठावा ? अब लगि केतिक माखन खावा।"[43] सुनते ही ब्रजबाला ठठाकर हँसने लगी और और भयभीत नन्दलाल भाग गये। सूर ने प्रतिबिम्ब सम्बन्धी अनेक चित्रण किये हैं।

चोटी बढ़ने की लालसा में दुग्ध-पान

माखन हेतु कृष्ण माँ की वेणी पृष्ठभाग से और आगे से बलराम साड़ी कर्षण करते हैं। नन्द भी बच्चों को यशोदा के विरुद्ध प्रोत्साहित करते हैं और स्वकर से कृष्ण-बलराम को माखन खिला देते हैं।[44] यशोदा फूली नहीं समा रही हैं, मुस्कराते हुए चोटी बढ़ने की बात छेड़ देती हैं-

"माखन खाये बढ़ति न चोटी, होति लाल! पय पियतहिं मोटी ॥"[45]

आगे का प्रसंग अत्यन्त स्वाभाविक है। कृष्ण दूध पीने के लिए व्याकुल हो जाते हैं-

"सुनतहि फेंकेउ कर ते माखन, चोटी गहि लागे पय माँगन-
देहि अबहिं मोहिं दूध पियायी, कबहुँ न खैहौं माखन माई।
पियउ घूँट दुइ दूध कन्हैया, कहत न बाढ़ी चोटी मैया।"[46]

कृष्णायनकार ने यह प्रसंग सूर से ग्रहण किया है। भागवत में चोटी बढ़ने का प्रलोभन देकर दूध पिलाने का संकेत नहीं है, कृष्ण रोने लगते हैं। यहाँ इस प्रसंग में चन्द्रमा वाला संदर्भ सीधे जोड़ दिया गया है।

चन्द्रखिलौना का प्रस्ताव

रोते हुए कृष्ण को चन्द्रमा दिखाकर सन्तुष्ट करने की परम्परा तो है किन्तु "कृष्णायन" में कृष्ण चन्द्रमा देखकर खाने के लिए माँगते हैं-

"निरखत कहत- मीठ यह माई, खैहौं चन्दा देहि मँगायी।"[47]

माँ यशोदा विविध पकवान उपस्थित करती हैं किन्तु हठी कृष्ण सब कुछ फेंक देते हैं। उड़ते हुए पक्षियों को भी यशोदा ने दिखाया किन्तु एक बात भी कृष्ण नहीं मानते। बार-बार यही कहते हैं-"लाउ मातु! मैं चन्दा लैहौं, भूख लागि मैं चन्दहिं खैहौं।" और अंक से खिसककर सुसकते हैं। माँ ने एक उपाय सोचा-

"मातु मनहिं मन युक्ति दृढ़ायी, जल भरि थार धरेउ मँगवायी।
आउ रे चन्दा! कान्ह बोलावहिं, आउ! लाल तोहि संग खेलावहिं।
गहन चहत जल हाथ चलावत, पकरत शशधर हाथ न आवत।
यह तौ झलमलात अकुलायी, इत पकरहुँ उत जात परायी।"[48]

43-कृष्णायन, पृष्ठ-23, 44-वही, पृष्ठ-20, 45-वही, पृष्ठ-20, 46-वही, पृष्ठ 20-21, 47-वही, पृष्ठ-21, 48-वही, पृष्ठ-21

यशोदा यह कहकर कृष्ण को निराश कर देती हैं कि यह चन्द्रमा तुमसे बहुत डर रहा है, इसे घर जाने दो, बहुत व्याकुल है।

विशेष विचारणीय बात यह है कि कृष्ण चन्द्रमा को खेलने हेतु ही नहीं वरन् क्षुधा-तृप्ति भी करना चाहते हैं। यह प्रसंग भागवत में नहीं है। सूरदास ने चन्द्रखिलौना की चर्चा की है। संभव है, यह प्रसंग किसी अपौराणिक लोक प्रचलित परम्परा से कृष्ण के साथ जुड़ गया हो, ऐसा डॉ० जगदीश गुप्त मानते हैं।[49]

भोजन-शयन

प्रमुदित यशोदा-कृष्ण-बलराम का पैर-प्रक्षालन करती हैं और दोनों बालक नन्द के साथ भोजन करने बैठ जाते हैं। कृष्ण खाते कम हैं, मुख में अधिक लपटाते हैं। बार-बार कौर उठाकर नन्द मुख में डालते हैं- "आपु न खात नंदमुख नावत" और मिर्च की कड़ुवाहट से द्वार की ओर भागते हैं। रोहिणी उन्हें गोद में लेकर मीठे कौर खिलाती हैं।[50] कुछ काव्यों में मध्याह्न, रात्रि, प्रात: की भोजन-लीलाओं का वर्णन है। कृष्ण पालने में सोते हुए पैर का अँगूठा मुख में डालते हैं और यशोदा प्रसन्नता से उन्हें लोरी गाकर सुलाती हैं-

"जागत जो लय-काल हू, संसृति सकल सोवाय।
पलना रही सोवाय तेहि यशुमति लोरी गाय।"[51]

प्रेमरस मदिरा और गोविन्द विलास में रूठे कृष्ण के जगाये जाने का सुन्दर वर्णन है।

खेल

सुबल, सुदामा के साथ होड़ा-होड़ी में खेलते हुए रार बढ़ गई, श्याम हार गये, क्रोध से उनका शरीर उद्वेलित हो गया। क्रोधाग्नि में घृत डालते हुए बलराम "जन्मे बिनु पितु मातु कन्हाई" कह बैठते हैं। ग्लानि, अपमान और खीझ का बोझ लिए हुए कृष्ण अपनी अन्तिम पहुँच यशोदा तक आकर शिकायत करते हैं कि माँ मुझे बलराम "हाट बिसावा" कहते हैं। सखागण भी कहते हैं-

"नन्द यशोदा गौर तनु, तुम कत श्याम शरीर।
चुटकी दै पूछत सखा, सिखै देत बलवीर।"[52]

यशोदा कृष्ण को प्रसन्न करती हुई कहती हैं-

"गोधन सौं सुनु साँच कन्हैया ! मोहन पूत यशोमति मैया।
कहत कार जो तोहि लबारा, विधु ते अधिक बदन उजियारा।" - (कृष्णायन, पृष्ठ-22)

भागवत में खेलों का वर्णन वृन्दावन जाने के बाद मिलता है।

माखन-चोरी

विष्णु पुराण और महाभारत में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं है। हरिवंश में प्रसंगवशात् कुछ वर्णन हो गया है। भागवत में माखन-चोरी का विस्तृत वर्णन है। बाल-लीलाओं में माखन-चोरी की विशेष चर्चा होती है। कृष्ण चोरी से स्वयं माखन खाते ही हैं, साथ ही बन्दरों को भी खिलाते हैं, दधि तथा माखन के भाण्डो को तोड़ भी देते हैं, कभी-कभी कुछ न खाकर ऊपर चढ़कर छेद भी कर देते हैं, सोते हुए बच्चों को रुला भी देते हैं और चोरी के उपाय करके अपना काम निकाल करके पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े भी हो जाते हैं।

49-कृष्णभक्ति काव्य-डॉ० जगदीश गुप्त, पृष्ठ-64, 50-कृष्णायन, पृ.22, 51-वही, पृ.16, 52-वही, पृ.22

आधुनिक कृष्ण कविता में यह प्रसंग अत्यन्त विस्तृत है। कृष्णायन, प्रेमरस मदिरा, गोपाल विलास, ब्रजबिहार, श्रीकृष्णचरित आदि काव्यों में बड़ा सरस वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कृष्णायन के कृष्ण गोपियों की समस्त मनोकामना पूर्ण करते हैं। गोपियाँ चाहती हैं कि कृष्ण उनके घर में जाकर चोरी से माखन खायें। साथियों के साथ कृष्ण माखन की चोरी करते हैं। माखन खाते हैं, दूध ढरका देते हैं और दही मुख में लगा लेते हैं, पात्रों को फोड़ देते हैं। गोपियाँ कृष्ण के सकल उत्पात को सहती रहती हैं, क्योंकि इससे उन्हें बतरस का सुख मिलता है। चोर-कर्म करते हुए गोपियाँ कृष्ण को सस्नेह हृदय से चिपका लेती हैं, कृष्ण छटपटाते हैं पर जाने नहीं देतीं। कृष्ण भी हाथ झकझोरकर, चोली फाड़कर तथा गले की माला तोड़कर भागने में सफल हो जाते हैं-

"भागहिं हरिहु हाथ झकझोरी, कंचुकि फारि हार गर तोरी।" - कृष्णायन, पृष्ठ-24

जब यशोदा गोपियों का उलाहना स्वीकार नहीं करतीं तब गोपियाँ एक दिन चोरी करते कृष्ण को पकड़कर लाती हैं और कहती हैं-

"लखहु महरि यहि को उपजावा, कौन पिता कर पूत कहावा।
चोरी करत मितेउ घर मांही, तनय तुम्हार होय की नाहीं।।" -कृष्णायन, पृष्ठ-24

नन्द के पड़ोस की ही एक ग्वालिन कृष्ण को माखन-चोरी करते पकड़ती हैं और कृष्ण के ऊपर आँचल डालकर यशोदा के पास लाने लगी। माँ के डर से योगेश्वर जगदीश ने ग्वालिन के पुत्र का रूप धारण कर लिया।[53] यशोदा के समक्ष पहुँचकर गोपी लज्जित हुई। एक दूसरी घटना में गोपी उलाहना देती, "माई, श्याम-सुन्दर के गुण का वर्णन कैसे करूँ? हँस-हँस कर नैनों से सैन मारता है, तिरछी चितवन से मुस्कराता है, पनघट पर जाते समय मुझे घेर लेता है, मेरी नरम कलाई मसक देता है, अचानक घूँघट खोल देता है और कभी-कभी मेरे घर में मेरे ग्वाल का बहाना करके चला जाता है और माखन चुरा लेता है। यह सम्पूर्ण गुणों से परिपूर्ण है।[54] यशोदा सखी की वास्तविकता का पर्दाफाश करती है, "तेरे चपल नेत्र कटाक्ष से पूर्ण हैं, कृष्ण तो बच्चा है। धोखे से घर में लाला को बुलाकर कठोर उरोजों से चिपका लेती हो और इधर-उधर "उर नख-चिह्न" दिखाकर भोरी बनती हो। उलाहने के बहाने श्याम को देखने आती हो। वास्तव में अन्दर के प्रेम को छिपाया नहीं जा सकता।"[55] कथावाचक पण्डितों के आग्रह पर लिखा गया कृष्ण चरित अपने में कई मूल उद्भावनाओं को समाहित किये हुए है।

कृष्ण की बाल-लीलाओं में माखन-चोरी का वर्णन प्राय: सभी कवियों ने किया है। कहीं परम्परा के अनुकूल लीलागान का निर्वाह मात्र है और कहीं कवि की सरस्वती रमी-सी प्रतीत हुई हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में कृष्ण की लीलाओं पर भी आधुनिकता का लेप चढ़ गया है। आजकल के चोरों की भाँति कृष्ण भी बहुत चतुर एवं सतर्क हैं। ग्वालिन माखन को कितना ही छिपाकर रखें, वे खोज ही लेंगे और यशोदा के समक्ष-न्यायालय में कभी भी अपना अपराध स्वीकार नहीं करते। अपनी सफाई और अपने ही वचन से बाल-बाल बच जाते हैं। यही नहीं "उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे" वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए दूसरों को ही अपराध में फँसा देते हैं। युवती ग्वालिनों के ऊपर इधर-उधर स्वच्छन्दतापूर्वक

53-गोपाल विलास, पृष्ठ-72, 54-ब्रजबिहार (रंगीलाल कृत) पृ.27, 55-वही, पृष्ठ-28

घूमने का आरोप, पति के साथ सोती हुई कृष्ण से गृहकार्य करवाने का आरोप, स्वयं बुलाकर माखन खिलाकर अंक में लगाने का आरोप, दधि में पड़ी हुई चींटी को निकलवाने का आरोप लगाते रहते हैं और सटीक प्रमाणों से यह सिद्ध करते हैं कि ग्वालिनों की अनुपस्थिति में वे घर की सुरक्षा करते रहे हैं। यदि कृष्ण सूने घर में आये न होते तो बन्दरों ने और उत्पात कर दिया होता। माखन-चोरी के प्रसंग में अलौकिकता का वर्णन पुराणों में नहीं है किन्तु गोपाल विलास, श्रीकृष्ण चरित और ब्रजबिहार (पं० रंगीलाल कृत) में यशोदा के सम्मुख कृष्ण के रूप बदल लेने का वर्णन है। यहाँ कृष्ण के इस कृत्य का आभास किसी को हो नहीं पाता।

वृन्दावन (अलौकिक)

वत्सासुर तथा वकासुर-वध

गोकुल में आये दिन घटने वाली अनिष्टकारी घटनाओं से चिन्तित होकर नन्द एक दिन गोष्ठी करते हैं और इससे बचने का उपाय सबसे पूछते हैं। एक वृद्ध हरिजन गोप प्रस्ताव करता है कि वृन्दावन में वास किया जाये क्योंकि वह एक उत्तम विपिन है, जिसके समीप कालिन्दी भी है और घास की प्रचुरता है। नन्द सभी गोपों के साथ वृन्दावन पहुँच जाते हैं।[56] भागवत में वत्सासुर और वकासुर का वर्णन है। कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ वत्स चराने वृन्दावन जाते हैं, वहाँ वत्सों के मध्य वत्सासुर नामक दैत्य आ जाता है। कृष्णायन में कृष्ण द्वारा तरु-मूल पर पूछ पकड़कर पटककर मार डालने का चित्रण है।[57] श्रीकृष्ण चरित में वत्सासुर की प्रचण्डता का वर्णन है। वह कंस से प्रेरित वृन्दावन आता है। कृष्ण द्वारा उसकी सींग पकड़कर मार डालने का वर्णन है।[58] भागवत में "बक कंस सखं"[59] कहा है। बकासुर पूतना का अनुज था।[60] प्यासी गायों को लेकर ग्वाल-बाल यमुना की ओर अग्रसर हो रहे हैं। मार्ग में बकासुर "चंचु अवनि तल एक लगाई, अम्बर माहिं द्वितीय समाई" इस स्थिति में बैठ गया। गुफा रूप विशाल उदर में अग्नि बनकर कृष्ण प्रवेश करते हैं, ताप-व्याकुल बकासुर कृष्ण को उगल देता है, कृष्ण उसके चोंच को पकड़कर फाड़ डालते हैं।[61] गोपाल विलास में बक द्वारा कृष्ण की आराधना करके इन्द्रलोक जाने की नवीनता है।[62]

अघासुर

भागवत में "बक-बकी" के साथ अघासुर का भ्रातृ-सम्बन्ध एवं कंस-प्रेरित होने का संकेत मिलता है।[63] गोपाल विलास में अघासुर अपने को बकासुर का भाई बताता है और कृष्ण को मारकर बकासुर को तिलांजलि देने का कार्यक्रम बनाता है।[64] श्रीकृष्ण चरित में यह कथा बड़ी मनोरंजकता के साथ वर्णित है। सभी आलोच्य काव्यों में अजगररूपधारी अघासुर के मुखद्वार से उदर में घुसकर कृष्ण द्वारा शरीर-विस्तार से वध कर देने की घटना उभयनिष्ठ है। एक स्थान पर वर्णन है कि कृष्ण के साथ बलराम भी उसके पेट में घुस जाते हैं।[65] कृष्ण के शरीर-विस्तार से अजगर अधीर हो जाता है-

"आधे ही भीतर गये, सुन्दर श्याम शरीर।
लगे बढ़ाने अंग को, अजगर हुआ अधीर।" श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ-88

56-गोपाल विलास, पृष्ठ 112-114, 57-कृष्णायन, पृष्ठ-27, 58-श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 124-128, 59-भागवत 10/11/51, 60-श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ 115, 61-कृष्णायन, पृष्ठ-28, 62-गोपाल विलास, पृष्ठ-119, 63-श्रीमद्भागवत 10/12/14, 64-गोपाल विलास, पृष्ठ-121, 65-गोपाल विलास, पृष्ठ-121

विधि-मोह

कृष्ण की शक्ति की थाह लेने ब्रह्माजी वृन्दावन आये और गाय, बछड़ों, ग्वाल-बालों को चुराकर ब्रह्मलोक उठा ले गये। ब्रह्मा की "करतूति" जानकर कृष्ण ने उसी रूप, रंग, स्वभाव, चाल-ढाल आदि के अनुरूप गायों, बछड़ों और गोपों का निर्माण कर दिया। ब्रह्माजी एक वर्ष तक ब्रज आते-जाते रहे और अन्त में हार मानकर चोर-कर्म को स्वीकार कर कृष्ण से क्षमा माँगते हैं।[66] भागवत की कथा से इसका साम्य है। इसी प्रकार कृष्ण द्वारा धेनुकासुर का भी वध किया गया है।[67] कृष्णायन में इसके वध का श्रेय बलराम को है।[68]

कालीय दमन

श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, पद्म, हरिवंश और ब्रह्म पुराणों में इस प्रसंग का चित्रण है, किन्तु आधुनिक कृष्ण काव्यों इसका वर्णन कुछ भिन्न है। विशेषकर सूरदास से यह सभी प्रसंग प्रभावित से प्रतीत होते हैं। कंस नन्द से कालीदह का कमल माँगता है और तीन दिन में न देने पर ब्रज को नष्ट कर देने का भय देता है।[69] कृष्ण जानबूझकर गेंद दह में फेंक देते हैं। श्रीदामा गेंद निकालने का आग्रह करता है और कृष्ण कदम्ब पर चढ़कर दह में कूद पड़ते हैं। बच्चे हाहाकार करके रुदन करने लगे और श्रीदामा को "गेंद लागि मारेहु घनश्यामहिं" कहकर फटकारते हैं। नन्द द्वार पर पहुँचकर बालकगण "कूदे काली दह नन्दलाला" सूचना दे देते हैं। सारा ब्रज विलाप की अग्नि में तप्त हो जाता है। उधर कृष्ण नाग की पूछ दबाकर जगा देते हैं। क्रोधित नाग कृष्ण को जकड़ लेता है और कृष्ण तन-विस्तार करके उसके अंग-प्रत्यंग तोड़ देते हैं। यहाँ कृष्णायन और कृष्ण चरित में वैषम्य है। कृष्णायन में नाग को नाथकर नागपत्नी से उपहार रूप में प्राप्त करोड़ों कमल पुष्प लेकर फणीन्द्र पर नृत्य करते बाहर आ जाते हैं।[70] श्रीकृष्ण चरित में नृत्य का चित्रण जल में ही किया गया है, बाहर कृष्ण कमल लेकर ही आते हैं।[71] कृष्ण नाग को दह त्यागने का आदेश देते हैं, नाग सौरभ ऋषि से शापित गरुड़ के दह में न आने की बात कहकर अपने को दह में सुरक्षित बताता है। कृष्ण उसके सिर पर अपना चरण-चिह्न देकर कहते हैं कि इसे देखते ही गरुड़ तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा।[72]

भागवत में नाग के सोने का प्रसंग नहीं है, वह कृष्ण के कूदने से हुए जलोद्वेलन से कृष्ण के पास आ जाता है जबकि आलोच्य काव्यों में कृष्ण द्वारा पूछ दबाकर जगाने का चित्रण है। नाग के ऊपर कमल लादकर लाने की कल्पना नितान्त मौलिक है। भागवत में ऐसा चित्रण नहीं है। प्रियप्रवास और द्वापर में भी इस प्रसंग का चित्रण संस्मरणात्मक है।[73]

दावानल-पान

भागवत में इसका दो बार वर्णन है, ब्रह्मवैवर्त में एक बार।[74] भागवत में कृष्ण द्वारा दावानल का पान तथा ब्रह्मवैव्रर्त में शमन किया जाता है।[75] दावाग्नि के अद्भुत होने का कोई कारण नहीं दिया गया है। गोपाल विलास में दावानल पान का उल्लेख है।[76] कृष्णायन में कृष्ण सबको आँख बन्द करने का आदेश

66-कृष्णायन, पृष्ठ-30, 67-श्रीमद्भागवत 10/15/31-32, ब्रह्मवैवर्तपुराण 4/22/29-30, 68-कृष्णायन, पृष्ठ-29, 69-वही, पृष्ठ-32, 70-वही, पृष्ठ-34, 71-श्रीकृष्णचरित, पृष्ठ 173, 178, 72-कृष्णायन, पृष्ठ-34, 73-द्वापर, पृष्ठ-24, 74-श्रीमद्भागवत 10/17/25, 10/19/12, 75-वही 10/17/5, 10, 19, ब्रह्मवैवर्त 4/19/179, 76-गोपाल विलास, पृष्ठ-154

देकर पान करते हैं।[77] गोप-गोपियों के आश्चर्य की सीमा न रही, बिना वृष्टि के और बिना जल के छिड़कने से ज्वाला कहाँ समा गई? उन्हें विश्वास है कि श्याम पेट से ही कुछ टोना जानता है।

गोवर्द्धन-धारण

ब्रजवासियों द्वारा इन्द्र की पूजा का विरोध करते हुए कृष्ण अपनी पूजा करने का प्रस्ताव करते हैं।[78] कृष्ण के प्रस्ताव से सभी ब्रजवासी गिरिराज पर पहुँचकर वेदज्ञ ब्राह्मणों से यज्ञादि क्रिया सम्पन्न कराते हैं। जैसे नन्द भोग लगाकर पृथ्वी पर मस्तक झुकाते हैं, तैसे ही दिव्य प्रकाश के साथ भगवान् प्रकट हो जाते हैं। प्रकट भगवान् और ब्रजेश को समरूप देखकर विशाखा सखी कृष्ण के छलिया रूप का राधा को स्मरण दिलाती है-

आपु देव पुनि आपु पुजारी बंचेउ निश्चय हमहिं मुरारी।
अबहिं जो कपट देहुँ प्रकटायी, फिरि न हरिहिं कोउ ब्रज पतियायी। -कृष्णायन, पृष्ठ-43

राधा भक्तिपूर्वक विशाखा का विरोध करती है-

"बरजेउ राधा नयन तरेरी, भक्ति समेत रही सुर हेरी" - कृष्णायन, पृष्ठ-43

इस प्रकार इन्द्र की पूजा समाप्त करवाकर कृष्ण अपनी पूजा का प्रचलन करते हैं। पूजा की समाप्ति से कुपित इन्द्र जलवृष्टि प्रारम्भ कर देते हैं। ब्रजवासी गोवर्द्धन देव को याद करते हैं क्योंकि वहीं ब्रजवासियों को त्राण मिल सकता था। कृष्ण कहते हैं कि जलवृष्टि से मैं भी रक्षा कर सकता हूँ। ऐसा कहते ही वाम कर से गिरिराज को उठाकर कनिष्ठिका के अग्रभाग पर धारण कर लेते हैं-

"महि ते गहि गिरि वाम कर, लीन्हें समूल उपारि।
कनिष्ठिका करजाग्र हरि, सहजहिं लीन्हेउ धारि।" -कृष्णायन, पृष्ठ-45

कृष्ण गिरिराज के भार से थक जाने का स्वाँग करते हैं। सभी गोप लकुटी लेकर गोवर्द्धन को उठाने का बलपूर्वक सक्रिय सहयोग प्रदान करते हैं।[79] सात दिन तक प्रलय-जल बरस जाने के बाद भी इन्द्र ब्रज का कुछ बिगाड़ न सके तब इन्द्र को कृष्ण के ईश्वरत्व का आभास होता है और क्षमा माँगकर कृष्ण का अभिषेक करते हैं।[80] गोपाल विलास, श्रीकृष्ण चरित तथा रंगीलाल कृत "ब्रजबिहार" में कुछ हेर-फेर के साथ उपर्युक्त तथ्य वर्णित है। सभी कृष्ण विषयक पुराणों में यह प्रसंग चित्रित है।

वृन्दावन (लौकिक)

गोचारण

वृन्दावन-गमन के तुरन्त बाद अलौकिक लीलाओं के पूर्व गोचारण का मनमोहक चित्र आधुनिक कवियों ने प्रस्तुत किया है। प्रात: जब ग्वाल वन जाने लगे तब नन्दलाल भी पीछे-पीछे चल देते हैं। पीछे से "कान्ह! कान्ह" की टेर लगाने वाली यशोदा को कृष्ण अपने पूर्ण सयाने होने का प्रमाण अपनी बाल चातुरी से दे देते हैं-

"भागे हरि कहि धेनु चरैहौं, भयेउँ सयान न मातु डरइहौं।
जाय यमुन-जल पैठि नहइहौं, भूख लगे मैं बन-फल खइहौं।" -कृष्णायन पृष्ठ-27

माता द्वारा "आज बन हाऊ आवा" का भय देने के बावजूद भी जब अपने हठ से विचलित नहीं होते तब कृष्ण की सुरक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व बलराम को देकर माता गोचारण हेतु कृष्ण को वन जाने का

77-कृष्णायन, पृष्ठ-36, 78-वही, पृष्ठ-42, 79-वही, पृष्ठ-45, 80-वही, पृष्ठ-45

आदेश देती हैं। वेणु बजाते तथा "कामरि-लकुटी" लिए हुए कृष्ण कभी सखाओं के साथ खेलते हैं, कभी गाय चराते हैं, कभी कदम्ब तल पर नृत्य करते हैं और कभी मुरली की ध्वनि से मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं।[81] गोचारण प्रसंग में गायों के भटक जाने, उन्हें खोजने, वंशी बजाकर या वृक्ष पर चढ़कर गायों तथा गोपों आदि को बुलाने का उल्लेख है। गाय चराकर लौटने पर कृष्ण माता-पिता को वन फल देते हैं।[82]

कात्यायनी-व्रत और चीरहरण

कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए गोपियाँ यमुना के किनारे बालुकामय मूर्ति बनाकर कात्यायनी देवी की पूजा करती हैं। जब एक माह का अखण्ड व्रत पूर्ण होता है तब अन्तिम दिन कृष्ण वहाँ पधारते हैं। गोपियों को नग्नावस्था में स्नान करते देखकर कृष्ण "अनरीति" मिटाने का संकल्प करते हैं। सम्पूर्ण वस्त्रों को समेटकर अशोक वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। कृष्ण को देखकर लज्जावनत गोपियाँ मुख पर्यन्त जल में चली जाती हैं और प्रार्थना करती हैं-

"देखहु निज मन श्याम ! विचारी, अनुचित लखब बसन बिनु नारी।
अम्बर देहु हमार गिरायी, अधिक कहहिं का, मरत लजायी॥"[83]

कृष्ण भी सटीक उत्तर देते हैं-

"कहेउ हरिहु", जो लागत लाजा, वस्त्र उतारत नित केहि काजा?
नग्न नीर तुम कीन्ह प्रवेशू, हमहिं सुनावत अब उपदेशू।
वारि मांहि निवसत वरुण, तिनके लाज विहाय।
लोक लाजहू त्यागि तुम, घूँसन नग्न जल जाय।"[84]

गोपियाँ तत्काल अपनी चूक मान लेती हैं और कृष्ण को विश्वास दिलाती हैं वे अब कभी भी नग्न स्नान नहीं करेंगी।[85] गोपियों की प्रार्थना पर रीझकर कृष्ण वस्त्र प्रदान कर देते हैं-

"प्रमुदित मन घनश्याम तब, फेंके वस्त्र उतारि।
त्यागेउ तरु, पहिरे वसन, गोपिन तजि, तजि वारि।" कृष्णायन, पृष्ठ-39

परम्परा है कि कृष्ण ने गोपियों को हाथ उठाकर नग्नावस्था में जल से बाहर आने के लिए बाध्य किया था किन्तु यहाँ कृष्ण का वह रूप नहीं है।

कृष्ण का स्त्री रूप धारण करना

"कृष्णायन" के राधा-कृष्ण आधुनिक भारत के नागरिक हैं, अस्तु सूरदास, नन्ददास एवं व्यास आदि भक्त कवियों के आधार पर स्त्री रूप धारण कर कृष्ण का राधा से मिलने का प्रसंग नहीं है। कुछ भक्त कवियों ने इस लीला का गान विस्तार से किया है। ब्रजबिहार, प्रेमरसमदिरा, गोविन्द विलास में मनिहारिन, मालिनि और बिसातिन का वर्णन है। कृपालुदास की राधा अपनी इच्छा से एक बार कृष्ण को नवल किशोरी बनाती हैं जिसे कृष्ण सहर्ष स्वीकार करते हैं।[86] एक बार नवागत वधू के घर में घुसकर कृष्ण ने स्त्री का रूप बनाया है।[87] नाइनि का भी वेष बनाते हैं।[88]

81-कृष्णायन, पृष्ठ-27, 82-वही, पृष्ठ-50, 83-वही, पृष्ठ-38, 84-वही, पृष्ठ-38, 85-वही, पृष्ठ 38-39, 86-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-16, 87-श्री सर्वेश्वर, पृष्ठ-63, 88-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-202

गारुड़ी रूप

यमुना तट पर कभी राधा से कृष्ण की भेंट हो गई। घर पहुँचते ही राधा वियोग पीड़ित हो गई, नेत्र बन्द हो गये, लटें बिखर गयीं। कीर्ति रानी से सखियों ने कहा कि कहीं काले सर्प ने डँस लिया है। नन्द बाबा का लड़का चतुर गारुड़ी है, उसे यथाशीघ्र बुलाओ। बुलाने पर कृष्ण आते हैं। कृष्ण के स्पर्श करते ही राधा चैतन्य हो गई और "छू" करके ही नेत्रों को उन्मीलित कर देती है।[89] सूरदास के गोदोहन वाले प्रसंग से इसे जोड़ा गया है।

दानलीला

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्यों में वर्णित दान-लीला के दो चित्र उभरते हैं। एक ओर प्राचीन परम्परा के कुछ भक्त कवियों ने दधिदान के बहाने कृष्ण द्वारा गोपियों से छेड़खानी करने का चित्र उपस्थित किया है। ऐसे प्रसंगों में कृष्ण हठात् मार्ग अवरुद्ध कर देते हैं। उनके साथ सखाओं की भी जमात है। दान न देने पर कृष्ण द्वारा गोपियों की मटकी फोड़कर दही बिखेरते हुए, कंचुकी फोड़ते हुए, मोती के हार तोड़ते हुए, अंचल पकड़ते हुए, घूँघट उघाड़कर मुख झाँकते हुए, बाँह पकड़ते हुए, गाली देते हुए, चित्रित किये गये हैं। गोपियाँ यशोदा से शिकायत करने पहुँच जाती हैं किन्तु यशोदा उन्हीं को दोषी सिद्ध करती हैं। निश्चय ही ऐसे वर्णनों पर सूरदास, ध्रुवदास, माधवदास आदि कवियों का प्रभाव है जिनमें दधिदान के अनन्तर संभोग का भी वर्णन है। दूसरी ओर कृष्णायनकार ने आधुनिक समाज सुधारक रूप एवं उदात्त चरित्र को उन्मीलित किया है। कृष्ण का यह कार्य देश हित, राजहित से संलग्न किया गया है। यहाँ कृष्ण की लंगराई का नाम-निशान नहीं है। आज भी सरकार तस्कर व्यापार पर निगाह रखती है जिससे उपयोगी वस्तुओं का उचित वितरण हो सके।

रास-लीला

समस्त कृष्ण साहित्य में "रास" का विशेष महत्त्व रहा है। भागवत के दशम स्कन्ध में रास पंचाध्यायी का विशेष महत्त्व है। दशम स्कन्ध के अध्याय 29 से 33 तक कृष्ण के रम्यरास का रसपूर्ण वर्णन है। आधुनिक कृष्ण काव्यों में ब्रज बिहार, श्रीकृष्ण चरित के अतिरिक्त कृष्णायन, रम्यरास तथा मधुपर्क में रास का या तो मूल रूप वर्णित है या आधुनिकता के परिवेश में उसकी नई व्याख्या हुई है। इनमें मधुपर्क का रास-वर्णन अत्यन्त मौलिक है।

हरि के पास शर्वरी आकर चित-रंजिनी वृत्ति को हुलसा देती है। कृष्ण अधर पर मुरली रखते हैं, सारी संस्कृति एकत्रित हो जाती है।[90] सम्पूर्ण ब्रज मण्डली "दारु पोषित इव प्रेरे" की तरह श्याम के समीप आ जाती हैं। मध्य में राधा-माधव अपनी छवि से रति और मन्मथ को भी लज्जित कर रहे हैं। मुरज और पखावज बजे, गोविन्द ने गीत गाया और सात सुरों वाली मुरली पुनः बजी, रास प्रारम्भ हो गया। एक-एक पदताल पर उल्लास-विलास बढ़ता जा रहा है। राधा-माधव के वस्त्राभूषण एक में अरुझ रहे हैं।[91] सारी पृथ्वी सुधा-सिन्धु में अवगाहन करने लगी। किन्नर, सिद्ध, नाग, गन्धर्व आदि कृष्ण का अनुसरण कर नभ में ही नृत्य कर रहे हैं। सारा विश्व ही "हरि-लय-लिप्त" हो गया है। जब सम्पूर्ण विश्व को कृष्ण ने परमानन्द-मग्न जान लिया तब राधा का हाथ पकड़कर कुंज भवन में चले जाते हैं। यहाँ राधा से कृष्ण

89-राधा-डॉ० किशोरी लाल गुप्त, पृष्ठ-22, 90-कृष्णायन, पृष्ठ-52, 91-वही, पृष्ठ-53

कहते हैं कि यह मेरा पूर्ण कला अवतार है। राधा को ब्रज में रहकर प्रेम-विटप की सुरक्षा करनी है और कृष्ण असुररूपी कुश-कंटकों को उखाड़ फेंकने में संलग्न होना चाहते हैं। कृष्णायनकार ने यहाँ परम्परागत प्रसंगों को बचाकर रास का वर्णन किया है। राधा का गर्व, कृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपियों की व्याकुलता, कृष्ण का आविर्भाव आदि प्रसंग रास में स्थान नहीं पा सके हैं। भक्त कवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी काव्यकार हैं और संस्कृत के अधिकांश कविगण भी रास पंचाध्यायी का मूलरूप प्रकट करने में उदासीन रहे हैं। कृष्णायन के रम्यरास में सम्पूर्ण सृष्टि ही सम्मिलित है जबकि "रम्यरास" काव्य में मात्र गोपियाँ और राधा ही सदस्यायें हैं।

"मधुपर्क" के रास की सार्वजनिक भूमिका हिन्दी कृष्ण काव्यों की मौलिक उद्‌भावना है। शरदागम पर "ब्रज जीवन के जोबन का पानी" जग जाता है, नैतिकता और अनैतिकता का बंध टूट जाता है। सभी देवी-देवता एकत्रित हो जाते हैं। वेद, गुरु और विप्रों का आदेश प्राप्त कर, नन्द के पैर पकड़कर, यशोदा की गोद लगकर बल, वीर्य, विक्रम, पराक्रम और प्रतापपुंज वाले कृष्ण गणेश-गिरिजा का स्मरण कर नृत्य करने लगते हैं तब सृष्टि की बड़ी विचित्र स्थिति हो जाती है।[92]

सर्वत्र यमुना के कछारों और कुंजों की जय-जयकार होने लगती है-

"जय जय जय भई जमुना कछारनि की।
गंगाजल धारनि की, झारनि की झाऊ की।" -मधुपर्क, पृष्ठ-144

"मधुपर्क" के रास-प्रसंग से ब्रजनारियों की राष्ट्रीय-चेतना उमड़ती-सी प्रतीत हुई है। राजतंत्र का विरोध उन्हें करना ही पड़ता है क्योंकि रास के माध्यम से उन्हें कंस द्वारा कलंकित करने का प्रयास किया जा रहा है। इसका नेतृत्व राधा करती है। आधुनिक भारत में आज नारियों को अधिकार रूप में वही प्राप्त है जो वैदिक युग में प्राप्त था। आज नारियाँ भी यदि राधा और ललितादि की भाँति अनार्यों का मुँहतोड़ जवाब देने में समर्थ हो जायें तो आये दिन समाज में नारियों पर जो अंगुलि-निर्देश किया जाता है, उनका शमन हो सकता है और असामाजिक तत्त्वों का स्वभावत: सर्वनाश हो जायेगा।

मथुरा लीला

कंस के निमंत्रण पर अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा को प्रस्थान करते हैं। मथुरा जाने के पूर्व नन्द-यशोदा की चिन्ता, ग्वाल-बालों एवं गोपियों का भावी विरह से पीड़ित होना तथा सबको कृष्ण द्वारा सन्तोष देने की कथा का वर्णन गोपाल विलास में विस्तार से हुआ है। मथुरा जाते समय मार्ग में कृष्ण उन समस्त स्थानों को दिखाते चलते हैं जहाँ-जहाँ दैत्यों का वध किया था। अक्रूर के मन में कृष्ण के इस पराक्रम पर संदेह उत्पन्न हो जाता है किन्तु यमुना में स्नान करते ही उनका सारा भ्रम दूर हो जाता है। उन्होंने जल में और रथ पर दोनों जगह कृष्ण को देखा। अब उन्हें कंस-वध का विश्वास हो गया।[93] मथुरा में प्रवेश करके उन्होंने रजक-वध किया। माली पर कृपा और कुब्जा का उद्धार उनका अगला काम था। रंगशाला में रखे धनुष को लता के समान तोड़ देते हैं जिसके भयंकर शोर से कंस डर जाता है-

"लता सदृश मौर्वी गहि हाथा, कर्षी अनायास ब्रजनाथा।
सहि नहिं सकेउ शक्ति-पति कर्षण, टूटेउ इक्षु समान शरासन।
बज्र कठोर रोर पुर व्यापा, अंग प्रस्वेद, कंस उर कांपा।"[94]

92-मधुपर्क, पृष्ठ-134, 93-कृष्णायन, पृष्ठ-69, 94-वही, पृष्ठ 76-77

चाप खण्डन करके कुछ असुरों का भी संहार किया और संध्या होने पर अक्रूर दोनों भाइयों को वहाँ पहुँचा देते हैं जहाँ ब्रजवासी डेरा डाले हुए हैं। उद्धव घूम-घूमकर कृष्ण-रक्षा की व्यवस्था करते हैं और यह भविष्यवाणी करते हैं कि कल प्रात: कृष्ण के ही हाथों से हमें विजय मिलेगी। कृष्ण को सभी ब्रजवासी व्यूहबद्ध होकर रातभर छिपाये रहते हैं-

"व्यूह-बद्ध जन कंस-भय, राखेउ हरिहिं दुराय।
सम रिपु शशि लखि जिमि कमल, मुँदि अलि लेत लुकाय॥" -कृष्णायन, पृष्ठ-78

दूसरे दिन रंग-गृह के मुख्य द्वार पर मद्यासव में मस्त कुवलयापीड हाथी को रखा जाता है। कृष्ण उधर से प्रवेश करते हैं। व्यवधान देखकर कृष्ण के पीछे का अपार जन समुदाय क्रान्ति का आह्वान करता है-"मारहु चूर्ण-चूर्ण करि कुंजर", "खल कंस नसावहु" की आवाज चारों ओर से आने लगती है। गजराज को मारकर रक्तरंजित कृष्ण और बलराम रंग-गृह में उपस्थित हो जाते हैं। चाणूर और मुष्टिक, जो पहले से ही कृष्ण को मारने के लिए तैयार थे, का प्राणान्त कर देते हैं। कंस क्रोध में आदेश देता है "वधहु घेरि वसुदेव-सुत, बाँधहु नन्द सब ग्वाल"[95] तब तक कृष्ण उछलते हुए मंच पर चढ़कर कंस को उसी प्रकार पकड़ लेते हैं जैसे खगेश सर्पों को ग्रहण करता है। केश खींचकर कृष्ण कंस के प्राण पखेरू उड़ा देते हैं। सुरपुर में दुन्दुभी बजने लगती है, निर्जर नारियाँ नाचने लगती हैं।[96]

कंस को मारकर सर्वप्रथम कृष्ण कारागार में प्रवेश करते हैं। अन्दर और बाहर के घात-प्रतिघात से कारागार की चहार-दिवारी भग्न हो जाती है। यहाँ बन्दी और त्राता का मिलन बड़ा ही सुहावना बन पड़ा है। सबसे पहले कृष्ण और बलराम उग्रसेन के पैरों पर गिरते हैं और अपना नाम बताते हैं। पार्श्व भाग में स्थित वसुदेव-देवकी हरि-मुख देख रहे हैं। उन्हें अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हो रहा है, स्वप्नावस्था में अपने को समझ रहे हैं।[97] पुन: दोनों भाई वसुदेव-देवकी के चरणों पर गिरते हैं और माता को कृष्ण बहुत समझाते हैं। कंस की अन्त्येष्टि क्रिया करवाकर उग्रसेन नाना को राजतिलक दे देते हैं।[98] यह प्रसंग गोपाल विलास, श्रीकृष्ण चरित, मधुपर्क एवं कृष्णायन में वर्णित है।

वसुदेव जी कुलगुरु को बुलाकर, सगे-सम्बन्धियों को बुलाकर दोनों का उपनयन संस्कार सम्पन्न करवाते हैं। वसुदेव के यहाँ यह सर्वप्रथम मांगलिक अवसर है। आज ही माँ देवकी को पुत्र-जन्म का सुख मिल सका। जन्म के समय वसुदेव ने जो कुछ दान का मानसिक संकल्प किया था, वह सबकुछ दे दिया।[99] उपनयन के बाद नन्द कृष्ण को ब्रज ले जाना चाहते हैं किन्तु कृष्ण काशी-विद्या पढ़ने का अनिवार्य कार्य प्रस्तुत कर देते हैं और नन्द को गोपों के साथ ब्रज लौट जाने की प्रार्थना करते हैं। इतना सुनते ही नन्द और यशोदा असह्य विरह से अचेत होकर गिर पड़ते हैं। गर्ग जी उन्हें प्रबोध देते हैं।[100] देवकी किसी भी स्थिति में कृष्ण को बाहर नहीं भेजना चाहतीं। गर्ग मुनि के समझाने पर किसी तरह वसुदेव अपनी बहिन (जो मालवपति से व्याही थीं) को, सांदीपनि गुरु के यहाँ पढ़ाने के लिए सौंप देते हैं। कृष्ण की मित्रता वहाँ सुदामा से होती है। 64 दिनों में ही कृष्ण सर्वशास्त्र-निष्णात हो जाते हैं। गुरुकुल से आने के पूर्व वे गुरुदक्षिणा के रूप में जरासंध का वध करके आर्य राज्य की संस्थापना का आश्वासन देते हैं और गुरुपत्नी के मृतक पुत्र को, समुद्र में स्थित "पंचजन" नामक दैत्य को मारकर, लाकर देते हैं।[101]

95-कृष्णायन, पृष्ठ-87, 96-वही, पृष्ठ-87, 97-वही, पृष्ठ-89, 98-मधुपर्क, पृष्ठ-202, 99-कृष्णायन, पृष्ठ-93, 100-गोपाल विलास, पृष्ठ-272-273, 101-कृष्णायन, पृष्ठ -108-109

द्वारिका लीला

द्वारिका लीला के अन्तर्गत रुक्मिणी हरण, स्यमन्तक मणि-प्रसंग, सुदामा-प्रसंग एवं कुरुक्षेत्र में ब्रजवासियों से पुनर्मिलन की लीलायें प्रमुख हैं। रुक्मिणी-हरण और स्यमन्तक मणि की घटनाओं का विस्तृत वर्णन हम आगे शीलनिरूपण वाले अध्याय में करेंगे जिससे कृष्ण के चरित्र का उन्मीलन हुआ है। आलोच्य काव्यों में सुदामा की मित्रता का नवीन रूप प्रस्तुत किया गया है, जिसका सम्यक् निरूपण "परम्परा एवं नवीनता" वाले अध्याय में किया जायेगा।

भागवत दशम स्कन्ध-उत्तरार्द्ध के ८वें अध्याय में यह उल्लेख है कि सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में देश-देशान्तर के नरेश एवं तीर्थरागी मुनि स्नान हेतु एकत्र हुए थे। संवाद पाकर ब्रजवासियों सहित नन्द भी पधारते हैं। वहाँ बलराम और श्यामसुन्दर से गोपियों का मिलन होता है। प्रेम को सँजोये हुए गोपियाँ कृष्ण को देखकर प्रगाढ़ आलिंगन का सुख प्राप्त करती हैं। गोपियों से कृष्ण एकान्त में मिले। अध्यात्म की शिक्षा देकर कृष्ण गोपियों के जीवकोश (लिंग-शरीर) को नष्ट कर दिया और सदा के लिए अपने में मिला लिया।

आलोच्य कृष्ण काव्यों में गोपाल विलास, मधुपर्क, कृष्णायन तथा फेरिमिलिबो आदि ग्रन्थ कुरुक्षेत्र का मिलन प्रसंग वर्णन करते हैं। गोपाल विलास में कृष्ण को देवकी, यशोदा, युधिष्ठिर, वसुदेव आदि से मिलते हुए दिखाया गया है। गोपियों तथा राधा से मिलने का सन्दर्भ नहीं है। यहाँ कृष्ण के राजसी ठाट एवं ईश्वरत्व की झलक अधिक है, मिलन का महत्त्व दीप्तिमान नहीं हो सका है। मधुपर्क में यह प्रसंग अति संक्षिप्त है। इतने दिनों से बिछुड़ी हुई राधा-कृष्ण को देखकर झटिति उनके गले से लग जाती है-

"राधा तुरन्त कहि माधव! दौरि-बाजी,
प्रेमातुरा सजल-लोचन सिक्त कण्ठा।
माला खसी करनि तैं स्वयमेव राधा,
माला समान हरि के परि कण्ठ सोहीं।" -(मधुपर्क, पृष्ठ-384)

कृष्णायन में ग्रहण पर्व पर युद्ध बन्द कराने का श्रेय व्यास मुनि को है। भीष्म और कृष्ण इसका अनुमोदन करते हैं। कृष्ण कहते हैं कि जब तक ग्रहण-मोक्ष न हो जाये तब तक युद्ध नहीं होना चाहिए।[102] भारत की यह संस्कृति है कि धर्म-कर्म में आपसी कलह बाधक नहीं बनता। यहाँ कवि ने द्वितीय महायुद्ध में क्रिसमस के दिन युद्ध-रत जर्मनी और इंग्लैण्ड की ओर संकेत किया है। सारे वैर-भाव को त्यागकर कुरुवंशी क्षत्रिय पाण्डवों तथा कृष्ण से मिले। कृष्ण जैसे ही "आवत ब्रज जन" सुनते हैं तैसे ही पद-त्राण, रथ त्यागकर मथुरा-पथ की ओर दौड़ते हैं। सर्वप्रथम यशोदा-नन्द के शकट के पास जाकर कृष्ण "कान्ह" करते हुए नन्द के चरण पर गिर पड़ते हैं। माता-पिता और कृष्ण का यह मिलन दर्शकों को ब्रह्मानन्द प्रदान करता है।[103] पुनः वृषभानु के शकट के पास जाते हैं, वहाँ राधा को भक्ति का साकार रूप धारण किये हुए देखा।[104] फेरिमिलिबो में कृष्ण नारद को ब्रज भेजकर ब्रजवासियों को कुरुक्षेत्र बुलवाते हैं-

102-कृष्णायन, पृष्ठ-291, 103-वही, पृष्ठ-293, 104-वही, पृष्ठ-293

"सुधि करि तुम्हारि, सन्देश कह्यो बनवारी।
है पुण्य-काल रविग्रहन चलौं ब्रजनारी॥
अबहूँ ब्रज-सुधि करि नीर नैन में लावैं।
नित गो-गोपी-गोपाल-गीत हरि गावैं॥
जद्यपि रुक्मिनि बहु भाँति बिनैं बिलमावैं।
पै सोवत ही ब्रज-सपन नित्य प्रति आवैं॥
यातें मोपै संदेस कह्यो असुरारी।
है पुन्य काल रविग्रहन चलौं ब्रज नारी॥" -फेरिमिलिबो, पृष्ठ-1

फेरिमिलिबो का मिलन-प्रसंग अत्यन्त मार्मिक एवं हृदय-स्पर्शी है। हिन्दी साहित्य में कृष्ण और ब्रजवासियों के मिलन का ऐसा वर्णन कहीं नहीं हुआ है।

विशेष

आधुनिक कृष्ण कविता में लीलागान परम्परा का अपना एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। मध्यकालीन कवियों ने जहाँ उस जगन्नियन्ता परमेश्वर की अत्यन्त लीलाओं के गुणगान में अपने को मोक्ष-पथ का पथिक माना है, वहाँ आधुनिक प्रवृत्तियों से प्रेरित कवियों ने कृष्ण की उन समस्त लीलाओं को सहज- सुलभ मानवीय रूप देने का प्रयास किया है। एक का उद्देश्य भक्ति, गुणगान, कीर्तन, भजन करना आदि है, दूसरे का, समाज केसम्मुखकृष्णकेमानवोचितकृत्योंकोउद्घाटनकरनाहै। आधुनिकलीलागानमेंसमाजसुधार, जनकल्याण, परोपकार, जनतन्त्र-प्रजातन्त्र का स्वरूप अधिक विकसित हुआ है। लीलागान की मूलात्मा तो भागवत से ही ली गई है किन्तु वह आधुनिक परिस्थितियों के प्रभाव से बच न सकी।

आजदेशकी विभिन्न समस्याओं में नारियाँहाथबँटारहीहैं। भक्तों की राधा जब कृष्ण के ऊपर कालयवन एवं जरासंध के आक्रमण की सूचना पाती हैं तब अनिष्ट की मात्र शंका कर हाथ पर हाथ रखकर शान्त नहीं रहती। आधुनिक कविता में कुछ ऐसे प्रसंग हैं जहाँ राधा युद्ध के लिए सचेष्ट दिखायी देती हैं। ब्रज कुमारियों की एक विशाल सेना गठित कर ली जाती है जिसके नेतृत्व का उत्तरदायित्व राधा पर है। कृष्ण-जीवन पर जाने-अनजाने जो कुछ अंगुलि- निर्देश किया गया है उसका शमन-समाधान मधुपर्क में किया गया है। वस्तुतः आधुनिक युग में लीलागान परम्परा का दण्डनीति, अर्थनीति, राजनीति, देश, जाति, धर्म के साथ समसामयिक सम्बन्ध है।

पुनश्च, कुछ ऐसे भक्त कवियों ने प्राचीन परम्परा को जीवन-दान दिया है। ऐसे काव्यों में आध्यात्मिक चर्चा अधिक हुई है। लघुकाय प्रसंगों में कृष्ण द्वारा लम्बे व्याख्यान दिलवाकर किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन कराया गया है। इन प्रसंगों में मूल लीला- कथा बाधित-सी प्रतीत होने लगती है। इन काव्यों को सिद्धान्त या धर्मग्रन्थ अथवा उपासना-ग्रन्थ कहा जाये तो अनुचित न होगा। लीलागान के कतिपय आधुनिक विवेचन से प्राप्त होता है कि राधा-कृष्ण को कुंजों से निकालकर समाज में खड़ा करने का विशेष श्रेय हरिऔध और देवीरत्न अवस्थी "करील" को है।

(ग) विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की छाप

विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों में निम्नलिखित सम्प्रदाय मुख्य हैं-

1-वल्लभ सम्प्रदाय, 2-निम्बार्क सम्प्रदाय, 3-राधावल्लभ सम्प्रदाय, 4-चैतन्य सम्प्रदाय, 5-हरिदासी सम्प्रदाय। उपर्युक्त सम्प्रदायों के परिप्रेक्ष्य में राधा-कृष्ण का क्या स्वरूप है, इस सम्बन्ध में हम माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत प्रथम अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। इन समस्त वैष्णव सम्प्रदायों की मूल भावना है राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति का सदैव सान्निध्य प्राप्त किये रहना। सभी सम्प्रदायों में निकुंज लीला ही प्रमुख है। आधुनिक युग में विज्ञान से प्रभावित रचनाओं पर वैष्णव सम्प्रदायों की कोई छाप दृष्टिगत नहीं होती। श्री रत्नाकर जी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य जी की "जय-अघ-हरन तारन-पतित-समाज" कहकर प्रशंसा करते हैं।[105] सम्प्रदायों से सम्बन्धित या दीक्षित कुछ भक्त कवि ऐसे हैं जिन्होंने राधा-कृष्ण की लीलाओं का गान किया है जैसे गोविन्द सिंह, गोपाल दास, श्रीनारायण स्वामी, माधवदास, कृपालुदास, भोलानाथ "भोरी सखी" सुश्री कृष्णा माँ आदि। डॉ० माधवी लता शुक्ल की रचना "माधव-माधवी" आधुनिक काल में भक्ति काव्य परम्परा की प्रतिनिधि कृति है। श्रीनारायण स्वामी जी और माधव दास की कृतियों में निकुंज लीला के कुछ पद प्राप्त होते हैं।

"देखि युगल छवि सावन लाजै।
उत घन इत घनश्याम लाड़िली, उत दामिनि इत प्रिय संग राजौ॥
उत बरसत बूँदन की लरियाँ, इत गल मुतियन हार विराजै।
उत दादुर इत बजत बाँसुरी, उत गरजत इत नूपुर बाजै॥
उत घन घुमड़ इतै दृग घूमत, नारायण बरषा सुख साजै।"[106]
विहरत नाना कुंज में, नित्य बिहार स्वतन्त्र।
गल बहियाँ दीये दोउ, बँधे प्रेमरस यन्त्र॥[107]

भारतेन्दु जी राधा-कृष्ण से अपनी अलग-अलग पहचान बनाते हैं। राधा के वे गुलाम हैं और कृष्ण प्यारे के वे सखा हैं। इसी प्रकार कृष्णा माँ और माधवी लता शुक्ल ने भी युगल बिहार के पद लिखे हैं-

लाल-ललि, दोउ रस रसिक मनी।
बिहरत नित नव कुंज निकुंजन, एक प्रान द्वै देह बनी।
बलि बलि जात दोउन छवि "कृष्ण" दोउ नवनेह सनी।[108]
माधव बरसन लागीं बुँदियाँ।
नेह सलिल सों भीजति चूनर, खनकन लागीं चुरियाँ।
कुंजन-कुंज टपकहिं पानी, मूर्छित मधुबन सखियाँ।
"माधवि" निरखि पीर राधा की, छल छल छलकीं अँखियाँ॥[109]

उपर्युक्त कवियों की रचनायें भक्तिपरक हैं और कुछ कवि वैष्णव सम्प्रदायों में दीक्षित भी हैं किन्तु इनकी कृतियों में वैष्णव सम्प्रदायों की छाप नहीं दिखाई पड़ती है। सम्प्रदायों की नैतिक पूजा-पद्धति और

105-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ.5, 106-श्रीसर्वेश्वर (ब्रजबिहार अंक), पृ.137, 107-निकुंज केलि माधुरी, पृष्ठ-81

अर्चन-वन्दन की परम्परा मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ी। खड़ी बोली के प्रमुख कवि हरिऔध और अवधी के द्वारका प्रसाद मिश्र के "प्रियप्रवास" और "कृष्णायन" पर भी किसी सम्प्रदाय विशेष का प्रभाव नहीं है। वस्तुतः आधुनिक युग के कवियों की रागिनी लोकरक्षक, समाज सुधारक कृष्ण तथा राष्ट्रनायिका के रूप में राधा के चित्रण की ओर अधिक रमी है। अस्तु, मैं उक्त विवेचनों से इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि आधुनिक कृष्ण-काव्यों पर वैष्णव सम्प्रदायों की छाप नहीं है।

(घ) राधा-कृष्ण का सौन्दर्याङ्कन

प्रकृति सौन्दर्य का सर्वाधिक प्रांजल रूप है। इसके विविध उपादानों का चित्रण आलम्बन और उद्दीपन रूपों में कवियों द्वारा किया गया है। मानव-सौन्दर्य के वर्णन में प्रकृति के उपादानों का विशेष महत्त्व है। आधुनिक काल के प्रायः सभी कवियों में मानव-सौन्दर्य-निरूपण में प्रकृति का सहारा लिया है। राधा और कृष्ण के सौन्दर्यांकन में भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल तथा आधुनिक सभी कवियों की रूपभावना प्रकृति के रूप-सागर में डूबती-उतराती-सी प्रतीत हुई है। सूर, बिहारी काल तक भारतेन्दु आदि सभी कवियों के सौन्दर्याङ्कन में शृंगार-सुलभ सौन्दर्य के घटक तत्त्वों का यथावसर वर्णन हुआ है। भारतेन्दु जी रीति और आधुनिक काल की धुरी है जिसके चारों ओर दोनों कालों की प्रवृत्तियाँ नृत्य करती हैं। यहाँ आधुनिक कृष्ण कविता में राधा और कृष्ण के जिन सौंदर्य-तत्त्वों का प्रस्फुरण हुआ है, उसका यथाक्रम विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

कृष्ण

आधुनिक युग के प्रवर्त्तक कवि भारतेन्दु जी के प्रेमपात्र राधा और कृष्ण हैं। ये वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित कृष्ण-भक्त वैष्णव थे। एक ओर इनका काव्य-शिल्प रीतिकालीन परम्परा का समाश्रयण करता है और दूसरी ओर नवीन युग का द्वार भी खोलता है; अस्तु, इनके राधा-कृष्ण-सौन्दर्यांकन में रीतिकालीन नखशिख परम्परा का वर्णन भी मिलता है; यद्यपि यह वर्णन नखशिख का निर्वाह मात्र ही है।

बालक कृष्ण के चन्द्रमुख पर अंकित डिठौना ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो श्याम कमल पर कोई "रंग-भीनो" अलि है, गले में बघनखा खिली हुई अगस्त कलिका की भाँति शोभावृद्धि कर रहा है, छोटी-छोटी सिर की केश-लटें भ्रमरावलियों का ध्यान दिलाती हैं और उन लटों पर कुलही की शोभा सुख ही देती है, छुद्र घंटियाँ कटि भाग में विलसित हैं मानो सुन्दरता के भवन के चतुर्दिक वन्दन माला बाँधी गई हो, तन पर पीत झिंगोला ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो घन में दामिनि लिपट गई हो, जिसकी छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता है, ऐसे अभिराम रूप पर करोड़ों कामदेव अपने तन-मन को न्यौछावर करते हैं।[1] कृष्ण कभी-कभी नारी का भी रूप धारण करते हैं, ऐसे अवसर पर वे नारी और पुरुष दोनों के अलंकरणों से सुसज्जित रहते हैं। सिर पर चन्द्राकार मुकुट, कानों में कर्णफूल और कुंडल विराज रहे हैं। कटि में कछौटी और साड़ी, पैरों में नूपुर, विछिया और अनवट, हाथों में स्वर्णिम चूड़ी और बाजू पहने हुए हैं। शरीर में केसर-खौर, मस्तक पर सिन्दूर बिन्दु, मुख पर केश और पृष्ठभाग पर नागिन की भाँति लहराती हुई वेणी तथा नितान्त सुन्दर लहराता हुआ चटकीला नीला-पीला पट कृष्ण के सौन्दर्य में वृद्धि प्रदान कर रहे हैं। मधुर-मधुर अधरों पर वंशीध्वनि और मुस्कान है, दोनों नेत्रों की रस-भीनी चितवन परम लज्जा की खानि है, ऐसी रूप-शोभा को सभी देखकर सचकित हो जाते हैं।[2] गोधन सहित बलराम-कृष्ण "बेनु-बजावत,

1-भारतेन्दु ग्रन्थावली-सं० ब्रजरत्नदास (दूसरा संस्करण, 2010 सं०) पृ०-443, 2-वही, पृ०-594,

मधुरे सुर गावत", वनोन्मुख जा रहे हैं। ऐसी अपूर्व तान सुनकर संसार की गति विस्मृत-सी हो जाती है, यहाँ तक कि स्थावर और जंगम एक-दूसरे के मूल गुणों का अनुसरण करने लगते हैं, वृक्षों को रोमांच तक हो आता है।[3] भक्तवर भारतेन्दु के कानों में कृष्ण की वंशी सदैव बजती रहती है, इनकी लालसा है कि सदैव कृष्ण के वास्तविक रूप का साहचर्य उन्हें मिलता रहे, कृष्ण की बोली सुनकर चलने की अदा एवं पीत पट का फहरना देखकर दर्शक का धैर्य जाता रहता है, नेत्र तो अपने इशारे से दर्शक को अपने प्राणों के संग ही कर लेते हैं।[4] इसीलिए प्रार्थनारूप में कवि कहता है कि मेरे रोंये-रोंये की पूर्ण तृप्ति करती हुई बंशी-ध्वनि सदैव बजती रहे; दोनों नेत्रों में कृष्ण की "चलनि" (चाल) में मुड़ने की अदा, "मुरनि" और "बतरानि" व्याप्त रहे, प्यारे कृष्ण का पीतवस्त्र सदा हृदय-मध्य फहराया करे।[5] मौक्तिक छाया के आन्तरिक तरलत्व की भाँति वस्तुओं में जो स्थायी चमक होती है, उसे "लावण्य" एवं अंग-प्रत्यंग का उचित संश्लिष्ट सन्धिबन्ध के युक्त सन्निवेश को "सौन्दर्य" कहा जाता है; कहना न होगा कि कृष्ण में अपूर्व "लावण्य" एवं "सौन्दर्य" है। त्रिभंगी नटवर करोड़ों कामदेव की छवि छीन लेते हैं।[6] भारतेन्दु जी बालरूप से भी मुग्ध हैं। धूल से धूसरित शरीर वाले कृष्ण घुटनों के बल चलते हुए किलकारी मारते हैं, माँ यशोदा ऐसे रूप पर बलि-बलि जाती हैं। कभी तो दोनों (कृष्ण-बलराम) झगड़ते हैं और कभी आनंदित होकर दोनों दौड़कर चलते हैं, कभी-कभी माँ यशोदा की चोटी पकड़कर मक्खन की याचना करते हैं। ऐसी छवि को देखने के लिए घर-घर से ब्रज-नारियाँ आती हैं और उस छवि पर न्यौछावर भी हो जाती हैं।[7] मुख पर बिखरी अलकें मानो मन के दो फंदे हैं साथ में वृषभानु-नन्दिनी भी हैं जिनकी छवि-माधुरी का पान मन-भ्रमर करता है।[8] हाव से सौन्दर्य उल्लसित होता है, चतुर्दिक दया भरी चितवन, हँसने और मन्द मुस्कान की गति, आने-जाने एवं सहसा मुड़ने की कला, बात करने का ढंग आदि गत्यात्मक सौन्दर्य एवं पीत "पिछौरी" तथा वेणु आदि अलंकारों की छवि नेत्रों से क्षण मात्र के लिए भी ओझल नहीं होती है।[9] भारतेन्दु जी कृष्ण के युगल रूप के उपासक थे। इसीलिए उन्हें अपने को ***"सरबस रसिक के सुदास, दास प्रेमिन के, सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के"*** कहने में संकोच नहीं होता। यत्र-तत्र राधा और कृष्ण के संयुक्त रूप का भी वर्णन मुखरित हुआ है, मनमोहन नटनागर के साथ किशोरी जी भी हैं, एक साँवले और एक गोरी। एक नीली साड़ी से और एक पीत "पिछौरी" से आवेष्टित हैं। कुंजों में खड़े होकर एक-दूसरे के चित्त की चोरी कर रहे हैं, प्रत्येक का सौन्दर्य प्रत्येक के लिए मनमोहक बना हुआ है, क्योंकि दोनों की वय एक है, वय के साथ-साथ रूप की भी वृद्धि होती है।[10] एक सखी कृष्ण और राधा के रूप- लावण्य का वर्णन करती हुई कहती हैं, "हे सखि! मैंने आज ब्रजराज कुँवर को साथ में राधा जी को लिए देखा है, पूर्ण प्रीति-रीति से दोनों हाथों को कुचों पर रखे हुए दृश्य के लिए मेरे नेत्र चकोर बन गये। अंगुलियों में दो-दो मानक अँगूठियाँ भी थीं, अँगूठी और नखों की तीव्र आभा से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उदयाचल शिखर पर बीस रवियों और दस चन्द्रमाओं का उदय हुआ हो।"[11] कृष्ण रसिकों के सर्वस्व हैं; इन पर करोड़ों कामदेव को न्यौछावर करने के लिए भारतेन्दु जी उद्यत हैं।[12]

3-भारतेन्दु ग्रन्थावली-सं० ब्रजरत्नदास (दूसरा संस्करण, 2010 सं०) पृ०-753, 4-वही, पृ०-147, 5-वही, पृष्ठ-148, 6-ब्रजमाधुरी सार, पृष्ठ-342 (हरिश्चन्द्र), 7-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-47, 8-वही, पृष्ठ-48, 9-वही, पृष्ठ-50, 10-वही, पृष्ठ-46-47, 11-वही, पृष्ठ-868, 12-वही, पृष्ठ-607

कृष्ण रूपागार हैं। अलंकारों की यथोचित सज्जा के सौन्दर्य की दिव्यता एवं मनमोहक रूप विग्रह का प्रकाशन होता है। सिर "हेम-हरिन" खचित किरीट से मण्डित है जिसकी अखण्ड जगमगाहट अहर्निश प्रकाशमान है। भाल पर दिव्य तेज ऐसा आभासित है, भौंह की बंकिमता ऐसी है मानो नेत्रों में साहस एवं विचार की तीव्र दृढ़ता हो। कुंचित केशों के मध्य "स्रौन-कुण्डल" ऐसा सुशोभित होता है मानो घन के मध्य विद्युत नृत्य कर रही हो। बृषभ-स्कन्ध, सुभग-वाहु एवं बैजयन्ती माला से युक्त "उर-थली" सुशोभित है।[13]

"घनस्यामल" विग्रह पर पीताम्बर ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहा है मानो शरदकालीन बाल-रवि श्वेतमेघ पर आच्छादित है।[14] सिर पर दिव्य आभा से मण्डित किरीट ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो नील गिरि के शिखर पर अखण्डित बाल-रवि उदय हो, भाल पर लगा हुआ केशर का तिलक मेघ के पटल पर चपला के अटल शयनासन का ध्यान प्रस्तुत करता है।[15] घुँघराली लटें मुखमण्डल के चतुर्दिक ऐसी घिरी हैं मानो भृंग-मण्डल नील कमल पर बैठकर सबका मन मोहित कर रहा हो। भौंहें वक्र कृपाण की भाँति सदा सचेत रहती हैं जिनसे छवि सुख-प्राप्ति होती है। युगल नेत्र ऐसे शोभित हैं मानो काम-सरोवर में युगलमीन बिहार करते हों या चन्द्रमा के उर में वास करने वाली मृगी की दृग-तारिकायें हों अथवा उस शारदीय मुख शोभा को देखकर उल्लसित हृदय वाले खंजन-मिथुन हैं। मुख-कमल के लिए दृग चंचरीक बन गये हैं। सनाल सरोज के समान बाहुएँ हर प्रकार से मनोहर हैं। सुन्दर कम्बु सदृश ग्रीवा में वनमाला विलसित है। कटि में पीतवस्त्र प्रिंगकेशर जैसा लसित है। जंघे बड़े पुष्ट हैं जैसे इन्द्र के ऐरावत के कर।[16] कृष्ण के उन चरणों की शोभा का वर्णन करने वाला कोई मूर्ख ही कवि होगा, जिन चरणों को पूजकर मनुष्य मोक्ष पाता है, शंकर संसार को मंगलदान देते हैं, सुर-वृन्द निविड़ मोहान्धकार का शमन करते हैं, विद्याधर, दनुज, यक्ष, किन्नर इत्यादि रात-दिन हृदय में ध्यान-धारण करते हैं, ऐसे चरणों की छवि का वर्णन कौन कर सकता है।[17]

सौन्दर्य की एक प्रमुख विशेषता उसके प्रभाव की होती है। बृषभानुनंदिनी सहित सभी गोप कुमारियाँ रुक्मिणी के गृह में प्रवेश करती हैं। इतने में ही वहीं कृष्ण का भी पदार्पण होता है। ऐसे अवसर पर कृष्ण के रूप को देखकर सभी ललनायें ललचा जाती हैं, वे अपनी सुध-बुध वैसे ही खो बैठती हैं जैसे कमल को देखकर भ्रमरावलियाँ विस्मृत अपान हो जाती हैं-

"लखि हरि-रूप अनूप-सकल ललना ललचानीं।
मनौ निरखि जल-जात अलिन की अनिल भुलानी।"[18]

कटि में पीतवस्त्र सावन-घन में शारदीय-आतप-प्रसार जैसा प्रतीत हो रहा है, ऐसे कटि की छवि को देखकर मृगराज सलज्ज दूर वन को पलायन करता है। उदर के मध्य नाभि को देखकर भ्रमर अपनी भाग्य जगने जैसी प्रसन्नता व्यक्त कर रहा है, त्रिबली-छवि तो अत्यन्त सुखदायक है जिस पर बैजन्ती की माला विलसित है। चिबुक परम मनोरम है, रदन की चमक विद्युत के साथ सहज भ्रातृ-सम्बन्ध स्थापित करती है। बिम्बाधर एवं शुकनासिका सुशोभित है, कानों में कुण्डल ऐसे छविमान हैं मानो आकाश मण्डल में विजय हेतु दो चन्द्रमा उदय हुए हों। कृष्ण की ऐसी सुन्दरता मर्यादा भंग कर प्रवहमान हो रही है।[19]

13-फेरिमिलिबो, पं० अनूप शर्मा, पृष्ठ-69, 14-वही, पृष्ठ-70, 15-वही, पृष्ठ-138, 16-वही, पृष्ठ-139, 17-वही, पृष्ठ-140, 18-वही, पृष्ठ-196, 19-वही, पृष्ठ-197

पं० अनूप शर्मा ने कृष्ण के सौन्दर्य का सरस लिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है। नारद के माध्यम से कवि कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर समस्त गोप एवं ब्रजबालाओं के सम्मुख समयानुकूल कृष्ण के आंगिक सौन्दर्य का सौकर्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता ही रहता है। सौन्दर्यांकन की इस धारा में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति अधिक पल्लवित हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि जब कभी भी गोप और ब्रजबालाओं के मध्य कृष्ण को उपस्थित देखता है, सौन्दर्यांकन का मोह संवरण नहीं कर पाता। यहाँ कवि का मुख्य उद्‌देश्य कुरुक्षेत्र में मिलन वर्णन ही है। मिलन का ऐसा हृदयग्राही रूप अन्यत्र दुर्लभ है। मिलन प्रसंग में यत्र-तत्र कृष्ण-रूप सामने आ गया है।

कृष्ण के आगमन की दिशा को सभी गोप झाँक रहे हैं-गोपों के मध्य श्रीकृष्ण आ ही गये। गोप-कुमुद के मध्य कृष्ण चन्द्रमा की भाँति सुशोभित होने लगे, ऐसी छवि के दर्शन से ब्रह्मा भी लज्जित हो जाते हैं। उनका नील शरीर करोड़ों कामदेव को लज्जित करने वाला है, मानो यह श्यामतन तमाल की छाया की भाँति पृथ्वी पर मंगल विस्तीर्ण कर रहा है।[20] गम्भीर नाभि के निकट त्रिबली ऐसी प्रतीत होती है मानो गंगा की गति को देखकर यमुना भी त्रिपथगामी बन गयी हो। कल्पलता के समान लम्बी आजानु भुजायें भी हैं। बृषभ-स्कन्ध, सुघड़-ग्रीवा और चिबुक दर्शकों के मन को मोह लेते हैं। नासिका की द्युति शुक-तुण्ड को तथा अधर-छवि बिम्बाफल को मोह लेती है। धनुषाकार भौंहें कामदेव के शरासन की बाँकी छवि का तथा नेत्र कमल की प्रभा का अपहरण कर लेते हैं।[21]

"मधुपर्क" के कृष्ण अलौकिक आभा एवं माधुर्य से मण्डित हैं। उनके काले कुंचित केशों पर किरीट मोरपंख से सुसज्जित हैं। मकराकृत पीत कुण्डल कानों में शोभायमान हैं। कृष्ण के ऐसे रूपसागर में रति के भी पवित्र नेत्र फँस जाते हैं। श्री करील जी ऐसे रूप-वर्णन में अपने को पूर्णत: आधारहीन उसी प्रकार मानते हैं जिस प्रकार "साक बनिक मनि गुन गन जैसे" कहकर गोस्वामी जी सत्संगति की महिमा का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं, कारण, दीपक क्या रवि-आभा का उपमान बन सकता है।[22] रूपसागर भगवान् कृष्ण की मधुरता और तेज "जुह्नाई" के लिए सहायक बन गया है, मधुपर्क की दिव्य मूर्ति पर मनोज की लुनाई भी मोहित हो जाती है।[23] नेत्र की ललामता देखते ही रसवती वसुन्धरा के प्राण हुलसाने लगते हैं।[24] रास के समय माधव कृष्ण को सुहावने पदारविन्द को देखकर रास-रस-रसिक भ्रमर मँडराने लगते हैं, आजानु बाहु की पुष्टता देखकर देव षडानन अवाक् रह जाते हैं, वक्षस्थल का उभार, प्रसार और विकसित रूप देखकर कलाओं सहित चक्रपाणि ललचाने लगते हैं, मुखाभा देखकर चन्द्रमा एवं नेत्र देखकर त्रिलोचन शंकर सिहाने की क्रिया में मग्न से दिखायी देते हैं।[25] कृष्ण के पैरों की "पाँवरीनि" पर यशोदा के नेह की प्रसूति ही उमड़ पड़ती है, मनोहर पीताम्बर में आकाश और पृथ्वी तक की सुन्दर कलाओं के कृतित्व का समाश्रयण होता है। उत्तरीय के दोनों स्वार्णिम छोरों पर वनमाला की विभूति जड़ी-सी प्रतीत होती है, लकुट, मुरली और मुकुट पर राधिका की अनुभूति स्थिर-सी हो जाती है।[26]

राधा और कृष्ण की "चितवन" से नन्द और बृषभानु पुलकित होते हैं।[27] अक्रूर कृष्ण के तेजस्वी रूप में विष्णु के भव्य सत्ता के पौरुष को साकार देखते हैं, सरल एवं स्वाभाविक सुख से युक्त शरीर मानो ब्रह्मचर्य की पुरुषार्थमयी प्रतिमा है, मुख पर सदा मन्द मुस्कान ऐसी छाई रहती है मानो मंजु सरोज में

20-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-181, 21-वही, पृ.182, 22-मधुपर्क : देवीरत्न अवस्थी, पृ.68, 23-वही, पृ.124, 24-वही, पृ.125, 25-वही, पृ.126 (पद सं. 66), 26-वही, पृ.126 (पद सं. 68), 27-वही, पृ.127 (पद सं. 69)

हेमाभा विकसित हो, अक्रूर को कृष्ण के दोनों बड़े-बड़े नेत्र ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे संसार के संत्रस्त प्राणी को प्रकाश दीप प्राप्त हो रहे हों। मौक्तिकावलि की भाँति दसन-पंक्ति, प्रवाल जैसे ओष्ठ, महाविशालकाय कपाट-पट की भाँति वक्षस्थल, लम्बी मांसल भुजायें, कम्बुकण्ड, बृषभस्कन्ध ऐसे सुसज्जित एवं मनोहारी हैं मानो कृष्ण की छवि युवावस्था की प्रतिष्ठा है। करोड़ों कामदेवों से भी अधिक सुन्दर कृष्ण का ऐसा रूप प्रकाशमान हो रहा है।[28]

नख-शिख परम्परा में करील ने शिख-नख क्रम में सौन्दर्य को चित्रित किया है। कंस-वध के अनन्तर बन्दियों को कृष्ण जेल से मुक्त करते हैं, भव-मुक्ति की आर्य पताका फहराकर जब कृष्ण एक सुसज्जित वेदिका पर विनय-शील से युक्त होकर जनता के सम्मुख उपस्थित होते हैं, तब उनकी शोभा और दीप्ति देखते ही बनती है, मुकुट खचित केशों को देखकर मधुप लज्जित हो गये, मुख की उद्‌दीप्त ज्योति कमलदल में बस गई। नासापुट की सुन्दरता की कथा का साकार रूप है, कानों के कुण्डल पर दिवाकर की ज्योति सुशोभित।[29] रदपट अधर प्रवाल के समान लालिमा से युक्त हैं, मुस्कान-युक्त दसन-ज्योति मुक्तावलियों की भाँति ज्योतित है, चिबुक कोटि मनोज के मान को घटाने लगे, ललित कपोल तो कृष्ण के सम्पूर्ण चरित को ही व्यक्त करने वाले हैं। सुन्दर कण्ठ, प्रदीप्त मस्तक, भौंहों की वक्रता एवं अनियारे नेत्रों के आनन्द पर इन्द्र का सम्पूर्ण इन्द्रत्व न्यौछावर हो जाता है। प्रलम्बित पुष्ट पृथुल भुजदण्ड सुशोभित हो रहे हैं। मणिमण्डित केयूर एवं रत्नजटित उत्तरीय जब फहराते हैं तब जनार्दन श्रीकृष्ण की जय-जयकार होने लगती है। पीताम्बर से झलकता हुआ शरीर मन को ऐसा हर लेता है मानो कामदेव सारी सुन्दरता का जमघट हो गया हो। दोनों जंघे बल-शौर्य जगाने के लिए ही सुशोभित हो रहे हैं। उनकी द्रुतगति से जागतिक कष्टों का शमन होता है।[30] एड़ियों एवं उन पर मणि-जटित पांवरों की सुन्दरता को क्या कहा जाये ? ऐसे रूपवान कृष्ण हाथ जोड़कर खड़े हैं जिन्हें देखने हेतु सारी जनता उमड़ रही है।[31] सुन्दर नाभि सम्पूर्ण लोकों का घर है, संसार की सम्पूर्ण सुन्दरता कृष्ण-नाभि में संचित है। सुहावनी अनिन्ध कटि से मृगेन्द्र का भी मान घट जाता है।[32] स्नेह मधुरामृत से युक्त कृष्ण से प्राणी सुघर जाते हैं, दु:ख-दरिद्र एवं विषम विकारों का शमन हो जाता है। राधिका के नेत्रों में जब कृष्ण के रतनारे नेत्र फँस जाते हैं, तब राधा का ध्यान प्राणवान होकर उद्‌वेष्टित हो जाता है।

"हरिजात विषम-विकार दु:ख दारिद के, सामुहैं मुकुन्द की सुमूरति के परिजाता।
परिजात नैननि में नैन रतनारे जब, राधिका कौ ध्यान, प्रानगान ह्वै उभरिजात।।"-मधुपर्क, पृ०126

"कविरत्न" को कृष्ण के भक्ति एवं राष्ट्रीय-भावनाओं से ओतप्रोत, ब्रज कोकिल पं० सत्यनारायण "कविरत्न" को कृष्ण के अधरान की मुरली, चितवन की कोर, सघन कुंज की छटा एवं जमुना की तरंगें अधिक रुचिकर हैं, पीला दुपट्टा लपेटकर, सुन्दर छड़ी लेकर, मुस्कराते हुए घनश्याम को हृदय में बसाना चाहते हैं।[33] युगल रूप भी इन्हें हृदयग्राही है। कानों में मकराकृत कुण्डल पहने हुए, पीतवस्त्र से वेष्टित गोपीश कृष्ण के राधा सहित उर में वास करने की याचना करते हैं। कृष्ण का मुख चन्द्रमा है और कोमलता में चरण कमल की समता करते हैं। जगत में कमल और चन्द्रमा का बैर प्रसिद्ध ही है (सूर्योदय के समय मुकुलित होकर

28-मधुपर्क, पृ.76 (पद सं० 98 से 107), 29-पृ.-197 (पद सं० 107), 30-वही, पृष्ठ-198 (पद सं० 108 से 113 तक), 31-वही, पृष्ठ-199 (पद सं० 114 से 115), 32-वही, पृष्ठ-24, 35, 33-ब्रजमाधुरी सार-सम्पादक वियोगी हरि (बारहवाँ संस्करण 2016) पृ० 381

कमल चन्द्रोदय पर सम्पुटित हो जाता है)। इस बैर को सिद्ध करने के लिए ही कृष्ण अपने कमलवत् चरण को विधु-मुख तक ले जाते हैं (बालक हरि चूसत स्वपद अघाय)।[34]

आधुनिक युग की भ्रमरगीत परम्परा में डॉ० रमाशंकर शुक्ल "रसाल" और "रत्नाकर" जी के उद्धव शतक का विशेष महत्त्व है। दोनों का प्रतिपाद्य विषय है-ज्ञान और भक्ति, निर्गुण और सगुन, योग और प्रेम का पारस्परिक प्रत्यालोचन।

उद्धव और गोपियों की भाव-धारा में दोनों कवि रसमग्न हैं, उन्हें अन्य चतुर्दिक परिस्थितियों एवं तथ्यों से कोई सरोकार नहीं है। यही कारण है कि राधा और कृष्ण के रूप वर्णन की ओर कविद्वय का ध्यान नहीं गया। यद्यपि यत्र-तत्र उद्धव के प्रश्न का उत्तर देते समय गोपियाँ कृष्ण के मनमोहक पूर्व-दृष्ट रूप का स्मरण करती हैं। रत्नाकर के कृष्ण का मन राधा के सुन्दर मुख-सुधाकर के ध्यान से ही जहाज की भाँति डूबने लगता है। राधा की सौन्दर्य-वासना में कृष्ण मूर्छित हो जाते हैं।[35] यहाँ रूप से प्रबलतम अलौकिक प्रभाव की छटा दर्शनीय है।

पं० अमृतलाल चतुर्वेदी कृत् "स्याम-संदेसौ" उद्धव, गोपी तथा राधा का परस्पर भावों का आदान-प्रदान ही हैं। डॉ० किशोरीलाल गुप्त कृत "राधा" पूर्ण राधा रूप ही है। उसमें राधा के लिए ही कृष्ण की पैठ है। राधा और कृष्ण के प्रेम व्यापार में कवि ध्यानमग्न है।

उपर्युक्त ग्रन्थों में जहाँ राधा के अस्फुट प्रेम और रूप-माधुर्य का यथाक्रम निर्धारण हुआ है, वहाँ, कृष्ण के आंगिक एवं अलंकार विषयक किसी भी स्वरूप का यत्किंचित् भी संकेत दृष्टिगत नहीं हो सका है। इसे "अपारे काव्य संसारे कविरेक: प्रजापति:" कहकर सन्तोष करना पड़ता है।

अवधी भाषा में अब तक एक कृष्ण-काव्य पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र का (मध्य-प्रदेश) का प्रकाश में आया है और वह है "कृष्णायन"। गर्भ में आते ही कृष्ण-सौन्दर्य विस्तार-वृद्धि पाने लगता है। ऊपर आकाश में कड़कती दामिनी अखण्ड प्रकाश भर देती है और नीचे पृथ्वी पर शिशु-वदन से निशि-तम का नाश होता है। पृथ्वी और आकाश ज्योति के कारण एक हो गये हैं।[36]

सद्य: स्नात कृष्ण का शरीर मोर-चन्द की भाँति झलकने लगा। कटि के किंकिणी, गले में हार, कण्ठ में बघनखा, कठुला, शरीर पर पीतदुपट्टा, सिर पर चौतनियाँ, पाँवों में रुनझुन ध्वनि कारक पैजनियाँ, भाल पर डिठौना और सुन्दर गोरोचन तिलक आदि अलंकार शोभा-वृद्धि कर रहे हैं।[37] सजल जलद के समान श्याम-शरीर पर तड़ित-कान्ति की भाँति कटि भाग में चीर विलसित है। कंध, वक्ष, युग बाहुएँ विशाल हैं। छवि-धाम कपोलों पर लोल कुण्डल की छटा आनन्ददायी है। कंधों पर कमरी और हाथों में लकुटी लेकर कृष्ण गोचारण हेतु वन को प्रस्थान कर रहे हैं।[38] गोचारण से लौटते हुए कृष्ण सखाओं के मध्य अति ही सुशोभित हो रहे हैं। वेणु बजाते हुए, नील कमलदल की भाँति द्युतिमान शरीर वाले कृष्ण वक्षस्थल पर श्वेत कमलों की माला धारण किये हुए हैं, रक्त कमल की लालिमा से युक्त अधर एवं दोनों नेत्र तथा चन्द्रमा के गर्व का शमन करने वाला वारिज-वदन सुशोभित हो रहा है। ललाट पर तिलक की रेखायें ऐसी हैं मानो सुन्दरता उमड़कर प्रवहमान हो गई हो; गोरज से मण्डित कुंचित केश तथा श्यामवपु सुषमा-धाम है।[39]

34-ब्रजमाधुरीसार, वियोगी हरि, द्वादश संस्करण सं० 2016, पृष्ठ 282, 35-उद्धव शतक, रत्नाकर, पद सं०-11, 36-कृष्णायन : द्वारिकाप्रसाद मिश्र, पृष्ठ-12, 37-वही, पृष्ठ-20, 38-वही, पृष्ठ-27, 39-वही, पृष्ठ-50

नवल नीरद शरीर वाले श्याम खरिक के द्वार पर स्थिर हैं। उनके स्वरूप की ऐसी छवि है जिससे चन्द्रमा की चाँदनी भी लज्जित हो जाती है। आजानु भुजायें महाछवि को जन्म दे रही हैं। गले में मोतियों की माला ऐसी सुशोभित हो रही है मानो मरकत पहाड़ से निर्मल गंगा की धारा अवतरित हो रही हो। मणिमण्डित कुण्डल कानों में ऐसा झूम रहा है मानो कपोलों का चुम्बन ले रहा है। शरीर पर पीत वस्त्र भी शोभित है मानो नीलगिरि पर्वत के साथ ज्यौत्सना का विधान है। विशाल भाल पर तिलक की त्रयरेखा, "नयन-कौमुदी", विश्व के तम को हरण करने वाले अधर कृष्ण के भुवन-मोहन रूप का प्रकाशन कर रहे हैं।[40] मथुरा के रंगभूमि-प्रसंग में, कुवलयापीड हाथी का वध कर, श्रमाम्बुकण से युक्त एवं रक्त से सिक्त शरीर तथा पट वाले कृष्ण कन्धों पर दन्त्य-खण्ड लिए हुए रंगभूमि में प्रविष्ट होते हैं। श्याम कण्ठ एवं क्रोध से लोहित नेत्र वाले कृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो "त्रिपुर-मद-मोचन" करने वाले दूसरे शंकर हों।[41]

"प्रियप्रवास" के कृष्ण गोचारण कर गृहोन्मुख हो रहे हैं, गोरज के मध्य से निकलते हुए कृष्ण ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे दिशाओं का तम नाश करके चन्द्रमा आकाश में विलसित हो।[42] सजल नीरद की भाँति नवल देह सुन्दर है, जो अतसि एवं शरद-सरसीरुह को भी अलंकृत करती है। शरीर में सरसता एवं सुकुमारता प्रतिबिम्बित हो रही है। कामदेव के ध्वज के समान उत्तम जाति के सुन्दर कुण्डल हैं, जिसके चारों ओर लटकी हुई केशावलियाँ विभिन्न भावों का सृजन करती हैं। मस्तक पर शिखि पक्ष पर मुकुट अधिक सुन्दर एवं मधुरिमा से युक्त हैं। उन्नत भाल पर सुशोभित केशरखौर नीलकमल-दल में पीतसरोज का सौन्दर्य उपस्थित कर रहा है।[43] कृष्ण की बोली में मधुरिमा थी और मन्द मुस्कान अमृत-रस से सिंचित थी। कमलवत् नेत्रों की मस्ती जनमानस को मोह लेती है, हाथ में मधुवर्णिणी, रसिकता-जननी, कल-नादिनी, मनमोहक-मंत्र की सहचरी और सरस-राग-समूह की सहेलिका मुरली विराजमान है। शरीर की दीप्ति से दिगन्त में जगमगाहट फैल रही है-

"छलकती मुख की छवि-पुंजता।
छिटिकती क्षिति छू तनकी छटा,
बगरती बर दीप्ति दिगन्त में।
क्षितिज में क्षणदा-कर कान्ति सी।"25 -प्रियप्रवास, पृष्ठ-5

ऐसी छवि के लिए प्यासे ब्रजवासी तृषित चातक की भाँति श्याम घन को निहारते रहते हैं। छवि-रस का पान करती हुई गोप-वनितायें उपल निर्मित पुत्तलिका की भाँति स्थिर-सी हो गई; यहाँ तक कि उनकी पलकों का गिरना एवं तन-लोम का हिलना बन्द हो गया। मूर्तिवत् स्थिर होकर गोपियाँ अपने प्यारे के दर्शन में यत्किंचित भी व्यवधान नहीं चाहतीं।[44] प्यारे बच्चे हर्ष से उछल रहे हैं, युवक छवि-रस के पान में लीन हैं, वयस्क नेत्रलाभ का फल पाते हैं, तरुणियाँ एवं वयस्का नारियाँ कृष्ण के लावण्य पर बलि-बलि जाती हैं। कभी-कभी हाथों में सुशोभित मुरली के बज उठने पर अमृत रस के प्रवाह में जनसमागम अवगाहन करने लगता है।[45] कृष्ण के जिस रूप में अलंकरण की चर्चा राधा करती है, वह वायु-सन्देश-प्रसंग से ज्ञात होता है। प्रात: वायु से राधा प्रार्थना करती है कि प्रियतम के सन्निकट जाकर उसकी विरहावस्था का आभास दे। राधा अपने प्रियतम के रूप का प्रकाशन करती है, "वे जलद के समान तन वाले होंगे, लोने नेत्र ज्योति-उत्कीर्णकारी" होंगे, अमृत-सिक्त वाणी होगी, कमर में पीत वस्त्र धारण

40-कृष्णायन, पृष्ठ-60, 41-वही, पृष्ठ-85, 42-प्रियप्रवास, पृष्ठ-3, 43-वही, पृष्ठ-4, 44-वही, पृष्ठ-5, 45-वही, पृष्ठ-6

करने वाले शरीर की नीलकमल के समान श्यामता होगी, बिखरी काली अलकें कान्ति को बढ़ाने वाली होंगी, सद्वस्त्रों में नवल तन की प्रभा फूटती है, उनका सम्पूर्ण शरीर ही साँचे में ढला होगा, शक्ति की पेटिका के समान उनके वृषभ-स्कंध एवं कलभ-कर होंगे, राजाओं के समान सिर पर दिव्य मुकुट चमकता होगा, स्वर्ण-कुण्डल कर्णों को शोभायित करते होंगे, कम्बुकण्ठ मोती माला से युक्त होगा, देवगुणों से युक्त अल्पायु में अधिक तेजवान वे उसी प्रकार छिप नहीं सकते जिस प्रकार तारों के मध्य राका-कन्त नहीं छिप सकता।[46] प्यारे कृष्ण के ऐसे रूप का स्मरण का मलिनवदना होकर राधा वायु को विभिन्न आदेश देती है।

"द्वापर" के कृष्ण का सौन्दर्य भावों के प्रवाह में टिक न सका। मात्र कुब्जा ही उनके सहज रूप का भावात्मक अनुभव करती है।[47] "रम्यरास" में उनकी छटा अति ही निर्मल है, शशाङ्क की भाँति मुख कान्त-शान्त है, निर्मल आकाश की भाँति शरीर है, शारदीय निशा में ब्रजेश ऐसे छविमान बने हुए हैं मानो शरदऋतु की छटा साकार हो-

"शशाङ्क सा आनन कान्त शान्त था
निरभ्र आकाश समान देह थी।
शरन्निशा में लसते ब्रजेश थे
शरच्छटा के वर मूर्त रूप से॥9॥"[48]

केश में शिखि-पंख सुसज्जित हैं, तड़ित प्रभा के समान पीतपट लसित है, गले में वनमाला सुशोभित है, ऐसे रूप में कृष्ण वर्षाऋतु के छवि-धाम बने हुए हैं। पुष्प की भाँति खिले हुए सुरभित देह वाले कृष्ण पिकी के समान ध्वनिकारिणी मुरली लिए हुए कामद बन गये हैं। नेत्राम्बुज में भोलापन और प्रवाल-सदृश सहासित ओष्ठद्वय उनके रसावतार रूप से सौन्दर्य-सागर का बोध करा रहे हैं।[49] धर्मवीर भारती के कृष्ण अनुपम सौन्दर्य वाले हैं, उनके ओष्ठ इन्द्रजालिक हैं। साँवले शरीर से कुछ झुकी हुई शंख-ग्रीवा और अधखुली दृष्टि राधा के लिए सब कुछ है।[50] सारे संसार को रूप देने वाले कृष्ण ही हैं।[51]

रास-प्रसंग में कृष्ण का अद्‌भुत सौन्दर्य छविधाम बन जाता है। उनके विभिन्न अंगों का संचालन इस प्रकार हो रहा है-

भुजनि भँवाइ, कंध बन्धनि उँचाइ पुनि,
उर हुमसाइ, कान्ह गजब गुजारै हैं।
नैन वै हिलोरि, कण्ठ कटिहिं मरोरि मोरि,
झोरि बरजोरि जानु जुगल पँवारै हैं।
चंचला तैं चंचल, चपल अंग अंग करि,
कै कै रसरंग भीति भारनि बिदारै है।
आज ब्रजराज ब्रज काज नटराज बनि,
जीवन मैं जोबन कौ रुधिर पसारै है। - मधुपर्क, पृष्ठ-135

अलौकिक रास में कृष्ण के विभिन्न रूपों का प्रकाशन हुआ है।[52] सूर, मीरा, नन्ददास, रसखान

46-प्रियप्रवास, पृष्ठ 68-69, 47-द्वापर, पृष्ठ-143, 48-रम्यरास, पद संख्या-9 राजा चक्रधर सिंह, 49-वही, पृष्ठ-11, 12, 50-कनुप्रिया : धर्मवीर भारती, पृष्ठ-76, 51-"देता ऋतुओं को रंग त्रिभंग तुम्हारा, है रूपवान संसार तुम्ही से सारा।" -राधा: जानकी वल्लभ शास्त्री, पृ० 51 52-मधुपर्क, पृष्ठ-134, 135, 136, 137,

आदि भक्त कवियों की परम्परा का अनुसरण करने वाला कृपालुदास जी का एक काव्यग्रन्थ सन् 1955 में छपा है, जो आधुनिक युग की विशेष कृति है। राधा स्वप्न में श्यामसुन्दर से मिलन करती है जिसका वर्णन एक अन्तरंग सखी से कर रही हैं, "हे सखी! आज रात में मैंने एक स्वप्न देखा है। वह यह कि मैं वंशीवट पर यमुना के किनारे अकेली जा रही थी। जाते हुए ही अत्यन्त सुन्दर श्याम रंग का अचानक ही एक बालक देखा, जो पीताम्बर पहने हुए था, कमर में काछनी बाँधे हुए था एवं सिर पर झूमता हुआ मयूरपंखों का मुकुट धारण किये हुए था। हाथ में मुरली एवं गले में गुंजों की माला पहने हुए हंसों को भी लज्जित करने वाली अत्यन्त मतवाली चाल से चल रहा था। उसके रतनारे, कजरारे और मदमाते नेत्र प्रेमरस से परिपूर्ण थे। कटि भाग में करधनी, पैरों में पायल धारण किये हुए ऐसे मुस्करा रहा है जैसे उसकी रूपमाधुरी से करोड़ों कामदेव संकुचित हो रहे हों।"[53]

कृष्ण की चितवन, हँसने के ढंग और चलने की गति देखकर सनकादिक भी विह्वल हो जाते हैं।[54] त्रिभंगी लाल की छवि का सौरस्यपूर्ण वर्णन "सूरसागर" की भाँति सर्वत्र दृष्टिगत है।[55] कहीं-कहीं कृष्ण राधा के रूप में चित्रित हैं।[56]

सम्पूर्ण आधुनिक कृष्ण कविता में सौन्दर्य का अंकन किसी-न-किसी प्रसंग में हुआ ही है। उनके रूप की यह विशेषता है कि मुनि और देवगण भी मोहित हो जाते हैं, ब्रजबालायें तो बिनमोल ही बिक जाती हैं। भारतेन्दु, पं० अनूप शर्मा "करील" हरिऔध और कृपालुदास के काव्यग्रन्थों में रूप का लिप्त वर्णन प्रस्तुत किया गया है। शर्मा जी की रूप-भावना कृष्ण के आंगिक वर्णन में जिस प्रकार प्रकृति के उपमानों का आधार लेती है, उसी प्रकार अलंकारों के वर्णन में भी प्रकृति की छटा का मोह संवरण नहीं कर पाती। "फेरिमिलिबो" के कृष्ण का सौन्दर्यांकन संयोग-वशात् कुरुक्षेत्र में मिलन-प्रसंग में हो गया है, अस्तु उनके गत्यात्मक सौन्दर्य "बंकबिलोकनि" वंशीवादन आदि का उल्लेख नहीं हो पाया है। फिर भी कवि का वर्णन तटस्थ एवं औपचारिकतापूर्ण नहीं कहा जा सकता। कविरत्न के भ्रमरदूत, उद्धव शतक (रसाल एवं रत्नाकर), कृष्णायन, द्वापर, रम्यरास, कनुप्रिया, राधा (जानकी वल्लभ शास्त्री) आदि में सौन्दर्यांकन की प्रवृत्ति सौरस्यपूर्णता का स्पर्श तो नहीं करती किन्तु अपनी सूक्ष्मता में सौन्दर्य की कोटि-कोटि मणियों की आभा विकीर्ण कर देती है। "कनुप्रिया" की राधा तो मृगी की भाँति कृष्ण की छवि और बंशीवादन पर न्यौछावर होती रहती है।

राधा

राधा छवि-राशि बनी हैं, जिसे देखकर पलकें गिरती ही नहीं, सिंह कमर पर चीर की छवि-दर्शन से सौतियों को "करक" सी होने लगती है। यह कीरति की कन्या "जग-धन्या" है जिसकी तुलना में कोई नहीं है। इसकी छबीली भौंहें तो कृष्ण के हृदय में वृश्चिक-दंश सी कसकती हैं। इसकी छवि पर रति रानी की लज्जित हो जाती हैं, नेत्रों को देखकर मीन पलायन करती हैं। दोनों कुच-कुम्भ ऐसी शोभावृद्धि कर रहे हैं जिससे राधा के शरीर में सदैव वय:सन्धि विद्यमान रहती है।[57] मुख-छवि से पूर्ण चन्द्रमा लज्जित है, मृग-नेत्र, कोकिल-वाणी और गयन्द की चाल वाली राधा नखशिख तक सहज सुन्दर है, "रूपजाल" है।[58]

53-प्रेमरसमदिरा : कृपालुदास (मिलन माधुरी) पृष्ठ 155-156, 54-वही-180, 168, 55-वही, पद सं० 100, 161016201630, 164, 165, 56-वही, पृ०16, पद सं० 166, 167, 169, 170; 57-वही, पृष्ठ-45, 58-वही, पृष्ठ-48

केश-जुड़े में सुशोभित चूड़ामणि अन्धकार के उत्तुंग शिखर पर उदित बालचन्द्र का ध्यान दिलाती है।[59] राधा रूप की लता है, कमलवत शरीर के पल्लव के समान कर-पद को देखते ही मन-मोहित हो जाता है, अतसि-पुष्प के समान नासिका और जलज-पत्र के समान नेत्र, बिम्बाफल की भाँति अधर, कुन्द के समान स्वच्छ दसन एवं मदनबाण के समान नेत्र संकेत तथा गुलाब से गाल सुशोभित हो रहे हैं, कानों में झुमका "करनफूल" के पुष्प के समान छविमान है, फूल के समान शरीर में फूलों की ओट में दो फल भी लगे हैं जिन्हें देखकर कामोद्दीप्त होता है, मृणालनाल की भाँति सुढार बाहु एवं कदली स्तम्भ की जंघायें अपार शोभावान हैं, गूलर के पुष्प के समान कटि, नारंगी सी एड़ी, प्रवाल सदृश पद-तल हैं, हाथ में पहुँची और गले में माला विराजमान है, चम्पा के समान दमकने वाली देह पर रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्ण भ्रमर बन गये हैं।[60] रूपवान को आभूषणों की आवश्यकता नहीं होती, कंचुकी और कंगन के बिना ही राधा अधिक सुन्दर लग रही है।[61] कवियों ने राधा के देह की उपमा दीपशिखा से दी है, वस्तुत: कवियों से यह एक बहुत बड़ी भूल हो गई है, क्योंकि दीपशिखा में दाहिका शक्ति है और राधा में शीतलता, वह चंचल है और राधा की देह सुखद है, उसमें धूम की मलिनता है किन्तु राधा सदैव स्वच्छ है, वह वायु-वश स्वत्व का सर्वनाश करती है और राधा अपने वश में रहकर सर्वत्र प्रकाश करती है, वह स्नेह (तेल) के अधीन रहती है किन्तु राधा स्नेह से पूर्ण है, इसीलिए भारतेन्दु जी राधा की देह-तुलना में दीपशिखा को अमान्य कर दिया है।[62] राधा जब सिन्दूर का तिलक लगाती है, तब युवतियों के "गरब-परबत" ढह जाते हैं, रूप का अभिमान जल जाता है, शिव-समाधि भंग हो जाती है, रवि-शशि तेजवान हो जाते हैं।[63] प्यारी राधा का रूप एक नदी है जिसमें सौन्दर्य का जल और प्रेम की तरंगें हैं, नेत्रमीन, कर-पद-पंकज और केश-सेवार हैं, चक्रवाक के समान युगल स्तन तथा लहरें लेते हुए गले के हार हैं, यह रूप की नदी सदैव छवि-जल से भरी रहती है और साँवले घन के बरसने के कूल-कूल को लांघ कर बढ़ जाती है।[64] झूला-प्रसंग में वेणी फहराती है, तभी अंग दिखायी पड़ने लगते हैं, मोतियों की माला टूट जाती है, कसी कंचुकी ढीली हो जाती हैं, प्रगटित वदन को छिपाते हुए झूले पर राधा की ऐसी शोभा हो जाती है मानो प्रेम सागर को मथते समय बहुत से चन्द्रमा इधर-उधर तैर रहे हैं।[65] नीली साड़ी पहने हुए, सिर पर सिन्दूर एवं नेत्रों में काजल लगाये हुए मुख पर पान की रेखा से सुशोभित होते हुए, विशाल नेत्र एवं चपल चितवन वाली राधा सहज सुन्दर है। ऐसे रूप पर करोड़ों रमा, रति एवं उर्वशी अप्सरायें निरर्थक हो जाती हैं।[66] युगल छवि में राधा पुष्पों का आभूषण पहने हुए है, फूलों की पहुँची, बाजूबन्द, चूड़ी, मुद्रिका, कर्णफूल, झुमका, वेणी, लहँगा, साड़ी आदि सुशोभित हैं।[67] दोनों दूल्हा और दुल्हन के रूप में विराजमान हैं जिनके प्रत्येक आभरण पुष्पों के हैं।[68] बृषभानु-कुमारी के सिर पर मौरी एवं शरीर में केशर रंग की साड़ी सुशोभित है। हाथ में चूड़ी पहने हुए राधा अपनी नकबेसर से चित्त को चुरा रही है। सिर में सिन्दूर, मुख में पान अधिक छवि उत्पन्न कर रहा है।[69] राधा की नख-द्युति पर करोड़ों चन्द्रमा न्यौछावर हो जाते हैं।[70] अटारी पर सोयी हुई राधा के शरीर की

59-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-51 (पद सं॰ 22), 60-वही, पृष्ठ-456, 61-वही, पृष्ठ-51 (पद सं. 21), 62-वही, पृष्ठ 83-84, 63-वही, पृष्ठ 115, 64-वही, पृष्ठ 116, 65-वही, पृष्ठ 117, 66-वही, पृष्ठ 120, 67-वही, पृष्ठ 440-441 (पद सं. 10-11), 68-वही, पृष्ठ 477, 69-वही, पृष्ठ 292, 70-वही, पृष्ठ 179

द्युति चन्द्रमा से मिलकर एक हो गयी है।[71] रत्युपरान्त श्रमित राधा गहरी निद्रा में है, उसके केश बिखरे हैं, मुख पर पान की पीक फैल गई है, नेत्रों के अंजन भी अस्त-व्यस्त हैं, वक्षस्थल पर नख-क्षत विद्यमान है, मोतियों की माला टूट गई है।[72]

मध्यकालीन राधा-कृष्ण के सौन्दर्यांकन की परम्परा आधुनिक युग में भी यथाक्रम रूप में विद्यमान है। प्राय: आधुनिक काल के अन्यान्य कवियों ने पूर्ववर्ती उपमानों का ग्रहण किया है। जैसे कृष्ण रूपसागर हैं वैसे राधा की रूप-छवि से भी संसार छविमान है। वियोगावस्था के व्रत-तपादि में लीन राधा का रूप-सौन्दर्य द्विगुणित हो रहा है। राधा के अनूप रूपाकाश में शशि-मुख सुशोभित है। आज नीलाकाश चतुर्दिक शोभित नहीं है, क्योंकि राधा का केश-कलाप दिशाओं में बिखर चुका है। आकाश में ये तारागण नहीं हैं बल्कि राधा के भाल के पुलकित सितारे हैं, चन्द्रमा में यह कलंक नहीं है वरन् राधा-हृदय में कृष्ण (श्याम) बसे हुए हैं, आकाश पीत वर्ण का नहीं है, यह तो प्रिय के वियोग से जन्य कीर्ति कुमारी के गाल की पीत मलिनता ही है, सम्पुटित कमल पर ओस के बिन्दु नहीं हैं, ये तो राधा के अतंद्रित नेत्रों की पलकों पर झलकने वाले जल-बिन्दु ही हैं।[73] कुरुभूमि में सूर्यग्रहण के अवसर पर कृष्ण और राधा के सभी सगे-सम्बन्धियों का अनूप मिलन होता है। राधा के रूप को देखकर देवकी को नई पुत्रवधू प्राप्त होने का आनन्द प्राप्त हुआ, वे कहती हैं "चम्पकवर्णी मुख की छवि तथा विशाल रतनार नेत्र पर करोड़ों रतिवदन को न्यौछावर किया जा सकता है। कन्हैया ने कैसे इसे छोड़कर अन्य के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया।"[74] देवकी की इस उक्ति को सुनकर राधा को मनचाहा आत्मतोष मिला। राधा के नेत्र दीर्घ पुच्छल तारा के समान हैं, जहाँ सुन्दरता अन्तर धारा के समान बह रही है।[75]

सब कुछ भूलकर राधा स्याम-रस में इस प्रकार पग गई है कि कामदेव के संकेत से नेत्र-धन श्रीकृष्ण के रूप को लूटने लगी। कृष्णागमन पर सभी गोपियाँ तथा पटरानियाँ उसी प्रकार उठीं जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र की तरंगें उद्वेलित हो जाती हैं। हरि के आसनासीन होने पर सभी यथावत् अपने-अपने आसन पर ऐसे सुशोभित हुईं जैसे चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी और चकोरी चारों दिशाओं में विभाजित हुई हों। सभी रमणियों के घूँघटरहित मुख प्रफुल्लित थे, किन्तु राधा का चन्द्रमुख अब भी झीने नीलाम्बर से ढका था। कृष्ण अपने हाथों से राधा का घूँघट वैसे ही "विदार" देते हैं जैसे वायु चन्द्रमा के ऊपर के बादल को।[76] राधा का मुख खुलते ही तीनों लोक की सुन्दरता केन्द्र से परिधि की ओर विकीर्ण होने लगी। एक गोपी राधा के ऐसे रूप के विषय में कहती है, "जैसे-जैसे राधा-रूप देखती हूँ असमंजस होता है। इस रूप को कि॰ नेत्रों से देखूँ? सबसे अधिक सुन्दर है किन्तु वाणी शरीर से भी अधिक सुन्दर है। सबसे अधिक सुन्दर है, किन्तु शान्ति उससे भी अधिक सुन्दर है। शिशिर ऋतु में सूर्य एवं रात्रि में चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हो रहा है।"[77] राधा की पुष्ट देह धवल पाषाण है।[78] राधा नवनीत के समान कोमल, कमल के समान पवित्र है, वह शोभा का आकाश एवं शील का समुद्र है। राधा की पुतलियाँ अधिक श्याम हैं क्योंकि सदैव श्याम के रूप का दर्शन होता रहता है, श्याम (कृष्ण) प्रेम में रँगे हुए नेत्रों के लाल डोरे हैं, श्याम-यश की भाँति नेत्रों की धवलिमा को देखकर मृग उदास मन से घूम रहे हैं।[78]

75-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 83-84, 76-वही, पृष्ठ 51-52, 77-फेरिमिलिबो, पं॰ अनूप शर्मा, पृष्ठ-94, 74-वही, पृष्ठ-195, 75-वही, पृष्ठ-195, 76-वही, पृष्ठ-198, 77-वही, पृष्ठ-199, 78-वही, पृष्ठ-199, 79-वही, पृष्ठ 200-201

भुवन मन-मोहिनी राधा के रूप-व्यक्तित्व का निर्धारण करते हुए "मधुपर्क" प्रणेता "करील" का कथन है कि सीता की प्रिय प्रकृति, उर्मिला की सुन्दरता, श्रुतिकीर्ति के विश्वास, माण्डवी की निपुणता, सावित्री की कीर्ति कलित कविता की वाणी और शकुन्तला की प्रीति से समग्र संयोग से राधा का निर्माण हुआ है।[80] राधा सुगंधयुक्त सुधा है जिससे कुल उजागर हो रहा है। उसका शरीर दीप-शिखा के समान तो है, किन्तु उसमें वह दाहिका शक्ति नहीं है जिससे वह दीपशिखा अपने प्रेमियों को विनष्ट करती रहती है, उसमें दीप-शिखा का प्रकाश गुण ही विद्यमान है। उसके अंग-प्रत्यंग इतने सुन्दर एवं सजीले हैं कि अंगों के उपमान लज्जित हो जाते हैं-शारदीय कमल रक्ताभा से युक्त चरण को देखकर मन:ताप से ग्रस्त होता है, ऐड़ियों का स्पर्श कर पवन उल्लसित होता है, सुगठित जाँघें कनक-कँदली को सँवारती हैं, कटि-प्रदेश को देखकर गिरा मान करती है, सुन्दर-सुघर नितम्ब ऐसे सुन्दर हैं जैसे किसी कवि का काव्य अलंकृत हो, नई शोभा से युक्त नाभि रस एवं यश का संचार कर रही है।[81] हृदय-रूपी सरोवर में दो अनहोने कमल खिले हैं, वास्तव में ये यौवन-धन के सलोने शृंगार हैं, सुन्दर कंचन-रस-कलश हैं जिनमें कवितामृत भरा है, ऐसे कठिन कठोर उरोजों का निर्माण ब्रह्मा ने बड़े मनोयोग से विधिपूर्वक किया है,[82] सुन्दर कलाइयों के मध्य एवं भुज-मूल में अनुपम सुन्दरता छाई हुई है मानो ब्रह्मा के द्वारा अपने सभी पुण्य कृत्यों को सँजोकर उस पर लगा दिया गया है जिसमें कीर्तिकुमारी नित्य बल, यश भरती रहती हैं। चिबुक की सुन्दरता का कोई उपमान है ही नहीं। सुन्दर गोरे गाल एवं युगल नेत्र छवि-युक्त हैं, दाँतों पर मुक्ता-पंक्ति की भाँति सुछवि विराजती है। अरुण अधरों के खुलते ही निर्मल चाँदनी चमकने लगती है। कानों पर सम्पूर्ण संसार की सुन्दरता निवास करती है। चंचल, चपल, कजरारे एवं अनियारे नेत्र संसार भर की निर्मलता सँजोये हैं, खंजन, मृग, मीन आदि राधा के नेत्रों के ऋणी हैं, ये एक क्षण के लिए भी उऋण नहीं हो पाते। कुटिल प्रलम्ब भौंहों पर कामदेव के धनुष की शोभा क्षीण हो जाती है। अति ही देदीप्यमान ललाट से घर-घाट सुसज्जित हैं जिनका यशगान कवि काव्य में उच्चरित होता है। सेवार के समान केश-जाल उल्लसित होकर नितम्बों तक विस्तार करता है, मानो ब्रह्मा के अपने हाथों से मृदु मखतूल को खोलकर प्रसार दिया हो, ऐसे लम्बायमान केश काले कज्जल के कोष के समान प्रतीत हो रहे हैं।[83] सम्पूर्ण छवि का शृंगार तो मुखमण्डल है जो सृष्टि का दर्पण एवं कलियुग के पापों का शमनकर्ता भी है। ऐसे गोरे कान्त मुख की शोभा देखकर उमा, रमा आदि देवांगनायें सिहाने लगती हैं। इस कुमारी का सौन्दर्य वय: सापेक्ष है जिस पर स्वर्ग लोक भी लज्जित है। षोडशी राधा सखियों के मध्य सबसे अधिक सुन्दरी है। राधा गौरी सी, गिरासी, इन्दिरा सी, रतिरानी सी, ऋग् रिचा-सी दिखाई दे रही है।[84] पद्मगंधा राधा का रूप करील के ही शब्दों में-

पद्मासना पद्मिनी प्रफुल्ल पद्मोल्लासिनी, पद्मगंधा पद्मानना पद्मा पद्मलोचना।
पद्मबनी पद्माम्बरा पद्मप्रिया प्रानदा, पद्ममना राधा पद्म हृदया प्रतिष्ठिता॥

-मधुपर्क, तृतीय सर्ग, पृ.46

तभी तो जल में बहते हुए जलजात में कृष्ण को राधा की गंध-प्रतीति होती है।[85] नन्द-नन्दन की प्राण-प्यारी राधा की छवि को देखकर भ्रमर भ्रमित हो जाता है, कमल संकुचित हो जाता है, विद्रुम लज्जित हो जाता है, रति और मदन दोनों आकर्षित हो जाते हैं। शंकर का सिहाना, इन्द्र का 'भकुवा' जाना, सभी

80-देवीरत्न अवस्थी "करील", पृ० 7 (पद सं० 29), 81-वही, पृ० 8 (पद सं० 31, 32, 33), 82-वही, पृ० 8 (पद सं० 34), 83-वही, पृष्ठ-9, 84-पृष्ठ-46 (पद सं० 2), 85-उद्धवशतक : रत्नाकर पद सं०।

के सम्मुख आभूषणों का मुरझाना, समुद्र का उफान खाना, हंस मानस का छिप जाना कीर्ति कुमारी की सुगति का ही परिणाम है।[86] नखशिख परम्परा के अनुरूप शिख-नख का चित्रण राधा के रूप में "करील" ने किया है। काजल से काले केशों को सँवारकर हंसगामिनी राधा पसार देती है। वेणी का नितम्बों तक लटकना देखकर नाग की नागिन अपनी गति और मति विस्मृत कर देती है, भाल की लिपि पर ब्रह्मा भी गर्व करते हैं, ऐसे भाल से त्याग, तप, तेज झलक रहा है। कर्ण तो मंगलदायक हैं जिनकी सेवा रति करती रहती है।[87] भृकुटि की वक्रता देखकर कविता की वाक्-वक्रता लज्जित हो जाती है। शारदा, रति, सुररानी आदि विशेष रूप से व्यथित होती हैं, कामदेव के कुसुमायुध की वक्रता का दर्प नष्ट हो जाता है।[88] अंजन लगे हुए, दूध से प्रक्षालित सिन्धु माधुरी के समान राधा के नेत्र हरिणी के नवनेत्र की समता करते हैं जिनमें अमृत भरा हुआ है, इन नेत्रों में अनोखी कुल-मर्यादा एवं विश्वास का सुयोग है, ये नेत्र हरिगान के निधान हैं।[89] नासिका तो शुकसारिकाओं की विलासिता, सम्पुटित स्वरूप की विकासिका तथा अपने वंश की प्रकाशिका है, उसकी रूप-रचना, ढलान एवं उभाड़ आदि कीर्ति-कला एवं कविताओं की हुलासिका है।[90] अधरामृत का प्रसाद पाकर ब्रज-बालों के बाहुदण्ड फड़कने लगते हैं एवं दसन ज्योति क्षीरफेन को विलज्जित करती है।[91] कपोलों के रंग को देखकर सुन्दर कमलों का ओज मुरझा जाता है, गुलाब का गर्व नष्ट हो जाता है, मखमल माखने लगते हैं, सहज सुवासित, प्रकाशित गालों को देखकर माता-पिता के समृद्ध वृद्ध नेत्रों में जलकण छा जाता है।[92]

चिबुक के दर्शन से जनमानस की दरिद्रता दब जाती है ममता और माया के अनुराग भाव प्रकट हो जाते हैं, जगत के नेत्र शीतल हो जाते हैं, गौरव-गुमान-भेदभाव विनष्ट हो जाते हैं, पाप दूर हो जाते हैं और ज्ञान-ध्यान प्रसन्न हो जाते हैं, रूप सम्पदा के पुण्य केतु फहराने लगते हैं।[93] मुख की सुषमा का वर्णन तो कवि कर ही नहीं सकता क्योंकि पद और अक्षर उस पर कवित्त बनकर छा गये हैं। कम्बु-कण्ठ की शोभा पर यशस्विनी राधा सकुचा जाती है, ऐसे सुघर कण्ठ का वर्णन कौन करे, कहाँ तक करे, कैसे करे क्योंकि ऐसी छवि का वर्णन करने में व्यास, शुक, नारद आदि में किसकी मति सफल हो सकती है।[94] राधिका के उन्नत उरोज लोकलाभ हितकारी हैं, ये कंचनकलश, यौवन के अवतार, पुष्ट, पृथलु, समृद्ध पयोधर हैं, ये सुन्दर स्वरूप सम्पदा के सुन्दर प्रतिमान हैं, गौरव निधान हैं, पुण्य प्रकट करने वाले एवं हृदय को शीतलता प्रदान करने वाले हैं। राधा के उर-मन्दिर में शिव-शंकर के समान उरोज जन-अभिनन्दन से कसमसा रहे हैं।[95] भुजदण्डों में स्नेह का सशक्त रक्त एवं सतीत्व का प्रमाण है, बाँहों के दर्शन से पाप परिताप हरण होता है।[96] कलाइयाँ तो नारियों की शक्ति के स्रोत हैं, सुन्दर अँगुलियों एवं नखादि की सुन्दरता पर रवि-रथ स्थिर हो जाता है।[97] दोनों जघन मानो गंगा नदी के दो उपकूल हैं, मानो ब्रह्मदण्ड हैं अथवा अपनी सम्पूर्ण सृष्टि-कला से ब्रह्मा ने हेम खम्भों का निर्माण किया है, वास्तव में राधा के युगल जघन रूप रंग के मन भावने विलास हैं।[99] एड़ियों की पवित्र गोराई पर जीवन के यौवन की सम्पूर्ण जुह्राई हुलसाने लगती है, चरणों के प्रकाश को देखकर पाप का शमन होता है, मुकुन्द हर्षातिरेक से वंशी बजाने लगते हैं।[100]

86-मधुपर्क, पृष्ठ-107 (पद संख्या-10), 88-वही, पृष्ठ 108 (पद-12, 13, 14), 89-वही, पृष्ठ 109 (पद-15), 90-वही, पृष्ठ-109 (पद-16), 91-वही, पृष्ठ-109 (पद-17), 92-वही, पृष्ठ-110 (पद-20), 93-वही, पृष्ठ-111 (पद-21), 94-वही, पृष्ठ-112 (पद-22, 23), 95-वही, पृष्ठ-112 (पद-24, 25), 96-वही, पृष्ठ-112, 113 (पद-26, 27), 97-वही, पृष्ठ-113 (पद-28, 29), 98-वही, पृष्ठ-114 (पद-30), 99-वही, पृष्ठ-114 (पद-32), 100-वही, पृष्ठ-115 (पद-33, 34)

राधा के सौन्दर्य का इतना अधिक प्रभाव है कि कभी-कभी तो सुधाकर के समान मंजुल मुख के ध्यान करने से ही कृष्ण का मनरूपी जहाज डगमगाकर डूबने लगता है।[101]

राधा की गोराई में कृष्ण को यमुना धार लहराती-सी प्रतीत होती है, राधा की निकाई को जुह्लाई भी नहीं पाती।[102] अवस्था-वृद्धि के अनुसार राधा के अंगों में चापल्य एवं युवावस्था के प्रतिनिधि व्यापार सहजतया उद्भूत होने लगते हैं, अधरों पर सोन जूही की लालिमा आ जाती है। आँखों से आँखों का चुराना, सकुचाना, सिमटना, झिझकना, अँगिया में अंगों को छिपाना, भोलापन छोड़कर दूसरों को अपने साथ भुराना, अलसाकर अँगुलियों को चटकाना आदि मुग्धावस्था के व्यापार प्रारम्भ हो गये हैं।[103] आँचल फहराकर अँगड़ाई लेना, अंगों को तोड़ना (घुमाना), ग्रीवा को मोड़ना, जँभाई लेना, अलसाना, सरस उमंग से युक्त होकर चूड़ियों को खनकाना और मुस्कराना तथा गुमान में बिना हँसकर बोले ही चले जाना दैनिक स्वभाव बन गया है।[104] देह की कान्ति से कनक भी लज्जित हो रहा है, राधा अब मन में सुसुप्त मनोज को जगाने भी लगी है, नेत्रों से स्नेह और वार्ता से अमृत की वृष्टि करने लगी हैं, चाल में हस्ती को और मुख-छवि से चन्द्रमा को विजय कर लिया है, यही नहीं, राधा अब अपने को कुछ समझने भी लगी है, जब से शरीर में कुछ उभार आने लगा है।[105] अब तो राधा पूर्ण नवयुवती हो गई है, वय: सन्धि उत्तीर्ण कर राधा राका सुगंधित पुष्पवती रजयुक्त हो गई हैं। रक्ताभा से युक्त नेत्र काम-ध्वज से थिरकते हैं, ऋतु-मुक्त होने पर उस मधुपुंज की ओर कृष्ण दृष्टि लगाने लगे हैं। रति तो नेत्रों की कोर ही देखकर छिप जाती है[106] और फिर रति कैसे राधा के समान तुल सकती है? रति झूठी है और राधा अनूठी है-

काम वधू, संग राधा तुलै किमि, है रति जूठी, है राधा अनूठी। -राधा : गुप्त (पद-10)

वह तो त्रैलोक्य सुन्दरी है।[107] गोपीजनवल्लभ के रूप में कृष्ण और उनकी कान्ता राधा का चित्रण परम्परा निर्वाह मात्र "कृष्णायन" में हुआ है। अवतरण काण्ड के अतिरिक्त कुरुक्षेत्र-सूर्य ग्रहण के अवसर पर "गीता" काण्ड में एक बार राधा और कृष्ण का प्रसंग पुन: उपस्थित होता है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को लोक-चेतना और कृष्ण के उत्तर जीवन के उपदेशों के अतिरिक्त सौंदर्यांकन की फुरसत ही नहीं है अथवा इन प्रसंगों का अनावश्यक विस्तार ही कवि नहीं करना चाहता, अस्तु "कृष्णायन" में राधा का सौन्दर्य निर्लिप्त है। "प्रियप्रवाह" के चतुर्थ सर्ग के आदि में राधा के रूप का जो चित्र अंकित किया गया है, वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा है। सुयश-सौरभ से युक्त राधा रमणियों में सर्वश्रेष्ठ है। राधा तो सौन्दर्य की वाटिका है, प्रस्फुटित होने ही वाली कली है, विधु बिम्ब के समान मुखवाली है, कोमल अंगों वाली, सुन्दर हंसिनी, "सुरसिक" क्रीड़ा कलापुत्तली है, वह शोभा-सागर की अमूल्य मणि के समान लावण्य-लीला से युक्त है। मृदुभाषिणी एवं मृगनैनी राधा मधुरता की मूर्ति है। पुष्पित कमलों की भाँति सुन्दर नेत्र मस्ती से युक्त हैं, स्वर्णिम-कान्ति की श्री दृष्टि को उमँगायित करने वाली है। घुँघराली, लम्बी लटें मन को उन्मादावस्था में प्रेषित कर देती हैं।[108] आमोद एवं हाव-भाव से ओत-प्रोत राधा भ्रू- भंगिमाओं में दत्त है। विशाल नेत्र एवं सुमुखी राधा आनन्द से आन्दोलित रहती है। सरोज के समान पग एवं ओष्ठ की लालिमा बिम्बा विद्रुम को आक्रान्त करती है। वस्तुत: राधा की छवि कामांगना को भी मोहने वाली है। राधा अच्छे वस्त्रों से समावृत, गुणयुक्त, स्त्री जाति की रत्न है।[109]

101-उद्धवशतक (पद संख्या-11), 102-राधा-डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पद-2, 103-वही, पद-5, 104-वही, पद-6, 105-वही, पद-7, 106-वही, पद-8, 107-यह त्रैलोक्य-सुन्दरी राधा, चरित अचिन्त्य स्वभाव अगाधा।-कृष्णायन, पृ० 296, 108-प्रियप्रवास, पृष्ठ-36, 109-वही, पृष्ठ-27

जंगली लतरों के पके फलों को तोड़कर, मसलकर उनकी लाली से राधा के पाँवों में कृष्ण महावर लगाते हैं, लज्जा एवं संकोच से निश्चल राधा अपने घुटनों में मुख छिपाकर बैठ जाती हैं किन्तु एकान्त में उन्हीं महावरों को अपलक नेत्रों से देखकर चूम लेती हैं।[110] चंचल विचुम्बित बाँहें, अधर, चरण, अंग प्रत्यंग, चम्पक-वर्णी देह कृष्ण के लिए चरम साक्षात्कार के लिए पगडंडियाँ मात्र हैं।[111] राधा एक सुगंध है, आकार, वर्ण, रूप से परे है। स्वयं राधा के ही शब्दों में-

मैं मात्र एक सुगंध हूँ-
आधी रात महकने वाले इन रजनीगंधा के फलों
की प्रगाढ़, मधुरगंध-
आकारहीन वर्णहीन, रूपहीन, ..."[112]

राधा बहुत ही भोली है, उसके नेत्र इतने चंचल हैं कि पानी भरे हुए घड़े में अपनी चंचल आँखों की छाया देखकर उन्हें कुलेल करती चटुल मछलियाँ समझकर बार-बार सारा पानी उँड़ेल देती है।[113] धर्मवीर भारती सौन्दर्य को उपभोग्य मानते हैं, कृष्ण की चन्दन बाँहों के कसाव के बिना राधा की देह लता के बड़े-बड़े गुलाब टीसते रहते हैं।[114] कृष्ण राधा को मस्तक पर पल्ला डालने का आदेश देते हैं। राधा को नववधू की भाँति मर्यादित, रसमय एवं पवित्र रखना चाहते हैं।[115]

रास-सौन्दर्य

माता-पिता की प्यारी राधा अपने दल-बल सहित रसरंग फुलवारी की भाँति जब रंगभूमि में "रास" हेतु "झुकि झूमि झमक" कर पदार्पण करती है, तब उसके गत्यात्मक सौन्दर्य के विभिन्न स्वरूपों का उद्घाटन होता है। वह पुण्यप्रीति वाली, रीति-नीति पर विश्वास करने वाली, भाव भक्ति की रक्षा करने वाली, प्रबला-सी, प्रेम-कला एवं चंचला के समान सुन्दरी राधा वास्तव में ही रति कुमारी हैं।[116] नृत्य में राधा के सुन्दर चरणों की गति पर चपला की भी गति मुड़ जाती है। अमृत रस से सराबोर एड़ियों पर रति रानी आनन्दित हो उठती हैं, गिरिजा के समान गोरी एवं इन्दिरा के समान रससिक्त राधा अपनी जोड़ी के साथ गिरा की भाँति छम-छम नृत्य करने लगती हैं।[117] ब्रज-बरसाने की सुन्दरता जैसी, कवि वन्दित लोक-सम्पदा की निकाई जैसी, फहराती हुई चतुराई एवं लहराती हुई कविताई जैसी, माता और पिता की रुचिर सुन्दरता जैसी राधा रंगभूमि पर थिरक रही हैं।[118]

कटि को लचकाकर, कण्ठ को भँवरीकटाकर, भुजाओं को झुमाकर जब राधा नाचती हैं, तब उसकी मखतूल की जरी की ऐसी सारी फहराने लगती है जिस पर स्वर्ग एवं कामदेव न्यौछावर होते हैं। जंघों पर बल पड़ने से एवं पिडुरियों की मरोड़ पर मनोज भ्रमित होकर सिसकारी भी नहीं भरता। राधा के इस रास-नृत्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो संसार की सुन्दर अनुभूति पर रूप का प्रसाद लेकर माँ प्रसन्न है।[119] राधिका की इस भवभय हारी गति को देखकर शिव, भवानी तथा समस्त देवता बाल रूप हो गये, रतिरानी का पतिदाह दु:ख विस्मृत हो गया,[120] सभी मनुष्य अमर हो गये और सभी अमर नर हो

110-कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृष्ठ-26, 111-वही, पृष्ठ-29, 112-वही, पृष्ठ-30, 113-वही, पृष्ठ-31, 114-वही, पृष्ठ-32, 115-वही, पृष्ठ-33, 116-मधुपर्क, पृष्ठ-138, 117-वही, पृष्ठ-140 (पद-108, 109), 118-वही, पृष्ठ-141 (पद-111), 119-वही, पृष्ठ-141 (पद 112), 120-वही, पृष्ठ-141 (पद 113)

गये।[121] कटि के झुकाव से, जानु तक प्रलम्बित भुजाओं से, कठिन उरोजों के पृथुल ओज से राधा जगदम्बिका की भाँति करोड़ों कामदेवों का उपहास कर रही है।[122] राधिका की ऐसी रसीली मूर्ति देखकर यशोदा के नेत्रों में अश्रु प्रवर्द्धमान हो जाते हैं, नन्द-नन्दन भी प्रसन्न हो जाते हैं, गोपी-गोप भवानी का ध्यान करते हुए सुख से विह्वल हो जाते हैं।[123]

दिव्य देह की दीप्ति स्वच्छ कक्ष में वैसी ही सुशोभित होती है जैसी प्रेम के मध्य में "प्रतीति" शोभा पाती है, अंगराज सदृश सुगंध से वायु भी मचलने लगा। पद्मराग शरीर वाली सुन्दर राधा ऐसी प्रतीत होती हैं मानो संसार की छवि साकार होकर राधा-रूप में विद्यमान हो। कला यौवन के यश से जैसे यशस्विनी होती है वैसे ही नेत्रों में स्नेह एवं वाणी में वारुणी की मदमस्ती भरे हुए राधा भी सुशोभित हो रही है।[124]

भक्त कवि कृपालु दास राधा के चरणों पर न्यौछावर होते रहते हैं। वे कहते हैं कि "किशोरी जी! तुम्हारे चरण की कोमलता में गुलाब एवं मक्खन भी फीके पड़ जाते हैं, चरणों की लालिमा की उपमा में आम के नये पत्ते, इन्द्रवधूटी, गुलाल आदि समता नहीं कर पाते। राधा के सिर पर स्वर्णिम मुकुट एवं मनोहर चन्द्रिका तथा उसके ऊपर भी मोतियों की लड़ी शोभा दे रही है, जरी-किनारे की चुनरी तथा नीले रंग का वस्त्र है और जो स्वयं गौरे रंग की हैं। जिनके कान में झुमके झूम रहे हैं तथा अत्यन्त ही सुन्दर रीति से वेणी गुँथी हुई है, जिनकी भौंहें धनुष को लज्जित कर रही हैं, जिनकी नासिका में सुन्दर मुक्ताहल शोभित हो रहा है एवं जो मुस्कराती हुई हठात् मन को मोहित कर लेती हैं, जिनके पैर में पायल है तथा जिनकी चाल हंसों को भी लज्जित करने वाली अत्यन्त मतवाली है। कृपालु ऐसी राधा के चरणों में लिपटना चाहते हैं।[125] फूलों से गुँथी हुई पैर तक लम्बायमान क्या ही सुन्दर वेणी है? किशोरी जी के सभी अंग प्रकृति के उपमान हैं, अधरों को कुँदरू का फल मानकर तोतों ने चोंच मारने के लिए घेर लिया है, वेणी को सर्पिणी समझकर मोरों के समुदाय खाने के लिए चले आ रहे हैं, वाणी को मुरली की ध्वनि समझकर मृगों के झुण्ड राधा की ओर बढ़ रहे हैं। इस प्रकार किशोरी जी को देखकर भौंर, तोते, मोर एवं हिरन सभी भ्रम में पड़ गये हैं।[126] राधा के चरणों की लालिमा का एक रहस्य यह है कि पार्वती, लक्ष्मी एवं ब्रह्माणी आदि चरणों को अपने सिर पर रखती हैं, अतएव उनके सुहाग का सिन्दूर लग-लगकर राधा के चरण लाल हो गये हैं।

सूर की भाँति कृपालुदास ने राधा के विविध रूपों का विभिन्न प्रसंगों में अंकन किया है। पं० अनूप शर्मा, भारतेन्दु, करील, हरिऔध, भारती जी, किशोरीलाल गुप्त तथा कृपालुदास की सौन्दर्यभावना जिस प्रकार कृष्ण के छवि-वर्णन में पगी है उसी प्रकार राधा के विभिन्न अंगों के चित्रण में भी रमी है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अतिरिक्त प्रायः सभी पुराणों में राधा को कृष्ण की परकीया प्रेयसी ही माना गया है जो कुमारी है, ऐसी अवस्था में सिर पर सिन्दूर और मुख में पान का विधान नहीं है, भारतेन्दु जी की राधा सिन्दूर और ताम्बूल दोनों से सुसज्जित हैं। ब्रह्मवैवर्त की भाँति भारतेन्दु जी ने भी राधा-कृष्ण को दुल्हन-दूल्हा के रूप में चित्रित किया है। हरिऔध और कृपालुदास के सौन्दर्यांकन में यदि मानसिकता अधिक है तो करील, अनूप शर्मा, किशोरीलाल गुप्त के सौन्दर्य वर्णन में मांसलता का योगदान प्रबलतम है। राधा के सौन्दर्यांकन में उपादानों का चयन भी प्रायः प्रकृति से एवं सामन्तीय वातावरण से किया गया है।

121-मधुपर्क, पृष्ठ-141 (पद-113), 122-वही, पृष्ठ-142 (पद-114), 123-वही, पृष्ठ-138 (पद-104), 124-वही, पृष्ठ-47 (पद-7), 125-प्रेमरसमदिरा, कृपालुदास, पृ० 188 (पद-177), 126-वही, पृ० 191-992 (पद-181)

(ङ) राधा-कृष्ण का प्रणय-भोग

(संयोग एवं विप्रलम्भ की अवस्थाओं में)

शृंगार का शास्त्रीय रूप

आचार्य भरत मुनि ने रस को चर्व्यमाण बताया है, उनके अनुसार रस की निष्पत्ति इस प्रकार होती है-"विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोद्रसनिष्पत्तिः" अर्थात् विभावादि के संयोग से जाग्रत स्थायीभाव चर्व्यमाण रस के रूप में परिणित हो जाता है। भानुदत्त ने इसे और स्पष्ट करने का प्रयास किया है-"भाव विभानुभावव्यभिचारिभावैर्मनो विश्रामो यत्र क्रियते स वा रसः" अर्थात् स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारीभाव के संयोग से जहाँ मन को विश्राम मिले वहीं रसनिष्पत्ति होती है। आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को शृंग कहते हैं और इस भेद की उत्पत्ति का कारण शृंगार कहलाता है।[1] बछड़े के जब सींग निकल आता है तब यह माना जाता है कि वह युवक हो गया है; इसी प्रकार उस युवक-युवतियों की बहिरिन्द्रियों में नवीन प्रौढ़ता के चिह्नों का प्रकाशन होता है, तभी से उस नूतन स्थिति में कामदेव के मूल व्यापार का श्रीगणेश माना जाता है। कामसूत्र के रचयिता वात्स्यायन ने आत्मा से मुक्त मन के द्वारा कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा एवं घ्राण की पंचेन्द्रियों से आनन्द प्राप्ति को "काम" बताया है।[2] उनके अनुसार नर-नारी के सम्मिलन में उनके पूर्ण व्यक्तित्वों का रमणशील होना आवश्यक है। नर-नारी के इसी रति-रमण की विभिन्न स्थितियाँ शृंगार का क्षेत्र बनाती हैं। शृंगार उस युवक और युवती के उस आनन्द को कहते हैं जो विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से निष्पन्न रति से संयुक्त होकर, सम्यक् रीति से सम्पूर्ण बन गया हो तथा जो दोनों में समभाव से स्फुरित हो।[3]

प्रणय-भोग की अवस्थाओं में नायक और नायिकाओं की अगणित चेष्टायें तथा व्यापार सन्निहित रहते हैं, अस्तु संभोग के असंख्य भेद हैं। फिर भी आचार्यों के द्वारा जो विभाजन किया गया है और बाद के विद्वानों, आचार्य विश्वनाथ (साहित्य दर्पण) तथा रूप गोस्वामी (उज्ज्वल नीलमणि) आदि ने जिसे पुष्ट किया है, वह इस प्रकार है- 1-पूर्वानुरागानन्तर (संक्षिप्त), 2-मानान्तर (संकीर्ण), 3-प्रवासानन्तर (सम्पूर्ण), 4-करुणानन्तर (समृद्ध)

विप्रलम्भ के दो विभाजन अधिक प्रचलित हैं। एक तो मम्मटाचार्य कृत है और दूसरा है आचार्य विश्वनाथकृत। मम्मटाचार्य के काव्यप्रकाश में विप्रलम्भ के भेद बताये गये हैं-अभिलाष हेतुक, विरह हेतुक, प्रवास हेतुक तथा शाप हेतुक। डॉ० रमाशंकर तिवारी ने इस वर्गीकरण के साथ छठवाँ भेद गर्वहेतुक नाम से जोड़ना पसन्द किया है।[4] उनके अनुसार रासलीला के मध्य में राधा तथा गोपांगनाओं के गर्व के कारण कृष्ण का अन्तर्धान हो जाना और युवतियों का उनके विश्लेष में रोना-कलपना "गर्वहेतुक" वियोग का उदाहरण है। विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में पूर्वानुराग, मान, प्रवास एवं करुण नाम से विप्रलम्भ के चार भेद बताये गये हैं। मिलने के पूर्व हृदय में प्रत्यक्ष दर्शन, चित्रदर्शन, श्रवण दर्शन तथा स्वप्न दर्शन के द्वारा जिस अनुराग की उत्पत्ति होती है, उसे पूर्वराग कहते हैं। विप्रलम्भ के अन्तर्गत आचार्यों ने जिन दस काम दशाओं का उल्लेख किया है, वे इस प्रकार हैं-

1-शृंग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः। .... रस, शृंगार इष्यते॥ -साहित्य दर्पण 3/183, 2-कामसूत्र 2/11-12, 3-"यूनोः परस्परं परिपूर्णः प्रमोदः सम्यक् सम्पूर्ण रतिभावो वा शृंगारः।"-(रस तरंगिणी, षष्ठ तरंग), 4-सूर का शृंगार वर्णन, पृष्ठ-96

अभिलाषा, चिन्तन, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मरण।

राधा-कृष्ण के प्रणय-भोग का विवेचन संभोग एवं विप्रलम्भ की दो पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में किया गया है। संभोग के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के पारस्परिक प्रथम दर्शन से प्रेमांकुरण का स्वरूप दिखाया गया है। पहले प्रेम के स्वाभाविक विकास का क्रम है और बाद में संयोग की, आलोच्य काव्यों में प्राप्त विभिन्न स्थितियों का चित्रांकन किया गया है। भले ही उक्त चित्र संयोगावस्था की पूर्व भूमिका हों किन्तु इन्हें पूर्वराग के अन्तर्गत रखना अनुचित मानकर मैंने पृथक् से इन चित्रों को "प्रेमांकुरण एवं प्रेम विकास" के अन्तर्गत सँजोया है। कारण यह है कि प्रथम दर्शन से ही दोनों के हृदय में परस्पर जिस अनुराग की जाग्रति हुई है उसके उपलालन का अवसर अनायास ही मिलता गया तथा कभी-भी ऐसे कठिन अवसर नहीं आये जहाँ राधा-कृष्ण के पूर्व राग की तड़पन, अभिलाषा आदि व्यक्त हुए हों। वस्तुत: पूर्व राग की तड़पन को अवसर ही नहीं मिला। खरिक-गमन, गोदोहन तथा एक-दूसरे के घर से आवागमन आदि ऐसे प्रवल व्याज थे जो राधा-कृष्ण को वियुक्त होने में विघ्न उपस्थित करते थे। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि आलोच्य काव्यों में पूर्व राग के ईषत् चित्र भी नहीं हैं। धर्मवीर भारती की कनुप्रिया और जानकीवल्लभ शास्त्री की राधा में पूर्वराग का स्मरण मात्र है। परम्परागत राधा को नई दृष्टियों एवं नई संवेदनाओं से युक्त कर दिया गया है। आधुनिक हिन्दी कविता में उस शास्त्रीय दृष्टि से राधा-कृष्ण का शृंगार-वर्णन नहीं किया गया है जिस दृष्टि से भक्ति एवं रीतिकालीन कवियों ने किया है। यहाँ तो राधा-कृष्ण को नया रूप प्रदान करना था, विलासिता के कीचड़ से निकालकर आदर्श मानव एवं आदर्श प्रेम का चित्र प्रस्तुत करना था। अस्तु शृंगार के विविध अंगों एवं काम-दशाओं का वैसा क्रमागत चित्र नहीं सुलभ हो सका है जैसा कि मध्यकालीन कवियों ने प्रस्तुत किया था। इसीलिए हमने कवि-उद्देश्य को ध्यान में रखकर राधा-कृष्ण के प्रणय-भोग को शृंगार के शास्त्रीय नपने से मापने का प्रयास कम किया है। आगे संभोग एवं विप्रलम्भ के अन्तर्गत राधा-कृष्ण के प्रणय-भोग का वर्णन किया जा रहा है।

संभोग

प्रेमाङ्कुरण एवं प्रेम-विकास

राधा-कृष्ण के प्रथम दर्शन एवं प्रेम-जागरण का चित्रण जिन कवियों ने किया है, उनके चित्रों में विविधता है, किसी ने सूर के आधार पर "औचक" ही ब्रज की गलियों में राधा-कृष्ण का दर्शन सम्पन्न करवा दिया है, किसी के राधा-कृष्ण यमुना तट पर मिलते हैं, किसी के राधा-कृष्ण स्वप्न में एक-दूसरे का दर्शन कर लेते हैं और किसी ने संयोगत: वंशीवट के पास दोनों को एक-दूसरे का दर्शन करवा दिया है। यह दर्शन-मिलन सहसा एवं शीघ्रता में हुआ है। इन मिलन-प्रसंगों में प्रियप्रवास की बड़ी ही स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत हुई है। राधा-कृष्ण के प्रेम का उपलालन शैशवावस्था से ही होता रहता है जिसमें दोनों का परिवार सहायक है।

बृषभानु और नन्द में परस्पर प्रीत्याधिक्य के कारण उनका परिवार भी प्रीति के बन्धन में निबद्ध है।[5] कृष्ण जब अंक में अबोध शिशु थे तब से ही बृषभानु के गृह में उनका समादर होता रहा है और पयोमुखी राधा भी नन्द परिवार के लिए "कौतुक पुत्तलिका" बनी रही है।[6] यद्यपि राधा पहले से ही कृष्ण में अनुरक्त एवं कृष्ण-समर्पित-चित्त थी[7], तथापि धीरे-धीरे वय: वृद्धि के साथ-साथ उसमें और अधिक तन्मयता-

5-प्रियप्रवास, पृष्ठ-4, पद सं.10, 6-वही, पृष्ठ-4, पद सं.11,12, 7-वही, पृष्ठ-5, पद सं.9

एकांगिता आने लगी। बड़ी प्रीति से अब दोनों खेलने भी लगे हैं, कभी नन्द-गृह और कभी बृषभानु-गृह इनकी क्रीड़ाओं से गुंजरित होता रहता है।[8] यह बाल-स्नेह युगल-वय के साथ बढ़ता गया और यही किशोरावस्था में प्रणय का रूप धारण करता है।[9] कुमारी राधा की हृदय-भूमि में प्रेम-लता इतनी अधिक बलवती हो गई कि शयन-भोजन के समय ही नहीं बल्कि प्रतिक्षण वह कृष्ण की छवि देखकर छवि-मत्त रहने लगी।[10] "कृष्णायन" में यह प्रसंग बड़े श्लाघ्य ढंग से वर्णित है, हृदय स्वाभाविकता से मोहित हो जाता है-

"एक दिवस खेलत ब्रज खोरी, देखी श्याम राधिका भौरी
जनु कछु क्षीर सिन्धु सुधि आई, औचक मोहित भये कन्हाई।" -कृष्णायन, पृष्ठ-30

यहाँ पहले कृष्ण ही राधा-रूप पर मोहित होकर अपनी "सुध-बुध" विनष्ट कर देते हैं। उन्हें क्षीर-सिन्धु का स्मरण हो आता है। यहाँ क्षीर-सिन्धु की बात कहकर कवि ने राधा को परकीया होने से बचाया है। श्याम ने राधा से कई प्रश्न किये-"पूछत श्याम-काह तव नामा? को तव पिता! कवन तव ग्रामा?", "पहिले कबहुँ न परी लखायी, आजु कहाँ ब्रज खेलन आयी।" कृष्ण के प्रश्नों का यथातथ्य उत्तर देने के साथ ही साथ राधा उनके ऊपर चोरी का दोषारोपण भी करती है-मेरा ग्राम "बरसाना" ब्रज में प्रसिद्ध ही है, जो यहाँ से अधिक दूर भी नहीं है। सारा संसार ही तुम्हें "चोर" के रूप में पहचानता है-"चोर-चोर कहि जग पहिचाना।"[11] कृष्ण "कीन्हेउ काह तुम्हार चोरायी।" कहकर सफाई देते हैं। राधा की दृष्टि कृष्ण के सुषमा-सिन्धु में डूबने-उतराने लगती है। संकेत-भाषा से कृष्ण राधा को सन्ध्या मुहूर्त में खरिक पर आने का निमन्त्रण भी दे देते हैं-"आयेउ साँझ खरिक संग खेलन" राधा भी "अइहौं" कहकर स्वीकारोक्ति प्रकट करती है और वियोग-विह्वल होकर भवन को प्रस्थान करती है।[12]

अब राधा को किसी-न-किसी व्याज से कृष्ण से मिलना ही है क्योंकि श्याम मूर्ति हृदय में स्थान पा चुकी है। खरिक जाने का बहाना बनाकर राधा अपनी माँ से कहती है-

"साँझ भई दोहनी दे मैया, खरिक जाय दुहिहौं निज गैया।"[13]

माता के निषेध करने पर भी वह खरिक पहुँच जाती है और कृष्ण को न देखकर विकल मति वाली हो जाती है। कुछ क्षणों में मोर पंख से सुसज्जित मुरली बजाते हुए कृष्ण, नन्द के साथ आते हुए दिखाई पड़े। राधा को पहचानकर नन्द ने कृष्ण की सुरक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राधा को दे दिया-

"तुम बृषभानु कुमारिका, खेलहु संग कन्हाय।
रहेउ विलोकत बाल मम, मारहि जनि कोउ गाय।"-कृष्णायन, पृ०30

राधा को नन्द तब तक कृष्ण के साथ खेलने का आदेश देते हैं जब तक वे खरिक की समस्त गायों की गणना न कर लें। राधा को मनचाहा अवसर मिल गया। कृष्ण के समीप आकर गलबाँही देकर राधा कहती हैं-"अब छांड़हुँ नहिं क्षणहु कन्हाई, सौंपेउ तुमहिं मोहिं नँदरायी।"[15] नववय के गोपाल और नवेली राधा का परस्पर नवल अगाध स्नेह उमड़ पड़ा। नवल पीत पट, नई साड़ी, नवकुंज, नवल यमुनाजल, नवल तमाल, नवल पुलिन, नवल वनमाला, नवल अरण्य, नवल तरु शाखा के वातावरण से राधा-माधव

8-प्रियप्रवास, पृष्ठ-4, पद सं०-13, 14, 9-वही, पृष्ठ-4, पद सं०-16, 10-वही, पृष्ठ-4/17, 11-कृष्णायन, पृष्ठ-30, 12-वही, पृष्ठ-30, 13-वही, पृष्ठ-30

के हृदय में नवल अभिलाषा का जन्म हुआ। गौ-गणना समाप्त कर नन्द "राधा-माधव" कह-कहकर राधा-कृष्ण को ढूँढ़ने लगे। मिलने पर कृष्ण, नन्द से कहते हैं-"बादर घिरि आवा, इन मोहिं लै यहि कुंज दुरावा। मोहिं बचावत आपुहिं भीजी।" यह कृष्णोक्ति सुनकर राधा का मन रीझ गया। तीनों साथ ही घर आते हैं, राधा-रूप को देखकर यशोदा मोहित हो जाती हैं। गोरे भाल पर एक बिन्दु बनाकर नया लीला लहँगा राधा को प्रदान करती हैं। अन्य विभिन्न प्रकार की खाद्य-सामग्री देकर यशोदा "खेलहु हरि संगा" कहकर राधा की आन्तरिक अभिलाषा को द्विगुणित उमँगायित कर देती हैं-

"खेलति खीझति श्याम संग, धरति तजति हरि बांह।
मनहुँ तड़ित प्रकटति दुरति, सजल घोर घनमाँहि।" -कृष्णायन, पृष्ठ-31

इस प्रकार राधा-माधव का अस्फुट-स्नेह पलने लगता है। कृष्ण का साहचर्य प्राप्त करने के लिए संध्या समय राधा का यह बहाना कितनी चतुराई से भरा है, बछड़ा स्वयं छोड़कर कृष्ण के पास आकर बातें बनाती है-

कान्ह जू सांझ भई, सुरभी, सब मेरी सवत्स घरैं फिरि आई।
देहु हेराय, गयो है हेराय, बछा धवरी को, है राम दोहाई।
देर करौ जनि खीझिहै माई, चुभी चित में अजौं सो चतुराई।।"[16]

ऐसे अवसर पर मतिराम की "राधा" को इस उक्ति का स्मरण अनायास ही आ जाता है-
"कबही हौं हेरति, न हेरे हरि पावति हौं, बछरा हिरानों सो हिराय नैंक दीजिए।"

कृष्ण दर्शन के उद्देश्य से राधा अब नन्द के घर आने-जाने लगी है, दही मथती हुई राधा जब कृष्ण को देखती हैं, तब उसके चित्त में उचाट पड़ जाता है, दृष्टि कहीं है और मथानी कहीं। ऐसे अवसर पर नन्दरानी का आगमन होता है। राधा के चित्त की चंचलता पर कुछ बुरा-भला भी कहती हैं, "राधा तू पागल हो गई है? मथानी कहाँ है और दधि-माट कहाँ है?"[17] राधा के इस व्यापार से पूर्वानुराग की व्याकुलता अंकित हुई है। खीझकर राधा मथानी फेंककर कृष्ण के पास खड़ी हो जाती हैं। यशोदा के प्रश्नों के उत्तर में राधा कहती है-

"दासीदास बहुत ममधामा, कबहुँ न करहुँ हाथ निज कामा।
आवहुँ खेलन सँग कन्हाई, महरि मथानी देति गहाई।।"[18]

राधा की इस उक्ति पर यशोदा मारने दौड़ती हैं और राधा भीति प्रदर्शन करती हुई भाग जाती हैं। राधा का अनुसरण करते हुए कृष्ण भी खरिक गोदोहन-दर्शन के बहाने चले जाते हैं। खरिक पर नन्दबाबा को देखकर कृष्ण अपने हाथों से गाय दुहने का प्रस्ताव करते हैं, नन्द के द्वारा कुछ निर्देश देने के पूर्व ही राधा बोल पड़ती हैं-

"कहत कुंवरि "मैं हरिहिं सिखावहुँ, दुहन-रीति दुहि धेनु बतावहुँ।"

बछड़े को थन से लगा दिया और दोहनी को कृष्ण के घुटनों पर स्थिर किया। गोपाल को देखकर गायों का रँभाना स्वाभाविक ही है, सस्नेह हरि दूध की धार दोहनी को बजाते हुए दुहने लगे। सहसा कृष्ण की दृष्टि राधा पर पड़ जाती है और उनका ध्यान गोदोहन की निश्चित प्रक्रिया से हट जाता है। राधा-मुख देख-देखकर सुख-लाभ भी कर रहे हैं और उधर सहज क्रिया रूप में दुग्ध धार भी निकाल रहे हैं। हाथ धेनु-थन पर है और नेत्र प्रिया-तन पर। चूक से दुग्ध धार चन्द्रानन पर बिखर जाती है। राधा के मन को

15-कृष्णायन, पृष्ठ-30, 16-राधा-डा. किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-17, 18-कृष्णायन, पृष्ठ-39,

दुग्ध बिन्दु युक्त चन्द्रानन ऐसा प्रतीत हुआ मानो कलंक को धोकर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो।[19] आधा दूध भले गिर गया, इसकी चिन्ता नहीं है। चिन्ता तो माता के नाराज होने की है-

दोहनी में इक धार गिरावत,
मारत एक हौं आँचर साधा।
राधा कह्यो, "अनखायगी माय"
"बलाय सों", दूध गयो रहि आधा।[20]

दोनों गुप्त प्रीति के अनुकूल वातावरण पाकर मग्न हैं। इसी बीच राधा की सखी विशाखा का आगमन होता है। विशाखा, राधा की ही खोज में आयी है-

"राधा! कहि-कहि टेर लगायी", चलहु तुरत घर मातु रिसाई।
श्यामहिं रहति सदा तैं घेरे, ठाढ़ि मनहुँ लिखि धरी चितेरे।
गोप अन्य कहँ रहे दुराई, जो तुम हरि से धेनु दुहायी? -कृष्णायन, पृष्ठ-40

राधा और कृष्ण का यह गुप्त प्रेम उपलालित होता हुआ किस प्रकार दोनों के द्वारा समय-समय एवं स्थान-स्थान पर प्रच्छन्न रखा गया है, इसकी अनुभूति भुक्तभोगी प्रेमीजन ही करेंगे। दोनों एक-दूसरे के प्रति प्रीति गुप्त रखते हुए प्रश्नकर्ताओं को सटीक उत्तर देकर उल्टे उनके ऊपर ही "चार्ज" लगाते हैं। उधर विशाखा को उत्तर देकर राधा ने सन्तुष्ट किया और इधर घर आकर माता को शान्त किया कृष्ण ने। कुछ नाराज होती हुई यशोदा, कृष्ण से राधा के विषय में पूछती हुई राधा के साथ कृष्ण के गमन का उद्देश्य भी जानना चाहती है। प्रश्न सुनते ही मन में कृष्ण प्रसन्न हुए और मुख से रोष प्रकट किया-"माँ! तू अपनी एक गलती सुन, क्या कहूँ तू मेरे खिलौनों को इधर-उधर रख देती है, मुरली भँवरा को संभाल कर रखती ही नहीं। आज प्रातः ही जब मैं घर आया, राधा को दही मथते हुए देखा। वास्तव में राधा हाथ में मथानी झूठे ही लिए थी, मन में उसके कुछ और ही घात थी। मुरली को देखा, तब मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि राधा मुरली को चुराने ही आई है। यह पूर्णतः सत्य है कि राधा इतने में ही वंशी लेकर भागने लगी। मैं भी उसके पीछे-पीछे गया। खरिक के पास पनघट पर वह तीव्र गति से चलने के कारण भहराकर गिर गई, मैंने वंशी को ले लिया, वह रोने लगी। रोकर राधा ने बहुत शत्रुता का व्यवहार किया, यहाँ तक कि तुम्हें और मुझे बहुत गालियाँ दीं और घर जाते हुए मुझे भयभीत करती हुई मुरली चुरा ले जाने की घोषणा भी की है। अब क्या करूँगा। मुरली कहाँ छिपाकर रखूँ? नित्य प्रातः-सन्ध्या आकर चोरी करके भागना इसका कर्म हो गया है। तिस पर भी नित्य नये-नये शत्रुता का आचरण करती है। कितनी प्रार्थनायें करता हूँ, एक भी नहीं मानती।"[21] इस प्रकार अपने निराधार गल्प से कृष्ण ने यशोदा को रस-सिक्त कर दिया। राधा की खुलकर शिकायत करने में भी कृष्ण चूकते नहीं-

"कहत कान्ह, जानति नहीं, आजु बतावहुँ तोहि।
बहुत बुरी यह राधिका, तनिक सोहाति न मोहिं।"[22]

हृदय से प्रेम करते हुए बाह्य दृष्टि से राधा की निन्दा करते हुए कृष्ण "हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा" वाली तुलसी की उक्ति को सार्थक करते हैं। प्रथम दर्शन में ही राधा ने कृष्ण के ऊपर चोरी आरोप लगाया था, बाद में कृष्ण ने भी राधा के ऊपर वैसा ही इल्जाम प्रस्तुत किया और माता से कहा कि वह

19-कृष्णायन, पृष्ठ-39, 20-राधा : डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-18, 21-कृष्णायन, पृष्ठ-40, 22-वही, पृष्ठ-40

मुरली सँभाल कर रखा करे। राधा-कृष्ण को देखकर "मथति कहूँ, कहुँ दृष्टि लगाई" तथा कृष्ण, राधा को देखकर "इत चितवहिं उत धार चलावहिं" दृश्य उपस्थित करते हैं। यद्यपि यहाँ सूर का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत हो रहा है, तथापि राधा और कृष्ण की प्रेम-भावनाओं के क्रमिक विकास का जैसा स्वाभाविक बालसुलभ चित्रण है वह अनूठा है। आगे गोवर्द्धन पूजा के प्रसंग में राधा-कृष्ण का दर्शन इष्टदेव के रूप में करती है। विश्वास के द्वारा कृष्ण के ऊपर स्वाँग करने का आरोप लगाये जाने पर राधा संकेत से वर्जन करती है-"बरजेउ राधा नयन तरेरी"। राधा भक्ति भाव से कृष्ण को देखती है-

"कबहु बिलोकति विष्णु तन, कबहुँ श्याम छविधाम।
रोम-रोम पुलकित कुँवरि, पुनि-पुनि करति प्रणाम।" -कृष्णायन, पृष्ठ-43

मेघाच्छन्न आकाश, सन्ध्या का समय, अकेले कृष्ण घर कैसे जा सकते हैं? नन्द का निर्देश पाते ही कृष्ण को लेकर राधा गृहोन्मुखी होती है, राधा को मनोनुकूल अवसर मिलता जा रहा है।[23] अपने गुप्त सन्देश को पहुँचाने का व्यापार भी बड़ा विचित्र है, गोप समाज में बैठे हुए कृष्ण को राधा अपनी दूती द्वारा जलयुक्त कमल प्रेषित करती है, दूती कमल को उल्टा करके देती है। कृष्ण उसे तत्काल कली बनाकर वापस कर देते हैं।[24] इस प्रकार दोनों का प्रेम गोपनीय ही रहा। बिहारी की राधा गुप्त जी की राधा भी बतरस लालच से कृष्ण की वंशी चुराना नहीं भूलती।[25] राधा की सखियों को भली-भाँति ज्ञात है कि राधा की तिरछी दृष्टि से कृष्ण व्याकुल हो सकते हैं, इसीलिए गोवर्द्धन को उठाये हुए की ओर न देखने का, राधा से सभी सखियाँ, निवेदन करती हैं। उन्हें सन्देह है कि पर्वत गिर सकता है।[26] इसी प्रकार अन्य बाल-लीलाओं में प्रेम की स्वाभाविक कहानी भी अग्रसर होती रही है। मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य में श्रीकृष्ण और राधा के मध्य जिस परिमाण में लीलायें हुई हैं, उस परिमाण में तो नहीं, किन्तु उसका अंश मात्र आधुनिक हिन्दी कृष्ण कविता में भी यत्र-तत्र निदर्शित है। श्रीकृष्ण गोपियों के मध्य सामूहिक रूप से माखन-दान की याचना करते हैं, साथ ही राधा को एकान्त में पाकर अवसर का लाभ उठाकर माखन माँगना नहीं भूलते। बरसाने की साँकरी गली में राधा से बरबस माखन माँगते हुए कृष्ण से वाद-विवाद भी हो जाता है।[27] राधा अपनी सखी से कृष्ण के प्रेम युक्त ऊधमों का वर्णन करती है, "हे सखी! वह ऊधमी श्यामसुन्दर मुझे मार्ग में चलते हुए भी तंग करता है। मुझे देखते ही तुरन्त झपटकर पनघट पर लिपट जाता है और जब मैं कुछ खरी-खरी सुनाती हूँ तब मेरा घड़ा भी फोड़ डालते हैं। मुझको बार-बार "प्यारी भानु दुलारी" एवं "घूँघट बारी नारी" कहकर पुकारता है। अरी सखी, कहाँ तक कहूँ, वह बिना कुछ बोले ही आँखों के कटाक्षपात से ही पता नहीं क्या-क्या बातें करता है।[28] कृष्ण की अचगरी से ऊबकर राधा उन्हें चुनौती भी दे देती है कि आपके मनोनुकूल कार्य नहीं हो सकता।[29]

यमुना पुलिन पर राधा-कृष्ण की भेंट हो गयी, परस्पर कार्य-व्यापार का विस्मरण हो जाता है। कृष्ण निर्निमेष राधा को देखते रहते हैं और राधा भी कृष्ण-दर्शन से पग उठाना भूल जाती है।[30] कुसुमी रंग

23-राधा-डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-18, भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-306, 24-राधा : डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-21, 25-वही, पृष्ठ-20, 26-वही, पृष्ठ-16, 27-पेमरसमदिरा, पृष्ठ-150, 28-पृष्ठ-152, 29-राधा-डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-18, 30-पृष्ठ-19

की साड़ी राधा के आन्तरिक प्रेम का प्रकाशन है। सखियाँ राधा के ऊपर कृष्ण-प्रेम छाया का आरोपण करती हैं, उनका विश्वास है कि राधा के अंग-अंग में कृष्ण समा गये हैं जिसे अब राधा नहीं छिपा सकती। नेत्रों में लाल डोरे के बहाने लाल बिहारी ही झलक रहे हैं। सारे संसार में राधा और कृष्ण का प्रेम प्रकट हो गया है।[31] सूर के शब्दों में इसे "अब तो प्रकट भई जग जानी" कहा जा सकता है।

रास में दाम्पत्य-सुख

राधा और गोपियों की प्रेम-परीक्षा होती जा रही है। उनके आग्रह एवं पूर्व निश्चयानुसार शरदागमन पर धवल यामिनी में कृष्ण की वंशी बजी जिसकी ध्वनि में राधा तथा विभिन्न ब्रज-बालाओं का नामोच्चारण करके रास हेतु आह्वान किया गया है। गोपियों के मध्य राधा और कृष्ण का नृत्य प्रारम्भ होता है, नख से शिख तक की साज-सज्जा करके जब राधा-कृष्ण के सम्मुख उपस्थित होती है तब मोहिनि राधा की छवि मोहन के मन को मनोनुकूल आनन्द देती है और मोहन की मोहिनी भी मोहिनी राधा में विलीन हो जाती है।[32] रास-नृत्य में राधा-कृष्ण का सौंदर्य मन्मथ और रति को लज्जित कर देता है। राधा-माधव वस्त्र लहरा रहे हैं, राधा का उर-आँचल वायु वेग से उड़ रहा है। कृष्ण का अनुसरण करते हुए राधा के नेत्र चंचल हैं, कंचुकि दरक रही है, माला टूट रही है, मुखमण्डल पर श्रमकण विद्यमान हो रहे हैं। नीले और पीले रंग का पट, केश मुकुट, कुण्डल आदि राधा और कृष्ण के अंगों से अरुझ रहे हैं।[33]

कृष्ण स्वयं कहते हैं-"कुंडल बेसरि सों उरझयो, उरझी मो पीताम्बर राधिका सारी"[34] रास प्रवाह में अखिल विश्व को परमानन्द-मग्न जानकर कृष्ण, राधा का हाथ पकड़कर कुंज भवन में प्रस्थान करते हैं। कृष्णायनकार ने प्रणय-भोग के इस दृश्य का बड़ी मोहकता के साथ वर्णन किया है। यमुना की तरंगें राधा और ब्रजनाथ के चरण-प्रक्षालन हेतु आगे बढ़ती हैं, पृथ्वी की वनस्पतियाँ झुककर प्रणाम करती हैं, पुष्प सुन्दर परागों की वृष्टि करने लगते हैं, कोकिला स्वागत-गान एवं भ्रमर विरुदावली का मधुमय प्रणयमान करते हैं, कुंज के रन्ध्रों से "चन्द्र-मरीचि" के आगमन से "वदन-कुमुद" खिल गये हैं, मलय-समीर ने श्रमकण को सुखा दिया है। किसलय के आसन पर विराजमान ब्रह्म स्वरूप ब्रजनाथ के अंक में प्रकृति-स्वरूपा राधा विद्यमान है, राधा की ओर देखकर प्रसन्नचित्त कृष्ण राधा से अमृतसिक्त वाणी में कहते हैं-

"मृदुल भाव मैं ब्रज दरसावा, प्रेम-विटप करि यत्न लगावा।
भक्ति रूप धरि तुम ब्रज आयीं, नीरधि नेह नयन भरि लायीं।
संसृति उपवन रहेउ सुखायी, सींचि नेह-जल देहु बढ़ायी॥" -कृष्णायन, पृष्ठ-55

इस प्रकार कृष्ण प्रेम की देव राधा को ब्रज के प्रेम-विटपों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व सौंपते हैं। कान्त भाव अपने कटाक्ष एवं समालिंगन से कृष्ण ने राधा को सुदिव्य दाम्पत्य सुख का अनुभव कराया। कान्त भाव के समुद्दीपन से शिथिल राधा के शरीर एवं अपूर्णीय प्रेमभाव की पूर्ति नख-क्षतों से करते हैं।[35] इस दाम्पत्य-संभोग में व्यवधान उत्पन्न करने वाले वस्त्रों को हटाकर दोनों एकाकार हो गये-"दिखा दिया मोक्ष सुनीवि-मोक्ष में।" वस्त्र हटा देने से जिस प्रकार द्वैत शरीरों का अभिन्न संयोग सुलभ हो जाता है, उसी प्रकार द्वैतभावना हटा देने पर जीवात्मा और परमात्मा का अभिन्न संयोग अथवा मोक्ष हो जाता है। जैसे

31-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-595, 32-मधुपर्क, पृष्ठ-106, 33-कृष्णायन, पृष्ठ-53, 34-राधा-गुप्त, पृष्ठ-23, 35-रम्यरास, पद सं० 60, 61, 62

योगियों की सुरति क्रिया (जीव-ब्रह्म-सम्मेलन) होती है वैसे ही इन दोनों भोगियों का संयोग सम्पन्न हो रहा है।[36] अनुकूल नायक बनकर जो पूर्व समाराधक थे, वे अब राधिका बनकर समाराध्य हो गये हैं। जो राधिका रूप में पहले आराध्य बनी हुई थी, वे अब कृष्ण बनकर समाराधिका बन गई हैं।[37] प्रणयाभिमानिनी राधिका के चरणों में गिरकर मानभंग के उद्देश्य से कृष्ण राधा-पद पलोटने लगते हैं।[38] राधा-कृष्ण के रास-नृत्य के प्रकृति-वातावरण का बड़ा ही मनोरम चित्र भारतेन्दु जी ने अंकित किया है।[39] "मधुपर्क, प्रणेता, करील" ने रास के अनन्तर यमुना कछारों, गंगाजल तथा झाऊ के "झाड़-झंखाड़" के भाग्य का जय-जयकार किया।[40] अन्त में युगल मूर्ति जल बिहार भी करते हैं।[41]

हिंडोला एवं फाग में प्रणय-सुख

सखियों द्वारा राधा से झूला झूलने का प्रस्ताव किया जाता है। कुंज वितान के नीचे सघन वृक्षों की कतार है। प्रत्येक विटप के मूल से प्रत्येक शाखा तक लतायें आवेष्टित हैं, प्रत्येक लतायें विभिन्न रंगों के पुष्पों से सुशोभित हो रही हैं। एक पुष्ट शाखा पर सुन्दर हिंडोला लटकाया गया है जिस पर बाजी लगाकर दोनों झूल रहे हैं और मधुर स्वर में गोपियों सहित सामयिक राग का आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। झूला पौढ़ गया है, राधा का अंचल चंचल हो जाता है, वेणी खुल जाती है और अंग दिखाई पड़ने लगते हैं। मोतियों की माला टूटकर पृथ्वी पर ऐसे गिर जाती है जैसे मुक्त जीव का अधिकार समाप्त होने पर नीचे गिरा दिया जाता है। कसी कंचुकी के बन्ध ढीले पड़ जाते हैं, साड़ी उड़ने लगी है। आनन्दपूर्वक झूलते समय राधा का वदन प्रगट होकर छिप भी जाता है, इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रेमसागर मथते समय इधर-उधर बहुत से चन्द्रमा तैर रहे हों। राधा-कृष्ण के झूलने के अनेक सुखकारी चित्र भारतेन्दु जी ने खींचे हैं।[42] होली खेलने में राधिका के साथ असंख्य गोपियाँ हैं और कृष्ण के साथ ग्वाल-बालों का समूह है।

वृन्दावन में होली युद्ध मचा हुआ है। राधा ने सहसा केशर के रंग से भरा हुआ घड़ा श्यामसुन्दर के सिर पर गिरा दिया और रंग देवी ने कृष्ण के कपोलों पर बुरी तरह से गुलाल मल दिया। कृष्ण का दल हार गया और राधा का दल होली समर में जीत गया। लाड़ली बृषभानु की जयजयकार होने लगी।[43] होली खेलने के उपरान्त कृष्ण के निर्देश पर कुंजधाम में राधा का आगमन होता है और दोनों सुखपूर्वक संभोगानन्द का लाभ प्राप्त करते हैं।[44] राधा-कृष्ण के फाग लीला का जहाँ कहीं भी चित्र उपस्थित किया गया है वहाँ राधा और कृष्ण के दल-बल का भी अनिवार्य रूप से चित्रांकन हुआ है। भारतेन्दु के प्रेमगीतों में ऐसे स्थलों की बहुलता है जहाँ राधा, कृष्ण को, कृष्ण, राधा तथा राधा की सखियों को बसन्त खेलने में रंग से सराबोर कर देते हैं। राधा-कृष्ण के इन प्रणय-प्रसंगों में पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति अधिक पल्लवित हुई है।[45]

कुंज-प्रणय

युगल प्रणयी कुंजों में विहार कर रहे हैं। परस्पर आनन्द का अनन्त रस प्रवहमान है, ज्यों-ज्यों अंधकार बढ़ता जा रहा है, रति-क्रिया में वृद्धि होती जा रही है। कामदेव के समर में कोई हारता भी नहीं,

36-रम्यरास, पद सं० 63, 64, 37-वही, पद सं० 66, 38-वही, पद संख्या 67, 68, 39-भारतेन्दु ग्रंथावली, पृ० संख्या-474, 40-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ संख्या-201, 41-मधुपर्क, पृष्ठ-144, 42-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० 117 से 121 तक, 43-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-209, 44-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-395, 45-वही, पृष्ठ-377, 394, 429, 421, 839,

वहाँ सखियों का गमन भी नहीं होता जहाँ राधा-कृष्ण की रति-क्रिया सम्पन्न हो रही है।[46] गलबाँहीं दिये हुए राधा के साथ कुंजों में कृष्ण विहार कर रहे हैं। भारतेन्दु जी कुंज विहार के समय राधा-कृष्ण के सौन्दर्य एवं आभूषणों का योजनाबद्ध चित्रण करते हैं। पुष्पों के आभूषण अंगों को उद्दीप्त कर रहे हैं। पग-नूपुर मन हर ले रहा है, पुष्पों की कटि-किंकिणी मदनबाण बन गई है, कलियों-चोली के मध्य राधा का यौवन विभ्राजित है, पुष्पों के लहँगे और फूलों की साड़ी पहने हुए राधाकृष्ण को मोहित कर रही है।[47] वृन्दावन के कुंजों में राधा अपने हाथों से ब्रजराज का श्रृंगार कर रही है। राधा कहती है कि आपने मेरी इच्छा सदा पूर्ण की है, इसीलिए-

"आजु चाह उपजी उर थोरी,
तुमहिं बनाऊँ नवल किशोरी।" -(प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ-16)

कृष्ण की यह "जस तव रुचि तस करिय किशोरी, हौं रुचि दास तिहार" स्वीकृति राधा को मुदित कर देती है। राधा नाना प्रकार के आभूषणों से कृष्ण को किशोरी बनाकर उनकी रूप माधुरी का पान करते हुए एकटक देखती हुई भी तृप्त नहीं होती है। कभी-कभी दोनों विपरीत वेष बनाते हैं। एक सखी छिपकर दृश्य का वर्णन एक सखी से करती है-"प्रियतम कृष्ण ने सोलहों श्रृंगार करके प्यारी का वेष बनाया है और प्यारी जी ने प्रियतम का मनोहर नटवर वेष बनाया है। प्यारी जी आनन्द-विभोर होकर प्रियतम से "हे प्यारी" कहकर पुकारना प्रारम्भ किया एवं प्रियतम ने प्यारी जी को "हे प्यारी!" कहकर पुकारना प्रारम्भ किया। अपने आपको भुलाकर प्रेम-विभोर होकर भावावेश की अवस्था में उलटे प्रकार से आनन्द विलास करने लगे।[49] कुंजों में राधा के साथ कृष्ण आँख-मिचौनी खेल भी खेलते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य खेल-तमाशे युगल दम्पति रचते रहते हैं जिनमें काम-क्रीड़ा के विभिन्न अंगों का सुचारु रूप से प्रकाशन होता रहता है।[50] राधा-कृष्ण परस्पर गले में हाथ डाले हुए तमाल लता की कुंजों में बिहार कर रहे हैं। कीर्ति कुमारी गौरांगी राधा और यशोदा कुमार श्यामलांग कृष्ण एक-दूसरे के प्रेम-दीवाने हैं। अपनी मस्त चाल से ये हंसों की चाल को लज्जित कर दे रहे हैं।[51] युगल दम्पति प्रेमरस की वृष्टि कर रहे हैं। गोपियों का झुण्ड श्याम-श्यामा के साथ नृत्य कर रहा है।[52] राधा सिंहासनारूढ़ हैं और कृष्ण उनके चरणों को अपनी गोद में लिए दबा रहे हैं।[53]

कुंजों से निकलकर जमुना-पुलिन पर भी इनके बिहार होते हैं। भीगे हुए वस्त्रों के लिपटने से तन की गोराई आभासित हो रही है। दम्पति के इस मोहक सौन्दर्य पर तन, मन वारण किया जा सकता है।[54] नाव पर चढ़कर रति-बिहार करने में दोनों पटु हैं।[55]

मानानन्तर-संयोग

मानमाधुरी वर्णन में कृपालु दास जी सभी कवियों से आगे हैं। भारतेन्दु जी के प्रेमगीतों में मानलीलाओं के भावाधार सूर ही हैं तथापि कृपालु जी की कल्पना और भाव प्रवणता मन को मोह लेती है। "राधा का मान" खण्डकाव्य में राजेश दीक्षित ने मान की अवस्था में राधा-कृष्ण के वार्तालाप का सुन्दर

46-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-436, 47-वही, पृ.-439, 48-प्रेमरसमदिरा, पृ.16,17,18, 49-वही, पृ.218, 50-वही, पृ.206, 51-वही, पृ.214, 52-वही, पृ.213, 202, 53-वही, पृ.220, 210, 54-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 455, 55-वही, पृष्ठ 456,

चित्रण किया है। श्यामा-श्याम दिव्यरास-विलास का रस बरसाते हुए गायनपूर्वक नृत्य कर रहे हैं। नृत्य करते ही करते श्रीकृष्ण के कुण्डल राधा की वेणी में उलझ गये, दोनों आनन्द से हँसने लगे। तदनन्तर कृष्ण ने जैसे ही अपने हाथों से सुलझाना शुरू किया तैसे ही अचानक उनके ऊपर महान् आपत्ति आ गयी, राधा ने प्रियतम के वक्षस्थल पर अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर, भोलेपन में दूसरी प्रेमिका समझकर मान कर लिया और तत्क्षण वहाँ से उठकर चली गईं। ऐसे विषय-मान में ललिता के बुद्धि-कौशल का सदुपयोग हुआ, प्रियतम कृष्ण ने लाल ओढ़नी ओढ़कर अपने शरीर की कान्ति को ढक दिया। ऐसे कृष्ण को देखकर और पूर्व नायिका को न देखकर किशोरी जी ने तिरछी आँखों से देखते हुए हँसकर लालजी को अपने गले से लगा लिया।[56] अकारण मान करने वाली राधा को मनाने का अन्तिम सफल प्रयास विशाखा और ललिता ने किया। विशाखा कहती है, "राधे! तेरा कैसा गुरु है जिसने मान करना तो सिखाया किन्तु प्रेम की प्रक्रिया का अंशमात्र भी नहीं बताया। गुरु जानकर और पानी छानकर पीना चाहिए। तुम्हारे लिए एक महान गुरु ले आई हूँ। ज्यों ही राधा ने मुड़कर पीछे की ओर देखा, उसे सन्त का वेष बनाये ध्यानस्थ ललिता दिखाई पड़ी। राधा हँस पड़ी और उसका मान भंग हो गया।"[57] कृष्ण को भी हिम्मत बँधी राधा तक पहुँचने की। वे राधा से कहते हैं, "मैं तुम्हारे बिना क्षण-भर भी नहीं रह सकता हूँ। सखियाँ ही मुझे कुंजों में बुलाती हैं किन्तु मैं कभी जाता ही नहीं।" कृष्ण के इन छलभरे वचनों पर विश्वास कर भोली राधा, कृष्ण को गले से लगा लेती है।[58]

मान भंग होने के अनन्तर श्यामसुन्दर, वृषभानुनन्दिनी से अत्यन्त प्यार भरे शब्दों में अन्यान्य मन की बातें करते हैं-राधे रानी! किसी से लगन लग जाना बहुत बुरा रोग है क्योंकि एक बार भी प्रेम की आग लग जाने पर फिर करोड़ों उपायों से भी वह आग नहीं बुझ सकती। प्रेमियों के लिए मानरूपी विष की अग्नि नागिन-सी बनकर विष फैलाती है। राधे! तुम मान ही करना जानती हो, कभी मनाकर भी तो देखो, तब तुम्हें स्वयं अनुभव हो जायेगा कि मान करना कितना बुरा है।[59] एक अन्य मान के बाद राधा हृदय की गाँठ खोलती है। वह कृष्ण से कहती है-

"मंगल कलश के समान युगल-कुचों पर मृगमद से चित्र बनाओ, चन्दन के समान शीतल हाथ और हृदय को रखकर मेरे तप्त प्राणों को शीतल करो। मदन के चार-ध्वज से मेरे केशों को साफ करके मोरपंख से गूँथ दो। मेरी सरस जाँघों पर सुन्दर फल और किंकिणी का निर्माण करो।" राधा के इन अत्यन्त गोपनीय बातों को सुनकर कृष्ण गले से चिपककर बिहार करते हुए अत्यन्त सुख की अनुभूति करते हैं।[60]

छद्म लीलायें

परस्पर प्रेम रस का आनन्द दोनों प्रणयी विभिन्न स्थितियों में लेते रहते हैं। प्रेमोपभोग के जितने अवसर प्राप्त किये जा सकते हैं उन सबका अवसर राधा-कृष्ण ने प्राप्त किया है। एकान्तिक सुख प्राप्त करने के लिए राधा-कृष्ण ने छद्म लीलायें भी की हैं जिनमें देवी छद्म लीला, रानी छद्म लीला राधा के द्वारा प्रस्तुत है, राधा कृष्ण-रूप भी धारण करती है। कृष्ण राधा से मिलने के लिए नाइन एवं मनिहारिन का छद्म वेष धारण करते हैं।

56-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-225, 57-वही, पृष्ठ-260, 58-वही, पृष्ठ-261, 59-वही, पृष्ठ-262, 60-वही, पृष्ठ-225

छद्म देवी का रूप धारण करने वाली राधा की छद्म वेषधारी सखियाँ कृष्ण से कहती हैं-

"अचरज एक बड़ो भयो बन में, बटतर इक देवी प्रगटानी।
अति परतच्छ कला है वाकी महिमा कछु न जात बखानी।
इक आवत इक जात नगर तें भीर लाखन की भारी।
जोड़-जोड़ माँगत सोइ सोइ पावत सांच कहत करि सपथ तिहारी।
तुम त्रिभुवन के नाथ कहावत तासों ताहि विलोकउ जाई।"[61]

पूजन की सामग्री लिए हुए कृष्ण वहाँ पहुँचते हैं और देवी से भक्ति का वरदान माँगते हैं। यशोदा भी सूचना पाकर आती हैं और देवी से वरदान माँगती हैं-

"चिर जीओ मेरो कुंवर कन्हैया।
अटल सोहाग लहो राधा मेरी दुलहिन ललित ललैया।
हरी चन्द देवी सों माँगत आँचर छोरि जसोदा मैया।"[62]

यशोदा के मुख से राधा का नाम लेते ही मूर्ति मुस्कराने लगी किन्तु कोई भेद प्रकट न हो सका। कृष्ण ने देवी के मुख में पान का बीड़ा खिलाया तो स्पर्श से देवी का तन पुलकित हो गया। कृष्ण ने भेद जान लिया और स्तुति करने लगे-

"हे देवी! तुम तो बोलने वाली देवी हो। आज मौन होने का क्या कारण है। मुझसे जो कुछ अपराध हो गया हो, क्षमा करो देवी! आपके रूप का मैं उपासी हूँ। विनीत कृष्ण, राधा के चरणों में गिर गये। प्यारे कृष्ण को चरणों में गिरा हुआ देखकर कपटमान भंग हो गया और छद्म रूप सँभालने की क्षमता न रह गई। दौड़कर राधा ने कृष्ण को भुजाओं में भर लिया और आँखों से प्रेमरस गिराने लगी। परस्पर दोनों संयोग सुख का उपभोग करते हैं।"[63] इसी प्रकार रानी छद्म लीला और ग्वाल का रूप धारण करने वाली राधा कृष्ण को ठगती है और अन्त में प्रणय-भोग करती है। भारतेन्दु और कृपालुदास ने इसका सफल एवं मोहक चित्र प्रस्तुत किया। "प्रेमरसमदिरा" के पृष्ठ संख्या 202 से 205 तक कृष्ण के मनिहारिन रूप का वर्णन अंकित है जिसका विस्तार से अवलोकन किया जा सकता है।

प्रेमिका अपने प्रियतम के लिए हरसम्भव सुख की आशा करती है, वह चाहती है कि मेरे कारण प्रियतम को कोई कष्ट न हो। प्रेम त्याग चाहता है, आत्मसमर्पण चाहता है। राधा तपती धूप में नंगे पैरों से अपने पास न आने के लिए कृष्ण से अनुरोध करती है-"मेरी पलकों में निवास करने वाली प्रियतम! दोपहरी में नंगे पैरों से न आया करो। जिस चरण को अपने कुचों एवं हाथों पर रखने में मैं संकोच करती हूँ जिसमें फूलों की कलियाँ चुभ जाती हैं, उन्हीं कोमल चरणों से आप मेरे लिए दौड़ते रहते हैं।"[64] भारतेन्दु जी जहाँ राधा-कृष्ण के उद्दाम रतिरमण एवं केलिविलास का चित्र मोहकता के साथ प्रस्तुत करने में नहीं हिचकते, वहीं रत्युपरान्त चित्रों का भी वर्णन करते हैं। प्रभात हो गया, कृष्ण जग गये। रति-मर्दन से राधा के केश बिखर गये हैं, पीक और अंजन मुख पर फैल गये हैं। कृष्ण प्यारी राधा को इसलिए सुप्तप्रतिबुद्ध नहीं करते क्योंकि सुरति-श्रम से संभोग में कृष्ण का काफी सहयोग किया है। सहसा प्यारी राधा चौंक

61-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ.-638, 62-वही, पृष्ठ-639, 63-वही, पृ. 640-641, 64-वही, पृ.-46

पड़ती हैं। जँभाई लेते हुए पुनः प्रियतम के गले से लिपट जाती हैं।[65] कुंज महल में कृष्ण प्रणय-भोग कर रहे हैं। एक सखी अपनी सखी से कहती है-"देखो सखी! आज कुंज में राधा के साथ कृष्ण विभिन्न प्रकार से नवल केलि कर रहे हैं। रति-क्रीड़ा के सहायतार्थ विविध वायु चल रही है और आकाश में चन्द्रमा का उदय हो गया है। कुंज में रतिक्रिया से उत्पन्न किंकिणी की ध्वनि एवं पत्तों की खरखराहट श्रुतिगोचर हो रही है। "वहाँ राधा की सखियाँ आकर चन्द्रमा से विनय करती हैं कि वह स्थिर हो जाये जिससे राधा और कृष्ण के प्रणय-भोग में कोई बाधा न पड़े।"[66] कभी-कभी राधा-कृष्ण के संग से राधा उमंगायित होती रहती है। परस्पर भुजा से भुजा मिलाये दोनों सिसकारी भर रहे हैं।[67] कृष्ण काम-कलाधर हैं, राधा को छकाते रहते हैं। कान में कुछ कहने के बहाने गालों का चुम्बन ले लेते हैं, बीड़ा खिलाने के बहाने ओष्ठों का स्पर्श कर लेते हैं।[68] पासा खेलने में जानबूझकर कृष्ण स्वयं हारकर राधा को विजयी बनाते हैं।[69]

कृष्ण के मथुरा-गमन से राधा-कृष्ण का प्रवास-वियोग प्रारम्भ होता है। पुनः 65 वर्ष की अवस्था में कृष्ण कुरुक्षेत्र मेले में राधा से मिलते हैं। कुरुक्षेत्र मिलने का प्रसंग फेरिमिलिबो, मधुपर्क, कृष्णायन तथा राधा (किशोरीलाल गुप्त-कृत) में वर्णित है। यहाँ राधा-कृष्ण का प्रणय भोग तो नहीं दिखाया गया है किन्तु राधा-कृष्ण के मिलन का प्रसंग प्रेम की पराकाष्ठा को व्यक्त करता है। दोनों के मिलन में प्रेम साकार हो गया है।

विप्रलम्भ

पूर्वराग-हेतुक

राधा अपनी अन्तरंग सखी से कृष्ण-दर्शन के प्रभाव का कथन करती है, "अरी, इसी मार्ग से, अभी हरि गये हैं, मैं "झरोखे" पर खड़ी थी। मुझे रूप-ठगौरी सी लग गई है, हृदय में विरह की लता वृद्धि करने लगी है। गुरुजनों के भय एवं लज्जा के कारण मैं साथ न जा सकी, चित्र-लिखित-सी स्थित रही।" विरहाग्नि से तप्त राधा "ऐसी लाज मैं लगौरी आग" कहकर पश्चात्ताप करती है। कृष्ण की दृष्टि औचक ही पड़ने से, हँसने से, वंशी बजाने से राधा-कृष्ण को अपना तन, मन, धन समर्पित कर देती है।[70] अपने नेत्रों की मनमानी पर, जिसे वह कृष्ण की ओर जाने से रोक नहीं पाती, राधा परेशान है-

"नैना मानत नाहीं, मेरे नैना मानत नाहीं।
लोक-लाज-सीकर मैं जकरे तऊ उतै खिंच जाहीं।
पचि हारे गुरुजन सिख दैके सुनत नहीं कछु कान।
मानत कह्यो नाहिं काहू को जानत भये अजान।
परवस भये मदन मोहन के रंग रँगे सब त्यागी।
"हरीचन्द" तजि मुख-कमलन अलि रहैं कितै अनुरागी।"[71]

यहाँ राधा का पूर्वानुराग मंजिष्ठाराग तक पहुँच गया है।

गर्व-हेतुक

रास के मध्य गोपियों ने कृष्ण को अपने वश में जानकर गर्व किया; कृष्ण तुरन्त राधा के साथ अन्तर्धान हो गये। सुखद-समाधि में लीन जिन गोपियों का मन जिस कृष्ण को नहीं प्राप्त कर सका, वे ही

65-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-51, 66-वही, पृष्ठ-661, 67-वही, पृष्ठ-112, 68-वही, पृष्ठ-825, 69-वही, पृष्ठ-862, 70-वही, पृष्ठ-47, 71-वही, पृष्ठ-46

ब्रह्मरूप संदेह श्रीकृष्ण, राधा का पद पलोटने लगे।[72] राधा को अभिमान हो जाता है। वह सोचने लगती हैं, "मेरी इच्छानुसार सम्पूर्ण कार्य कृष्ण के द्वारा सम्पन्न हो रहे हैं।" राधा थक गई, चलने में असमर्थता व्यक्त करती है-"चलें क्यों कर कृष्ण! हैं थकीं"। कृष्ण भी सानुकूल उत्तर देकर सेवा के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। वे कहते हैं-"कंधों पर बैठ लो, चलो।" कृष्ण के कंधे पर समारोहण हेतु राधिका जैसे ही बढ़ती हैं, कृष्ण अदृश्य हो जाते हैं।[73] कृष्ण असंग हैं, इसीलिए राधा का साथ छोड़ दिया।[74] राधा के ऊपर दुःखों का सागर हिलोरें लेने लगा। गोपियाँ भी विरह-विलाप में भटकती हुई राधा तक पहुँचती हैं। राधा "अश्रु-नदी-निमग्न सी" पड़ी है। उसका "सुधा-सना-सा" मुख सूख गया है, शरीर भी काष्ठ की भाँति पड़ा है, हृदय में भरी हुई व्यथा दयार्द्र, होकर उठती रहती है और हरे-हरे की ध्वनि प्रत्येक रोम से निकल रही है।[75] सखियों से सम्बोधित राधिका सुनेत्र खोल देती है और चित्त में धैर्य धारण कर उठ खड़ी होती है, किन्तु "मिले! कहाँ? कृष्ण।" पुकारती हुई पुनः धरती पर गिर पड़ती हैं।[76] राधा के शरीर में "विलाप-वैकल्प-विषाद-वह्नि" की जैसी उदीप्त लपटें उठीं वैसी ही सखियों द्वारा व्यक्त गंभीर सहानुभूति की सुधा-स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी।[77] अब वे स्व-गेह को भी नहीं जा सकतीं क्योंकि घर तो कानन की ही भाँति दुःखदाई था। अब तो कानन ही उनके लिए गेह बन गया था।[78] इसी प्रसंग को एक मुक्तक छन्द में "राधा" खण्डकाव्य में व्यक्त किया गया है।[79]

मान-हेतुक

मानलीलाओं का चित्रांकन भारतेन्दु तथा कृपालुदास ने किया। राधा के प्रायः सभी मान ईर्ष्याभाव के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि कृष्ण अपने बहुनायकत्व वाली प्रवृत्ति से राधा को मानवती बनाने में सहयोग प्रदान करते रहते हैं। प्रणयाभिमान के चित्र अल्पसंख्यक हैं। इन सभी मान चित्रों में राधा के कोप, तीव्र उपालम्भ, सखियों के दौत्यकर्म का पर्याप्त मात्रा में वर्णन हुआ है। राधा का प्रत्येक मान भंग हुआ है और मानान्तर राधा-कृष्ण के रति-रमण का आनन्दोपभोग किया है।

राधा-कृष्ण का अद्‌भुत प्रणय मान उस समय प्रारम्भ होता है जब दोनों मंजु निकुंज में विहार करते रहते हैं। एक साथ ही दोनों "औचक उर संकल्प" करते हैं-"आजु करौं हौं मान अकारन।" हँसी-हँसी में बातें बढ़ गईं और यही मान वास्तविक मान में परिणत हो जाती है। सखियों ने मानभंग का बहुतेरा प्रयास किया किन्तु सफल न हुईं। दोनों साथ रहते हुए भी रातभर वियोगाग्नि में तपते रहे। सबेरा हो गया। दोनों अपने-अपने ऊपर ही क्रोध करते हुए एक-दूसरे को मनाने चलते हैं।[80]

एक बार कृष्ण, चन्द्रावली के यहाँ से प्रातःकाल राधा के महल में पहुँचते हैं। कृष्ण के शरीर पर रति-रमण के चिह्न देखकर राधा कुपित होती है और व्यंग्य भरे शब्दों में कहती है, "श्यामसुन्दर! आज तो तुमने अत्यन्त ही अद्‌भुत वेष बना रखा है। चन्द्रावली के चरणों की वन्दना करते हुए अपने भाल पर क्या ही सुन्दर लाल महावर लगा लिया है। अपना पीताम्बर भी उन्हीं को उपहार में दे आये हो। कदाचित् आज कल तुम्हें लाल रंग की ओढ़नी ही भाने लगी है। बिखरे हुए बाल एवं रातभर जागने के कारण रतनारे नेत्र कितने सुन्दर दीख रहे हैं। अपनी मुरली कहाँ भूल गये हो? रुक-रुक कर अटकते हुए बातें करना, शरीर में कम्प एवं पसीना निकलना, यह सब तुम्हारे अपराध के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अरे निर्लज्ज! तुम धन्य हो,

72-रम्यरास पद सं०-68, 73-वही, पद सं०-71, 74-वही, पद सं०-72, 75-वही, पद सं० 89-90, 76-वही, पद सं०-91, 77-वही, पद सं०-92, 78-वही, पद सं०-93, 79-राधा: किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ-24, 80-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-227

तुम्हारा कपट-भेद आज स्पष्ट हो गया। बड़ा अच्छा किया जो ऐसी अवस्था में यहाँ चले आये अन्यथा भेद का प्रकाशन भी न हो पाता।"[81] राधा को मना लेना कृष्ण के लिए दायें-बायें हाथ का खेल है। अपनी निर्दोषिता सिद्ध करते हुए कृष्ण की सफाई में कितनी चतुराई एवं प्रेमरक्षा की व्यवस्था है-"कुँवरि! तू निरर्थक ही मेरे ऊपर दोषारोपण करती है। मानिनि! सुनो, मुझे बात बनाना तो आता नहीं, मैं सदैव सच-सच ही कहता हूँ। वास्तविकता यह है कि कल सब सखियों ने ललिता को अँधेरे में कुंज के मध्य बैठा दिया एवं मुझसे कहा कि चलो तुम्हें कुंज के मध्य बैठी हुई राधिका बुला रही है। "हौं भोरो कछु भेद न जान्यौ, जानि तोहिं गयौ धाय।" गहन अन्धकार और तिस पर ललिता ने घूँघट भी काढ़ रखा था। मुख न देखने के कारण मैं पहचान न सका। पश्चात् सखियों ने मुझसे कहा कि किशोरी जी ने मान किया है, इसके चरण पकड़कर इन्हें मना लो। अस्तु, मैं व्याकुल होकर आँसू बहाता हुआ चरणों पर गिर पड़ा। मेरे भाल पर लाल महावर का लगना स्वाभाविक ही है। मुझे रुदन करता हुआ छोड़कर ललिता कहीं कुंज में छिप गई। मैं राधे-राधे कहता हुआ प्रत्येक कुंजों में तुम्हें ढूँढ़ता रहा। जब प्रभात हुआ, तब मुझे सखियों का भेद ज्ञात हो सका। इसीलिए मेरे नेत्र अरुण हैं, मेरी मुरली भी कहीं गायब हो गई है। मेरे शरीर पर जितने चिह्न तू देख रही है, वे सब इन सखियों के ही गुन हैं।"[82] इतना सुनते ही राधा का मान-वियोग समाप्त हो जाता है।

मान-माधुरी प्रसंग में कृपालुदास जी ने वियोगी कृष्ण के विलाप एवं अन्य स्थितियों का वर्णन किया है। मान में क्रोधवश राधा-कृष्ण को छोड़ कहीं अन्यत्र कुंज में चली गई है, कृष्ण विरह से दुःखी हैं। दुःख मुक्ति के लिए राधा के अन्वेषण में लगे हैं। कुंजों में राधा को ढूँढ़ते हुए कृष्ण विलाप करते हैं, "हा प्राणजीवनी राधे! तुम मुझे छोड़कर कहाँ चली गईं? बिना कारण ही तूने मान कर लिया है, हा दई! तुम्हारे बिना मुझे सारा संसार शून्य-सा प्रतीत होता है। हाय! अब मैं क्या करूँ? हा राधे! हा प्रेम अगाधे! तुम्हारे बिना कुछ अच्छा नहीं लगता। तुम तो कभी भी हमारी आँखों से ओझल नहीं होती थीं, अब मुझे भुलाकर कहाँ चली गईं?"[83] राधे के बिना कृष्ण का एक पल युगसम बीत रहा है-"राधे बिनु आधे पल मो कहँ है गये युग सम बीत।" कृष्ण के हृदय की पीड़ा तो राधा ही जानती है, उनकी दशा बड़ी विचित्र हो गई-

"दरशन हित तरसत दोउ नैनन, झर झर बरसत नीर।
बँध्यौ "कृपालु" पियारो प्यारिहिं, प्रेम-पाश जनु कीर॥"[84]

राधे के वियोग में कृष्ण को प्रकृति के समस्त तत्त्व विपरीत दिखाई दे रहे हैं। सखियों का जमघट है किन्तु अच्छा नहीं लगता। चन्द्रमा से अमृत स्राव होता है किन्तु कृष्ण को अंगारे जैसा कष्ट चन्द्रमा से प्राप्त होता है, किसलय से निर्मित सेज नागिन की भाँति डँसने वाली हो गई है, शीतल-मन्द पवन तो कृष्ण के ऊपर जादू ही मार देती है, पिक, कीर और मयूरों की ध्वनि शरीर पर बज्रपात के समान कष्ट देती है।[85] कृष्ण को राधा-मिलन की आशा ही कुछ अवलम्ब दे रही है। पिक-बैन तथा मृग-नेत्र देखकर राधा का ध्यान आ जाता है और वे व्याकुल हो जाते हैं।[86] ललिता से प्रार्थना करते हैं कि वह एक बार भी "कुँवरि-चरन" दिखला दे।[87] राधा के नाम एवं गुणों का गान करते हुए नेत्रों में अश्रु भर लेते हैं। कुंजों के सुरति-बिहार की याद कर मूर्छित होकर लताओं के नीचे गिर पड़ते हैं।[88] सारा संसार राधा के अभाव में सूना है। विभिन्न पुष्पों से निर्मित माला साँपों के झुंड के समान खाने दौड़ती हैं। "किसलय सेज भई जनु शूली, चन्द्र मनहुँ अंगार" प्रतीत होने लगा है। सखियों की बोली यद्यपि बहुत मधुर है तथापि वह कृष्ण के

81-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-228, 82-वही, पृष्ठ 229-230

लिए भयानकता की जन्मदात्री है। पिकों की बोली से हृदय में "हूक" उत्पन्न होती है और "पवन लूक अनुहार" के समान दुःखदायी हो गया है।[89] कृष्ण की विचित्र दशा से गोपियाँ भी परेशान हैं। एक गोपी सखी से कहती है-राधा के बिना श्याम व्याकुल हैं। वे "जल हीन-मीन" बनकर तड़प रहे हैं। क्षण-क्षण में मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं तथा "हा प्राणेश्वरी! हा राधे! रटते रहते हैं। अब तो श्यामसुन्दर के प्राण का वियोग-दुःख से सीधा सम्बन्ध हो गया है। "उर-पीर" असहयनीय हो गई है।"[90] राधा के मान-विरह में जैसे कृष्ण व्याकुल हैं वैसे राधा भी कृष्ण वियोगाग्नि से दग्ध होकर कृष्ण को खोजती हुई "पिवु-पिवु" की रटन लगाती है, उसके दृग्-घट का नीर कभी घटता ही नहीं। श्याम तमाल वृक्ष को देखकर श्याम रंग वाले कृष्ण, मोर को देखकर मोरपंख वाले श्यामसुन्दर की याद करके अधीर हो जाती है। कुंजों में किए गये सुरति-बिहार का स्मरण करके कुंज-कुटीरों में मूर्छित हो जाती हैं।[91] कुंजों में बैठी हुई कृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा में इधर-उधर देख रही हैं। वृक्षों से पक्षियों के उड़ने की आवाज सुनकर राधा को ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो "श्यामगात" आ रहे हैं। कुछ छण आगमन की प्रतीक्षा कर एवं निराश होकर हा प्राणेश्वरी! कहती हुई विविध प्रकार से विलाप करती है। तत्पश्चात् पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं। राधा मन ही मन अपने द्वारा किये गये अकारण मान का पश्चात्ताप भी करती है।[92] प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व राधा के विपरीत दिखायी दे रहे हैं। रात्रि निशाचरी बनकर खाये जा रही है, आकाश के तारे अंगारे हो गये हैं, नींद भी सौत बन गयी है। "दक्षिण-पवन" मानो विषधर सर्पों के विष को लेकर सम्पूर्ण शरीर में लेप कर दिया है। चन्द्रमा अग्नि-वर्षक हो गया है।

ऐसी "विधि-विपरीत" दशा देखकर कुँवरि बिलखते हुए धरणी पर गिर गई।[93] ज्यों-ज्यों राधा, कृष्ण को विस्मृत करना चाहती है त्यों-त्यों सुधि साथ ही नहीं छोड़ती। "साँवली सूरति" तथा "मोहिनि-मूरति" मन में ऐसी समा गई है कि राधा को "भूषन, असन, बसन, स्वप्न में भी नहीं अच्छे लगते।"[94]

इस दुर्भेद्य मान-विरह में राधा के समीप तक जाने में कृष्ण का साहस न हो सका, अस्तु बाध्य होकर ललिता के पाँव पड़-पड़कर प्राण की भिक्षा माँगते हैं और बृषभानु नन्दिनी को मना देने की संस्तुति करते हैं। ललिता, राधा को मनाने चली जाती है। ऐसी दशा में कृष्ण की अभिलाषा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया गया है। कृष्ण विचार करते हैं कि राधा अभी ही आयेगी, आकर कुछ लजाती हुई संकोच के कारण आधी-आधी बात कहेगी तथा अधिक समय बाद मिलने के कारण सहसा आँखों से आँखें नहीं मिलायेगी। तब मैं अत्यन्त अधीर होकर प्यारी से लिपट जाऊँगा और कहूँगा, "हे प्राणप्रिये! सुनो, मैं भला-बुरा जैसा भी हूँ, तुम्हारा ही तो हूँ, तुम्हीं हमारा जीवन-निर्वाह करने वाली हो।" मेरे इस वचन को सुनकर प्रेम-विभोर भानुनन्दिनी "हा प्राणाधार!" कहती हुई सम्पूर्ण अंगों से मेरा आलिंगन करेगी।[95] इस प्रकार भावनाओं में ही मधुर मिलन का आनन्द करते हुए मूर्छित होकर कृष्ण पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

ललिता, राधा तक पहुँच चुकी है, राधा को मनाती हुई ललिता सखी कहती है-"हे मानिनी राधिके! तुम्हारे बिना कृष्ण एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। उनके शरीर के रोम-रोम में तुम्हारे ही गौर शरीर का ध्यान रमा हुआ है।" राधा व्यंग्य भरे शब्दों में ललिता से श्लेषात्मक कथन करती है-"प्रियतम का हृदय तो मक्खन से भी अधिक कोमल है, इसे मैं भलीप्रकार जानती हूँ। सखी! मक्खन तो स्वार्थवश

89-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-240, 90-वही, , पृष्ठ-242, 91-वही, पृष्ठ 243-244, 92-वही, पृष्ठ-244, 93-वही, पृष्ठ-245, 94-वही, पृष्ठ-246, 95-वही, पृष्ठ-249

अपने ऊपर आये हुए ताप से ही पिघलता है किन्तु प्रियतम कृष्ण तो दूसरी स्त्रियों (जीव) के ताप से पिघल जाते हैं और वह भी दूर ही (गोलोक में रहते हुए)। उनका स्वभाव कितना सरल है। अरी सखी! प्रियतम को कौन बेपीर कह सकता है; वे तो सबको पीड़ा (प्रेम) बाँटा करते हैं। प्रियतम का हृदय अत्यन्त विशाल है क्योंकि उसमें अनन्त स्त्रियाँ (जीव) शरण पा लेती हैं। हे सखी! यद्यपि उनमें उपर्युक्त सभी अलौकिक गुण हैं फिर भी मेरा मन उलटे अवगुण ही देखता है। राधिका का तो उनसे भलीभाँति पेट भर गया है।"[96] ललिता कहती है, "राधे! तुम इधर मान किये बैठी हो, उधर प्रियतम के प्राण जा रहे हैं। तुम्हारे बिना प्रियतम को उन्माद-रोग हो गया है और तुम उनसे बात भी नहीं करना चाहती हो।"[97] ललिता को उत्तर देती हुई राधा कहती है-"अरी सखी! वे रातभर जिसके घर में (चन्द्रावली के) रहे हैं, उनसे कह दो वहीं जायें। तू व्यर्थ ही मेरे पैर पकड़ती है, तू अनन्त भोली है। प्रेम-रस-विहार के चिह्न उनके शरीर में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ रहे हैं। क्या अब भी कुछ कसर रह गई है। मैंने उन्हीं के वियोग में आँखों से आँसुओं की धारा बरसाती हुई सारी रात बिताई है, वे बिहार कर रहे हैं चन्द्रावली के घर में और मैं विरह की अग्नि में जल रही हूँ।"[98] इस प्रकार अन्यान्य उपक्रम राधा को मनाने का चलता रहता है किन्तु राधा का मान अभेद्य चट्टान की भाँति अटल है। इन मान प्रसंगों में सखियों द्वारा कृष्ण की प्रेम-तन्मयता का सटीक चित्रण किया गया है। कृष्ण को परेशान करने के लिए राधा अन्तरंग सखियों को कुछ आदेश देती है-"कृष्ण कुछ बातें गढ़कर मुझे मनाने आ रहे होंगे, इसलिए तुम सभी कुंज महल की रक्षा करने के लिए पहरेदार बन जाओ एवं अत्यन्त सावधानीपूर्वक चारों ओर पहरा दो। वे मेरे पास आने न पावें। देखो, एक और आज्ञा है कि जब वे यहाँ पर आवें तब उनसे कोई भी सखी कुछ न बोले किन्तु चुपके से ललिता मुझे उनके आगमन की सूचना दे दे।"[99] कृष्ण कुंज-महल के पास आते हैं, अत्यन्त शान्त वातावरण एवं सखियों का पहरा देखकर मन ही मन डरने लगते हैं। जब कोई उनसे बोलती भी नहीं तब घबड़ाने लगते हैं और उनकी दशा विचित्र-सी हो जाती है-"दृगन झरत, सखि पगन परत अति, आरत हा हा खात।" गोपियाँ कृष्ण को झटककर आँखें दिखाती हुई दूर चली जाती हैं और ललिता इसी बीच राधा को कृष्णागमन की सूचना दे देती है।[100] कृष्ण सखियों से राधा-गमन की दिशा पूछते हैं जिससे उनकी राधा से मिलने की व्याकुलता उन्मीलित होती है-

"बताओ सखि! राधे गईं कौनी ओर?
पैयाँ परूँ, मैं "हा! हा! खाऊँ, लेउँ बलैयाँ तोर।
जल बिनु मीन जिये बरु सजनी, रवि बिनु हो बरु भोर।
प्रियाहीन मैं प्रान न रहि सक, उठत हूक हिय घोर।
सिगरी कहति "प्राणप्रिय" मोको, लेन प्राण चह मोर।
कहि "कृपालु" राधे! राधे! पुनि, मूर्छित नवल किशोर।"[101]

किसी प्रकार विशाखा द्वारा प्रयास करने पर राधा का मान टूट जाता है और दोनों गले मिलकर प्रेम रस की चर्चा छेड़ देते हैं। इस चर्चा में कृष्ण की दैन्यता एवं क्षमा-याचना की विशेष प्रधानता है।[102]

राधा को मनाने में "कृपालु" की गोपियाँ जहाँ कृष्ण की व्याकुलता और राधा के प्रति अटूट प्यार का प्रकाशन करती हैं, वहाँ भारतेन्दु की गोपियाँ राधा के सम्मुख कृष्ण के सौन्दर्य एवं संभोग की सानुकूल

96-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-250-251, 97-वही, पृष्ठ- 251-252, 98-वही, पृष्ठ 252-253, 99-वही, पृष्ठ-257, 100-वही, पृष्ठ-258, 101-वही, पृष्ठ-258-259, 102-वही, पृष्ठ-261

परिस्थितियों का लोभ उपस्थित करती हैं। युवावस्था की व्यर्थता सिद्ध करती हुई सखियाँ राधा को कृष्ण के साथ रतिरमण के लिए प्रेरित करती हुई चित्रित की गई हैं। राधा के वियोग में कृष्ण और कृष्ण के वियोग में राधा की विरह स्थितियों का सटीक चित्रण भारतेन्दु की गोपियाँ प्रस्तुत करती हैं। गोपियाँ राधा की स्थिति का यथातथ्य निरूपण कृष्ण से करती हैं-"प्यारे! तुम्हारे अभाव में प्यारी राधा व्याकुल है, वह काम-बान-भय से तुम्हारा ध्यान करती हैं, कृपया उसे उबार लीजिए। चन्दन और चन्द्रमा अच्छे नहीं लगते, अति दुखित होकर धैर्य खो चुकी है। मलयानिल, राधा के शरीर में "अहिगन गरल" का लेप कर रही है। अविरल "मदन-बान" की वर्षा देखकर वह तुम्हें हृदय में छिपा लेती है और चैतन्यतापूर्वक कमलदल का कवच बनाकर तुम्हें हृदय में सुरक्षित रखना चाहती है। तुम्हारे प्रेम-मिलन की आशा करती हुई किसी प्रकार समय बिता रही है। कभी हँसती है, कभी विलाप करती है और कभी विषाद करती हुई ध्यान में तुम्हें देखकर गले लगने का प्रयास करती है। हे बनवारी! "मदन-बान" से यह अत्यंत व्याकुल है, किसी प्रकार उसका कष्ट निवारण करो।"[103] यहाँ सखियाँ पुनः राधा को कृष्ण तक पहुँचने के लिए प्रेरित करती हैं-

"विलम मत करु पिय सों मिल प्यारी।
बैठे कुंज अकेले तव हित मदन-मथन गिरधारी।
धीर समीर घाट यमुना-तट, बनराजत बनमाली।
कठिन पीन कुच परसन चंचल कर जुग सोभा-साली।"[104]

यही नहीं, "मधुरी बेनु" बजाते हुए संकेत से तुम्हारा नाम भी ले रहे हैं, तुम्हारी ओर से जो धूल उड़कर आ रही है उसे अपने हृदय से लगा लेते हैं। पक्षियों के उड़ने से पत्तों के गिरने की आहट पाकर तुम्हारे आगमन की उन्हें आशंका हो जाती है। स्वभावतः तुम्हारे स्वागत में इधर-उधर चकित होकर देखते हुए सेज सँवारने लगते हैं। चंचल मुखर नूपुरों को त्यागकर, मुख को आँचल में छिपाकर घने अंधकार में सखियों के साथ कुंज में चलो। वहाँ "पिया-उर-ऊपर" विपरीत-रति का आनन्दोपभोग करो। किंकिणी को त्याग कर, वस्त्र उतारकर निरन्तर प्रियतम की किसलय सेज पर गले लगने के लिए चढ़ चलो। कृष्ण बहुनायक एवं मानी भी हैं। रात बीतने ही वाली है, अस्तु शीघ्र वहाँ चलकर मनोरथ को पूर्ण कर लो"[105] आगे पुनः सखियाँ समझाती हैं-

हे मानिनी राधे! मानी माधव पिय सों तू मान न कर। शीतल वायुप्रवाह को देखकर कृष्ण तुमसे मिलने के लिए आ गये हैं किन्तु तुम किस सुख में घर में बैठी हो। तू ताल-फल के समान गुरु एवं सरस "कुच-युग-कलश" को क्यों निष्फल कर रही है-"कुच जुगकलस ताल फल से गुरु सरिस तिनहिं कित निफल करै।" सुन्दर रूपवान कृष्ण के साथ तू क्यों बिहार नहीं करती?[106] मंजुल कुंज में कृष्ण ने सेज बिछाया है। वहाँ हँस-हँसकर सुख प्राप्त करो। कुच-कलशों पर माला बिखेरकर अशोक सेज पर बिहार करो। भ्रमरों का गुंजार हो रहा है, ऐसे में हे मदमाती, रसराती! तू कृष्ण के साथ रतिरमण कर। देखो पिक काम-वधाई गा रही है।"[107]

सखियों की प्रेरणा से यद्यपि राधा का मान अभी पूर्णरूपेण भंग नहीं हुआ है, तथापि वह, "केलिकुंज" की ओर अर्द्धमन से गमन करती है। कुंज में बैठकर राधा के बाट की प्रतीक्षा करते हुए

103-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-315, पद सं०-21, पृष्ठ-316, पद संख्या-23, 104-वही, पृष्ठ-317, 105-वही, पृष्ठ-317, 106-वही, पृष्ठ-322, 107-वही, पृष्ठ 325-326

कृष्ण जब राधा को देखते हैं उनके हृदय का आनन्द-रस उमँगायित होने लगता है। "राधा-ससि-मुख" देखकर कृष्ण का "रस-समुद्र" लहराने लगता है। "रमण-मनोरथ करते हुए कामवश कृष्ण विविध भाव प्रकट करने लगते हैं। मणिगण से युक्त शोभा शरीर वाले कृष्ण "रति-आतुर" होकर बैठे हैं।[108] कुंज-सेज के पास अब राधा पहुँच गई। कृष्ण का अभी अन्तिम मनावन तो शेष ही है। सखियों की अनुपस्थिति में राधा से जैसी प्रार्थना-याचना कृष्ण करते हैं; उसका चित्रण निम्न है-

"राधे! मेरी इच्छा पूर्ण करो। प्राणप्यारी! हरि का वचन मानकर प्रियतम को सुखद आलिंगन दे दो। नव किसलयों से सेज का निर्माण किया है, उस पर अपने कोमल पदार्पण से उसे सार्थक कर दो। तूने अधिक श्रम किया है, इसलिए "चरन पलोटौं तेरे"। तेरे नूपुरों को उतारकर सेज पर रख दूँ, तू मेरे सन्निकट बैठ जा। यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो तुम्हारे वक्षस्थल से आँचल हटाकर अधिक सुख प्राप्त कर लूँ। प्यारी! अपने प्रियतम से गले मिलने के लिए तुम्हारे "जुगल कलश कुच" फड़क रहे हैं। पुलकित हृदय से मिलकर क्यों मदन ताप हर नहीं लेती हो?"[109]

कृष्ण के उक्त वचन सुनकर राधा अपने मन की गाँठ खोलती हुई मान भंग कर देती हैं।

सखियों एवं गोपियों द्वारा राधा को मनाने का चित्र दोनों कवियों (भारतेन्दु और कृपालु जी) ने बड़ी आतुरता से चित्रित किया है। दोनों कवि कृष्ण के भक्त हैं, अस्तु उनके लिए कृष्ण का दु:ख असहयनीय हो जाता है। मान-प्रसंगों में राधा के मनावन के चित्र अधिक हैं। राधा को मनाते समय गोपियाँ कृष्ण की विरह आतुरता एवं कृष्ण-रूप का कथन करके राधा को आकर्षित करती हैं। कृष्ण को मनाने के प्रसंग तो हैं नहीं किन्तु राधा वियोगिनी की दशा का उल्लेख कृष्ण के सम्मुख किया गया है। कृष्ण के प्रति राधा के अटल प्रेम एवं कृष्ण के कपट प्रेम का चित्र मान प्रसंगों में उद्घाटित हुआ है। कृष्ण के बहुनायकत्व वाली प्रवृत्ति से राधा सर्वथा हताश-सी, निराश-सी रहती है किन्तु कृष्ण भोली राधा को अपने वाक्-जाल के प्रपंच से उचित समय पर सन्तुष्ट कर देते हैं। वियोग की तड़पन का प्रभाव राधा की अपेक्षा कृष्ण पर अधिक पड़ा है। प्रेम की पूर्ण निष्ठा में जहाँ राधा उत्तरोत्तर ऊँचे उठती है वहाँ कृष्ण का स्वरूप दैन्यता एवं दुर्बलता का समाश्रयण करता है।

प्रवास-हेतुक

आचार्यों ने प्रवास को दो प्रकार का माना है– भूत प्रवास एवं भविष्य प्रवास। हरिऔध जी ने इसे "रस कलश" में उद्धृत किया है।[110] भूत प्रवास वास्तविक प्रवास है और भविष्य प्रवास के अन्तर्गत वे चित्र आते हैं जब प्रिया-प्रियतम एक-दूसरे के प्रवास जाने की आशंका से दु:खी होते हैं। कुछ विद्वान भविष्य प्रवास को पूर्व प्रवास और भूत प्रवास को प्रवास (सामान्य विरह) मानते हैं।[111] कृष्ण की, ब्रज से मथुरा जाने की, यात्रा का समाचार पाकर राधा की क्या दशा होती है अथवा इस सूचना को सुनकर भावी जीवन की दु:खद परिस्थितियों से निपटने के लिए राधा कितनी उद्विग्न एवं भावी विरह से कितनी सशंकित होती है, उसकी इसी तड़पन को आगे "पूर्व प्रवास" के अन्तर्गत रखा गया है।

पूर्व-प्रवास

पूर्व प्रवास की वेदना में राधा ही अधिक तपी है; कृष्ण तो सुफलक-सुत के आगमन से प्रसन्न हो, वे अक्रूर से एकाकार हो गये थे; ऐसा गोपियों का विचार है-

108-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 326-327, 109-वही, पृष्ठ-327, 110-"रस-कलश"-हरिऔध, पृष्ठ-255, 111-सूर का श्रृंगार वर्णन-डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ-211,

"कोउ कह-" खरिक पाय बनवारी, रथ ते उतरि मोहिनी डारी।
मिले श्याम तेहि जिमि पय-पानी, ब्रज-सुधि-बुधि क्षण माहिं भुलानी।
खोई वस्तु मनहुँ हरि पायी, रहत न पल नृप-दूत बिहायी।"[112]

कृष्णायन तथा प्रियप्रवास ऐसे चित्र उपस्थित हैं जहाँ कृष्ण के मथुरा-गमन की सूचना पाकर राधा के साथ सम्पूर्ण गोकुल ग्राम ही भावी कृष्ण-विरह-ताप से झुलस जाता है। अन्य आलोच्य काव्यों में ऐसी घटना का उल्लेख नहीं है। लगभग "द्विघटी-निशा" बीत चुकी है; अक्रूर के आगमन एवं प्रात:काल कृष्ण के मथुरा जाने की घोषणा गोकुल में हो रही है। साथ ही कंस निमन्त्रण के अनुसार सम्पूर्ण वर-गोपों को "उपटौकन" आदि लेकर प्रात:, मथुरा में आयोजित धनुषयज्ञ में भाग लेने का परामर्श दिया जा रहा है। कृष्ण-वियोग की यह सूचना सहसा "अशनि-पात" के समान गोकुल के लिए अनिष्टकारी हो गयी। राधा की प्रेम-लता भी शोक-सिन्धु में डूब गई। राधा मलिन-मन से अपने दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप करने लगती है।[113] विरह-अनल को साकार देखकर ग्राम में अपार कोलाहल होने लगा। गोकुल में अश्रुधारा से नदी-नद प्रवाहित हो गये।[114] राधा को जब ब्रजधराधिप तात के प्रयाण की सूचना स्वयं श्रुतिगोचर हुई, तब उसके निकट संयोग से "ललिता" सखी उपस्थित थी। विकसित कलिका जैसे हिमपात से तुरन्त म्लानवती हो जाती है, वैसे ही "मुकुन्द-प्रवास-प्रसंग" से बृषभानु सुता भी मलिन हो गई। प्रथम तो वह नेत्रों से अश्रुवर्षा करके बावली बन गई किन्तु सन्निकट ललिता को देखकर अपनी दु:ख-कथा इस प्रकार कहने लगी[115] – "श्रीकृष्ण यदि कल प्रात: मथुरा गमन करेंगे तो मेरे प्राण कैसे जीवित रह सकते हैं? वार की घटिकायें युग के समान बीतती थीं, अब दिन कैसे बीतेंगे?[116] मैं व्यक्तियों के हृदय को दु:खी करना बुरा मानती हूँ, परदुख से मैं सुखी नहीं होती हूँ। मैंने कटु बातें कहकर किसी के हृदय को भूल से भी कभी नहीं जलाया है फिर इस कृष्ण-प्रयाण सम्बन्धी दु:खदायी बात को सुनकर कैसे सहन कर गई? हे सखि! यदि तू यह भी कहे कि क्या किसी के प्रिय परदेश नहीं जाते, सत्य है, किन्तु आज न जाने क्यों मेरा हृदय दग्ध हो रहा है, सारा संसार शून्य-सा प्रतीत हो रहा है। आज मुझे सभी दिशायें रुदन-मग्न सी दिखाई दे रही हैं और यह हमारा घर हमें काटने दौड़ता है। मेरे मन में उचाट पड़ गया है और मैं कहीं शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रही हूँ।"[117]

यहाँ विलाप करती हुई उस कुमारी राधा का वर्णन है जो भारतेन्दु एवं मध्यकालीन कवियों की राधा से भिन्न-सी प्रतीत होती है; जिससे अभी प्रेम की विभिन्न भाव-भूमियों की यात्रा तो की है किन्तु रति-रमण-सुख नहीं लूटा है। कृष्ण को हृदय में वरण तो किया है किन्तु सविधि वरण की लालसा अभी अवशेष है।[118] कुमारी राधा हरि को पति रूप में प्राप्त करने के लिए व्रतोपवास में विश्वास रखती है किन्तु उसे अब अपने पुण्य में विफलता ही दिखायी दे रही है।[119] प्रात: होते ही तारों की विलुप्तता इसीलिए हो रही है क्योंकि अब ताराओं में दु:ख सहने की क्षमता नहीं रह गयी है। बाल रवि के बिम्बागमन की पूर्व लालिमा में राधा को किसी कामिनी के रुधिर-स्राव एवं दिशाओं में प्रज्ज्वलित अग्नि का आभास होता है। उसके अनुसार अभी नभ एक अग्नि का गोला उगलेगा जिससे सम्पूर्ण ब्रज भस्मसात् हो जायेगा। यहाँ "केशवदास" के शोणित कलित कपाल का ध्यान अनायास ही आ जाता है। राधा का कमल मुख सूख रहा है। उसके अधर नीले हो गये हैं। दोनों नेत्र अश्रु प्रवाहित कर रहे हैं। कृष्ण के अनिष्ट की आशंका से उसका कलेजा काँपने लगता है। वह खिन्न है, दीन है, अनमनी है।"[120]

112-कृष्णायन, पृष्ठ-62, 113-प्रियप्रवास, पृष्ठ-39, 114-कृष्णायन, पृष्ठ-63, 115-प्रियप्रवास, पृष्ठ-40, 116-वही, पृष्ठ-40, 117-वही, पृष्ठ-41, 118-वही, पृष्ठ-41, 119-वही, पृष्ठ-42, 120-वही, पृष्ठ-44

"श्याम के प्रस्थान करते समय राधा, कृष्ण के चरणों में लिपट जाती है। विदा-वियोग का हृदय-द्रावक दृश्य देखिये-

"माधव चलन लगे जब बृज ते।
राधे श्याम, श्याम कहि बेसुध, लिपटि रही चरनन ते।
तड़पहिं मातु यशोदा रहि रहि, दूध चुवहिं अचरन ते।
नन्द बबा पाथर बनि बैठे, धार बहहिं नयनन ते।"

-माधव-माधवी-डॉ० माधवी लताशुक्ल, पद सं० 105

सुफलक-सुत ने रथ में जुते हुए घोड़ों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया, घनश्याम ने भी गोकुल की ओर मुख फेर लिया, ऐसे ही अवसर पर राधा स्पन्दन-तल पर भहराकर गिर पड़ती है। वियोग की इस प्रज्ज्वलित अग्नि में सभी दग्ध हैं। कृष्ण की क्या दशा हुई? देखिये-

"राधा! राधा! कहि बिलखायी, त्यागेउ रथ श्रीपति अकुलायी।
सानुराग भरि हृदय निहारा, नयनन उमगि बही जल धारा।"[121]

कृष्ण से मिलकर राधा के शरीर से नवल ज्योति का प्रकाशन हुआ। राधा, कृष्ण और यशोदा की उपस्थिति में बिछोह का बड़ा ही मार्मिक करुण चित्र उपस्थित किया गया है, जिसे देखकर कोई भी दर्शक-पाठक बिना अश्रु गिराये नहीं रह सकता। मार्मिकता की विषमता तो यह है कि कृष्ण से पूर्णरूपेण लौकिक रीत्या विवाह सम्बन्ध स्थापित करने वाली राधा की "साध-कलिका" पर सहसा बिछोह-तुषारापात हो गया। रुक्मिणी की भाँति राधा ने कृष्ण के चरण को मन-ही-मन हृदय में धारण कर लिया था, किन्तु मूल लालसा फलवती नहीं हो सकी। आगे के वर्णन में कृष्ण-प्रयाण की अन्तिम विरह-धारा प्रवहमान है-

"सुधासिक्त राधा-अंग सारे, जागी वदन ज्योत नवधारे।
भईन प्राकृत तिय पुनि तैसे, जल-कण स्वाती सीपी जैसे।
धायी जननि सुवन ढिग आई, नत ईषत् हरि नयन लजायी।
अम्ब-अंक दीन्हीं प्रभुराधा, लेति यशोमति प्रीति अगाधा।
पुनि-पुनि सुता लगावति छाती, लहेउ सनेह बुझत जनु बाती।"[122]

स्पन्दनासीन कृष्ण ने एक बार पुनः राधा की ओर देखा जिसके नेत्रों से सभी लोग आँसू पोंछ रहे थे- **"लखे राधिका ढिंग बहुरि, पोंछत सब दृग-वारि।"**

प्रवास

राधा-माधव के समान्य विरह का चित्रांकन पहले कामदशाओं के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है और बाद में आचार्यों द्वारा व्याख्यायित काम दशाओं की परिधि में न आने वाली विरह-वेदना का मार्मिक-प्रसंग उद्घाटित है।

अभिलाषा

प्रिय-वियोग में हृदयोद्भूत अभिलाषा कभी-कभी आशा का संचार करती है और यही आशा-अभिलाषा प्रेमी-प्रेमिकाओं को अवलम्बन देती रहती हैं। राधा की इच्छा है कि कृष्ण शीघ्र ही उससे मिल जायें-

"माधव! एक नदी मैं प्यासी।
वन वन उपवन फिरहुँ बावरी, खोजत घट घट वासी।

121-कृष्णायन, पृष्ठ-63, 122-वही, पृष्ठ-64

एकहिं साध माधवी उर में, बेगि मिलहु सुखरासी।"[123]

भारतेन्दु की राधा की भी ऐसी ही इच्छा है-

"भरि नैन हमैं इक बेरहु तो अपनो मुख मोहन जोहन दीजिए।"[124]

स्मृति

सावन आ गया, पर मनभावन श्रीकृष्ण नहीं आये। कृष्ण के अभाव में सामयिक केलियों के दर्शन से राधा उन दिनों की याद करती है जब कृष्ण ने अपने संग बैठाकर राधा को झूला झुलाया था, मान-मनुहार कर भुजा एवं कण्ठ में भर लिया था। स्वयं बरसात में भीगकर भीगने से बचाया था एवं कण्ठ से लगाकर काम-ताप का निवारण किया था, मान के समय "प्राण प्यारी" कहकर बोध दिया था।[125] संयोग के दिनों में तो रात्रि शीघ्र ही आसानी से बीत जाती थी। वह आज "द्रौपदी की सारी" बन गई है।[126] स्मृति एवं चिन्ता का समन्वित रूप राधा के मस्तिष्क में भरा पड़ा है। ऊधौ से राधा कहती है-"ऊधौ अब वे दिन नहिं ऐहैं।" विलास लीला करते हुए रात और दिन क्षण मात्र में बिता देते थे, हँसकर दान माँगने की अदा अब कहाँ देखने को मिलेगी? जमुना स्नान करती हुई गोपियों के चीर को अब कौन चुरायेगा? उन शरद रातों और पावस के दिनों को विधि भी नहीं वापस कर सकता। रस-रास के मध्य अपने उन्मुक्त हास से हमें कौन तरसायेगा? गलबाँहीं देकर सरस बातों से आनन्दित कौन करेगा? अब तो ऐसी स्थिति हो गई है कि हम तरसते हुए मर जायेंगी और वे हमारी सुधि भी नहीं लेंगे।[127]

कृष्ण भी राधा की भाँति राधा को स्मरण करते हैं। मथुरा में जब वे महापथ देखते हैं तो उन्हें ब्रज की सँकरी गलियों में राधा सहित सभी गोपियाँ याद आती हैं, कंचन-कलश देखकर गोपियों की गगरी उन्हें याद आती हैं-

"हरि कंचन के घट देखत ही, सुमिरैं जल की भरी गागरिया।
मथुरा के महापथ देखत ही, सुमिरैं निज साँकरी डागरिया॥
उनके मन में बहुधा बिहरैं, उनकी ब्रज की वै गुनागरिया।
नटनागर के उर में अटकैं, नटनागर की नटनागरिया।"[128]

कृष्ण गोपियों और राधा को सदैव याद करते हैं-

"अबहूँ ब्रज-सुधि करि नीर नैन में लावें, नित गोपी-गोपाल गीत हरि गावें।"[129]

चिन्ता

राधा को "सुख" शब्द सुनने से अधिक कष्ट प्राप्त होता है। स्वप्न में भी उसे "भोगों" का दर्शन नहीं होता।[130] सबसे बड़ी समस्या यह है कि जिन नेत्रों से एक बार प्यारे कृष्ण का दर्शन हुआ है, उन नेत्रों से कैसे अन्यों को देखा जाये?[131] सारा संसार राधा को कृष्ण की प्रेमिका कहता है किन्तु क्या यह ध्वनि कृष्ण को सुनाई पड़ती है-

"तुमरे तुमरे सब कोउ कहैं तुम्हें सो कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरुदावली अपनी राखो मिलौ मोहिं सोचिबे की कछु बात नहीं।

123-"माधव-माधवी"-डॉ० माधव लता शुक्ल, पद सं०-4, 124-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-162, 125-वही, पृष्ठ-159, 126-प्रीतम प्यारे नन्द लाल बिनु हाय यह। सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है। -भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ.159, 127-पृ.619, 128-मधुपर्क, पृ.205, 129-फेरिमिलिबो, पृ.18, 130-भा.ग्र., पृ.165, 131-वही, पृ.174,

अपनावते सोच विचार तबै, जलपान कै पूछनी जात नहीं।"[132]

अर्थात् अपनाते समय ही सोच-विचार कर लेना चाहिए था। पानी पीने के बाद कहीं जलदाता की जाति पूछी जाती है। वियोग से चिन्ताकुल राधा छटपटा रही है। वह अपने को "पंख कटी विहगी" एवं "आंधी की कदली" से अभिहित करती है-

"मैं पंख कटी विहगी आँधी की कदली। अधली पतंगी, मरुतट उछली मछली।"[133]

उद्वेग

प्रियतम के अभाव में चित्त शान्त नहीं है। किसी भी प्रकार से धैर्य नहीं बँधता। प्रियतम के वियोग में वही दशा है जैसी दशा जादू मारने पर हो जाती है-

"पिया बिनु उठति हूक हिय हाय।
साँवरि सूरति, मोहिनि मूरति, मो मन गई समाय॥
अब मोहिं भूषन, असन, बसन कछु, सपनेहु नाहिं सुहाय।
पुनि पुनि कोऊ, मूठि सी मारत मोते सह्यो न जाय॥"[134]

राधा की भाँति कृष्ण भी राधा के वियोग में उद्विग्न हैं-

"कुंवरि बिनु कुंवर न उर धर धीर।
कबहुँक पंथ निहारत ठाढ़ों मंजुल कुंज-कुटीर।
कबहुँक नखन लिखत कछु मेदिनि, नयनन बरसत नीर।"[135]

राधा के गले का हार पहाड़ की भाँति भारस्वरूप बन गया है। चन्दन का लेप भी विष का सा दुःख दे रहा है। चारों ओर सहसा आश्चर्यचकित होकर देखती है। सूनी सेज को देखने का साहस राधा में नहीं रह गया है। अपने हाथों पर से कपोल को हटाती ही नहीं।[136]

उन्माद-प्रलाप

वियोगावस्था में संयोगोत्सुक हो बुद्धि-विपर्यय-पूर्वक वृथा व्यापार करने, जड़-चेतन-विवेक रहित होने और व्यर्थ हँसने-रोने आदि को उन्माद कहा जाता है। उन्मादावस्था में प्रलाप करती हुई राधा घनश्याम बन गई है-"राधे भई आपु घनश्याम।" अपना राधिका नाम त्याग कर स्वयं को घनश्याम कहती है। कृष्ण की ही तरह कुंजों में झुक-झुककर वेणु बजाती है और बाँसुरी में अपना ही नाम राधा-राधा गाती है। कभी नेत्र बन्द कर शान्त हो जाती है। कभी कहती है "बृषभानु कुमारी मान न इतनो कीजै" और कभी "प्रानपियारी सरन आपुके कह्यो मानि मेरो लीजै" कहकर विह्वल होती है। कभी श्रीदामा और सुबल को पनघट पर जाकर ब्रज नारियों से दधि दान वसूल करने का आदेश देती है। इसी प्रकार कृष्ण द्वारा किये गये अन्य कार्यों की वह वाचा द्वारा पुनरावृत्ति करती है-

"कबहुँ कहत मेरो सुरग खिलौना राधे लियो चुराई।
कबहुँ कहत मैया यह तोकों छोटी दुलहिन भाई।
कबहुँ कहत हम सात दिवस गोबरधन कर पै धार्यो।
अघ बक धेनुक सकट पूतना इनको हमहिं सँहार्यो।
हरीचन्द भई श्याम रूप सों तन की दसा बिसार।"[137]

132-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-174, 133-राधा-जानकी वल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-10, 134-प्रेमरसमदिरा, पृ०-246, 135-वही, पृष्ठ-243, 136-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-316, 137-वही, पृष्ठ-657

"राधा" कहने से राधा बोलती ही नहीं। उसे ध्यानाकर्षित करने के लिए "कृष्ण" शब्द का सम्बोधन करना पड़ता है। प्रियतम कृष्ण की अनुपस्थिति में ही वह कृष्ण से बात करती है। कभी-कभी उन्माद में कृष्ण से नाराज हो जाती है-"तुम अति निष्ठुर, तो सन करहुँ न बात" और कभी-कभी प्रेम-विभोर होकर प्रसन्नता का प्रदर्शन करती है-"कितने प्यारे तुम सुन्दर श्यामल गात।" कुछ मधुर भाषण करती हुई हृदय से लिपटा भी लेती है।[138] राधा की जो दशा कृष्ण-वियोग में है, ठीक वही दशा कृष्ण की भी राधा के वियोग में है। राधे! राधे! कहते हुए रोकर गिर पड़ते हैं। कभी अट्टहास कर आनन्दमग्न होते हैं और कभी नृत्य करते हुए गाते हैं। कभी-शरीर में कम्प हो आता है और कभी वे कुछ बातें करने लगते हैं।[140] राधा पर कृष्ण का रंग ऐसा चढ़कर गया है कि रूप का लोभ ऐसा प्रभावित कर चुका है कि वह "प्रिय-रस-मत्त" एवं "छवि-आसन-सी" रहने लगी है। दिवानी-सी विचरण करती है उसे न अपने तन की सुधि है और न भवन की ही। अलकें विखर गई हैं, आँचल सरक गया है, नयन में चांचल्य शोभा पा रहा है। प्रियतम के गुणों का गान करती हुई प्रियतम के ध्यान में नेत्र बन्द भी कर लेती है जिससे अन्तस्थ भाव का प्रकाशन हो जाता है। कभी-कभी उझककर चौंकते हुए उद्दाम लालसा से प्रियतम कृष्ण को भुजाओं में भरने का स्वांग करती है और इसी सुख में वह मस्त रहती है। वस्तुतः प्रेमसागर में वह निमग्न हो चुकी है।[141] गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि यद्यपि राधा "सुध-बुध" खो बैठी है तथापि कुछ होश में आने पर वह आप से यही प्रश्न करती है- "सखे लौट आए गोकुल से? कहो राधिका कैसे?"

राधा कृष्ण का ध्यान करते-करते कृष्ण बन गई है-

"राधा हरि बन गई हाय! यदि हरि राधा बन पाते।
तो उद्धव मधुवन से उलटे तुम मधुपुर ही जाते॥"[142]

स्थिति विपर्यय

श्यामसुन्दर के साथ रहने से जो रातें चैन से कट जाती थीं, उन रातों का बीतना कठिन हो गया है। हौंसले भी रसातल में चले गये हैं। भूख, प्यास, नींद, चैन आदि लुप्त हो चुके हैं। रात-दिन नेत्र अश्रु से सिक्त रहते हैं, राधा जमीन पर लोटने लगती है, उसे कुछ अच्छा ही नहीं लगता और न वह किसी से बात ही करती है। असंयमित केश और वेष को देखकर यदि कोई पूछता है कि तुम्हें क्या व्यथा है, तो राधा तत्काल "ना" उत्तर देकर नृत्य करने लगती है। वह "आठौयाम" स्याम-स्याम रटती रहती है।[143] आज उसके लिए सम्पूर्ण स्थिति विपरीत सी हो गई है। जिस ब्रज में संगीत ध्वनि बारम्बार हुआ करती थी, जो वृन्दावन नन्दन बना था, वहाँ आज हाहाकार मचा हुआ है। राध के संयोग के दिन चले गये हैं।[144]

कपट प्रेम की आत्मानुभूति

स्नेहिनी राधा को कृष्ण के कपट-प्यार पर विश्वास नहीं था। वह कहती है कि यह बात सच है कि अपने प्रियतम कभी पराये भी हो जाते हैं? मेंरे साथ तो ब्रह्मा ने सब कुछ विपरीत ही कर दिया है। मोहन होकर निर्मोही हो गये। पहले तो प्रेम बढ़ाया किन्तु बाद में धोखा दिया। वस्तुतः इसमें मेरा ही दोष है। मैंने अपने कर्म का फल प्राप्त कर लिया है।[145] कृष्ण को यदि प्रेम करके विश्वासघात करना था तो अपना क्यों बनाया।[146]

138-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 657-58, 139-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-247, 140-वही, पृ०-241, 141-भारतेन्दु ग्रन्थावली-पृ.470, 142-द्वापर, पृ.176, 143-स्याम संदेशौं, पृ.7, 144-विरहिणी ब्रजांगना, पृष्ठ-15, 145-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-151, 146-वही, पृष्ठ-175,

प्रेम में दृढ़ता एवं विश्वास

दृढ़ प्रीति के कारण ही लोक-वेद तथा कुल-कानि सभी त्याज्य हो गये थे। वियोग में भी राधा की प्रीति दृढ़ है-

"अब तो हम कबहूँ नहिं तजिहैं प्रिय की प्रेम प्रतीत।
यहै बाहु बल आस यहै इक यहै हमारी रीत।"[147]

यह प्रेम-प्रतीति उसके लिए एक आशा है-बाहुबल है। इसे वह उच्चतम परम्परा मानती है। इसीलिए सभी धर्मों को त्यागकर वह कृष्ण की शरण में आ गई है-

"तुझको-एक-तुझी को अर्पित, राधा के सब कर्म हरे।"
भूले तेरा ध्यान राधिका, तो लेना तू शोध हरे॥"[148]

गोपियों को राधा-प्रीति पर पूर्ण विश्वास है। वे कहती हैं कि यदि राधा का स्वाभिमान जग जाये तो कृष्ण अवश्य आयेंगे- "उसमें अहंभाव तो आवे, भरें न आकर पानी।"

कीर्ति कुमारी यदि यहाँ जीती रहेगी तो कृष्ण को गोकुल में आना ही होगा। राधा सा जन-रत्न कहीं वे पायेंगे नहीं।[149] राधा की आशा में बल है, निष्ठा है-

"एक आस विस्वास कृपा करि हैं जदुनन्दन। जग-बंदित जस राखि दरस दै हैं जग बंदन।"[150]

प्रिय चित्र रचना एवं व्याधि

वियोगिनी राधा एकांत में बैठकर मृगमद से प्यारे कृष्ण की चित्र रचना कर रही है जिसकी सूचना सखियाँ कृष्ण को देती हैं-

"प्यारे तुम बिनु व्याकुल प्यारी। मृगमद लै तव चित्र बनावति व्याकुल बैठि अकेली।"[151]

प्रियतम मनमोहन के ध्यान में मग्न राधा को देखकर अन्तरंग सखियों को भय है कि राधा को कोई रोग हो गया है। वह कहती है-"राधे! तुम्हें कौन-सा रोग लग गया है? तुम क्षण-क्षण कभी आँगन में, कभी बाहर पागल-सी घूमती-फिरती हो, पुनः उदासीन होकर बैठ जाती हो। तुम्हारे शरीर में आठों सात्विक-भाव बार-बार प्रकट होते हैं, मानो प्रेमरूपी नदी प्रेमास्पदरूपी समुद्र की ओर अत्यन्त वेग से जा रही है।"[152] वह चातकी की भाँति प्रतिक्षण "पिउ-पिउ" रटा करती है-

"पिरोवति राधा अँसुवन हार।
रटति चातकी सरिस निरन्तर "पिउ! पिउ! प्राणाधार।
भूषन, असन, बसन, नहिं भावत, कृश-तनु विरह अपार।
जड़ जंगम सबसों नित पूछति, "तुम देखे रिझवार?"
कबहुँक लता, विटप भरि भेंटति, करि करि सुरति बिहार।[153]
होति "कृपालु" छिनहिं छिन मुरछित सखिन करति उपचार।"

सामान्य

राधा-वियोग की उत्कृष्टता "प्रियप्रवास" के चतुर्थ एवं षष्ठ सर्ग में विद्यमान है। चतुर्थ सर्ग में राधा आशा, चिन्ता एवं कल्पना के झूले पर झूलती रहती है। षष्ठ सर्ग में राधा, पवन के माध्यम से कृष्ण को

147-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-115, 148-द्वापर, पृष्ठ-15, 149-द्वापर, पृष्ठ-201, 150-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-27, 151-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-315, 152-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-283, 153-वही, पृष्ठ-298

पुराणों के प्रभाव की प्रकृति एवं स्वरूप

प्राचीन एवं मध्यकालीन कृष्ण कविता पर पुराणों का प्रभाव विविध रूपों में परिलक्षित होता है। पुराणों के ब्रह्मवाद, भक्ति, अवतारवाद एवं सृष्टि सम्बन्धी वर्णनों का पूरा-पूरा प्रभाव कृष्ण-भक्ति साहित्य पर पड़ा है। इस प्रभाव को अध्ययन की दृष्टि से निम्न खण्डों में समाहित किया जा सकता है-

1-दार्शनिक प्रभाव, 2-भक्ति सम्बन्धी प्रभाव, 3-अवतारवाद का प्रभाव, 4-सृष्टि तथा राजवंशों का प्रभाव, 5-काव्य सम्बन्धी अंशों का प्रभाव।

यद्यपि पुराणों के प्रभावों का यह सन्दर्भ अति विस्तृत है जिसका सम्यक् विवेचन इस अध्याय के छोटे अंश में कर पाना बड़ा कठिन है, तथापि उसका अति संक्षिप्त रूप आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुराणों में सर्वत्र कृष्ण को ब्रह्म रूप में मान्यता प्राप्त है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के लिए भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण के नाम का प्रस्ताव किया जाता है। भीष्म के इस कथन से उनके ब्रह्मत्व पर प्रकाश पड़ता है-

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्यः। कृष्णस्य हि कृतेविश्वमिदं भूतं चराचरम्॥[81]
एष प्रकृतिख्यक्ता कर्त्ता चैव सनातनः। परश्च सर्वभूतेभ्यस्मात् पूज्यतमो हरिः॥

विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण ब्रह्म के रूप में चित्रित हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप से जगत की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। वे ही अपने भक्तों को संसार सागर से तारने वाले हैं।[82] अन्यत्र भी जनार्दन देव को ही सृष्टि का रचयिता, पालनकर्त्ता और संहारक कहा गया है। वे ही जगत रूप भी हैं।[83] वृहन्नारदीय पुराण के विष्णु भी परब्रह्म हैं-"जो जगत के कर्ता ब्रह्मा जी हैं वे इनकी नाभि से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए ये विष्णु जी ही परमात्मा रूप हैं-इनसे परे अन्य कोई नहीं।"[84] ब्रह्मवैवर्त पुराण में कई स्थलों पर ब्रह्म के रूप में श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा बताई गई है।[85] भागवत के दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं-"मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ, इसलिए मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हीं से सब वस्तुयें बनी हैं और यही उन वस्तुओं के रूप में हैं, वैसे ही मैं मन, प्राण, पंचभूत, इन्द्रिय और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं और मैं उनमें हूँ।"[86] भागवत के विभिन्न स्थलों पर ब्रह्म की ही पुष्टि की गई है।[87] पद्म पुराण में भी विष्णु को परब्रह्म माना गया है और कृष्ण विष्णु के अवतार हैं ही। एक स्थल पर लिखा है-"ये साक्षात् परमात्मा विष्णु भगवान् हैं वे जगत के लिए ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रकट होते हैं। यद्यपि ये अजन्मा, वेद, यही स्वर्ग भी हैं, इसमें संशय नहीं।"[88] श्री हरि के अंश से कोटि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर होते हैं व सृष्टि, पालन, नाश करते हुए उसमें ठहरे रहते हैं, परन्तु यह सब उन्हीं हरि से उत्पन्न हैं।"[89]

पुराणों के उपर्युक्त परमब्रह्म श्रीकृष्ण हिन्दी कृष्ण काव्यों में भी उसी रूप में वर्णित हैं। सूरदास ने श्रीकृष्ण के अन्तर्यामी स्वरूप और विराट रूप का वर्णन दशम स्कन्ध सूरसागर में अनेक स्थलों पर विस्तार से किया है। श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म, अच्युत, निराहार बताते हुए सूरदास कहते हैं-

81-महाभारत, सभापर्व 38/23-24, 82-विष्णु पुराण 1/2/1-2, 83-विष्णु पुराण 1/22/40,
84-वृहन्नारदीय पुराण 3/25, 85-ब्रह्मवैवर्त पुराण (कृष्ण जन्म खण्ड) 1/36-37, 86-भागवत 10/47/29,
87-वही 4/7/50, 51, 52; वही 3/9/21; वही 4/22/40, 88-पद्म पुराण (स्वर्ग खण्ड) 1/82-83,
89-पद्मपुराण (पाताल खण्ड) 69/111

अक्षर, अच्युत, निराकार, अविगत है जोई।
आदि अन्त नहिं जाहि आदि अन्तहिं प्रभु सोई ॥[90]

अन्य- कोटि ब्रह्माण्ड करत छिन भीतर, हरत बिलम्ब न लावै।
ताको लिए नन्द की रानी, नाना रूप खिलावै ॥[91]

नन्ददास के अनुसार ईश्वर अजन्मा है-"अज गहिए जगदीश"[92] और वह अनन्त रूप होते हुए भी एक है-"हरि अनन्त अरु एक।"[93] यह जगत का निमित्त और उपादान दोनों कारण है-

जो प्रभु ज्योति जगतमय, कारण करण अभेद।
विघन हरण सब सुख करन, नमो नमो तिहिदेव ॥[94]

परमानन्ददास श्रीकृष्ण को परमब्रह्म गुणरहित तथा सगुण दोनों बताते हैं। निर्गुणी ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है-

हँसत गोपाल नन्द के आगे नन्द स्वरूप न जाने।
निर्गुण ब्रह्म सगुण धरि लीला साहिब सुत करि माने।
परमानन्द स्वामी मन मोहन खेल रच्यो ब्रजनाथ।

परमानन्ददास, पदसंग्रह, पद सं० 17 (दीनदयाल गुप्त)

यद्यपि मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की है, तथापि उनके गिरिधर गोपाल अविनाशी ब्रह्म हैं-

प्रभु तुम पूरण ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो। मीरा व्याकुल विरहिनी, अपनी करि लीजै हो ॥[95]

रसखान के कृष्ण भी विष्णु के अवतार, ब्रह्मा और शंकर से श्रेष्ठ तथा पूर्ण ब्रह्म हैं-

गावैं गुनी गनिका गंधर्व और सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस कौं ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत॥

-रसखान और उनका काव्य, पृष्ठ 85 चन्द्रशेखर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

नरोत्तम दास श्रीकृष्ण को अन्तर्यामी ब्रह्म के रूप में चित्रित करते हैं-

अन्तर्यामी आप हरि जानि भक्ति की पीर। सोवत लै ठाढ़ो कियो, नदी गोमती तीर ॥[96]

और ये वही ब्रह्म हैं जिनके चरण से समस्त संसार का कष्ट विनष्ट होता है-

जिनके चरणन को सलिल, हरत जगत संताप। पाँय सुदामा विप्र के, धोवत हैं हरि आप ॥[97]

रहीम एक ही दोहे में कृष्ण के ब्रह्मत्व को प्रकट करते हैं-

बिन्दु में सिन्धु समान, को कासो अचरज कहैं। होनहार हिरान, रहिमन आपुहि आपु में ॥

पुराणों में ईश्वर और जीव का अभेदत्व दिखाया गया है। विष्णु पुराण और भागवत का एक-एक उदाहरण निम्न है- **सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः।**

भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक्पृथक् ॥22 ॥ विष्णु पुराण, 2/16/22

90-सूरसागर, ना०प्र०सभा, पद सं० 1793, 91-वही, ना०प्र०सभा, पद सं० 744, 92-अनेकार्थमंजरी, 93-नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ मंजरी ना०प्र०सभा काशी, 94-नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ मंजरी ना०प्र०सभा काशी पृष्ठ 49, 95-मीराबाई की पदावली, प०सं० 129, परशुराम चतुर्वेदी।, 96-सुदामा चरित्र-नरोत्तम दास, वे०प्रे० दोहा सं० 12, 97-सुदामा चरित्र-नरोत्तम दास, वे०प्रे० दोहा सं० 23

अर्थात् जिस प्रकार एक ही आकाश श्वेत-नील आदि अनेक भेदों वाला दिखाई देता है, उसी प्रकार भ्रान्त दृष्टियों को एक ही आत्मा अलग-अलग दिखाई पड़ती है।

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगतः सर्ववित्परः।
धत्तेऽसावात्मनो लिंगमायया विसृजन्गुणान्॥ - भागवत 7/2/22

अर्थात् वास्तव में आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देह-इन्द्रिय आदि से पृथक् है। भगवान् स्वयं कहते हैं-"मित्र जो मैं (ईश्वर) हूँ, वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो, मैं भी वही हूँ जो तुम हो। ज्ञानी पुरुष हम दोनों में थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं देखते।"[98]

पुराणों के जीव सम्बन्धी इस धारणा से हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य प्रभावित है। सूरदास के मत से ईश्वर घट-घट में रमा है-

सकल तत्त्व ब्रह्माण्ड पुनि माया सब विधिकाल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गुपाल ॥[99]

ब्रह्म की तरह जीवन भी नित्य और सत्य है। शरीर क्षणभंगुर है। संसार के नाम और रूपों के साथ इस शरीर का सम्बन्ध है। नाम और रूप तो नाशवान है किन्तु जगत और जीवन की सार सत्ता स्थायी है। सूर के पदों में ऐसी भावना कई पदों में है। भक्त नन्ददास ने भी जीव और ईश्वर की एकता को स्वीकार किया है। वे कहते हैं-

व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप, वेद वदत प्रभु तुम्हरो रूप।
तुम सब भूतनि कौ विस्तार, देह प्रान इन्द्री अहंकार॥

(दशमस्कन्ध भाषा, नन्ददास ग्रन्थावली, पृष्ठ-253)

भागवत के श्लोक (7/2/22) का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। परमानन्द जी के कुछ पदों में जीव-ईश्वर के अंश-अंशी भाव की प्रतीति होते हैं-

माई हौं अपने गोपालहि गाऊँ।
जो ग्यानी ते ग्यान विचारो, जे जोगी ते जोग।
कर्म होय ते कर्म विचारो जे भोगी ते भोग।

X X X X X

अपने अंश की सुति जती है, मांगि लियो संसार।
परमानन्द गोकुल मथुरा में, उपज्यो यही विचार॥ - परमानन्द दास, पद संख्या-110

मीरा की निम्न पंक्तियों में जीव-ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार की गई है-

तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं जैसे सूरज घामा।

-मीराबाई की पदावली, पं०सं० 115-परशुराम चतुर्वेदी

श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में माया, मोक्ष, जगत आदि का वर्णन सर्वत्र विद्यमान है। इन सबका प्रभाव कृष्ण भक्ति काव्यों पर पड़ा है। सूरदास ने अविद्या माया और इस मायाजन्य संसार को अनेक पदों में भ्रमात्मक और मिथ्या कहा है-

मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया, मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया।

98-भागवत 4/28/62, 99-सूरसागर, पृष्ठ 38

संसारी जीव को झूठी माया सच्ची प्रतीत होती है।[100] यह माया लोक और सृष्टि (जगत) का सृजन करती है।[101] सूरदास के लिए सबसे बड़ा मोक्ष गोपाल का गुणगान है।[102] रसखान तो श्रीकृष्ण का साहचर्य ही चाहते हैं। मीरा का भी आनंद श्रीकृष्ण पर ही आधृत है। पुराणों में वृन्दावन का वर्णन है।[103] वृन्दावन के प्रति सूर कहते हैं–

"वृन्दावन मोको अति भावत।" "धनि यह वृन्दावन की रेणु।"[104]

रसखान वृन्दावन के करील-कुंजों में अधिक रम गये हैं–

रसखानि कबौं इन आँखिनि सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूँ कलधौत के धाम करील के कुंजनि ऊपर वारौं॥

पुराणों के राधा-वर्णन को प्राय: सभी कवियों ने अपना आलम्बन बनाया है। सूरदास कहते हैं–

"कृष्णभक्ति दीजै श्री राधे सूरदास बलिहारी।"

परमानन्ददास "धनि राधिका के चरण" कहते हैं तो मीरा कहीं अपने को राधा कहती है और कहीं मीरा–

आवत मोरी गलियन में गिरधारी।
मैं तो छुप गई लाज की मारी।
आवत देखी कृष्ण मुरारी, छिप गई राधा प्यारी॥
राधा प्यारी अरज करत हैं सुन ले कृष्ण मुरारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी॥[105]

रसखान और घनानन्द ने भी राधा का वर्णन किया है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में रास का वर्णन विस्तार से है। भागवत के पाँच अध्यायों में रास का वर्णन उच्चकोटि का है। नन्ददास ने रास पंचाध्यायी ही लिख डाली। सूर ने रास को अद्भुत कहा है–

आजु हरि अद्भुत रास उपायो।
एकहि सुर सब मोहित कीन्है मुरली नाद सुनायो।[106]

रास का रहस्य बिना ईश्वर की कृपा के कोई जान नहीं सकता–

"रास रसरीति नहिं बरनि आवै।"[107]

पुराणों में ईश्वर के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन है। वैष्णव पुराणों में सगुण रूप की भक्ति को अधिक लाभकारी बताया गया है। क्योंकि योगाभ्यासी भक्त पहले पहल निर्गुण रूप का चिन्तन नहीं कर सकते, इसीलिए हरि के विश्वमय स्थूल रूप का ही चिन्तन करना चाहिए।[108] भागवत में भी भगवान् के चरणों की आराधना का माहात्म्य है।[109] सूर "गोकुल सबै गोपाल उपासी" और "अविगत गति कछु

100-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, ना०प्र० सभा।, 101-लोक सृष्टि सिरजित यह माया। तुमते दूर कलमयी काया। हे सरवज्ञ, अग्यजन मेरे। जाने नहिन धर्म प्रभु केरे॥ - नन्ददास ग्रन्थावली, दशम स्कन्ध माला, अध्याय-28, ना०प्र०सभा।, 102-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध, पृष्ठ 1621, ना०प्र०सभा।, 103-ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, पद्म पुराण, पातालखण्ड, अध्याय-69 - नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।, 104-सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना०प्र० सभा।, 105-मीराबाई की पदावली, पद सं० 172, 106-सूरसागर दशम स्कन्ध, पद सं० 1758, पृ० 652, ना०प्र० सभा काशी।, 107-सूरसागर दशम स्कन्ध पद सं० 1624, पृ० 652 ना०प्र० सभा काशी, 108-विष्णु पुराण 6/7/55, 109-श्रीमद्भागवत 4/22/40, 110-परमानन्द पद संग्रह, पद सं० 486, 111-मीराबाई की पदावली, पद सं० 15, 112-श्रीमद्भागवत 3/29/7-14, 113-श्रीमद्भागवत 7/15/23-24

कहत न आवे" कहकर निर्गुण की दु:साध्यता तथा सगुण के सौकर्य की बात कही है। सूर की भाँति नन्ददास ने भी निर्गुण को दुर्घट बताया है, "अब विधि कहत कि निर्गुण ज्ञान, तिहिं समान दुर्घट नहीं आन।" परमानन्ददास और मीरा ने भी सगुण की महत्ता को व्यक्त किया है–

निसि दिन चरन कमल अनुरागी स्यामास्याम उपासी।[110]
मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई। जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।[111]

रसखान और रहीम तो कृष्ण के सगुण रूप पर बलि-बलि जाते हैं। रहीम की सगुणोपासना कितनी पवित्र है–

अंजन देहु तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आंखिन में हरि बसो, रहिमन बलि बलि जाय॥

श्रीमद्भागवत में भक्ति मुख्यत: चार प्रकार की बताई गई है।[112] तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुण। सूर ने इन चारों प्रकार की भक्ति का उल्लेख किया है। एक अन्य स्थल पर भक्ति के नौ प्रकार बताये गये हैं।[113] इन नवों का समर्थन करते हुए दसवीं भक्ति प्रेम लक्षणा बताई है–

श्रवण कीर्तन स्मरण पादरत, अरचन बन्दन दास।
सख्य और आत्म निवेदन, प्रेम लक्षणा जास॥[114]

पुराणों की इस नवधा भक्ति का प्रभाव सभी कृष्णभक्त कवियों पर पड़ा है। इसे हम आगे संक्षिप्त उदाहरणों के माध्यम से दिखा रहे हैं–

श्रवण— जो यह लीला सुने सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।[115]
X X X X X
जो पद स्तुति सुने सुनावै, सूरसो ज्ञान भक्ति को पावै।[116]
जो पद स्तुति सुने सुनावै, सूरसो ज्ञान भक्ति को पावै।[117]

कीर्तन— सब विधि अगम विचारहिं तातै सूर सगुन लीला पद गावै।[117]
X X X X X
जो सुख होत गोपाल हि गाए।[118]
X X X X X
"दिन दश लेइ गोविन्द गाइ।"[119]

स्मरण— "हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई।"[120]

पादसेवन—"भज मन नन्द नन्दन चरन" - सूरदास
"मन रे परस हरि के चरन" - मीरा

पादसेवन— राम कृष्ण पद प्रेम बाढ्यौ, लीला रस बाध्यौ। - परमानन्द दास

अर्चना— तुमको टेरि-टेरि मैं हारी - परमानन्द दास

वन्दन— चरण कमल बन्दौं हरि राई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार-बार बन्दौं तिहि पाई॥

114-सूर सरावली, वे०प्रे०, पृ० 5 तथा 96, 115-सूरसागर, नवम स्कन्ध, ना०प्र०सभा० काशी, 116-सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना० प्र० सभा काशी, 117-सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पृ०-1, पद सं०-2, ना०प्र०सभा काशी, 118-वही, पद सं० 349, ना०प्र० सभा काशी, 119-वही, पद सं० 315, ना०प्र० सभा काशी, 120-सूरसागर, द्वितीय स्कन्ध पद सं० 4923, ना०प्र० सभा काशी।

आत्मनिवेदन— अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय को माल ॥
सूरदास की सवै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल।[121]

इसी प्रकार दास्य और सख्य भाव भी भक्ति की प्रचुरता आलोच्य कृष्ण भक्ति काव्यों में है। भक्ति भाव की रसानुभूति एवं भक्ति के विविध भावों से सभी पुराण भरे पड़े हैं। नन्ददास ने इन्हीं विविध भावों का संकेत "रूपमंजरी" और रास पंचाध्यायी में किया है—

जिहि जिहि भाँति भजै जो मोहिं। तिहि तिहि विधि सो पूरन होंहिं॥ – रूपमंजरी
सर्वभानु भगवान् कान्ह जिनके मनमाहीं।

–नन्ददास ग्रन्थावली, रास पंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, ना०प्र०सभा काशी

सूरदास भी यही कहते हैं-

काम क्रोध में नेह सुहृदयता काह विधि कहै कोई।
धरै ध्याय हरि को जो दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई॥ सूरसागर दशम स्कंध, ना०प्र० सभा काशी

दास्यभाव

भक्ति के विविध भावों के सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत में कहा गया है-

कामं क्रोधं मयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च। नित्यं हरौ विद्धतो यान्ति तन्मयतां हिते ॥[122]

अर्थात् काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृदभाव, इनमें कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय तो ये भाव लौकिक रूप को छोड़ ईश्वरमय हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत में दास्यभाव के अनेक स्थल हैं।[123] सूरदास के अनेक पद दास्यभाव के प्राप्त होते हैं।[124] दास्यभाव में भक्त अपने स्वामी के समक्ष अपने दोषों को भी व्यक्त करता है-

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करो नन्दलाल।[125]

इसी प्रकार परमानन्द दास कृष्ण से विनय करते हैं[126] और भगवान् की भक्ति-सामर्थ्य का भाव प्रकट करते हैं-

जापर कमला कान्त ढरैं।
लकरी घास को बेचन हारो ता सिर छत्र धरैं।
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो चाहैं सोड़ करैं।
परमान्द सदा यह सम्पत्ति, मनमें कबहूँ ढरैं। – परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० 483

मीरा गिरिधर नागर की दासी है-

मीरा दासी राम की जी, राम गरीब निवाज।

121-सूरसागर पद संख्या 153, ना०प्र० सभा काशी, 122-श्रीमद्भागवत 10/29/15, 123-श्रीमद्भागवत 10/40 एवं 10/14, 124-सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद सं० 171 ना०प्र० सभा काशी।, 125-सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद सं० 153 ना०प्र० सभा काशी, 126-परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० 313

जनमीरा को राख ज्यों, कोई बाँह गहे की लाज।[127]
मीरा के प्रभु हरि अविनाशी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।[128]
हाँ हो म्यारा नाथ सुनाथ विमल नहिं कीजिए। मीरा कृष्ण की दास, दरस अब दीजिए।[129]

मीरा ने स्वयं को अपने साहब, "ठाकुर", नाथ और गिरिधर गोपाल की दासी कहा है।

रसखान भी कहते हैं कि शरीर के द्वारा निष्पन्न सभी कर्म श्रीकृष्ण भगवान् से सम्बन्ध होने चाहिए-

बैन वही उनको गुन गाइ, औ काम वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरै, अरु पाँय वही जु वही अनुगामी।
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों "रसखानि" वही रसखानि जु है रसखानि बहै रसखानी॥

सख्यभाव

"ब्रज-निवासी वे नन्द-गोप आदि धन्य हैं जिनका मित्र परमानन्द पूर्णसनातन ब्रह्म है।" यह प्रसंग भागवत में निम्न प्रकार है-

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोप ब्रजाकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातनम्॥ भागवत 10/14/32

सुदामा की सख्य भक्ति का वर्णन भागवत के दशम स्कन्ध के अस्सीवें अध्याय में विस्तार से है। सूर ने सख्य भाव का वर्णन "सुदामा दरिद्र भंजन" प्रसंग में किया है। सुदामा को देखकर कृष्ण का मित्र भाव उमड़ पड़ता है-

दूरि ते देखें बलवीर।
अपने बालसखा सुदामा, मलिन वसन अरु छीन सरीर।
पौढ़े हुते प्रत्येक परम रुचि चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाय अनमने लीवे मिलन नैन भरि आए नीर।

तथा

ऐसी प्रीति की बलि जाऊँ,
सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाऊँ।

"सुदामा-चरित" के अन्तिम छन्दों में कवि नन्द दास सख्य भक्ति का महत्त्व बताते हैं-

"ऐसे जो कोऊ हरि को भजै, हरि उदारता ते सुख सेजे।"[130]

वात्सल्यभाव

माता-पिता अपने पुत्र की सेवा निष्काम भाव से करते हैं क्योंकि स्नेहपात्र अबोध और अशक्त रहता है। भागवत में कपिल अपनी माता देवहूति से कहते हैं- "हे माता! जिन लोगों का गुरु, इष्टदेव, प्रिय आत्मा, पुत्र और सखा मैं ही हूँ उनको मेरे कालचक्र से भय नहीं होता।"[131] सूर के काव्य में वात्सल्य वर्णन की भरमार है। सूर का मातृ-हृदय अपने बेटे के लिए विभिन्न कल्पनायें करता है-

मेरो नान्हरिया गोपाल बेगि बड़ो किन होई।

127-मीराबाई की पदावली, पद संख्या 42, 128-वही, पद संख्या 67, 129-वही, पद संख्या 55, 130-नन्ददास ग्रन्थावली, सुदामा चरित, पृ० 215, ना०प्र० सभा काशी।, 131-श्रीमद्भागवत 3/25/38,

इहि मुख मधुरे बयन हँसि कबहूँ जननि कहोगे मोहिं।[132]

X X X X X

ललन हौं या छवि ऊपर बारी।
लट लटकनि मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।[133]
यद्यपि मन समुझावत लोग,
शूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।[134]

यशोदा माता कन्हैया को जगाती हैं-

चिरैया चुहचुहानी सुनि चकई की बानी,
कहति यशोदा रानी जागो मेरे लाला
रवि की किरन जानी कुमुदनी सकुचानी,
कमलिनि विकसानी दधि मथे बाला।[135]

श्रीमद्भागवत की माधुर्य भक्ति का प्रभाव भक्तिकालीन हिन्दी कृष्ण कविता पर बहुत पड़ा है। स्वकीया भाव से एक गोपी कहती है-

हम अलि गोकुल नाथ अराध्यो,
मन वच क्रम हरि सों पतिव्रत प्रेम योग तप साध्यो।[136]

स्वकीया प्रेम की अभिव्यक्ति मीरा की भी है-

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हारो सांचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।

X X X X X

मेरी उनकी प्रीति पुरानी उण बिन पल न रहाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर बार-बार बलि जाऊँ।[137]

कुछ पदों में परकीया भाव भी झलकता है-

"लाज सरम कुल की मरजादा, सिर तै दूर करी।"[138]

X X X X X

लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिय के पलँगा जा पौढूँगी, मीरा हरि रंग राचूँगी।[139]

श्रीमद्भागवत में भगवान् के बाईस अवतारों की गणना की गई है। सभी वैष्णव पुराणों में कृष्णावतार का वर्णन अधिक हुआ है। हिन्दी कृष्ण कविता में केवल 17 अवतारों का वर्णन प्राप्त होता है। अवतारों का वर्णन प्रमुख रूप से सूर ने ही किया है। जिन अवतारों का वर्णन भक्त कवियों ने किया है वे इस प्रकार हैं-"श्रीकृष्ण अवतार, रामावतार, वाराह अवतार, दत्तात्रेय अवतार, यज्ञ पुरुष अवतार, पृथु अवतार, ऋषभ देव अवतार, नृसिंह अवतार, गज मोचन अवतार, कूर्म अवतार, वामन अवतार, मत्स्य अवतार, परशुराम अवतार, धन्वन्तरि अवतार, मोहिनी अवतार, व्यास अवतार, सनकादि अवतार।"

132-सूरसागर, दशम स्कन्ध, ना० प्र० सभा, काशी, 133-वही, पृष्ठ 392, ना०प्र० सभा, काशी, 134-वही, 4148, ना०प्र०सभा, काशी।, 135-नन्ददास ग्रन्थावली, पदावली, पद सं० 32, ना०प्र०सभा० काशी।, 136-सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद सं० 4148, ना०प्र०सभा, काशी।, 137-मीराबाई की पदावली, पद सं० 17, 138-वही, पद सं० 32, 139-वही, पद सं० 14

श्रीकृष्ण अवतार के साथ कवियों ने रामावतार का भी वर्णन किया है। सूर कहते हैं-

अयोध्या बाजत आज बधाई।
गर्भमुच्यौ कौसिल्या माता, राम चन्द्र निधि आई॥ - सूरसागर नवम स्कन्ध, पद सं० 17

नन्ददास एक ही पद में राम-कृष्ण दोनों का भजन करते हैं-

राम कृष्ण कहिए उठि भोर।
ओहि अवधेश ओहि ब्रजजीवन, धनुष धरन अरु माखन चोर॥

X X X X X

इतमें कौसल्या गोद खिलावै, उतमें यशोदा झुलावै हिंडोर॥

- नन्ददास ग्रन्थावली, पदावली पद संख्या 3

सूर ने प्रायः सभी उक्त अवतारों का वर्णन किया है। नन्ददास और मीरा ने कुछ अवतारों का वर्णन किया है। विस्तार भय से सभी अवतारों का विवेचन नहीं हो पा रहा है। सृष्टि उत्पत्ति एवं राजवंशों का वर्णन सूर के अतिरिक्त और किसी कवि ने नहीं किया है। सूर ने स्वायम्भुव मनु, उत्तानपाद, प्रियव्रत, वैवस्वतमनु आदि वंशों का वर्णन किया है। दक्ष प्रजापति ने मनु-नन्दिनी प्रसूति से विवाह करके 16 कन्यायें पैदा कीं।[140] उनमें से सती महादेव की पत्नी हुईं। विष्णु पुराण के अनुसार दक्ष प्रजापति ने प्रसूति से 24 कन्यायें उत्पन्न कीं। उनमें से सती शिव को व्याही गईं। सूरदास जी दक्ष के 7 कन्याओं के होने की बात कहते हैं-

दक्ष के उपजीं पुत्री सात, तिनमैं सती नाम विख्यात।
महादेव कौं सो तिन दई, पुनि सो दक्ष यज्ञ मैं भुई॥ - सूरसागर, चतुर्थ स्कन्ध, पद संख्या-4

पुराणों में काव्य सम्बन्धी अंशों का प्रभाव सबसे अधिक नन्ददास पर पड़ा है। नन्ददास ने श्रीमद्भागवत से भाव के साथ-साथ शब्दावली भी ज्यों की त्यों ले ली है। कृष्ण बाँसुरी बजाकर रास हेतु जब गोपियों का आह्वान करते हैं तब श्रीकृष्ण मिलन की आतुरता में गोपियाँ अपने वस्त्राभूषणों को व्यतिक्रम से पहन लेती हैं-

"व्यत्यस्त वस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः।"[141]

अर्थात् उल्टे ढंग से वस्त्रादि धारण कर कृष्ण के पास पहुँचने के लिए चल पड़ीं। नन्ददास उक्त वर्णन निम्न प्रकार से करते हैं-

जदपि कहूँ के कहूँ बहु आभरन आनि बनाये।
हरि पिय पैं अनुसरन जहाँ के तहाँ चलि आये॥[142]

उनके माता, पिता, भाई, पति आदि ने उन्हें कृष्ण के पास जाने से रोका किन्तु वे रुकी नहीं-

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दापहृतात्मानो नान्यवर्तन्त मोहिताः॥[143]

140-भागवत 4/1/47, 141-वही 10/29/7, 142-नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पद सं० 33, 143-भागवत 10/29/8, 144-नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धान्त पंचाध्यायी, छन्द 35

नन्द का वर्णन लगभग ऐसा ही है-

मातु पिता, पति, कुलपति, सुत पति रोक रहे सब।
नहिंन रुकीं रस धुकीं जाय सो मिली तहाँ सब॥[144]

रासलीला के समक्ष आभूषणों की झन्कार का वर्णन भागवत में इस प्रकार है-

बलयानां नूपुराणां किंकिणींनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले॥ - भागवत, 10/33/6

इसे नन्ददास इस प्रकार कहते हैं जैसे उनके कथन में भागवत के शब्दों का ज्यों का त्यों चयन कर लिया गया हो-

नूपुर, कंचन, किंकिनि, करतल, मंजुल मुरली। ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर मुरली।[145]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण कविता पर पुराणों का प्रभाव सम्यक् रूपेण पड़ा है। सूर भागवत के प्रभाव को स्वयं स्वीकार करते हैं। देखिये कुछ उदाहरण-

जैसे शुक को व्यास पढ़ायो। सूरदास तैसे कहि गायो॥114।
सूर कह्यो भागवत अनुसार॥117॥
सूर कहै भागवत अनुसार॥140॥ प्रथम स्कन्ध
सूत शौन्कनि कहि समझायो। सूरदास त्यों ही करि गायो॥5॥ द्वादश स्कन्ध

सूरसागर के प्रथम स्कन्ध का प्रथम पद **"मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्, यत्कृपातमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥"**

श्लोक की छाया है-

चरण कमल बंदौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई।
बहिरौ सुनै गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के प्रारम्भ में इस श्लोक का अनुवाद इस प्रकार किया है-

मूक होई बाचाल, पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवहु सकल कलिमल-दहन॥

यद्यपि सूरदास का काव्यालम्बन श्रीमद्भागवत ही है तथापि सूरसागर को भागवत का अविकल अनुवाद नहीं कहा जा सकता। यह एक स्वतंत्र रचना है, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है।[146]



145-नन्ददास ग्रन्थावली, रास पंचाध्यायी, अध्याय 5, पद सं० 606, 146-सूर सौरभ-डॉ० मुंशीराम शर्मा, "सोम", पृष्ठ 110-111

2 आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण-परम्परा

प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक हिन्दी कृष्ण-काव्यों का दिग्दर्शन स्पृहणीय है। संवत् 1900 अर्थात् 1843 ई० से आधुनिक काल की सीमा अभीष्ट है।

इस काल में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पुनरुत्थान के कारण अनेक साहित्यिक आन्दोलन हुए और प्रत्येक आन्दोलन के प्रभावस्वरूप लिखे गये साहित्य में विशेष विचारधारा का प्रतिपादन एवं आधुनिक और प्राचीन विचारों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु युग में प्राचीन धार्मिक गाथाओं के प्रति मोह विद्यमान रहा किन्तु द्विवेदी युग में प्राचीन आख्यानों में युगीन विचारधारा के प्रतिपादन के लिए चारित्रिक और कथात्मक परिवर्तन की प्रणाली का उद्भव हुआ। इन समस्त कृष्ण-काव्यों में प्राचीन एवं नवीन विचारों से मण्डित राधा-कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों का विविध रूपों में वर्णन हुआ है। अब ब्रजभाषा, अवधी एवं खड़ी बोली में निबद्ध रचनाओं का संक्षिप्त परिचय काल-क्रम में प्रस्तुत किया जायेगा।

(क) ब्रजभाषा काव्य

प्रबन्ध-काव्य

1-उद्धवशतक (जगन्नाथदास रत्नाकर) 1929 ई०

उद्धवगोपी-सम्वाद पर आधारित यह एक प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य है। सन् 1900 ई० के बाद प्रथम दशक में समय-समय पर इसके छन्द लिखे जाते रहे हैं। "रत्नाकर" जी की काव्य-यात्रा का यह एक गौरवपूर्ण पड़ाव है। इसमें भाव एवं कलापक्ष का सुन्दर समन्वय है। कृष्ण यहाँ ब्रह्म के रूप में चित्रित हुए हैं और राधा उनकी आह्लादिनीशक्ति की प्रतीक हैं। इसीलिए उद्धवशतक के कृष्ण का मन राधा के सौन्दर्य की स्मृति से ही जहाज की भाँति डूबने लगता है। कृष्ण-काव्यों की "भ्रमरगीत" परम्परा का पूर्ण निर्वाह इस काव्य में हुआ है।

2-फेरिमिलिबो (पं० अनूप शर्मा, प्रबन्ध काव्य) 1941 ई०

यह एक चम्पू काव्य है। श्रीमद्भागवत में एक कथाप्रसंग है सूर्यग्रहण-महत्त्व का जिसमें सभी ब्रजवासी कुरुक्षेत्र में स्नान हेतु उपस्थित होते हैं और श्रीकृष्ण से उनका पुनर्मिलन होता है। बस इसी कथा को अनूप जी ने दूसरे ढंग से कहा है। जब खड़ी बोली में रचनाधर्मिता जोर पर थी और साधारण जनता में यह धारणा बन गई थी कि ब्रजभाषा में कविता करने का समय चला गया है। विद्वानों ने भी सत्यनारायण कविरत्न और रत्नाकर जी को ब्रजभाषा का अन्तिम कवि घोषित कर दिया था। ऐसे समय में अनूप जी ने फेरिमिलिबो लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि ब्रजभाषा में कविता करने का समय समाप्त नहीं हुआ है। काव्य योजना की दृष्टि से ऐसा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में नहीं है। इस पर देव पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। अनूपभाव, अनूपभाषा, अनूप शैली, अनूप प्रबन्ध, सब कुछ अनूप ही है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, कृष्ण और ब्रजवासियों के पुनर्मिलन के विषय में इतना सुन्दर ग्रन्थ किसी भाषा में नहीं लिखा गया है।

3-मधुपर्क (देवीरत्न अवस्थी "करील") 1967 ई०

19 सर्गों में लिखा गया यह प्रबन्ध काव्य चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से प्रकाशित है। सन् 1952 ई० से 1962 ई० के दशक में इसकी रचना हुई जिस पर स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। "मधुपर्क" भगवान् श्रीकृष्ण के पुण्यचरित्र के मानवीकरण का एक सशक्त प्रयास है। राधा और कृष्ण के माध्यम से कवि ने अपने पाठकों हेतु उन विचारों और भावनाओं को अग्रसर किया है, जो उन्हें अखिल भारतवर्ष को भारतवर्ष के रूप में समझने में सहायता दे सके। कवि की मान्यता है कि भारतवर्ष के साहित्य का उत्कृष्टतम भाग उन वैदिक ग्रन्थों में सुरक्षित है, जिनका अध्ययन आज भारतवर्ष ही नहीं प्रत्युत् संसार के उन सभी उन्नत देशों में किया जा रहा है, जो आधुनिक युग में, ज्ञान की गवेषणा में अग्रगण्य माने जाते हैं। इस ग्रन्थ की भावभूमि प्राचीन भारतीय साहित्य के अनुसार "सत्यमेव जयते नानृतम्" पर आधारित है। राधा-कृष्ण के रूप में सर्वत्र इसकी उद्घोषणा करना कवि नहीं भूलता। भारत वर्ष का परवर्ती संस्कृत साहित्य, जिन्हें ईश्वर मानता है, उन्हीं श्रीकृष्ण के मानवीय चरित्र का निरूपण "मधुपर्क" में किया गया है।

कृष्ण का मित्रमण्डल वैदिक युग के अनुकूल था। भगवान् श्रीकृष्ण के युग में स्त्रियों की स्थिति आज की भाँति दयनीय नहीं थी। स्त्री जीवन, वैदिक युग में प्रतिष्ठासम्पन्न था। वेदमन्त्रों के ऋषि के पद का गौरव उस युग में सबसे बड़ा गौरव माना जाता था। इस युग में अनेक स्त्रियाँ इस सबसे बड़े पद पर अभिषिक्त दिखाई पड़ती हैं। वैदिक युग का द्वापर में भी बहुत अधिक प्रभाव था। इसलिए महिलायें न तो परदे में रहती थीं और न घूँघट इत्यादि की बात ही उस द्वापर युग में कोई सोच पाता था। लड़कियाँ लड़कों के साथ पढ़ती-लिखती थीं। उठती-बैठती थीं। सभाओं में जाती थीं। भाषण देती थीं। खेलती थीं। तैरती थीं और अभिनय तथा नृत्य में भी भाग लेती थीं। यही नहीं वे युद्ध भी करती थीं। घोड़े पर चढ़ती थीं और वायुयान भी चलाती थीं। स्त्रियों के वायुयान चालन और युद्ध का वर्णन भी वेदों में विद्यमान है। वैदिक युग से प्रभावित द्वापर के समाज में इसीलिए श्रीकृष्ण जी के मित्रमण्डल में जहाँ युवक थे, वहाँ युवतियाँ भी थीं। कृष्ण का व्यक्तित्व ऐसा था कि उनका पूरा का पूरा मित्रमण्डल उनसे अभिन्न हो गया था। स्त्री-मित्रों में जिस युवती का प्राधान्य था उसके नाम की चर्चा न तो विष्णु पुराण में है और न श्रीमद् भागवत में, किन्तु परवर्ती पुराण में उसका नाम राधा है। आज राधा-कृष्ण परस्पर इतने सम्पृक्त हो चुके हैं कि उनको एक-दूसरे से हटाया नहीं जा सकता। "मधुपर्क" के गायक "करील" जी ने राधा और कृष्ण के ऐसे ही सम्पृक्त स्वरूप को उजागर करके नवीन लोकहित विचारों का सृजन किया है। वस्तुत: यहाँ सम्पूर्ण ग्रंथ में राधा-कृष्ण राष्ट्रीय पुरुष के रूप में चित्रित हुए हैं।

4-उद्धव शतक (डॉ० रामशंकर शुक्ल "रसाल") 1970 ई०

प्रस्तुत काव्य उद्धव-गोपी-सम्वाद-प्रसंग की आधार-भूमि पर सुपल्लवित-पुष्पित हुआ है। चारु-चमत्कार और विलक्षणविद्वत्ता की पृष्ठभूमि पर अंकित 252 मुक्तक छन्दों को प्रबन्ध-कथात्मक तथा सम्वादात्मक रूप देकर सम्पूर्ण काव्य में विप्रलम्भ शृंगार की अन्तर्धारा प्रवाहित की गई है। कथा-योजना सूर जैसी ही है किन्तु अभिव्यक्ति की चमत्कार-चारुता "रत्नाकर" से आगे दृष्टिगत होती है। "रत्नाकर" जी ने कथा-प्रसंग में नवीनता लाते हुए आरम्भ में यमुना-स्नान करते समय श्रीकृष्ण के ब्रज की ओर से बहते आते कमल को सूँघकर बेहोश हो जाने की कल्पना की और उद्धव के भेजे जाने का नवीन आधारभूत कारण खोज लिया किन्तु "रसाल" जी ने कृष्ण-प्रेम का कोई अन्य कारण नहीं खोजा है।

कवि की मान्यता है कि कृष्ण अपनी भक्ति-भूषिता गोपियों को सदैव स्वस्मृति में रखते हैं, उनकी स्मृति किसी कारणरूप वस्तु को देख-सुनकर नहीं उठती। कृष्ण सीधे-सीधे पूर्व सुख की स्थायी-स्मृति के आधार पर उद्धव से अपना ब्रज-प्रेम प्रदर्शित करते दिखाई देते हैं। उद्धव को उन्हें समझाने का अवसर मिल जाता है किन्तु भाव-विह्वल कृष्ण के आगे वे अपने ज्ञान का अधिक प्रदर्शन नहीं कर पाते। उन्हें ब्रज आने के लिए तैयार होना ही पड़ता है। ब्रज आते समय कृष्ण की आतुरता और उनके रथ के पीछे-पीछे लगे चलने का दृश्य बड़ा अद्भुत है। कृष्ण की औत्सुक्यपूर्ण मुख-मुद्रा ऐसी प्रतीत होती है मानो कृष्ण ही उद्धव के द्वारा ब्रज भेजे जा रहे हैं-

ऊधौ जात ऐसे जैसे स्याम के पठावन कौं।
स्याम जात ऐसे जैसे स्याम ही पठाए जात॥

प्रस्तुत काव्य में भावोत्कर्ष के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण मिलते हैं। कृष्ण उद्धव से अपने मन की व्यथा का वर्णन करना तो चाहते हैं परन्तु उसके लिए उन्हें शब्द नहीं मिलते, वाणी अभिव्यक्ति में असमर्थ जान पड़ती है। अन्तर्मन की गम्भीर व्यथा-गाथा को गिरा से नहीं कह पाते। हृदय की पीड़ा, अन्तर की टीस, व्यथासिक्त अनुभूति को प्रकट करना असम्भव-सा हो गया है। गोपियों की आह-कराह और राधा का हृदय-दाह, उसके उच्छ्वास आदि का स्मरण उनकी व्याकुलता को और भी बढ़ाता ही है-

गोपिन की आह औ कराह-भरी साँसें हमें,
दाह-भरी राधा की उसासैं तौ बुलावैं हौं।

दार्शनिक दृष्टि से यह काव्य परम्परावादी ही है। उद्धव का उपदेश "सर्वं खल्विदं ब्रह्म", एकोऽहं द्वितीयो नास्ति तथा ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जैसे सूत्रों तक ही सीमित रहता है।

5-उद्धव-शतक (गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी) 1981 ई०

"रत्नाकर" और "रसाल" जी की शतक परम्परा से प्रभावित होकर चतुर्वेदी जी ने इसकी रचना की है किन्तु इसकी भाव-भूमि परम्परा से भिन्न है। इसमें 101 छन्द हैं। चतुर्वेदी जी का वैशिष्ट्य प्रकृति की रमणीयता, वंशीरव की प्रभावकारिता, गायों की विह्वलता, पाती की भाव-संकुलता तथा नई लाक्षणिकता में सन्निहित है। निर्गुण और सगुण के द्वन्द्व में पाण्डित्य एवं तार्किकता का प्रदर्शन नहीं है। भागवत की भाव-भूमि की दो पंक्तियाँ निम्न हैं-

कोऊ छन-छन मनसिज-मन-हारी, कोऊ ढूँढ़ै कन-कन, बन-बन बनवारी को।

मुक्तक काव्य

1-भारतेन्दु ग्रन्थावली (दूसरा भाग)

इस ग्रन्थ का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा द्वितीयावृत्ति में सम्वत् 2010 में सम्पन्न हुआ। इसमें आधुनिक काल के जनक भारतेन्दु जी के अनेकश: प्रेमगीतों का संग्रह है। जिन रचनाओं में राधा-कृष्ण के किसी भी प्रसंग का उद्घाटन हुआ है वे निम्न हैं-

भक्त सर्वस्व-1870 ई०, प्रेममालिका-1871 ई०, प्रेमाश्रु वर्णन-1873 ई०, प्रेम माधुरी-1875 ई०, प्रेम तरंग-1877 ई०, प्रेम प्रलाप-1877 ई०, गीतगोविन्द-1878 ई०, सतसई सिंगार-1878 ई०, होली-1878 ई०, मधु मुकुल-1880 ई०, राम संग्रह-1880 ई०, विनयप्रेम पचासा-1881 ई०, प्रेम फुलवारी-1883 ई०, कृष्ण-चरित्र-1883 ई०, देवी छद्म लीला-1873 ई०, तन्मय लीला-1974 ई०, दान लीला-1974 ई०, वेणु गीति-1877 ई०।

उपर्युक्त रचनाओं में राधा-कृष्ण का प्रेम-वर्णन प्रमुख है। रीतिकालीन कवियों की भाँति राधाकृष्ण के बहाने वासनात्मक मनोवृत्तियों का प्रकाशन इसमें लेशमात्र भी नहीं है। भारतेन्दु जी की अनन्य भक्ति इन समस्त कृतियों में सर्वत्र देखी जा सकती है। ये वैष्णव भक्त थे। अत: लीलागान परम्परा के चित्रण में इनकी सहजानुभूति रमी है। जिस कृष्ण के वे सखा थे और जिस राधा रानी के वे गुलाम थे उनके प्रति उनकी सहज भक्ति सर्वत्र प्रकाशित हुई है। राधा-कृष्ण के प्रेम-वर्णन की परम्परा प्राचीन है। इन रचनाओं में राधा-कृष्ण के किसी आधुनिक रूप का उद्‌घाटन नहीं हुआ है।

2-श्री सर्वेश्वर (ब्रज बिहार अंक) श्री नारायण स्वामी, 1883 ई०

मार्च 1971 ई० को प्रकाशित शोधपूर्ण धार्मिक मासिक पत्र सर्वेश्वर के अंक में स्वामी नारायण जी की वाणी छपी है। इसका रचनाकाल 1883 ई० है। भक्ति परम्परा के अनुसार इसमें राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इसी परम्परा में निम्न रचनायें समय-समय पर लिखी गईं-

3-श्री राधिका सुखमा (पं० लोकनाथ चौबे) 1889 ई०

4-श्री ब्रजबिहार (पं० रंगीलाल) 1894 ई०

5-गोविन्द विलास (ठा० गोविन्द सिंह) 1896 ई०

6-श्री गोकुल बाल बिहार (वैष्णव भगवान दास) 1906 ई०

7-श्रीकृष्ण जन्मोत्सव (देवी प्रसाद प्रतिम) 1922 ई०

8-पूर्ण संग्रह (राय देवी प्रसाद पूर्ण) 1925 ई०

पूर्ण संग्रह नामक यह पुस्तक गंगा पुस्तक माला-कार्यालय अमीनाबाद, लखनऊ से प्रकाशित है। इसमें राय देवीप्रसाद पूर्ण की चुनी हुई रचनाओं का संग्रह है। इसके संग्रहकर्त्ता श्री लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी हैं। "कान्ह तुम्हारी गैयाँ कहाँ गईं" शीर्षक में गाय के प्रति श्रीकृष्ण के प्रेम को प्रकट किया गया है। भारतीयों के लिए गौ-महत्त्व का उपदेश, सुदामा चरित्र, कृष्ण जन्म पर बधाई आदि प्रसंगों में कृष्ण का चरित्र गान है।

9-प्रेम की पीर (भोलानाथ जी "भोरी सखी") 1932 ई०

राधावल्लभी सम्प्रदाय में दीक्षित भक्तकवि भोला जी के इसमें अधिकांशत: विनय के पद हैं। सच्चे भक्त की महान् व्याकुलता इसमें भरी हुई है। इस वियोग व्याकुलता में कृष्ण के प्रति पूर्ण अतृप्ति सदैव विद्यमान रहती है।

10-ब्रजभारती (उमाशंकर वाजपेयी) 1936 ई०

वह छवि, मुरलीधर मोहन और वंशीध्वनि शीर्षकों में श्रीकृष्ण के सौंदर्य के मनमोहक वर्णन के साथ ही साथ उनके अलौकिकत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

11-निकुंज केलि माधुरी (माधवदास) 1940 ई०

दोहा, चौपाई, सोरठा एवं विविध छन्दों में ग्रन्थ की रचना हुई है। यह एक भावुक सन्त हृदय की रचना है। राधा-कृष्ण से सम्बन्धित अष्टयाम लीलाओं का वर्णन निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्तर्गत हुआ है।

12-भ्रमरदूत (सत्यनारायण "कविरत्न") 1941 ई०

"कविरत्न" जी ने अपने अनुभव से इस रचना में ब्रजप्रदेश की दुर्दशा का निरूपण करके व्यंजना से भारत भूमि की दयनीय दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। द्वारका में जा बसे हुए कृष्ण के पास यशोदा संदेश भेजती हैं। यह रचना नन्ददास के "भ्रमरगीत" के ढंग पर की गई है।

13-मुक्तक माला (डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी) 1945 ई०

14-दुलारे दोहावली (दुलारे लाल भार्गव) 1945 ई०

15-प्रेमधन सर्वस्व (पं० बदरीनारायण चौधरी) 1945 ई०

उपर्युक्त रचनाओं में राधा-कृष्ण लौकिक प्रेम के आलम्बन हैं। डॉ० त्रिपाठी और पं० बदरी नारायण उपाध्याय ने सवैया छन्द में कृष्ण के सौन्दर्य एवं प्रेम का वर्णन किया है। दोहा छन्दों में भार्गव जी की कृष्ण भक्ति का एक उदाहरण निम्न है-

बस न हमारौ बस कहहु, बस न लेहु प्रिय लाज,
बसन देहु ब्रज में हमैं, बसन देहु ब्रजराज।
पट मुरली माला मुकुट धरि कटि कर, उर, भाल,
मन्द मन्द हँसि बसि हिये, नन्द दुलारे लाल।

16-स्याम संदेसो (अमृत लाल चतुर्वेदी) 1950 ई०

इसका कथा भाग पूर्व परिचित है। "ऊधौ को उपदेस सुनो ब्रजनागरी" और "सखा सुनु स्याम के" कहकर कवि मनीषियों ने जो रसधारा बहाई है, चतुर्वेदी जी ने उसमें अपनी भी धारा प्रवाहित कर दी है।

17-घनश्याम सागर (कवि घनश्याम) 1951 ई०

इसमें कुल सात तरंग हैं जिनके अन्तर्गत विविध विषयों की कवित्त शैली में वर्णन है। "कृष्ण लीला तरंग" में राधा-कृष्ण की होरी, रास आदि का उल्लेख है।

18-अजस मोचन (डॉ० रामशंकर शुक्ल "रसाल") 1952 ई०

बाल्यावस्था में दही, मही और गोपियों के चित्त को चुराने वाले कृष्ण के ऊपर प्रौढ़ावस्था में जब स्यमन्तक मणि की चोरी का आरोप सत्यजित ने लगाया तब उदारचेता-नेता श्रीकृष्ण ने इसका परिमार्जन किया। वस्तुत: उन्होंने चोरी न की थी और यह मिथ्यापवाद उनके सम्बन्ध में चल पड़ा था। कृष्ण के समक्ष असत्य टिक नहीं सकता। वे कहते हैं :-

वैसे तो हम दही-मही के चोर रहे हैं।
तदपि न यों कहुँ बृथा चोर हम गये कहे हैं॥

19-गोपाल विलास (कार्ष्णि गोपालदास) 1953 ई०

सवैया, दोहा, चौपाई और पदों के माध्यम से नित्य लीला लीन भगवान् श्रीकृष्ण और राधा की विभिन्न लीलाओं का वर्णन है।

20-श्रीकृष्ण-कौस्तुभ (बाल मुकुन्द चतुर्वेदी) 1954 ई०

श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित्र विविध छन्दों में वर्णित है। प्रस्तुत ग्रन्थ पाँच भागों में विभाजित है। कुल 16 कलाओं में ग्रन्थ पूर्ण हुआ है जिसमें षोडश कलावतार भगवान् श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण जीवन झाँकी मिलती है।

21-प्रेम रस मदिरा (कृपालु दास) 1954 ई०

राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का अनेक रूपों में सुललित पदों में वर्णन कर भक्तप्रवर कवि ने जैसे अमूर्त ब्रह्मानन्द को मूर्तिमान कर दिया है। प्रेम रस मदिरा में उस वातावरण की पुनरावृत्ति मिलती है जो सोलहवीं शताब्दी में सूरदास, हरिवंश और हरिदास जैसे भक्तों ने निर्मित किया था। वर्तमान युग के भक्त

कवि ने कृष्ण भक्ति के समन्वयात्मक रूपों को ग्रहण किया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है। राधा-कृष्ण के प्रेमी-भक्तों की जिह्वा पर ये पद अवश्य उतर आयेंगे-

गयो हरि मोपै जादू डार।
आजु सखि ह्वै गये नैना चार, सखी मैं बिकी आजु बिनु दाम।
लूटि मोहिं लै गयो नन्द कुमार

22-राधा (डॉ० किशोरी लाल गुप्त) 1954 ई०

"राधा" एक मुक्तक प्रबन्ध है। इसका प्रत्येक छन्द बंधन मुक्त है किन्तु सूरसागर की भाँति ये कथा को विकसित करते चलते हैं। इसमें राधा के प्रेम की प्रगाढ़ता एवं दृढ़ता का चित्रण है। सवैया छन्द में इसके सभी पद गेय हैं। "राधा" में कृष्ण, रुक्मिणी, नारद और राधा का वर्णन है। मंगलाचरण में कवि राधा से प्रार्थना करता है-

साहित जा हित साध्यो सनेह सों,
या मन कौं, न गिन्यो भव बाधा।
राधा बिहारी की बाधा हरौ,
हरौ बाधा हमारी बिहारी की राधा।

23-ब्रजमाधुरी निकुंज (द्वारकेश लाल) 1960 ई०, 24-रास पंचाध्यायी (प्रभुदत्त ब्रह्मचारी) 1960 ई०, 25-कृष्ण कारे हैं (तुलसी राम वैश्य) 1963 ई०, 26-कूबरी (राम नारायण अग्रवाल) 1965 ई०, 27-केशव (दाऊदयाल गुप्त) 1966 ई०, 28-स्याम सतक (दाऊदयाल गुप्त) 1966 ई०, 29-अध्यात्म भागवत (बाल मुकुन्द चतुर्वेदी) 1967 ई०, 30-श्यामाँगावयन (कविरत्न "नवनीत") 1967 ई०, 31-सनेह सतक (कविरत्न "नवनीत") 1967 ई०, 32-ब्रजमाधुरी सुधा (द्वारकेश लाल) 1968 ई०, 33-तू मौन खड़ा क्या सोच रहा (रामदयाल) 1969 ई०, 34-अमर-पद (भक्त कवि "अमर") 1971 ई०

उपर्युक्त सभी कृतियाँ राधा-कृष्ण के किसी-न-किसी प्रसंग का समाश्रयण लेकर उनका भक्तिपूर्वक गौरव-गान करती हैं।

35-युगलपद बन्दन (कृष्णा माँ) 1973 ई०

बाल तपस्विनी कृष्णा माँ द्वारा रचित इस ग्रन्थ में 132 पद हैं जो परिष्कृत सरस एवं व्याकरणसम्मत ब्रजभाषा में लिखे गये हैं। भगवान् की दृष्टि से भक्त कवयित्री कृष्णा माँ ने अपने पद संग्रह को पाँच भागों में विभक्त किया है-विनय, चेतावनी, विरह, रूपमाधुरी समर्पण। "विरह" में भगवान् कृष्ण के दर्शन मिलने की वेदना व्यक्त हुई है। "रूपमाधुरी" में कृष्ण और राधा के अपार सौन्दर्य को शब्दों द्वारा सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है। "समर्पण" में कवयित्री ने श्यामा-श्याम के प्रति अपने को सर्वात्मभाव से समर्पित कर दिया है।

36-हृषीकेश-रचनावली (हृषीकेश चतुर्वेदी) 1973 ई०

चौबे जी राधा-कृष्ण के उपासक हैं किन्तु सीताराम से उन्हें चिढ़ नहीं है। "रामकृष्ण-काव्य" में उन्होंने दोनों का समन्वय कर दिया है। इसे साधारण रीति से पढ़कर असाधारण रीति से समझना होता है। जैसे "लखि सुघर मन्थरा चाल, मोहित राय भये"। राजा दशरथ मन्थरा की सुयोजित चाल देखकर मूर्छित हो गये, यह तो हुई रामायण और नन्द राय जी श्रीकृष्ण की सुन्दर मन्थर गति देखकर प्रेममग्न हुए, यह हुई कृष्णायन। इस रचनावली में राधा-कृष्ण के अन्यान्य रूपों का गेय शैली में चित्रण किया गया है।

संदेश भिजवाती है। अपने अश्रुपूरित नेत्रों की दशा का ज्ञान राधा इस प्रकार देना चाहती है। वह पवन दूतिका से कहती है-

"ला के फूले कमल दल को श्याम के सामने ही।
थोड़ा-थोड़ा विपुल जल में व्यग्र हो हो डूबना।
यों देना ऐ भगिनि जतला एक अम्भोज नेत्रा।
आँखों को ही विरह-विधुरा वारि में बोरती है।"[154]

राधा की इच्छा है कि पवन दूतिका कृष्ण के चरण को छूकर आ जाये तो उसे ही हृदय में बसाकर जी जायेगी।[155]

"प्रियप्रवास" का राधा-वियोग एकान्तिकता एवं दुश्चिन्ताओं से युक्त है, उसमें स्मृति के आधार पर अनुभूत प्रेम-क्रीड़ाओं का वर्णन नहीं है, इसीलिए विप्रलम्भ, करुण रस का संचार करने वाला बन गया है। उसमें उदात्तता एवं चीत्कार अधिक है, चहचहाहट कम है। वियोग रस को अधिक उदात्तता प्रदान करने एवं परार्थ से जोड़ने का काम प्रियप्रवास एवं मधुपर्क में हुआ है।

गोकुल के मुख्य नागरिकों से मिलकर उद्धव जब राधा से मिलना चाहते हैं, तब उपनन्द कहते हैं कि राधा 15 दिन तक मौन धारण करके, वनमाला एवं बंशी लेकर व्रत-अनुष्ठान करेगी। उसका निरन्तर उपवास चलता रहेगा। इसलिए ब्रज में जितनी 'षोडसी मुग्धायें' हैं, वे तत्काल आपसे नहीं मिल सकेंगी।[156] समयानुकूल उद्धव फुलवारी में पहुँचकर राधा का प्रेम-अनुष्ठान देखते हैं। उद्धव राधा से कहते हैं-"आप कृष्ण के वश में हैं और कृष्ण आपके वश में हैं। आपने उन्हें जीत लिया है और अब उन्हें जीतकर भी हार जायें।"[157] राधा द्वारा दिया गया उत्तर आधुनिक हिन्दी कविता में बिल्कुल नया है-

"हमको जय और पराजय का! सुख दुःख हमैं हितकारी सबै।
दुःख कौ सुख मानि कै जीवन में बनिहैं हम प्रेम पुजारी सबै।" -मधुपर्क, पृष्ठ-235

बताइए उद्धव जी, हमें कौन-सा लाभ नहीं मिला। जब तन, मन, धन हमने उन्हें सौंप दिया, तब उन्हें त्यागना, भजना निरर्थक है, वे मुझमें समा चुके हैं। हमें तो जग-मंगल चाहिए।[158] प्रियप्रवास में भी ऐसी ही चित्त-वृत्तियों का प्रकाशन हुआ है।[159]

आधुनिक कवियों का एक दूसरा दल विशुद्ध रूप से राधा-कृष्ण का विरह प्रस्तुत करने में लौकिक रीत्या पूर्ण सफल हुआ है। उन कवियों में भारतेन्दु, अनूप शर्मा, कृपालुदास, रत्नाकर, रसाल, मैथिलीशरण गुप्त और माधवी लता शुक्ल प्रमुख हैं। राधा के प्रेमावेग को देखकर सखियों को आशंका है कि राधा कहीं डर गई है। देखिये उन्माद, उद्वेग, प्रलाप का दृश्य-

"कुँवरि! तू कितै गई डरपाय।
रहि रहि कम्प, पुलक तनु सिगरे, स्वेद बिन्दु दरसाय।
सोवत कबहुँक उचकि चौंकि उठि, भाजति इत-उत धाय।"[160]

मधुपर्क की भाँति अनूप शर्मा ने भी राधा की तपस्या का विस्तृत चित्रण किया है। काले कृष्ण ने यमुना में स्नान किया है, इसीलिए यमुना काली हो गयी है। राधा, यमुना-जल में स्नान संयोग सुख के लिए करती है।[161] जमुना में डुबकी लगाते समय उसे ऐसा अनुभव होता है कि साँवले कृष्ण ने उसके पोर-पोर

154-प्रियप्रवास, पृष्ठ-71, 155-वही, पृष्ठ-72, 156-मधुपर्क, पृष्ठ-229, 157-वही, पृष्ठ-235, 158-वही, पृष्ठ-236, 159-प्रियप्रवास, पृष्ठ-253, 160-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-292, 161-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-20

को कस लिया है।[162] युवावस्था में तपस्या का जीवन बिताना अटल धैर्य का काम है। राधा की कठिन तपस्या देखकर नारद रो पड़ते हैं।[163]

विरह ताप से हृदय-सागर जब तप्त होता है तब आह का धूम मन मण्डल में उड़ने लगता है। कभी कृष्ण का और कभी अपना नाम लेकर राधा प्रलाप करती है। रास्ते पर नेत्र और आहट पर कान देकर वह कृष्ण के आने की बाट जोहती है, जिह्वा निरन्तर हरि का जाप किया करती है, फिर भी "घनश्याम-दरश" की प्यास मरना ही चाहती है। उसके नेत्र निस्तेज एवं जिह्वा घायल हो गई है, क्योंकि दोनों निरन्तर कार्यरत हैं-

"पंथ निहारि-निहारि परे आँखिन में जाले।
"पीव" पुकारि पुकारि परे रसना में छाले॥"[164]

कुरुक्षेत्र में कृष्ण से भेंट तो हुई किन्तु रात्रि में कृष्ण रनिवास में हैं। राधा के शयन की व्यवस्था कृष्ण द्वारा अलग से करा दी गई है। यहाँ कृष्ण द्वारा राजा और प्रजा का भेद प्रदर्शित करना करुणा का स्पर्श करता है। उचित भी है, राजा कृष्ण रुक्मिणी का साहचर्य कैसे छोड़ सकते हैं। राधा अब तक क्या सोचती थी और क्या हो गया। कुरुक्षेत्र आई भी किन्तु दर्शन की अनन्त लालसा एवं प्रेम की उद्दाम लहरें पूर्णकाम नहीं हो पा रही हैं। पलंग पर पड़ी हुई दीन-हीन-जलहीन-मीन की भाँति तड़प रही है। नेत्रों में नींद नहीं है। वह कहती है-"हरि मुझसे मिले, यह सारा संसार जानता है, किन्तु अब भी विरह-वियोग मिटा नहीं, मन अब भी व्यथित है। कृष्ण चन्द्रमा बनकर छिप गये, मैं कुमुदनी व्याकुल ही पड़ी हूँ।"

"घर-घर भोगत भाग, रही विरहिनि की विरहिनि।"

हे सखी! बार-बार मैं यही सोचती हूँ कि कुछ खा लूँ जिससे मर जाऊँ और सारा दु:ख ही छूट जाये।"[165] पुन: वह आशा को विरहिणियों की जान एवं प्रेमीजनों की विजय बताती हुई अपने में आशा का संचार करती है।[166]

रत्नाकर एवं रसाल जी के उद्धव-शतक के आदि में वियोगी कृष्ण की व्यथा का प्रभावशाली चित्र अंकित किया है। वे विशेषत: राधा के लिए उच्छ्वसित दिखाये गये हैं। "कैसे कहें जैसे धौंस से हम बितावें हैं" इस कथन में हृदय की कैसी तरलता है। आगे वे उद्धव से कहते हैं-

" गोपिन की आह और कराह-भरी साँसें हमें,
दाह भरी राधा की उसासें तौ बुलावें हैं।"[167]

इसमें निगूढ़ व्यथा की कथा है। यह प्रेम की कितनी बड़ी पहुँच है कि कृष्ण की जमुना में प्रवहमान कमल की गंध में राधा की गंध मिलती है और वे अचेत हो जाते हैं। उद्धव के अधिक प्रयास के बाद और वह भी जब कीर ने राधा का नामोच्चारण किया, तब कृष्ण चैतन्य होते हैं।[168] प्रेम की ऐसी पीर कि उद्धव को ब्रज जाना ही पड़ा। उद्धव को भी यश-लाभ की लालसा थी। विदा के समय श्रीकृष्ण की विचित्र दशा होती है। उद्धव से संदेशों का कथन करते हुए कृष्ण उनके साथ ऐसे जा रहे हैं मानो उद्धव ही कृष्ण को ब्रज भेजने के लिए जा रहे हैं-

" ऊधौ जात ऐसे जैसे स्याम के पठावन कौ।
स्याम जात ऐसे जैसे स्याम ही पठाए जात।"[169]

162-कनुप्रिया, पृष्ठ-18, 163-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-21, 164-वही, पृष्ठ-167, 168, 165-वही, पृष्ठ-213, 166-वही, पृष्ठ-214, 167-उद्धव शतक, रामशंकर शुक्ल "रसाल" पद सं०-5, 168-उद्धवशतक- रत्नाकर, पृष्ठ-1, 2, 169-उद्धवशतक, "रसाल", पद सं०-13

3 आधुनिक हिन्दी कविता में राधा-कृष्ण का शील-निरूपण

कृष्ण

कृष्ण का चरित्र विविधताओं से भरा हुआ है। एक ओर यदि वे गोपीजन-वल्लभ एवं कंसारि हैं तो दूसरी ओर योगीराज कृष्ण तथा लोकरक्षक हैं। बाल्यकाल में ग्वाल-ग्वालिनियों के साथ विविध लीलायें-कंस जैसे क्रूर अत्याचारी तथा जरासंध जैसे प्रतापी राजाओं का सर्वनाश तथा जीवन के उत्तरार्द्ध में अर्जुन को ज्ञानोपदेश देकर मोह-निद्रा का हरण किया। राजनीतिक क्षेत्र में हिंसा एवं विप्लव को कभी स्थान नहीं दिया। कौरव-पाण्डवों के समझौते में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करने वाला कृत्य उनके इसी उद्देश्य का परिचायक है। जीवन के आदि-अन्त परस्पर साम्य नहीं रखते। उनके इसी बाल एवं प्रौढ़ जीवन के असामंजस्यपूर्ण कृत्यों को आधार बनाकर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण की द्वैतता की कल्पना करने की भूल की है। डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर भी इस द्वैतता के समर्थक हैं, इसीलिए कुछ भारतीय विद्वानों के लिए भी यह विचार विवाद रहित सा प्रतीत होने लगा है। वास्तविकता सर्वथा इसके विपरीत है। अपने बालजीवन में रंगरेलियाँ करने वाले एवं जीवन के उत्तरार्द्ध में कुशल राजनीतिज्ञता तथा आध्यात्मिकता का उपदेश देने वाले कृष्ण एक ही थे। यह उनके व्यक्तित्व शक्ति का प्रभाव है कि वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों के प्रत्येक अंगों से अपना संस्पर्श बनाए रहे और सर्वत्र यशस्वी और पराक्रमी बन सके। यही उनके महामानवत्व का प्रमाण है कि उनका चरित्र अनेक भावों का आलम्बन बना हुआ है। ऐसी स्थिति में वैविध्यपूर्ण विलक्षणताओं से परिपूर्ण कृष्ण के जीवन के आदि-अवसान की परस्पर विरोधात्मक घटनाओं, कृत्यों को ध्यान में रखते हुए उनके चरित्र का शब्दों एवं निश्चित भाव-परिधियों में निबद्ध करना संभव नहीं है। फिर भी, अब तक युग-युग से समय-समय पर कृष्ण के चरित्र में जो परिवर्तन होता रहा है, वह युगानुकूल ही था और जिसे ही किंचित् मात्र स्वीकार करते हुए आधुनिक युग के कवियों ने समय की आवश्यकता के अनुसार कृष्ण के ब्रह्मत्व को कम महामानवत्व को अधिक सँवारा है, का संक्षिप्त रूप आगे प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त किसी भी पुराण में कृष्ण के समग्र जीवन का चित्र प्रस्तुत नहीं किया गया है। कहीं संक्षिप्त है तो कहीं विस्तृत। भागवत में भी जीवन का उत्तरार्द्ध संक्षिप्त ही है। बाल-जीवन का सम्यक् विस्तार है। महाभारत में उत्तरार्द्ध जीवन का कुछ अंश पाण्डवों के जीवन-सखा एवं पथ-प्रदर्शक के रूप में अंकित हो सका है। उक्त दोनों पुराण हिन्दी की कृष्ण काव्य परम्परा के आधार रहे हैं। बारहवीं शती के जयदेव कृत् गीतगोविन्द से लेकर रीतिकाल तक कृष्ण के चरित्र का भक्ति, शृंगार-माधुर्य एवं परमात्मा रूप का प्रकाशन होता रहा है। भक्तिकालीन सूर आदि प्रमुख कवियों ने कृष्ण के अलौकिकत्व के पक्ष को सामने रखकर बाल एवं किशोर रूपों का बड़ी तन्मयता से चित्रण किया है। तदनन्तर रीतिकाल में कृष्ण एवं राधा की सामान्य नायक-नायिका के रूप में उद्भावना की गई है। अस्तु कृष्ण को प्रेमी, कामुक एवं विलासी बताया गया। आधुनिक युग में इन्हीं रूपों का युगानुकूल परिष्कार किया गया है।

आधुनिक काव्यकारों ने कृष्ण के प्राचीनतम रूपों का आधार तो लिया है किन्तु यथार्थ एवं आदर्श मूल्यों को वाणी प्रदान करने हेतु उन रूपों में बौद्धिक परिवर्तन भी किया है। ईश्वर-प्रेम का स्थान मानव सेवा, धर्म की रक्षा एवं अधर्म का नाश का रूप राष्ट्रोत्थान एवं सांस्कृतिक जाग्रति ने ले लिया है। आखिर

यह सत्य तो है ही कि आज का युग आस्था, विश्वास एवं अन्धानुकरण का नहीं है। अस्तु प्राचीनतम को नवीन जीवन मूल्य प्रदान किया गया।

आधुनिक युग के आदिकवि भारतेन्दु के कृष्ण प्राचीन हैं किन्तु जीवन की यथार्थ समस्यायें नवीन हैं। आस्था, विश्वास पुराने हैं किन्तु जीवन-दर्शन आधुनिक विचारों से परिपूर्ण है। भारतेन्दु युग तक कृष्ण का प्राचीनतम रूप न तो त्यागा जा सका और न उसे अग्रसरित किया जा सका।

एक स्थान पर कृष्ण के विविध रूपों का संकेत करते हुए डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, "कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठरत्न हैं, वीर हैं, कंसारि हैं, दूसरे में वे गोपाल हैं, गोपीजन-वल्लभ हैं, राधा सुधा मान शालि-वनमाली हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है पर दूसरा रूप ही प्रधान हो गया और पहला रूप गौण।"[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त दोनों रूप आधुनिक युग में परिवर्तित हुए हैं। वस्तुत: कृष्ण का उत्तर जीवन आज की परिस्थितियों में अधिक आवश्यक एवं तुष्टिकारक हो गया है। कृष्ण का प्रारम्भिक जीवन यद्यपि आज की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं था किन्तु हरिऔध जैसे सुकृती कलाकार की तूलिका से गोपाल, गोपीजनवल्लभ, राधावल्लभ का जो नवीनतम स्वरूप बन सका है, वह वस्तुत: परवर्ती कवियों का चेतना-स्रोत बन गया। इसी सन्दर्भ में डॉ० पुष्पपाल सिंह एक स्थान पर कहते हैं, "प्रियप्रवास चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कृष्ण कथा-काव्यों में नवीन दिशाबोधक मील का पत्थर है। इसके प्रभाव से परवर्ती कृष्ण काव्यों में उनके चरित्र के मधुर पक्ष को सर्वथा नयी भूमि पर प्रस्तुत किया गया है।"[2]

आधुनिक कृष्ण काव्यों में कुछ महाभारतीय कथा से प्रभावित हैं, कुछ भागवत का समाश्रयण कहते हैं, कुछ आधुनिकतम नवीनताओं से परिपुष्ट हैं और कुछ ने भक्तिपरक राजमार्गों का अनुसरण किया है। हमारा उद्देश्य उन समस्त काव्यों में कृष्ण के प्राचीनतम अथवा नवीनतम रूपों का चित्रांकन है। भारतेन्दु के प्रेमगीत तथा रम्यरास, फेरिमिलिबो, प्रेमरसमदिरा, श्रीकृष्णचरित, नारायण स्वामी जी की वाणी, ब्रजबिहार (रंगीलाल कृत्), ब्रज माधुरी सुधा, प्रेम की पीर, गोविन्द विलास, श्री जुगलपद वन्दन, काव्य नवनीत, श्रीकृष्ण कौस्तुभ और गोपाल विलास आदि प्रमुख ग्रन्थ भक्तिकालीन कृष्ण के बाल एवं किशोर रूप का चित्रण करते हैं। प्रियप्रवास, कृष्णायन, मधुपर्क, द्वापर, उद्धव शतक (रत्नाकर एवं रसाल), भ्रमरदूत, कनुप्रिया आदि प्रमुख काव्य कृष्ण के ब्रह्म अवतार एवं धर्म संस्थापक रूप की मानवीय आधार पर नई व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अब हम कृष्ण के समग्र जीवन-कृत्यों के आधार पर उनके चरित्र का निर्धारण करेंगे।

(क) बाल एवं शृंगारी व्यक्तित्व

1-रूप-निधि

कृष्ण के शृंगारी व्यक्तित्व की मूल सम्पदा सौंदर्य ही है जिसका विस्तार समस्त कृष्ण काव्यों में प्रतिध्वनित हुआ है। वे रूप के ऐसे सागर हैं जिसमें एक बार अवगाहन करने वाला प्राणी पुन: निकल नहीं पाता। गोपियाँ इसीलिए तो आजीवन उस रूप माधुरी पर बिना मोल बिकती रही हैं,[3] अपने को ठगाती रही हैं, तन, मन, प्राण को न्योछावर करती रही हैं। सौंदर्य के साथ ही त्रिभंगी नटवर की बंकविलोकनि, रसभरी

1-मध्यकालीन धर्मसाधना-डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 126, 2-आधुनिक हिन्दी कविता में महाभारत के कुछ पात्र-डॉ० पुण्यपाल सिंह, पृष्ठ-28, 3-प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ 158, ब्रजमाधुरी सुधा-द्वारकेशलाल जी, पृ०69 (अली! हौं बिनमोल बिकानी)

चितवन, मधुर मुस्कान, मधुर-मधुर अधरों पर वंशी की ध्वनि और शरीर पर पीला दुपट्टा, गले में वनमाल, कंधों पर कमरी और हाथों में लकुटी आदि उस रूप समुद्र की उज्ज्वल उत्ताल तरंगें हैं जिसमें आबाल बृद्ध, पुरुष तथा स्त्रियाँ फँसती रही हैं। वास्तविकता यह है कि जिसने एक बार कृष्ण को देख लिया उसके तन, मन और प्राण उसके वश में नहीं रहना चाहते और उस रूप-माधुरी से आत्मसात् होने की इच्छा व्यक्त करने लगते हैं-"लखतहि हौं सखि! भइ वश ताके, बड़ी बुरी यह बात"[4] एक सखी रूपमाधुरी से घायल होकर आप-बीती सुनाती है जिसमें उस पर रूप का जादू लग गया है-

गयो हरि मो पै जादू डार।
पिय दृग पिय-रस-रूप-माधुरी, दृगन बचाइ निहार
रस-लंपट दृग-पट घूँघट पट, करन चहत जनु पार। -(प्रेमरस मदिरा, पृष्ठ 157)

रूपसागर ने अपनी ओर दो धाराओं को और खींच लिया-उत "कृपालु" नागरि इत गागरि बहत प्रेम-जलधार"[5] कृष्ण ने घड़ा फोड़ दिया। एक ओर सखी के नेत्रों से प्रेमाश्रु और दूसरी ओर घड़े से जल बह रहा है।

2-नन्द नन्दन

गोकुल में प्रकट होते ही कृष्ण समस्त ब्रजवासियों को बरवस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। मध्यमवर्गीय हिन्दू परिवार में बालक से सम्बन्धित जितने नैत्यिक कर्म होते हैं उन सबका समावेश आधुनिक काव्यों में हुआ है। कृष्ण के बाल-जीवन में जो अलौकिक घटनायें घटती हैं और यशोदा को जिन पर आश्चर्य होता है उन घटनाओं का आधार महामानवत्व है, यह कृष्ण स्वयं माता से बताया करते हैं। सूर आदि भक्त कवियों ने जिस प्रकार पालने में झूलना, अँगूठा चूसना, लोरियों के साथ सोना, गाना, किलकारी मारना, हँसना आदि चित्रित किया है उसी प्रकार आधुनिक काव्यों में भी ये सभी घटनायें एवं कृत्य वर्णित हैं। कंस प्रेरित पूतना का उद्धार दुग्धपान करते ही कृष्ण कर देते हैं। नामकरण के अवसर पर गर्ग मुनि नवजात बालक का नाम कृष्ण रखते हैं और उसे साक्षात् परब्रह्म, असुर-विनाशन, जनहितकारी बताते हैं। तदनन्तर शकटासुर, प्रलम्बासुर, अघासुर, तृणावर्त, वत्सासुर, वक, धेनुक, केशी, व्योमासुर के प्राणघातक यत्न कृष्ण के ऊपर चलने लगे और उनको क्रम-क्रम से कृष्ण विनाश करने लगे तथा भयाक्रान्त गोपों को राहत देने लगे।

अब कृष्ण बड़े हो गये। अन्नप्राशन भी हुआ। नन्द ने शिशु-मुख को स्वयं जुठराया। कुछ "अटपटी कलबल" बातें भी करने लगे हैं जिससे अरुण अधर एवं दोनों दंतुलियों की चमक स्पष्ट दिखायी देने लगी। नन्द और यशोदा दोनों को कृष्ण बारी-बारी से रिझाते रहते हैं- *"चतुर श्याम पितु मातु रिझावहिं, बारी-बारी दुहूँ दिशि धावहिं"*[6] देहली लाँघ नहीं पाते, प्रयास करते हैं। अपनी असफलता पर रोते हैं आश्चर्य है कि जिस प्रभु ने तीन पग में ही सम्पूर्ण पृथ्वी को नाप लिया था वह आज देहरी पर नहीं चढ़ पा रहा है। कृष्ण यशोदा को "माई" नंद को बाबा और बलराम को भैया कहने लगे हैं। गायों का नाम भी इन्हें याद हो गया है-"लै लै नाम बोलावहिं गैया"। रोटी-माखन माँगना भी सीख गये और मिलने में जरा देरी हुई नहीं कि आँगन में गिरकर मचलना प्रारम्भ। कृष्ण का जब अकेले वश नहीं चलता तब बलराम को भी बुला लेते हैं। आगे से संकर्षण यशोदा की साड़ी खींचते हैं और पीछे से कृष्ण वेणी। ऐसे समय में

4-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 156, 5-वही, पृष्ठ 157, 6-कृष्णायन, पृष्ठ 20

नन्द भी उन्हें ऐसा करने में प्रोत्साहन देते हैं। नन्द स्वयं माखन खिला देते हैं। इसी बीच माँ के द्वारा यह सुनकर कि माखन खाने से चोटी नहीं बढ़ती, दूध पीने से बढ़ती है, कृष्ण हाथ से माखन फेंक देते हैं और चोटी का स्पर्श करते हुए दूध माँगते हैं- *"देहि अबहिं मोहि दूध पियायी, कबहुँ न खैहौं माखन माई।"*[7] दूध पिया भी किन्तु चोटी ज्यों की त्यों। रुदन स्वाभाविक ही था। यशोदा ने भी-"अंक उठाय मयंक दिखावा," देखते ही कह बैठते हैं" मीठ यह माई, खैहौं चंदा देहि मँगायी, यशोदा द्वारा प्रस्तुत किये गये विविध पकवानों को भी फेंक देते हैं। अन्त में यशोदा कृष्ण को जल प्रतिबिम्ब दिखाकर "देखु लाल! चन्दा यहु आवा" कहती हैं" कृष्ण उसे पकड़ने का असफल प्रयास करते हैं और कहते हैं, "यह तौ झलमलात अकुलायी, इत पकरहुँ उत जात परायी।"[8] कृष्ण को बहकाने वाला यशोदा का उत्तर मिलना सटीक है-

कहत यशोदा मति-इन्दु अति, तुम ते लाल डेरात,
जान देहु अब गेह निज, साँचहुँ यह अकुलात।" (कृष्णायन, पृष्ठ 21)

अरुझे हुए बालक को शान्त करने के लिए यशोदा टोना-टोटका का भी सहारा लेती हैं।[9]

आँगन में नृत्य करना, यशोदा की गोद में बैठने के लिए झगड़ना, रूठना, धूल में लोट जाना, माखन चुराना और पकड़े जाने पर सफाई के साथ अपने को निरपराधी सिद्ध करना कृष्ण सीख गये हैं।[10] झूठे रोते हुए कृष्ण दुलहिन माँगते हैं।[11] बलदाऊ के द्वारा सिखाये जाने पर कृष्ण की मार्मिक शिकायत माता को विह्वल कर देती है-

"मैया! दाऊ बहुत खिझाया, कहत-बाबा तोहि हाट विसावा।"
पूछत सखा "कहाँ तव ताता? सब मिलि कहत तुमहु नहिं माता।
"नंद यशोदा गौर तनु, तुम कत श्याम शरीर?"
चुटकी दै पूछत सखा, सिखै देत बलवीर।" कृष्णायन, पृष्ठ-22

यशोदा उन्हें अपना वास्तविक पुत्र बताकर और यह कहकर कि तुम्हारा शरीर चन्द्रमा से भी अधिक उज्ज्वल है, सन्तुष्ट करती है; पैर धुलवाकर कृष्ण जेवन हेतु नन्द के साथ बैठते हैं। खाते कम हैं मुख में लपटाते अधिक हैं। स्वयं नहीं खाते बल्कि बार-बार नन्द मुख में डालते हैं। सहसा मिर्च की कडुआहट से नेत्रों में आँसू आ जाते हैं। रोते हुए द्वार पर गये और रोहिणी ने मधुर कौर खिलाये।

एक दिन मनसुखा और सुदामा बाँह पकड़कर कृष्ण को माटी खाने के अपराध में माँ के समक्ष हाजिर करते हैं और स्पष्ट बयान करते हैं कि "हम देखेउ हरि माटी खायी।" कृष्ण माँ को समझा देते हैं। "खेल हारि ये रूठे, लाये दंड दिवावन झूठे।" यशोदा ने विश्वास किया और पुन: खेलने के लिए प्रेरित किया किन्तु माटी खाते हुए कृष्ण को यशोदा ने स्वयं देख लिया और सांटी लेकर दौड़ती हुई कहती हैं-"निकारहु माटी"। अब तुम मुझे कैसे झुठलाओगे। कृष्ण ने वदन विस्तार किया और ब्रह्माण्ड दिखाकर अपनी माया का परिचय दिया। माँ के आग्रह पर मुख बन्द किया और कहने लगे कि जब देखो तभी तुम सांटी लेकर दौड़ती हो। इसी प्रकार गोचारण प्रसंग में जिन राक्षसों का वध किया और ग्वाल-बालों को बचाया वहाँ अधिक उनका अलौकिक बल ही प्रधान था किन्तु दर्शकों एवं माता-पिता को इसका आभास नहीं होने दिया।[12]

7-कृष्णायन, पृष्ठ 20, प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 12, 8-कृष्णायन पृष्ठ 21, 9-वही, पृष्ठ 21, 10-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 121 और 131, 11-वही, पृष्ठ 126, 12-कृष्णायन, पृष्ठ-22, 23

कालिय-दमन प्रसंग में कृष्ण यशोदा को अपने गुरुत्व का भान नहीं होने देते हैं। कालीदह से निकलने पर यशोदा जब गले लगा लेती हैं और "तजि निर्मोही! मोहिं कहूँ धावत" कहती है, तब कृष्ण अपनी चातुरी से नया प्रसंग वर्णित करते हैं। वे कहते हैं-"माँ जब मैं जमुना के किनारे बलवीर के साथ खेल रहा था, तब मुझे सहसा किसी ने पकड़कर यमुना में फेंक दिया। मेरे नेत्र खुले तो मैंने अहिराई को देखा। उसने पूछा-"आए कहाँ कन्हाई।" मैंने कहा कि कंस ने मुझे भेजा है और कमल लेने के लिए तेरे घर आया हूँ। कंस का नाम सुनते ही नाग डर गया और कमल सहित मुझे यहाँ भेज दिया।[13] मैथिलीशरण गुप्त कृष्ण के कालीदह में कूदने का दोषारोपण माता पर ही करते हैं-

"तू कहती थी-और चुराना तुम मक्खन का गोला
छींके पर रख छोड़ेंगी सब अब भिड़ भरा मठोला।
निकल पड़ी वे भिड़ें प्रथम ही भाग बचा मैं भोला।" (द्वापर, पृष्ठ-24)

दावानल पान करने पर जब कुछ गोपियाँ कहती हैं-"पेटहिं ते जानत कछु टोना।" तब हँसने लगे और ब्रजनारियाँ भी कहने लगीं-"सिखवहु हमहिं मंत्र बनवारी" तब कृष्ण का उत्तर यशोदा और ब्रजबालाओं को खिझाने वाला बन जाता है। कृष्ण कहते हैं कि मंत्र तो उसे ही आ सकता है जो चोरी करके मक्खन खाता है, जिसके घर नित्य उलाहने आये और उसे सुन-सुन कर माँ नाराज हो, जो अपना शरीर ऊखल में बँधाता हो और भोर होते ही दस सांटी खाता है।[14] इस प्रकार नित्यप्रति अपने कृत्यों से सही अर्थों में नन्द को आनन्दित करने वाले बने रहते हैं।

3-गोपाल

यहाँ हमारा उद्देश्य गोचारण, गोपालन एवं गोप-बालकों के सहवास में रहने से है। कुछ दिनों तक बलराम के साथ ही खेलते रहे किन्तु बड़े होने पर गोकुल के अन्य गोप-बालक भी मिल गये जिनके साथ कृष्ण की मित्रता थी। उनके साथ खेलना, उठना, बैठना, स्नान करना, गोचारण करना, समूह बनाकर यमुना के किनारे गोपियों की राह रोककर दधि का दान लेना आदि नित्य कर्म हो गया था।

सख्य-प्रेम से विभोर श्रीकृष्ण अपनी भगवत्ता को भूलकर एक साधारण बालक की तरह सखाओं के संग भोजन करते हुए उन्हें प्रसन्न कर रहे हैं। श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ बैठकर भोजन कर रहे हैं। बार-बार सखाओं के मुख से कौर छीन-छीनकर खा रहे हैं एवं ग्वाल इधर-उधर भाग रहे हैं, जिनका अभिप्राय यह है कि हम अपना भोजन तुमको नहीं देंगे। इसी बीच मनसुखा एक चाल चलता है और कहने लगा, "हमारी दही-पकौड़ी इतनी बढ़िया है कि जो कोई खाय बस खाता ही रह जाये।" यह सुनते ही तत्क्षण श्रीकृष्ण अपना मुख खोलकर उठ खड़े हुए और मनसुखा चालाकी से मुख में न डालकर उनके गाल में लगा देता है।[15]

आज लाल रूठ गया है। "कामरि" से मुख ढककर सो गया है। माँ बहुत प्रयास करती हैं किन्तु लाल उठता नहीं और न बोलता ही है। भौंहों में क्रोध है। कारण पूछने पर भैया द्वारा किये गये कथन का उल्लेख करते हैं-

"बिनु पितु-मातु आपु कह मो कहँ, हँसत ग्वाल दै ताल।
बाबा तोहि परो पायो कहुँ, कब लौं कहौं कुचाल॥"[16]

13-कृष्णायन, पृष्ठ-34, 14-वही, पृष्ठ-36, 15-(क) प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-134, (ख) गोपाल विलास, पृष्ठ 123, 124, 125, 16-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 136

यशोदा ने कहा कि बलराम जैसा है वैसा तुमको भी कहता है। गायों को एकत्रित करने के प्रश्न पर कृष्ण एवं सखाओं के मध्य कुछ कहा-सुनी हो जाती है। सखागण कृष्ण को डाँट रहे हैं-"अरे कन्हैया! तुम हमें आँख मत दिखाना। अपनी गायों को निकालकर पृथक् कर लो तथा अपने आप चराओ। हम बार-बार तुम्हारी धौंस नहीं सह सकते। तुम अपने को क्या समझते हो? तुमको हम बलराम का अनुज समझकर बचाते रहे हैं। तुम कभी डेरे पर जाकर सो जाते हो, कभी किसी पेड़ पर चढ़कर वंशी बजाया करते हो, हम गाय चराने के लिए तुम्हारे बाप के नौकर नहीं हैं जिनका भय दिखाते हो। तुम्हारे नन्दबाबा का दिया हुआ भी नहीं खाते और न उनकी छाँव में रहते ही हैं।[17] एक और आनन्ददाई प्रसंग कितना मार्मिक है जिसमें बाल स्वभाव का सफल चित्रण है-कृष्ण सखाओं से छिपकर कहीं दूर जाकर वंशी बजा रहे हैं। सखाओं ने कई बार पुकारा और बलराम को ढूँढ़ने के लिए भेजा। जब कृष्ण मिले तब बलराम ने कृष्ण का कान पकड़ लिया और कहा "क्यों रे! मैं तुझे कब से टेर रहा हूँ और तू इधर छिपकर मुरली की तान ले रहा है। चल, शीघ्र ही गायों को हाँक कर ले आ। सखागण अत्यन्त क्रुद्ध हैं। कान पकड़े हुए बलराम चले जा रहे हैं और कृष्ण रोते हुए उनके साथ जा रहे हैं। दूर से ही जब सखागण देखते हैं तब कहते हैं, "क्यों रे कनुआ! तू अभी तक कहाँ छिपा था। तू जितना ही छोटा है उतना ही खोटा है। तू झूठ-मूठ में ही रो रहा है ताकि सब लोग क्षमा कर दें।"[18] इन रूपों का वर्णन कुछ हेर-फेर के साथ गोपालविलास, गोविन्द विलास आदि प्राचीन परम्परा वाले ग्रन्थों में भी निबद्धित है। गोचारण प्रसंग में कृष्ण अपने अति लौकिक कृत्यों में भी अपने मित्रों की सहायता की अपेक्षा रखते हैं और आत्मीयता को विघटित होने से सदैव बचाते रहते हैं। अपने सुहृदों को माखन-चोरी एवं गोपी प्रसंग में भी साथ रखते हैं। वैसे राधा-मिलन प्रसंगों के अतिरिक्त कृष्ण सर्वत्र अपने ग्वाल-वालों को साथ रखते हैं। यही कारण है कि कृष्ण के मथुरा चले जाने पर भी वे याद करते हैं-

चिन्ता करे बलाय हमारी जगती के जंजाल की।
बलिहारी बलिहारी, जय जय गिरधारी गोपाल की।[19]

और कृष्ण भी उद्धव को गोकुल भेजते समय अनुराग भरे हृदय से अपने मित्रों का स्मरण दिलाते हैं—"ऊधौ मोहिं सुधि विसरे न बिसारौं।"[20]

4-राधावल्लभ

माखन-चोरी प्रसंग के कृष्ण गोपियों के प्रेमालम्बन बने। राधा को भी कृष्ण ने अपने सौंदर्य, चपल वाक्-पटुता एवं विनोदी स्वभाव से मनोवैज्ञानिक रीत्या प्रेम-विवश कर लेते हैं। संयोग से एक दिन ब्रज की गलियों में राधा उनकी निगाह में पड़ गई। इस प्रथम मिलन में ही परिचय करने के समस्त कार्यव्यापार सम्पन्न कर लिये जाते हैं। राधा जब उनके चौर-कर्म की चर्चा करती है तब "लीन्हेउँ काह तुम्हार चोरायी?" कहकर सन्तुष्ट कर देते हैं।[21] साथ ही दूसरे दिन खेलने हेतु निमंत्रित भी करते हैं। इसके बाद किसी-न-किसी बहाने दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए विह्वल बने रहते हैं और उपयुक्त अवसर पाकर मिल भी जाते हैं।[22] कभी खरिक में गोदोहन करते राधा के ऊपर दुग्ध धार चलाते हैं, कभी निकुंज में रति-क्रीड़ा करते हैं, कभी वंशी बजाकर राधा को बुला लेते हैं। राधा-कृष्ण की चपलता एवं नागरता पर मुग्ध हैं। उसे जब अधिक दिनों तक कृष्ण से मिलने का बहाना नहीं मिलता तब साँप के काटने का बहाना

17-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 137-138, 18-वही, पृष्ठ 140-141, 19-द्वापर, पृष्ठ 69-70, 20-गोविन्द विलास, पृष्ठ 208, 21-कृष्णायन, पृष्ठ 30, 22-वही, पृष्ठ 30-31

बनाकर गरुड़ी के रूप में कृष्ण को बुला लेती है।[23] राधिका कृष्ण की आराधिका बन गयी और कृष्ण राधा के जीवनाधार बन गये।[24] कृष्ण का काला रंग राधा के मन में ऐसा समा गया है कि वह भी स्वयं इसी रंग की होने की कामना करती हैं।[25]

गोरसदान-प्रसंग में कृष्ण राधा से भी दान माँगते हैं। वे राधा के हाथ से खट्टा माखन भी खाने को उद्यत हैं-

गजड़े वाली गोरस नैक प्याइ जा।
अपने कर कोमल तै तू प्यारी खट्टो मीठो चखाइ जा।" -(गोविन्द विलास, पृष्ठ-69)

कभी-कभी राधा मौन का सहारा लिए हुए कृष्ण को आते बिसूरती रहती है-"आवत श्याम विलोकत राधे"[26] यद्यपि राधा-कृष्ण अभिन्न हैं, यद्यपि कृष्ण अपनी बहुनायकत्व वाली प्रवृत्ति से राधा को विरह-व्यथा से अनुतप्त करते रहे हैं और समयानुकूल उससे एकान्त-स्थल पर मिलकर रति-क्रिया भी सम्पन्न करते रहे हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर राधा के सभी व्यवहार बदल गये हैं, उसे बड़ी आशंका है कि उसके जीवन का "गुजार" कैसे होगा क्योंकि श्याम कुब्जा के वश हो गये हैं।[27] रात-दिन वह चिन्ता-मग्न रहती है।[28] कभी-कभी वह विक्षिप्तावस्था में अपनी सखियों से कहती है "जग में नेह के नातें सांचे", "सखी नन्द लाल हमारा दिल ले गया।"[29] वह रिक्तता का अनुभव करती है-

मैं पनघट-पथ पर खड़ी लिए घट रीते,
जल का कल कल कहता, कितने पल बीते।[30]

कुरुक्षेत्र-मिलन-प्रसंग में राधा और कृष्ण के गूढ़तम प्रेम का प्रकाशन हुआ है। रुक्मिणी द्वारा राधा को गर्म दूध पिलाये जाने से कृष्ण का पैर जल गया क्योंकि कृष्ण का चरण राधिका के हृदय में रहता है।[31] रासलीला में राधा को अधिक प्रश्रय दिया है। उसे लेकर एकान्त में जाकर कृष्ण रति-रमण करते हैं।[32] कृष्ण राधा में बस गये हैं-

दृगति श्याम चित चोर बसो री।
अरी मैं तो मदन मरोर मरी। -(गोविन्द विलास, पृष्ठ 140-141)

5-गोपीजन वल्लभ

कृष्ण गोपियों को शैशवावस्था में ही मुग्ध कर लेते हैं। अपने छोटे-छोटे कृत्यों के द्वारा गोपियों को आकर्षित करते हैं। यमलार्जुन प्रसंग में शाखा और पत्तियों छिप जाना, शकटासुर और तृणावर्त आदि के अनिष्ट कृत्यों से बचना आदि ऐसे स्थल हैं जहाँ गोपियों का सहज स्नेह कृष्ण के प्रति उमड़ पड़ा है। वस्तुतः गोपियों का माखन चोरी-प्रसंग से अधिक आनन्द मिलने लगा है। कृष्ण की चपलता, औद्धत्य एवं विनोदशीलता ने गोपियों को बरबस मोह दिया और वे कृष्ण को पति रूप में मनसा वरण भी करने लगीं। उनकी इच्छा यही रहती थी कि कृष्ण किसी समय मेरे भी घर जाकर चोरी से माखन और दधि खाने का उपक्रम करें और मैं छिपकर उसका दर्शन करती रहूँ। ऐसे प्रसंगों में एकान्त स्थान पाकर गोपियाँ कृष्ण को छाती से चिपका लेती हैं, गाल पर तनिक प्रहार करती हैं, नचाती हैं, अम्बर, नूपुर, मुरली और माला

23-राधा-डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ 22, 24-वही, पृष्ठ-30, 25-कृष्ण कारे हैं-पृष्ठ-7, 26-गोविन्द विलास, पृष्ठ 86, 27-वही, पृष्ठ 201, 28-वही, पृष्ठ-202, 29-वही, पृष्ठ 202, 30-राधा-जानकी वल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-3, 31-फेरिमिलिबो, पृष्ठ 210-211, 32-कृष्णायन पृष्ठ, 53-54

छीनती हैं। गोपियों का यशोदा से शिकायत और कृष्ण द्वारा प्रस्तुत सफाई से कृष्ण और गोपियों की आपसी सम्बन्ध का स्वरूप पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है। दोनों के बयान एक-दूसरे से विरोधी हैं। कृष्ण कहते हैं-

"ये मोते गागरि उठवावति, इनकी बड़ी जमात।
गुलचन गाल मार मोंहि सिगरी, हँसत न नेकु लजात।"[33]

गोपियाँ इसका विरोधात्मक उत्तर देती हैं-

"मटुकी फोरि, खाय दधि छलिया, चितबन चोट चलाय।
मोको घायल करि बेदरदी, मन्द-मन्द मुसकाय॥"
वशीकरण, जादू चेटक सब, यह तो जाने माय।[34]

दधिदान, पनघट एवं चीरहरण जैसे स्थलों पर गोपियों की किंकर्त्तव्यविमूढ़ता, विकलता और उद्‌बुद्ध रसिकता कृष्ण के वल्लभ रूप का प्रकाशन करती है। दधि बेचने के लिए जाते समय कृष्ण के नेत्रों से गोपी के नेत्र मिल जाते हैं और वह रूपमाधुरी से व्यथित हो जाती हैं-

"आजु सखि! ह्वै गये नैना चार,
हौं दधि बेचन जात वृन्दावन देख्यो नन्दकुमार।" (प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-157)

और बिना मोल-तोल किये ही बिना दाम के कृष्ण के हाथ बिक जाती हैं और उनका सब कुछ कृष्ण के वश में हो जाता है-"सखी ! मैं बिकी आजु बिनु दाम"।[35]

पनघट पर कृष्ण गोपियों के नैन-सैन, तन-मन और प्राण को बाज की तरह झपटकर अपने अधिकार में ले लेते हैं। एक गोपी इसका स्वयं कथन करती है।[36] गोपियों की व्याकुलता वहाँ अधिक मुखरित हुई है जहाँ वे पागल-सी दही बेचते समय कृष्ण का नाम लेकर पुकारती हैं। ऐसा क्यों न हो? कृष्ण ने जो वंशी बजाकर उन्हें अपने रंग में ही रँग दिया-

"लेहु श्याम! कोउ लेहु गोपाला! बेचत "श्याम" फिरत ब्रजबाला।" [37] गोपियाँ तो कृष्ण के भी मन में बस गयी हैं।[38] चीरहरण में जिन गोपियों ने आत्मभाव से कृष्ण को आत्मसमर्पण किया था उन्हें कृष्ण रासलीला में अपने साहचर्य से मस्त कर देते हैं। कृष्ण के मथुरा जाते समय गोपियों को करुण विछोह सहना पड़ता है। गोपियाँ कृष्ण के लिए कलपती हैं-

1-उड़ि जा रे भ्रमर कहूँ दूरि दूरि।
2-हमसे फिर न भंई दो बातें।
3-देखि हाल जियरा घबड़ावें।
4-निशिदिन तरसत प्राण हमारे।"[39]

कृष्ण-विरह ने गोपियों को बहुत सताया है। उस निर्मोही से वे हार गई हैं। उद्धव से कहती हैं-

1-"मधुप निर्मोही से का मन अटके।
2-कियो छैला छली कैसो छल रे।
3-लगी तन मेरे मदन की फाँस।"[40]

33-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-144, 34-वही, पृष्ठ-145, 35-वही, पृष्ठ-158, 36-कछू सखि! कै गयौ मोपै आज,-"प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-159, 37-कृष्णायन, पृ० 49, प्रेमरसमदिरा "पृष्ठ-149, गोविन्दविलास, पृष्ठ 72, 38-वही, पृष्ठ-98, 39-वही, पृष्ठ 198-199, 40-वही, पृष्ठ 218-219

6-जादूगर सरदार

ब्रज युवतियाँ कृष्ण के रूप पर मोहित तो हैं ही, साथ ही उनकी इन्द्रजाली वाक्‌चातुरी एवं प्रतिभा से वे हतप्रभ हो गई हैं। कृष्ण अपने मनोनुकूल गोपियों से यौवन-सम्पदा का उपभोग कर लेते हैं, यही कृष्ण की जादूगरी है। मंत्रमुग्ध गोपियों के मन-तन कृष्ण के आश्रित हैं। कृष्ण किसी स्थिति में किसी गोपी को मानसिक रूप से स्वतन्त्र नहीं रहने देते, उनके मन का अपहरण कर लेते हैं। यही उनके ठगहार रूप का प्रकाशन हुआ है। विभिन्न स्थलों पर गोपियों ने व्याकुल एवं मोहित होकर जो कुछ कथन किया है, उससे कृष्ण के उक्त रूप का परिचय मिलता है-

"मोहि लियो मो मदन गोपाल, हाय सखी! नजानौ का जादू कर गयो,
लूटि मोहिं लै गयो नन्द कुमार, कान्ह कछु कर गयो टोना री।"[41]

आखिर ब्रज की जब व्याही-अनव्याही सभी गोपियाँ कृष्ण के लिए तड़फ रही हैं और प्राणधार कहकर विलाप कर रही हैं तब यह जादू का ही तो प्रभाव हो सकता है। इसीलिए गोपियों ने उन्हें जादूगर सरदार बताया है।[42] जो गोपियाँ कृष्ण के दान माँगने पर यह कहती थीं कि "अभी कल के छौना आज यौवन दान माँगते हैं" वही कृष्ण के जादू-जाल में फँसकर सब कुछ न्यौछावर कर देती हैं और काम-वाण से आहत हो जाती हैं।

7-चतुर राज-पुरुष

कृष्ण ब्रज में तैयार हुए दही को मथुरा नहीं जाने देना चाहते। सरकार भी तस्कर माल के व्यापार पर रोक लगाती है। यहाँ कृष्ण की शासकीय मनोवृत्ति दृष्टिगत हुई है। इस भाव का सुधारात्मक रूप "कृष्णायन" आदि नवीनतम महाकाव्यों में प्रकट हुआ है जिसका वर्णन आगे किया जायेगा। यहाँ कर लेने के बहाने कृष्ण गोपियों की सम्पूर्ण रूपमाधुरी एवं यौवन सम्पदा का दान ले लेना चाहते हैं, यही अभीष्ट है। दधि का दान तो माँगते हैं किन्तु नवेलियों की जवानी को क्षणिक बताकर प्राप्त करना चाहते हैं-

" दै जा गोरसवा को दान गुजरिया,
मधुमाती यौवन की न जानति हिया लागत कर कान्ह।
कह इतराति रूप यौवन पर चारिहिं दिन महमान॥[43]

नयी वधू से कृष्ण कहते हैं-

" छांड़ि दै हठीली हठ लाज करौना,
तुम भौजी हम दैवर तुम्हरे तुम्हें हमसौं कछु काम पड़ौना।
अबहिं नई दधि बेचन निकसी हँसि-हँसि म्होरो प्राण हरौना।" -(गोविन्द विलास पृष्ठ-71)

यद्यपि गोपी "होति अबेरि लौटि कै मोहन लीजै जो मन भावै" कहकर सन्तुष्ट करना चाहती है, तथापि उसका घूँघट बिना खोलवाय नहीं रहते।[44] कुछ ढीठ गोपियाँ कृष्ण को "यशोदा की सांटी" का ध्यान दिलाती हैं।[45] कृष्ण गोपियों को बहकाते हैं, समझाते हैं, धमकाते हैं, तार्किक रूप से यौवन-दान की सार्थकता बताते हैं किन्तु इसके बावजूद भी वे इठलाती रहती हैं, तब स्पष्ट आदेश देते हैं-

" दधि जोवन अरु रूप को जब लगि देउ न दान।
तब लगि जान न पाउगी, कोटिक करो सयानि।"[46]

41-प्रेमरसमदिरा, पृ.160-166, 42-"सांवरो जादूगर सरदार"-'' पृ.166, 43-गोविन्दविलास, पृ.68, 44-वही, पृ०68, 45-प्रेमरसमदिरा, पृ० 150, 46-श्री सर्वेश्वर, पृष्ठ 53

मध्यकालीन कृष्ण काव्यों में इसका विस्तृत वर्णन प्राप्त है किन्तु अब तक दधि-दान-प्रसंग के आधार पर कृष्ण को "चतुर राजपुरुष" की संज्ञा से अभिहित करने वाले सूर काव्यों के आलोचक डॉ० रमाशंकर तिवारी ही हैं। वे कहते हैं-"कृष्ण वहाँ चतुर राजपुरुष के समान उन तरुणियों को हँसाते हैं, रुलाते हैं, डांटते हैं, पुचकारते हैं, डरपाते हैं, समझाते हैं और अन्ततः मनोनुकूल रीति से उनकी विकसित यौवन सम्पदा को शासन-देय के रूप में स्वायत्त करते और उपभोग करते हैं।[47]

8-औद्धत्यपूर्ण निर्मम रसिक

कृष्ण तो रसिक राज हैं ही किन्तु पनघट एवं दान-लीलाओं में उनके ग्राम्य-व्यवहार का परिचय मिलता है। वे नवेलियों से निर्ममतापूर्वक रसदान लेते हैं। गागर फोड़ना, आँचल खींचना, घूँघट खोलना, रूपमाधुरी का वर्णन करना और चोली फाड़ना आदि तथा गोपियों द्वारा प्रार्थना करते हुए इसका विरोध करना उनके असंस्कृत व्यक्तित्व को प्रकट करता है। एक नई वधू, जो दधि बेचने प्रथम बार जा रही है, भोरी भी है, उसकी सास ने किसी अनुभवशील गोपी के साथ इसलिए कर दिया है कि वह उसे गोरस बेचने की कला में प्रवीण कर दे, कृष्ण को देखकर अत्यन्त संकोच एवं लज्जा से मरी जा रही है फिर भी कृष्ण उसे अपना शिकार बना ही लेते हैं।[48] कृष्ण नवेलियों के रूप का अंश मात्र देखना चाहते हैं और उन्हें उत्साहित करते हुए कहते हैं, "ब्रज में लाज करै सो बौरी, हँसि हँसि के बतरावौ"[49] पनघट पर कृष्ण का आतंक है। पानी लेने जाना ही है। गोपी के सामने बड़ी विवशता है, फिर भी कृष्ण उसे अच्छे लगते हैं-

घेरौ मग ठाड़ौ कान्हा कैसे जाऊँ पनियाँ।
नई चूनरि रंग छुअत दाग परे पकरत कर खुलै कीलककनियाँ।
रीती फिरूँ घर सास-ननद डर नित उठ गारी तानैं कहैंगी लगनियाँ।
कछु जाई चितवनि में गोविन्द मन हुलसत लखि छैल चिकनियाँ।"[50]

कोई भिक्षुक जब किसी द्वार पर पहुँचता है तब उसका प्रथम अस्त्र द्वारमालिक की प्रशंसा एवं आशीर्वाद होता है। राधा से दान माँगते कृष्ण भिक्षार्थी बन गये हैं। पहले तो वे वृषभानु नन्दिनी का जय-जयकार करते हैं और फिर उनके रूप की प्रशंसा।[51] श्याम ऐसे जबरदस्त भिक्षुक हैं कि बिना मनभाया दान लिए द्वार से हटने वाले नहीं। एक गोपी को गागर फोड़ने का उतना अधिक क्रोध नहीं है जितना कि बाँह मरोड़ने का।[52]

भक्तिपरक सम्पूर्ण आधुनिक कृष्ण काव्यों में गोपियों के प्रति कृष्ण का सम्पूर्ण आचरण छेड़खानी का रहा है। माखन लीला से लेकर पनघट, चीरहरण तक के प्रसंगों में सर्वत्र उनके स्थूल अभद्र व्यवहार एवं निर्मम रसिकता का प्रकाशन हुआ है। गागरी फोड़ना, तरुणियों को बाहुपाश में बाँध लेना, मार्ग रोकना, गाली देकर भाग जाना तथा नाना प्रकार से उन्हें प्रताड़ित करना उनका नैत्यिक कर्म बन गया था जिसके आधार पर वे गोपियों से मनचाहा रस प्राप्त करते रहे हैं। गोपियाँ भी कभी-कभी खीझती हैं, चिंतित होती हैं, किंकर्त्तव्यविमूढ़ होती हैं और कभी-कभी यशोदा के पास एक शिकायत संदेश भेजने के लिए कार्यक्रम भी बनाती हैं।[53] गोपियों द्वारा यशोदा के समक्ष कृष्ण की शिकायत का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, उससे भी उनका उक्त रूप स्पष्ट होता है।[54]

47-सूर का शृंगार वर्णन, पृष्ठ-285, 48-सर्वेश्वर, पृष्ठ-51, 49-सर्वेश्वर, पृष्ठ-51, 50-गोविन्द विलास, पृष्ठ 91-92, 51-"जय जय श्री वृषभानु नन्दिनी रूपनिधान सर्वगुण आगरि सोहत मुख जन शरच्चन्दनी।"-गोविन्द विलास, पृ० 71, 52-आज श्याम मोरी गागर फोरी। गागर फोरी भला सो तो फोरी, ताहू पै लंगर बहियाँ मरोरी।" -(सर्वेश्वर, पृष्ठ-46), 53-गीतगोविन्द, पृ० 94, 54-वही, पृ० 77

9-वाक् चातुर्य एवं विनोदशीलता

कृष्ण बातें बनाने में बड़े निपुण हैं। यह उनकी वाक्चातुरी ही है, जिससे वे राधा को अपने प्रेम-पाश में बाँध सके हैं। माखन चोरी के प्रसंग में माँ यशोदा को भी चकमा देकर साफ-साफ निर्दोष बच जाना और उल्टे गोपियों को ही यशोदा से भला-बुरा कहलवा देना उनकी चालाकी है। गोपियों की शिकायत माँ के पास पहुँची और कृष्ण भी बयान देने के लिए उपस्थित हैं, "मैया, मैं सच्ची-सच्ची बात बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुन। कल यमुना किनारे सखाओं के साथ स्नान करते समय सखियों ने मुझे अपने पास बुलाया। मैं बुलाने पर नहीं गया। तब ये सखियाँ तुम्हारे पास ले आने का भय देने लगीं। ये मुझसे जल के भरे घड़े उठवाती हैं। ये बहुत बड़ी संख्या में हैं, मैं अकेला क्या करूँ। मैया सबकी सब बार-बार मेरे गाल में गुलचें मारती हैं, निर्लज्ज की तरह हँसती हैं और जब कभी इनकी आज्ञा नहीं मानता तब अप्रसन्न हो जाती हैं। ये बिना एक के सात बनाने वाली हैं।"[55] इसी प्रकार कृष्ण की दूसरी सफाई देखिये-"मैया! गोपांगनायें हमें तंग करने पर तुली हुई हैं। मुझे अकेला देखकर हृदय में विष भरे हुए बड़े मधुर शब्दों में बुलाती हैं। मुझे पकड़कर सबकी सब बारी-बारी से नचाती हैं, नूपुर, मुरली, पीताम्बर छीनती हैं। यह सब बाबा की सौगन्ध खिलाकर दूसरे दिन आने के लिए प्रतिज्ञा भी करवा लेती हैं। मेरे मुख में हठात् दही लगाकर ताली बजाकर हँसती हैं और हाथ पकड़कर तेरे पास लाती हैं। मैं क्या करूँ? मैं छोटा-सा बालक हूँ एवं ये हृष्ट-पुष्ट (धींगरी) हैं।"[56] इन उक्तियों से गोपियाँ बहुत आनन्दित हुईं। अपने प्रति नितांत प्रतिकूल परिस्थितियों को सानुकूल करने में कृष्ण बड़े सिद्धहस्त हैं। मार्ग तो रोकते हैं स्वयं किन्तु गोपियों को उसी दण्ड में फँसाते हैं-

"मैया यह झूठहि दोष लगावै।
भवन रहूँ तो तुही कहैगी, गौ-चारन नहिं जावै।
जौ जाऊँ तौ यह मग छेड़े फेर उराहनौ लावैं।" -(सर्वेश्वर, पृष्ठ-35)

दान के अवसर पर जब कृष्ण नई गोपियों को भी नहीं छोड़ते तब गोपियाँ कहती हैं-

"याको घूँघट पट न उघारो।
परत्रिय देखि अनीति करौ तम नई-नई रीति निकारो।
बड़े महर की पुत्रवधू है, नेक तौ बात विचारो।
भले बुरे की लाज न तुमको मन भावति करियारो।"

इस पर कृष्ण का उत्तर-

"जो ऐसी कुल लाजवती तू तौ क्यों भोर ही घर-घर डोले।
जो बनमांहि फिरै मदमाती, आप समान न और कौ तोलै।"[57]

वाक् चातुरी एवं विनोदशीलता कृष्ण के शृंगारी व्यक्तित्व का प्रधान अंग है।

10-वंशी-वादक

मुरली कृष्ण की शोभा का प्रधान अंग है। कृष्ण के ब्रह्मत्व को द्विगुणित करने वाली मुरली है। त्रैलोक्य के चर-अचर विमोहित हो जाते हैं जब वंशी की ध्वनि निकलती है। विधि, हरि, हर, जड़, जंगम सभी गोपियों के लिए वंशी वह मोहक मंत्र है जिसके माध्यम से कृष्ण गोपियों को आत्म-समर्पण के लिए

55-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 144, 56-वही, पृष्ठ 146-147, 57-सर्वेश्वर, पृष्ठ 52

जब मोहित हो जाते हैं तब साधारण गोपियों का स्वर सुनते ही उस दिशा में दौड़े जाना आश्चर्य नहीं है।[58] विवश करते रहे हैं।[59] मुरली से परेशान होकर एक गोपी कहती है-"श्याम ! तेरी मुरली ने जुलुम करो।"[60] मुरली जहाँ गोपियों की सुधि-बुधि भुलवाने में सफल होती है वहीं कृष्ण की प्राणाधार भी हैं। मुरली के अभाव में कृष्ण एक क्षण भी चैन से नहीं रह सकते। किसी गोपी ने मुरली चुरा लिया। कृष्ण के पूछने पर कोई कहती है कि सुना है कि कल किसी ने भाड़ में डालकर जला दिया। किसी ने कहा कि कहीं देखा है किन्तु अब याद नहीं कि कहाँ देखा है। तीसरी ने कहा कि बहुत अच्छा हुआ कि मुरली गायब हो गई। लोकापवाद-घननाद पर राधा का मन मोर बन जाता है और उसे ऐसा करने के लिए वंशी ही विवश करती है। तनमन हार कर राधा बावली हो जाती है-

"नीली री मुरली ! तूने मुझे पुकारा।
क्या करूँ कि मेरा तन हारा, मन हारा।"[61]

कृष्ण की मुरली वादन कला का चित्रण तथा उसका प्रभाव आलोक्य काव्यों में प्राय: एक-सा हुआ है।

11-रास-रमणक

रास के आधुनिक व्याख्यायित रूप का चित्रण मधुपर्क में हुआ है जिसे आगे एक अन्य प्रसंग में प्रस्तुत किया जायेगा। यहाँ परम्परित रास के नटनागर का रूप जो भक्तिपरक आधुनिक काव्यों में रूपायित हुआ है, उसी के आधार पर कृष्ण की नृत्य कला का चित्रण प्रस्तुत है। भागवत के रास पंचाध्यायी के अनुकरण पर कइयों ने इसका चित्रण किया है।[62] रायगढ़ नरेश राजा चक्रधर सिंह की एक कृति "रम्यरास" रास का सम्पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करती है। वंशी बजी, मृदंग, वीणा, झाँझ और साल लेकर कुलांगनायें बढ़ चलीं। मधुर रागिनी से "सचेत जो थे, जड़मूर्ति से हुए, सचेत ही से जड़ शीघ्र हो गये।"[63] नृत्य करते हुए कृष्ण कभी छिपते हैं और कभी प्रकट हो जाते हैं। संयोग-वियोग भाव से कृष्ण ने रास का रहस्य बता दिया।[64]

नृत्यावसान में थकी हुई गोपियाँ कृष्ण के सहारे टिक गईं। कुछ ने कृष्ण के मुख से मुख लगा लिया। अपने विविध रूपों से जब कृष्ण समस्त गोपियों को आनन्द से थका देते हैं तब जल बिहार भी प्रारम्भ होता है।[65] भागवत के अनुसार चित्रित रास में कृष्ण की नृत्य कला एवं मनमोहक रूप का चित्रण अधिक हुआ है।

12-मान लीलाओं के रसज्ञ

राधा की मान लीलाओं में कृष्ण की समस्त नागरता, धृष्टता एवं चपलता ध्वस्त हो गई है। वे गोपियों को इस प्रकार विरह सहते रहे वैसी स्थिति राधा के साथ नहीं है। राधा के मान में कृष्ण एक अबोध प्रणयी बन गये हैं। प्रथम मान में तो कृष्ण की वाक्चातुरी सफल हो जाती है। रात्रि भर चन्द्रावलि के साथ रति रमणोपरान्त प्रात: कृष्ण-राधा के समक्ष उपस्थित हुए तब उनकी दशा पर राधा व्यंग्य करती है-"अरे प्रियतम! आज तो तूने अदभुत वेष बना लिया है। चन्द्रावलि के चरणों में आँसू बहाते हुए भाल पर महावर लगा लिया है। पीताम्बर उपहार में देकर अरुण ओढ़नी धारण किये हो।" बचन अरबरे, स्वेद कंप तनु तव

58-प्रेमरसमदिरा, पृ.113, 59-वही, पृ.114, 60-वही, पृ.114-115, 61-राधा-जानकीवल्लभ शास्त्री, पृ.-1, 62-प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, नारायण स्वामी आदि, 63-रम्यरास, पृ.121-122, 64-वही, पृ.128-130, 65-वही, पृ.133-146

अपराध जनायो, बिखरे केश, नैन रतनारे मुरली कित बिसरायो। "हे निर्लज्ज तुम धन्य हो"[66] कृष्ण बड़ी चतुराई से उत्तर देते हैं-तू मेरे ऊपर मिथ्या दोषारोपण करती है। मानिनि सुनो मैं सत्य-सत्य कहूँगा। कल सखियों ने कुंज में ललिता को बैठाकर मुझसे कहा कि कुंज में चलो राधा तुम्हें बुला रही है। तुम्हें जानकर मैं वहाँ चला गया। घना अन्धकार था, इसलिए उसका मुख भी देख नहीं पाया। मुझे बताया गया कि मानिनी ने मान किया है, अस्तु मैंने अकुलाकर चरण पकड़ लिया और रुदन करने लगा। मुझे रोता हुआ छोड़कर ललिता भाग गई और मैं राधे-राधे कहता हुआ कुंजों में भटकता रहा इसीलिए मेरी यह दशा हो गयी है। वंशी भी कहीं छूट गई। "इस झूठे बयान से राधा का मान टूट जाता है।"[67] वास्तव में कृष्ण का यह रूप बड़ा ही दुर्लभ है। गोपियों को इसी प्रकार कृष्ण ठगते रहे हैं।

आगे की मान लीलाओं में कृष्ण को विरह की अधिक यातनायें सहनी पड़ी हैं। यद्यपि राधा भी कृष्ण की विरहाग्नि से बच नहीं सकी हैं किन्तु सम्पूर्ण मान लीलाओं में कृष्ण का बिरही रूप ही प्रमुख है। राधा के वियोग में एक क्षण भी नहीं बिता पा रहे हैं-

" राधे बिनु आधे पल मो कहँ लगै युगसम वीर,
हा राधे! हा प्रेम अगाधे! तुम बिनु कछु न सुहाय,
छोड़ि मोहिं राधे कितै गई।"[68]

राधा के मान वियोग में कृष्ण का सम्पूर्ण विरह रस एकत्रित हो गया है जिसके कुछ उदाहरण निम्न हैं-

" कुँवरि बिनु अब तो रह्यो न जाय।
कुँवरि बिनु कुँवर न उर धर धीर।
लली बिनु सब विपरीत लखात।"[69]

कृष्ण का अन्य रूप वहाँ विकसित है जहाँ उनकी विरह कातरता इस स्थिति में पहुँच जाती है कि वे गिर पड़ते हैं, सखियों के पैर पर पड़ने लगते हैं और हा/हा करते हुए विलाप करते हैं। राधा के कुंज भवन में पहुँचने पर सखियाँ उन्हें अन्दर नहीं जाने देतीं और न कुछ बात ही करती हैं क्योंकि राधा रानी का ऐसा आदेश है कि कृष्ण से कोई बात न करे और मेरी उपस्थिति की सूचना भी उन्हें न दे और उनके आते ही ललिता सूचना दे दें। जब सखियों का भी सहयोग वे राधा तक पहुँचने में नहीं पाते तब उनका धैर्य और वाक्चातुरी टूक-टूक हो जाती है। उनका सारा गुमान नष्ट हो जाता है और राधा के गमन का मार्ग पूछते हुए विलाप करते हैं-"बताओ सखि ! राधे गई कौनी ओर"[70] और ललिता से सिफारिश करते हैं कि वह किसी भाँति उन्हें राधा से मिला दे। ऐसी स्थितियों में कृष्ण को प्रणय राज्य का अपराधी नागरिक कहा गया तथा उन्हें जितनी भी कठोर सजा दे उतनी ही कम है।

मान लीलाओं का वर्णन भारतेन्दु जी के प्रेम गीतों में, गोविन्द विलास, ब्रज बिहार आदि काव्यों में विस्तार से हुआ है।

यह है मथुरा जाने से पूर्व कृष्ण का शृंगारी स्वरूप जिसे प्राय: भक्त कवियों ने गाया है जिसका चित्रण आधुनिक काव्यों में भी हुआ है। आगे हम कृष्ण के उस महान यशस्वी व्यक्तित्व की परख करेंगे

66-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ 228, 67-वही, पृष्ठ 229, 68-वही, पृष्ठ 234-235, 69-वही, 70-वही, पृष्ठ-258

जिसे भक्तिकाल में स्थान नहीं मिला। कृष्ण का उत्तर जीवन यथार्थ आदर्शों से भरा पड़ा है जिसका श्री गणेश मथुरा गमन से होता है। गोकुल तक तो परम्परित बाल एवं किशोर रूप ही अधिक मुखर रखा जैसा कि सूरदास ने गाया है। वस्तुतः कृष्ण का पौरुष-व्यंजक यशस्वी लोकरक्षक रूप भारतीय चिन्तनधारा का पोषक रहा है जो जन-जन को त्राण दे सकता है। मध्यकाल में इसकी उपेक्षा हुई है।

(ख) परम्परित नवीन रूप

इसके अन्तर्गत कृष्ण यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, कंसारि हैं और राजा हैं। यहाँ कृष्ण का लोकरक्षक एवं धर्म-संस्थापक रूप उमड़ सका है। पीछे हम डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचारों का सन्दर्भ देते हुए कृष्ण-अवतार के दोनों रूपों का उल्लेख कर चुके हैं। कृष्ण के उत्तरार्द्ध जीवन का यह समग्र रूप महाभारत आदि प्राचीन ग्रन्थों में समाहित है, जिसका प्रचलन मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में नहीं हुआ है।

कृष्ण एक दुर्भाग्यशाली राजकुमार थे। जिसके माता-पिता जन्म से बहुत पहले ही कारागार में हों, जिसका जन्म भी कारागार में हुआ हो, जिसके कारण ही माता-पिता को सताया जाता रहा हो, उस बालक का शैशवावस्था से ही वीर होना एवं ब्रज में प्रतिदिन आई हुई अनिष्टकारी घटनाओं का शमन करते रहना, आश्चर्य नहीं है। जिसे आगे चलकर कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, कालयवन जैसे प्रतापी एवं महाबलशाली योद्धाओं का वध करना है उसके लिए बाल्यावस्था में ही अघासुर, बकासुर, केशी जैसे आततायियों को मारकर पूर्वाभ्यास करना आवश्यक था। जिसे सारे देश को भारतीय संस्कृति का पाठ पढ़ाना था, समाज को एकता के सूत्र में बाँधना था, भारतीय एकात्मवाद और मानवतावाद का उद्घोष करना था, उसके बाल-जीवन में ही गोप बालकों के साथ उक्त गुणों का जन्म हो जाना स्वाभाविक था। जननी और जन्मभूमि की मुक्ति हेतु कृष्ण का जन्म है।[71] मथुरा पहुँचने पर सर्वप्रथम कृष्ण ने यही कार्य सम्पन्न किया।

1-कर्त्तव्यनिष्ठता एवं भारतीय एकात्मवाद

श्रीकृष्ण का चरित्र बाह्य एवं आन्तरिक दोनों दृष्टियों से मनमोहक रहा है। एक ओर वे अपनी सुन्दरता से ब्रजवासियों को मोह लेते हैं तो दूसरी ओर अपने कार्यों से उन्हें सुख भी प्रदान करते हैं। कृष्ण में शील एवं सौन्दर्य का समन्वय था और इनकी रक्षा के लिए शक्ति भी थी। यही कारण है कि वे ब्रजवासियों को आयेदिन आपदाओं से सुरक्षित करते रहे हैं। गोवर्द्धन धारण, कालियनाग एवं दावानल का शमन, अघासुर, बकासुर, व्योमासुर, केशी, शकटासुर आदि दैत्यों की जीवन-लीला समाप्त करने में कृष्ण की लोकरक्षक एवं कर्त्तव्यपालन की भावना ही दृष्टिगत होती रही है। जगत-हित के समक्ष स्वार्थों एवं सुख को नगण्य करते हुए अन्य अनेक लालसाओं का शमन कर देते हैं।[72]

कभी-भी "वांछा-विवश" एवं "वासना-लिप्त" होकर कृष्ण ने कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं की। माता-पिता एवं बड़ों की सेवा में लगे रहने पर यदि कोई कहीं से आर्त्त स्वर सुनाई पड़ता है तो वे बड़ों की सेवा त्याग कर उस आर्त्तनादी को शरण देते हैं। अपने उन स्वजनों को वे दण्ड देने में कदापि नहीं चूकते जो दुष्टात्मा, मनुज-कुल-शत्रु एवं पातकी हैं।[73] मथुरा में वे उद्धव से अपनी मोह-व्यथा सुनाते हैं।

71-"जन्मेउ बंदीधाम जो जन जननी मुक्ति हित"-कृष्णायन, पृष्ठ-1, 72-प्रिय प्रवास, पृष्ठ 193, 73-कोई प्यारा-सुहृद उनका या स्वजातीय प्राणी। दुष्टात्मा हो, मनुज-कुल का शत्रु हो, पातकी हो। तो वे सारी हृदय तल की भूल के वेदनायें। शास्त्रा हो के उचित उसको दण्ड और शासित देंगे।-प्रियप्रवास, पृष्ठ 194

वे स्वयं यह अनुभव करते हैं कि इस समय उनका जीवन कर्त्तव्य-पालन में लगा हुआ है, वे अपने पूर्व उन्मुक्त बाल-जीवन का स्मरण करते हैं-

"मेरे जीवन का प्रवाह पहले अत्यन्त उन्मुक्त था।
पाता हूँ अब मैं नितान्त उसको आबद्ध कर्त्तव्य में।।" -प्रिय प्रवास, पृष्ठ-97

"प्रिय प्रवास" में कृष्ण कर्त्तव्यपरायण पहले हैं और बाद में प्रेमी। ब्रजनन्दन की लालसा कितनी प्रबल है किन्तु नित्य नवीन राजनीति के पचड़े में कर्त्तव्यपालन करते हुए कृष्ण मथुरा से गोकुल की ओर प्रस्थान नहीं कर पाते। अपनी विवशता का हार्दिक चित्रण उद्धव के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।[74] नरत्व का अपूर्व आदर्श दिखाकर गोपों को हृदय की उच्चता की शिक्षा दी। कृष्ण को गाय चराने की क्या आवश्यकता थी जबकि नन्द के यहाँ सैकड़ों सेवक गौ-चारक थे। वस्तुतः उन्हें वन के हिंसक जीवों का वध करना अभीष्ट था।[75] यद्यपि हिंसा निन्द्य कर्म है तथापि विषधर एवं पातकी जीव, पिशाच-कर्मीत्रर, समाज-उत्पीड़क, धर्म-विप्लवी, स्वजाति का शत्रु, मानव-द्रोही तथा समाज-उत्सादकों का वध करना पाप नहीं है। उनकी धारणा है कि खल एवं कुकर्मियों को उबारना सुकर्मियों को विपन्न करना है।

कालियनाग के विष से दूषित जल के पीने से सगोप-गायें अचेत होकर गिर गईं। तुरन्त नाग को "भानु-कुमारिकाङ्क" से निर्वासित करने का निश्चय कर लिया। मनुष्य मात्र एवं प्राणिसमूह के इस कष्ट को देखकर कृष्ण के मन में जो विचार उत्पन्न होते हैं उनके व्यक्तित्व के कर्त्तव्य-पक्ष का परिचय मिलता है। उनकी निश्चित घोषणा इस प्रकार है-

अतः करूँगा यह कार्य मैं स्वयं, स्वहस्त में दुर्लभ प्राण को लिए।
स्वजाति और जन्म-धरा निमित्त मैं न भीत हूँगा बिकराल व्याल से।
सदा करूँगा अपमृत्यु सामना, सभीत हूँगा न सुरेन्द्र बज्र से।
कभी करूँगा अवहेलना न मैं, प्रधान धर्माङ्ग-परोपकार की। -प्रियप्रवास, पृष्ठ 140

शरीर में एक भी शिरा के सरक्त रहते एवं श्वास के अन्तिम क्षणों तक कृष्ण प्राणिजगत का कल्याण करते रहेंगे।[77] दावाग्नि लगने पर कृष्ण की मानवतावादी दृष्टि एवं नेतृत्वशक्ति का प्रखर रूप दिखाई पड़ता है। गोपसमूह को लेकर अग्नि की ओर बढ़े और सधेनु गोपों को बचा लेने का निश्चय करते हुए वे अपने साथियों को ओजमय जीवनी-शक्ति का उपदेश करते हैं।[78] उनका विचार है-

बिना न त्यागे ममता स्वप्राण की, बिना न जोखों ज्वलदग्नि नें पड़े।
न हो सका विश्व-महान-कार्य है, न सिद्ध होता भव-जन्म हेतु है।
बढ़ो करो वीर स्वजाति का भला, अपार दोनों विध लाभ है हमें।
किया स्वकर्त्तव्य उबार जो लिया, सुकीति पाई यदि भस्म हो गये। -प्रियप्रवास, पृ.150 (86,87)

इस उत्तेजनापूर्ण कथन के बाद भी जब कोई गोप अग्नि में प्रवेश करने का साहस नहीं करता तब कृष्ण स्वयं प्रचण्ड दावानल में प्रविष्ट होकर साथियों सहित गोपों को बचा लेते हैं। यहाँ कृष्ण के नायकत्व की पूजा हुई है।[79] अचेष्टित जीवन-त्याग से सचेष्ट मरण उत्तम है। इस विपत्ति-संकुल संसार

74-प्रियप्रवास, पृ० 96, 97, 75-वही, पृ० 174 (24, 25, 26), 76-क्षमा नहीं है खल के लिए भली, समाज उत्सादक दण्ड योग्य है। कुकर्म-कारी नर का उबारना। सुकर्मियों को करता विपन्न है। -प्रियप्रवास, पृष्ठ-183, 77-वही, पृष्ठ-140 (27), 78-विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का। सहाय होना असहाय जीव का, उबारना संकट से स्वजाति का, मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है। -प्रियप्रवास, पृष्ठ-150, 79-वही, पृष्ठ-152

में कार्यों की शिथिलता अश्रेय है। विपत्ति का सामना साहस से जो करता है, उसे विजय मिलती है। वह काल-कवलित हो जाता है जो विपत्ति से शंकाकुल हो जाता है। हर प्रकार से साहस, बुद्धि, बल, धैर्य एवं कर्मनिष्ठता ही मानव को उत्थान-पथ पर अग्रसर करती है। यह है कृष्ण के ओजमयी जीवनी-शक्ति का उपदेष्टा-रूप।[80]

कृष्ण के मनोगत भावों को लेकर जब उद्धव ब्रज में जाते हैं तब कृष्ण की विचार-धारा का प्रकाशन करते हैं जो सर्वात्मवाद को प्रकट करता है-

"ममता कै बिना, समता कै बिना, भव ते परिताप टरैगो नहीं।"[81]

भारतीय एकात्मवाद हमें "आत्मवत् सर्वभूतेषु" का पाठ पढ़ाता है। अपनी आत्मा के समान हमें जीवमात्र के सुख-दु:ख का ध्यान रखते हुए उसे सहयोग प्रदान करना चाहिए। एक गोप उद्धव के समक्ष कृष्ण के गुण-कथन से ज्ञात होता है कि कृष्ण ने 12 वर्ष की ही अवस्था में जो कार्य करके दिखा दिया, वह कोई नहीं कर सकता, अस्तु उन्हे नर रत्न कहा जाना उचित है। वह कहता है, "बिहारी बड़ी सरस बातें करते थे। छोटे-बड़े सबका हित चाहते थे। दु:ख के दिनों में सबके बड़े सहायक थे। बड़ी शिष्टता एवं नम्रतापूर्वक वे बड़ों से मिलते थे। कभी अप्रसन्न नहीं होते थे। सभी बालकों से प्रीतिपूर्वक मिलकर विभिन्न खेल खिलाते थे। यदि वे कलहयुक्त विवाद होता देखते थे तो यत्नपूर्वक उसे शान्त करते थे और उनके देखते हुए कोई बलवान निर्बल को सताने नहीं पाता था। श्रीकृष्ण बड़ों को निराद्रित देखकर खिन्न होते थे। राजपुत्र होते हुए भी दीनों के सदन में अधिकांशत: जाते थे और मनोरम बातें सुनाकर उसे क्लेश मुक्त कर देते थे। रोगी, दु:खी, विपद-आपद में पड़े जनों की सेवा स्वहस्त से ही करते थे। नि:सन्तान लोग तो कृष्ण को ही अपनी सन्तान मानते थे और अधिक भरोसा करते थे।"[82] कृष्ण के प्रत्येक शुभ कर्मों एवं लोकसेवा द्वारा ही उन्हें आदर मिलता था। इसीलिए ब्रज से प्रस्थान करते समय सभी ब्रजवासी विह्वल हो गये हैं। ब्रज-यामिनी के गोप-तारागणों में कृष्ण चन्द्रमा हैं। अत: उनकी अनुपस्थिति में ब्रज अन्धकारमय हो जायेगा। एक बूढ़ा गोप कृष्ण के अभाव में जीवित नहीं रहेगा।[83] वह उद्धव से कहता है कि कृष्ण हमारा सब कुछ हैं-

"सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का उजाला।
दीनों का है परम धन और वृद्ध का नेत्र तारा॥
बालाओं का प्रिय स्वजन और बन्धु है बालकों का।
ले जाते हैं सुरतरु कहाँ आप ऐसा हमारा॥" -प्रियप्रवास, पृष्ठ-49

उद्धव को राधा के नाम जो सन्देश दिया गया है कृष्ण के द्वारा उसमें भी कृष्ण की मिलन-विवशता का कारण कर्त्तव्य-पालन एवं जगत-हित ही रहा है।[84] कृष्ण कर्त्तव्य के उपासी हैं।[85] कंस को मारकर कारागार का द्वार खोलवाकर कृष्ण जब उग्रसेन और अपने माता-पिता से मिलते हैं तब उग्रसेन से वे कंस वध के लिए क्षमा माँगते हैं, कदाचित् उन्हें पुत्र-शोक हुआ होगा।[86] उग्रसेन भी राष्ट्र-सुख में पुत्र-शोक को नगण्य मानते हैं। कृष्ण उग्रसेन को राज्य सौंपकर ब्रज जाना चाहते हैं किन्तु उद्धवादि आप्तजनों द्वारा राज्य चलाने की असमर्थता जब इस प्रकार व्यक्त की जाती है-

80-प्रियप्रवास, पृष्ठ 160-161, 81-मधुपर्क, पृष्ठ 221, 82-प्रियप्रवास, पृष्ठ-168, 83-वही, पृष्ठ-49, 84-वही, पृष्ठ 243-244, 85-मैं केवल कर्त्तव्य उपासी"-कृष्णायन, पृष्ठ-473, 86-वही, पृ०-89

"चहत सोई हरि ग्राम बसि, बहूरि चरावन धेनु।
यवन जरैहैं मधुपुरी श्याम बजैहैं बेनु।"-(कृष्णायन, पृष्ठ-91)

तब कृष्ण कहते हैं "मैं सदा मुरलीधर बना रहूँगा किन्तु अवसर आने पर चक्र भी धारण करूँगा। गाय चराने में मुझे कोई लज्जा नहीं है। राजकाज हेतु मैं अवश्य आऊँगा। मैं यह जानता हूँ कि कंस के वध से सोये हुए साँप जग गये हैं। मेरे रहते यदि मधुपुरी को इन साँपों ने डँस लिया तो कितना पाप होगा। महाराज (उग्रसेन) यदि सिर पर मुकुट धारण कर लें तो निश्चय ही यह सेवक अपने ऊपर जनरक्षा का भार ले लेगा।[87] जिस राज्य को कंस ने अनीतिपूर्वक (पिता को बन्दी बनाकर) ग्रहण किया उस राज्य को कृष्ण कैसे ग्रहण करें। तब तो वही अपराध कृष्ण का भी होता जो कंस का था। अस्तु वे किसी भी स्थिति में राजा बनने को समुद्यत नहीं हुए-

"छीनेउ पद करि कंस अनीति, सो मैं लेऊँ, कहाँ कै रीति।
जेहि कर जो सो आपन पावै, वेद स्मृति यह धर्म बतावैं।" -(कृष्णायन, पृष्ठ-91)

इस प्रकार ब्रजमण्डल का राज्य कन्दुक की भाँति पदतल से ठुकराने लगा। कृष्ण ने स्वयं उग्रसेन के सिर पर मुकुट रखा और अपनी सेवायें अर्पित करने का वचन दिया-

देहुँ वचन हरि हौं सदा, तब लगि वंश सहाय।
जब लगि गहि सब धर्म पथ, बसि हैं नेह दृढ़ाय।
अस कहि निज कर मुकुट उठाई, दीन्हेउ वृद्ध नृपहिं पहिराई।"[88]

2-वीर

यद्यपि कृष्ण की बाल्यावस्था के सभी कार्य वीरोचित हैं तथापि कंस-वध एवं मगधेश-आक्रमण के समय से उनके क्षात्र-धर्म में रौद्र एवं वीर दोनों रसों का जो परिपाक संचित हो गया है वह उनके ऐसी अखण्ड समयोचित वीरता का प्रमाण है जिसके द्वारा लाखों जन-समागम को कृष्ण ने वश में कर लिया। कृष्ण के जीवन-साधनों में वीरता, धैर्यता, साहसिकता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व का सविशेष सहयोग रहा है। बल एवं बुद्धि से कृष्ण मनुष्यों का ही नहीं पशुओं का भी मन जीत लेने समर्थ हुए हैं। पशु-बल में प्रभुताई जगाने वाले कंस ने रंगभूमि के मुख्य द्वार पर कुवलयापीड नामक मत्त गजराज को कृष्ण-वध हेतु व्यवस्थित कर दिया है। मार्ग अवरुद्ध होते ही सौ-सौ, हजार-हजार, लक्ष-लक्ष मथुरावासियों ने गजराज को मारने हेतु अस्त्र उठा लिया। कुछ शिलाखण्ड लेकर दौड़े। चतुर्दिक "मारहु चूर्ण-चूर्ण करि कुंजर" तथा "तोरि-फोरि रंगमहिं भँसि धावहु, हतहु असुर खल कंस नसावहु" की ध्वनि गुंजरित हो गई। विकराल क्रान्ति को देखकर कृष्ण ने हाथ उठाकर रोका। "उद्धव शासित जन-उदधि" क्षुब्ध होते-होते रुक गया।[89] रणमत्त अधीर कृष्ण गजराज से रौद्र रूप में मिलते हैं। जैसे ही गजराज शुण्ड में लपेटकर उन्हें पदतल में रौंदना चाहता है, तैसे ही कृष्ण अपने को मुक्त कर गज-मस्तक पर बज्र-मुष्टिका मारते हैं और उसके पद के मध्य में छिप जाते हैं। क्रोधान्ध कुंजर चक्राकार घूमते हुए शुण्ड से कृष्ण को पकड़ना चाहता है। कृष्ण बचते जाते हैं। गड़गड़ाते हुए गजेन्द्र का चक्राकार रूप में घूमना ऐसा प्रतीत होता है मानो शैलेन्द्र सुधा-वारिधि को मथ रहा हो।[90]

सहसा शुण्ड पकड़कर कृष्ण ने कुंजर को घुमा दिया और दोनों दाँतों को उखाड़कर उसका प्राणान्त कर दिया। यहाँ जितनी भी कलाबाजियाँ कृष्ण ने दिखाईं वे सभी उनके वीरत्व को प्रकट करती हैं। यही

87-कृष्णायन, पृष्ठ-91, 88-वही, पृष्ठ-91-92, 89-वही, पृष्ठ-84, 90-वही, पृष्ठ-84

नहीं, चाणूर और मुष्टिक के मरते ही कंस जब "वसुदेव-सुत" के वध का आदेश देता है[91] तब कृष्ण की वीरता देखते ही बनती है-

"कोपे हरि सुनि भूप प्रलापा, चढ़ी भृकुटि पुनि जनु यम-चापा।
लपकेउ सदर्प नृपहिं ब्रजराजू, जिमि शिखस्थ मृगहिं मृगराजू।
उछरि मंच चढ़ि, गहेउ नरेशा, गहत उरग जिमि झपटि खगेशा।
भागन चहेउ भागि नहिं पावा पकरि चिकुर हरि मंच गिरावा।
अट्टहास मधुसूदन कीन्हा, पटकि मंच ते महितल दीन्हा।
गरजे तरजे मनहुँ मृगेशा, कूदे नृप ऊपर विश्वेशा।
हरि महिमा ब्रह्माण्ड-गुरु सकेउ सँभारि न कंस।
प्राणविहंग पल महं उड़ेउ त्यागि शरीर नृशंस॥ -(कृष्णायन, पृष्ठ-87)

मधुपर्क के चाणूर-कंस-वध के वर्णन में कृष्ण की मल्लता अधिक विचित्र हुई है।[92] चाणूर एवं कृष्ण का मल्लयुद्ध वैसा है जैसा त्रिपुर एवं त्रिपुरारी, घन एवं सूर्य, गज एवं केहरि, पाप एवं धर्म का है। सहसा कृष्ण ने गदा से चाणूर का सिर तोड़ दिया। तोषल नामक एक मल्ल पीछे से आकर कृष्ण को पटकना चाहता है किन्तु–

"मधुसूदन पै विद्युत गति सौं घूमिकै।
तारि दर्‌यो जिमि सिंह दलै गजराज कौ॥" (मधुपर्क, पृ० 195)

कंस-वध सुनकर मगधेश मथुरा पर आक्रमण करता है। उसकी सेना "धरती की कोखि" को बिदारने के लिए चल पड़ी है। मगधेश के अत्याचार से जनता त्राहि-त्राहि कर रही है। सेना निर्दोष लोगों को भी पकड़ती है, निर्मम हत्या करती है और खेत-खलिहानों में आग लगा देती है। उद्धत मगधेश ब्राह्मणों की उद्‌बोधिका वाणी को कटवा लेता है, निर्भय क्षत्रियों के ऊँचे सिरों को कटवाकर अपमानित करता है। वैश्यों को भी मारकर घर फुँकवाता है। शूद्रों को तो उलटे टँगवाकर जीते जी खाल खिंचवाता है। ऐसे क्रूर अत्याचारी राजा के विरुद्ध कृष्ण युयुत्सु सेना तैयार हुई। कृष्ण ने व्याघ्राजित का पदत्राण, शरीर पर "लौह-वर्म", सिर पर बज्रोपम सिरत्राण, दाहिने हाथ में चपल चक्र और कमर में तलवार धारण की। मंचोपरि आसीन होकर कृष्ण द्वारा "गनसेना" को जो ललकार दी गई उससे उनकी अनुशासित वीरता का प्रकाशन होता है।[93]

3-असुरों के संहारक एवं आर्यधर्मपालक

असुरों के सर्वनाश एवं धर्म की रक्षा हेतु कृष्ण का अवतार ही हुआ था। आलोच्य काव्यों में कृष्ण के लौकिक मानवीय एवं अलौलिक-अमानवीय कृत्यों का सर्वत्र चित्रण किया गया है। मधुपर्क के कृष्ण महामानव हैं किन्तु उनके कुछ कृत्यों को मानवता की परिधि में रखने में संकोच होता है। यद्यपि ब्रजवासियों को कृत्यों के अलौकिकत्व का आभास नहीं होता तथापि वे आश्चर्यचकित रहते हैं। पूतना-वध से लेकर जरासंध एवं भौमासुर राक्षसों के वध में, गोवर्धन धारण, कालिय दमन, यमलार्जुन-उद्धार आदि में उनका ईश्वरत्व ही झलकता है। यह कवियों की वर्णन शैली एवं उनकी भावना की विशेषता है कि मानवीय चित्रण में अलौकिकत्व का आभास दे देते हैं। उद्धव जी कृष्ण का जो सन्देश यशोदा को सुनाते हैं उसमें कृष्ण की स्पष्ट घोषणा है कि-

91-कृष्णायन, पृष्ठ-87, 92-मधुपर्क, पृष्ठ-195, 93-वही, पृष्ठ-246

"देशधर्म-त्रासक असुर, देहौं जबहिं नसाय।
करिहौं तनिक बिलम्ब नहिं, अइहौं मइया धाय॥" -(कृष्णायन, पृष्ठ-122)

बारी-बारी से सभी आसुरी प्रवृत्तियों वाले राजाओं एवं उनके सहयोगियों का संहार करके कृष्ण ने गणसंघ की स्थापना की जिसे आर्यसंघ कहा गया। आर्य धर्म-नाशक अत्याचारी कंस के विरुद्ध कृष्ण समाज के विद्वानों, तपस्वियों, तत्त्वदर्शियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, व्यापारियों, धातुकारों, कलाकारों, कृषिकारों, विद्यार्थियों एवं बाल-वृद्ध-युवकों को ललकारते हुए क्रान्ति का आह्वान करते हैं।[94] अग्रपूजा के समय शिशुपाल कृष्ण का प्रबल विरोध करता है जिससे सम्पूर्ण आर्यसभा क्षुभित हो जाती है। भीष्म कहते हैं कि यह मगधेश की सभा नहीं है जहाँ तुम हास-उपहास करके अपनी जाति एवं धर्म का नाश कर चुके हो। आज तुम आर्य सभा में विद्यमान हो, यहाँ विवेक खोने से काम नहीं बनेगा। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि यदुनाथ असुर-नीतियों का नाश कर चुके हैं। अब वह असुर संघ कहीं भी देश में नहीं है। सर्वत्र पृथ्वी पर आर्य संघ की स्थापना एवं लोकधर्म की प्रबलता हो गई है।[95] कृष्ण की भावनाओं के अनुरूप भीष्म शिशुपाल को चैतन्य करते हुए कहते हैं:-

"नवभारत नव तन्त्र महँ, चहहु जो सकुशल वास,
आर्य-शील-संयम गहहु, तजि विरोध, उपहास।" -(कृष्णायन, पृष्ठ-224)

इस प्रकार सम्पूर्ण देश को भावनात्मक एकता के सूत्र में बाँधकर कृष्ण ने जनतन्त्रीय प्रणाली को पुष्ट किया और अंधक, कुक्कुर, वृष्णि, सात्वत, भोज, मधु, शूर आदि जातियों से बने हुए यदुसंघ के आपसी अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त कर आर्यधर्म का प्रसार किया।

4-लोकरक्षण की सार्वभौमिक भूमिका

समस्त मानव जाति की रक्षा कृष्ण का कार्यक्षेत्र था। उन्होंने कहीं भी निर्बलों को बलवानों द्वारा सताने नहीं दिया। कंस का अत्याचार समस्त यदुवंशियों के लिए असह्य हो गया है। राज्याधिकारीगण कहीं खेत एवं सम्पत्ति छीन रहे हैं, कहीं गौर और युवा कन्या को भगा रहे हैं। कहीं तन-धन-दण्ड दे रहे हैं, कहीं सभा करने वाले आयोजकों को बाँधकर संतप्त कर रहे हैं, लंगोटी पहनाकर सिर मुड़वाकर मुख काला कर रहे हैं। इतनी पिटाई करते हैं कि रक्त के फुहारे छूटते हैं। जनजाति को कहीं उल्टे टँगवाकर नीचे धुआँ करते हैं।[96] कंस के इन समस्त कृत्यों का कृष्ण ने वीरतापूर्वक विरोध किया। अत्याचार-स्थल पर कृष्ण बलराम को लेकर तुरन्त पहुँचते थे-

जहाँ देखें कि अत्याचारी भारी, तहाँ बलदेव, जू कों कर अगारी।
अटैं श्रीकृष्ण लोकोद्देश्यधारी, दुरै वा ठौर में राज्याधिकारी।" -(मधुपर्क, पृष्ठ-147)

राजा की सभा में कृष्ण उपस्थित हैं। राधा की भावनाओं के अनुरूप श्रीकृष्ण सिर झुकाकर जनता के सम्मुख "बहुजन हिताय"-बहुजन सुखाय" की प्रतिज्ञा करते हैं-

बोले हरि राधा भरित भाय, सिर नाइ सकल बीड़ा, बिहाय।
करिहैं गुरु सम्मत सब उपाय, बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।" -(मधुपर्क, पृष्ठ-166)

94-सूद्र वैस्य तथा छत्री, ब्राह्मण सर्व एक ह्वै कहौ क्रान्ति! महा क्रान्ति! जीवै। आगै। जनोन्मुखी"। -मधुपर्क, पृ० 172-73, 95-विदित न तुमहि मगधपति साथा, नासी असुर नीति यदुनाथा। अब वह असुर संघ कहुँ नाहीं, जन्मेउ आर्यसंघ महिमाहीं॥"-कृष्णायन, पृ० 224, 96-कहूँ जनजाति कौ उलटे टँगावैं, धुँआ दै दै हँसै गावैं बजावैं। चतुष्पद कै किसाननि कौं रिंगावैं कसै कटि पीठि पै ईंटै धरावैं। -(मधुपर्क, पृष्ठ-146)

गोपियों को समझाते हुए उद्धव कृष्ण के लोकरक्षण एवं विश्वप्रेम की चर्चा करते हैं,-"यहाँ जितनी विरह विधुरा गोपियाँ हैं, किसी को भी कृष्ण के आन्तरिक मर्म का ज्ञान नहीं है। वस्तुत: कृष्ण समस्त भूमण्डल के प्राणियों के हितैषी हैं। स्वार्थ एवं सुख-राशि को वे उस समय तुच्छ समझते हैं जब उनके सामने जगत-हित आ जाता है।"[97]

कृष्णायन एवं मधुपर्क में कृष्ण का लोकरक्षक एवं आर्य-साम्राज्य-संस्थापक रूप अधिक मुखर हुआ है। भारत में नये युग का द्वार खोलने वाले कृष्ण ही हैं।[98] धर्म की रक्षा के लिए कृष्ण सब कुछ करने को उद्यत हैं। इसी व्यस्तता में कृष्ण एक बार भी ब्रज नहीं जा पाते। पाण्डवों के जीवन-सखा बनकर उन्हें जो कुछ ओजमय जीवनोपदेश दिया वह समस्त मानव जाति का उद्धार-साधन है। पाण्डवों के माध्यम से आसुरी शक्तियों का सत्यानाश कर दिया और धर्म-केतु को फहराया। जहाँ, जब, जिसे जितना कष्ट पड़ा, मानव जाति ने कराहा, वहाँ पहुँचकर कृष्ण ने सुख का मार्ग प्रशस्त किया। उनका सम्पूर्ण जीवन लोकरक्षण में बीता। लोकरक्षण हेतु उन्हें राजनीति का सहारा लेना पड़ा। जरासंध, भौमासुर आदि आततायियों के चंगुल में पड़ी हुई न जाने कितनी पवित्र आर्य ललनाओं को संकट मुक्त किया और उन्हें भी समाज में सम्माजनक नागरिकता प्रदान की।

5-राजनीतिज्ञता

आधुनिक कृष्ण काव्यों में कृष्ण के इस रूप को अधिक मान्यता मिली है। कृष्णायन, मधुपर्क, प्रियप्रवास में कृष्ण का चरित्र लोकादर्श एवं जनपोषण के लिए व्याकुल है। प्रियप्रवास में वे पुरुष रत्न हैं, लोकसुधार की आदर्श भावना से युक्त हैं।[99]

इतिहास प्रसिद्ध बात है कि यादव संघ में वृष्णि एवं अन्धक दो जातियाँ अधिक प्रबल थीं, दोनों में सदा मतवैभिन्य रहा करता था किन्तु कृष्ण ने अपने व्यवहार एवं नीतियों से दोनों वंशों को ही नहीं सम्पूर्ण पश्चिमी भारत को संगठित किया और आसुरी दम्भ को उखाड़ फेंकने में सफल हुए। पाण्डवों की विजय कृष्ण की नीतियों की ही विजय है। कृष्ण के पग-पग पर पाण्डवों को युगधर्म एवं क्षत्रिय धर्म तथा मानवोचित समयानुसार धर्म का ज्ञान कराते रहे हैं। पाण्डवों की विजय एवं अधर्म-नाश के लिए कृष्ण ने साम, दाम, दण्ड, विभेद चारों नीतियों का सहारा लिया। मोहपीड़ित अर्जुन को आत्मबल एवं अध्यात्म का उपदेश दिया जो प्रसिद्ध ही है। जिसका गौरवगान आधुनिक कृष्णकाव्यों में बहुश: देखा जा सकता है। वे जरासंध की लड़ाई न करके द्वारावती में बसना अच्छा समझते हैं। उनका विचार है कि समय देखकर लड़ाई होनी चाहिए। वे युयुत्सु और बलराम को समझाते हैं-

"ताते तात! कहहुँ समुझायी, आजु तजे रण भूरि भलाई।
बसि द्वारावती शक्ति बढ़ाई, करिहैं रण पुनि अवसर पाई।" -(कृष्णायन,पृष्ठ-127)

मुनिवर नारद से राजसूय यज्ञ करने की प्रेरणा ग्रहण कर महाराज युधिष्ठिर कृष्ण के पास जाकर परामर्श लेते हैं। कृष्ण इस अनुष्ठान को पार्थिव-महत्त्व का मुख्य प्रतीक मानते हैं।[100] धर्मराज जी शंका करते हैं कि बलपूर्वक निज महत्त्व को मनवाना क्या ठीक है? मुस्कराते हुए कृष्ण कहते हैं कि आज का समाज श्रेष्ठ को स्वयं चुन लेने में असमर्थ है क्योंकि उनका कार्य-व्यवहार अपने सीमित स्वार्थों से ही संलग्न है। बड़े को बड़ा न कहना भी औद्धत्य है एवं सत्य से मुकरना भी है।[101] राजसूय यज्ञ को सफल

97-प्रियप्रवास, पृ.193, 98-वही, पृ.16, 99-वही, पृ.245, 100-जय भारत, पृ.139, 101-वही, पृ.139

बनाने को योजना में जरासंध का वध करना अति आवश्यक है, ऐसी कृष्ण की नीति है क्योंकि उसके प्राणान्त हो जाने से उसके अधीनस्थ काराबद्ध सौ राजाओं का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो जायेगा। सौ भूपों की बलि देने वाला यदि मार डाला जाये तो क्या यह कम श्रेय है? कृष्ण से जरासंध का मुकाबला पहले मथुरा में कंस-वधोत्तर हो चुका है किन्तु राजनीतिक चालवश ही कृष्ण ने उसे छोड़ दिया और स्वयं रणछोड़ बन गये। यहाँ ध्यातव्य यह है कि जरासंध बार-बार आसुरी प्रवृत्तियों के राजाओं, सैनिकों को एकत्रित कर कृष्ण पर चढ़ाई करता और कृष्ण जरासंध को छोड़ सबका वध कर देते थे। यही क्रम 17 बार चलता रहा। देश के तमाम जरासंधीय सैनिक मरते गये। यदि कृष्ण जरासन्ध का पहले ही आक्रमण पर प्राणान्त कर देते तो असुरों को एकत्रित कौन करता? तब कृष्ण का काम अधिक बढ़ जाता। दूसरी बात यह थी कि तब जरासंध के पाप का घड़ा भी उतना अधिक नहीं भरा था जितना कि इस समय (राजसूय यज्ञ करते समय) भरा हुआ है। उसने सौ राजाओं की बलि देने का संकल्प किया था।[102] पूर्ण-पाप-घट को फोड़ने से पूर्ण लाभ होता है।

युद्ध रोकने में जब कृष्ण कृतकार्य नहीं होते तब दुर्योधन के अभिन्न साथी कर्ण से मिलकर उसके जन्म की अघटनीय घटना का उद्घाटन करते हैं।[103] कर्ण युधिष्ठिर से बड़ा है। पाण्डवों के जीतने पर कर्ण ही राजा बनाया जायेगा, यदि वह कौरव पक्ष को त्याग दे। इस प्रकार समझाकर कृष्ण कर्ण को पाण्डवों के पक्ष में करना चाह रहे थे किन्तु कर्ण माता जाति के ऊपर कलंक लगाता हुआ कृष्ण का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है।[104] कृष्ण की भेदनीति यहाँ सफल नहीं हुई।

युद्ध में हर स्थान पर नीति का कथन करके कृष्ण ने पाण्डवों को प्रबोध दिया जिसमें उन्हें सफलता मिली। युद्ध में एक बार कर्ण का रथ धरती में फँस जाता है, वह निरस्त्र होकर रथ का पहिया उभाड़ने लगता है। युद्ध-धर्म के अनुसार अर्जुन बाण-संधान करना बन्द कर देते हैं। कृष्ण के उत्साहित करने पर अर्जुन बाण चलाते हैं। धर्म का आश्रय लेता हुआ कर्ण वीरोचित धर्म-कार्य करने का अनुरोध अर्जुन से करता है।[105]

कृष्ण की सामयिक नीतिमत्ता एवं प्रत्युत्पन्नमतित्व का यहाँ परिचय मिलता है। वे कर्ण से कहते हैं, "अन्याय से जब अभिमन्यु मरा था, लाक्षागृह में आग लगाई गई थी, भीम को हलाहल दिया गया था, सभा में द्रौपदी को नंगी किया जा रहा था, छल द्वारा पाण्डवों को जुआ में हराया गया और वे वनप्रवासी हुए थे, क्या तब धर्म-कार्य था? तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? आज जब तुम संकट में हो तब तुम्हें धर्म याद आ रहा है।"[106]

कृष्ण जनतंत्रीय प्रणाली के समर्थक थे और गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे।[107] वैदिक वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था एवं रामराज्य की उनकी कल्पना है। वे चाहते हैं कि अनुशासित स्वतन्त्र मण्डल की स्थापना रामराज्य की तरह हो।[108] मगधेश्वर की सेना को तहस-नहस करने के बाद उसका श्रेय स्वयं नहीं लेते। वे इसे गणतन्त्र की विजय बताते हैं। वे कहते हैं कि राजा का मुख्य बल जनबल ही है। अत: सबको मिलकर धर्मोदित दीपक की बत्ती को बढ़ाना चाहिए। राजा केवल जननेता है जो जन शक्ति एवं निज शक्ति को नियन्त्रित कर जनता को भवभार से मुक्त कराता है।[109] कृष्ण को समाज के सभी वर्गों का

102-जय भारत, पृष्ठ-140, 103-रश्मि रथी, पृष्ठ-31, 104-वही, पृष्ठ-34, 105-वही, पृष्ठ-156, 106-वही, पृष्ठ 157-158, 107-मधुपर्क, पृष्ठ 213, 108-वही, पृष्ठ 213, 109-वही, पृष्ठ 252-53

समर्थन प्राप्त था।[110] कृष्ण की आदर्श मान्यता है कि विपत्तिग्रस्त होने पर अथवा प्रेमभावपूर्वक खिलाये जाने पर ही किसी के यहाँ भोजन करना चाहिए। इसी सिद्धान्त को मानकर कृष्ण दुर्योधन के यहाँ भोजन नहीं करते।[111] दूषित अन्न खाने से उसके प्रभाव से सुरगण भी नहीं बच सकते। पाण्डवों का जो राज्य छलपूर्वक ले लिया गया है, इसी से दुर्योधन का अन्न दूषित है।[112]

6-शान्ति-दूत

श्रीकृष्ण पाण्डवों और कौरवों के परस्पर सौहार्द्र एवं मित्रता के दृढ़ अभिलाषी थे। उन्होंने महाभारत युद्ध के प्रारम्भ से बहुत पहले ही युद्ध रोकने के लिए पूर्व उद्योग किया। वे सम्भाव्यमान युद्ध की विभीषिका से परिचित थे। उनकी इच्छा थी कि भारत में युद्ध का प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित न हो। यही कारण है कि दूत बनकर वे धृतराष्ट्र तक गये। युद्ध रोकने के लिए उनका दौत्यकर्म उनके उज्ज्वल चरित्र का परिचायक है। महाभारत में इस घटना का पूर्ण विवरण उद्योगपर्व में व्यवस्थित है। कृष्ण यह कार्य इसलिए भी करते हैं कि बाद में उनकी कोई निन्दा न करे कि समर्थ रहते हुए भी कृष्ण ने कौरव-पाण्डवों को नहीं रोका। कम से कम मूढ़ों की आलोचना से बच जायेंगे।[113] वास्तव में कृष्ण का यह कार्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। पाण्डवों का भी हितसाधन होता और कौरव भी मृत्यु से बच जाते। दुर्योधन एवं धृतराष्ट्र के अपमानजनक विचारों को सुनकर कृष्ण उद्धव से जो कुछ कहते हैं उससे उनकी व्यथा का परिचय मिलता है-

समर समुद्यत रक्त पियासी दिशि दोउ जुरी आर्य जनराशी।
सकहि निवारि महाक्षय जोई, पुण्यश्लोक न तेहि सम कोई।
[illegible] सहिहौं सब अविनय अपमाना। -(कृष्णायन, पृष्ठ-278)

[illegible] राजसभा में प्रवेश कर दोनों पक्षों के मध्य निबटारे का प्रस्ताव रखते [illegible] कहते हैं कि क्षत्रिय-समाज का काल पक गया है, तब मुस्कराते हुए [illegible] पावक प्रकट तो है किन्तु फूटी नहीं है। अस्तु-

"[illegible] भी कल का राहु-केतु यह झुक सकता है।
[illegible] अब भी प्रलय कांड वह रुक सकता है।" -(जयभारत, पृ०-320)

[illegible] ने शान्ति व्यवस्था के लिए जितने मानवतावादी तथ्य एवं हृदय विदारक [illegible] भी होता तो पिघल जाता किन्तु दुर्योधन नहीं मानता है। कृष्ण धृतराष्ट्र से [illegible] कल्याण के लिए आपने जो साम्राज्य प्राप्त किया, उसे आपने अपने पुत्रों को [illegible] सौंप दिया। आपने परमार्थ एवं राष्ट्रहित को नष्ट कर दिया है। अब तो अन्त [illegible] अमर हो, जिससे पुत्र एवं राज्य का नाश होगा। अतः तात! बार-बार प्रार्थना करता [illegible] ।[115] श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि पाण्डु-सुतों ने क्या यही पाप किया है कि [illegible] भ्रान्त पुत्रों को यहाँ आप शान्त करें, मैं वहाँ विक्रान्त पाण्डवों को शान्त [illegible] चरणों में झुकवाया गया। फिर भी आपका उन पर अत्याचार कम नहीं हुआ। [illegible] की गई उसको सुनकर भावी पीढ़ियाँ हमें क्या कहेंगी? क्षमा की एक [illegible] प्रतिहिंसा का बीज ही बोती है। फिर भी आप पर उनकी अभी अप्रीति नहीं है [illegible]

111 जयभारत, पृष्ठ 319, 112-कृष्णायन, पृष्ठ 266, 113-महाभारत, उद्योगपर्व [illegible] 114 [illegible] 115-वही, पृष्ठ-282, 116-वही, पृष्ठ-321

किन्तु ऐसा अशक्ति एवं भीति के कारण नहीं है। अब भी युधिष्ठिर आप पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व रखते हैं। "सेवा कराइए वा समर, प्रस्तुत सभी प्रकार हैं।"[117] दोनों पक्षों का क्षेम-भाव एवं शान्ति-सन्देश लेकर आये हैं, उसका कुछ कारण है-

"आया हूँ मैं, दोष न फिर कोई दे पावे,
रुकना हो तो यह अनर्थ अब भी रुक जावे।
न हो व्यर्थ विध्वंस, ग्रहण सा सबका छूटे।
सन्धि-शान्ति हो जाये, सहज सम्बन्ध न टूटे।"[118]

दुर्योधन के यह कहने पर कि बहुमत उसके साथ है, कृष्ण चुनौती भरे शब्दों में कहते हैं कि सभी मान्यजन यदि यह कह दें कि पाण्डव पक्ष झूठा है तो बिना युद्ध के ही तुम्हारा लक्ष्य सिद्ध माना जायेगा।[119] फिर भी दुर्योधन नहीं मानता, तब भी कृष्ण बहुत अनुनय-विनय करते हैं और पाण्डवों की प्रार्थना को उन्हीं के शब्दों में धृतराष्ट्र से कहते हैं-

"वह प्यार तात का हाय, क्या कोरा कपटाचार था,
हम पाँच मात्र ही भार, वह सौ का परिवार था। -(जयभारत, पृष्ठ-330)

अन्त में कृष्ण केवल पाँच गाँव ही याचना करते हैं और प्राप्त होने वाले उन गाँवों का भी उल्लेख करते हैं।[120] दुर्योधन सुई के नोंक के अगले भाग के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं है पाँच ग्राम की कौन कहे।[121] अन्त में कृष्ण जब अपने शान्ति सन्देश में कृतकार्य नहीं हुए तब समर को अन्तिम अस्त्र बताते हुए वहाँ से चल पड़े। कृष्ण सदैव शान्ति-स्थापना का प्रयास करते रहे। जीवन में युद्ध करना उनका अभीष्ट नहीं था। वे कहते हैं-

सर्वदा युद्ध कौ हौं विरोधी रह्यौ, सर्वदा सान्तहै सान्ति सोधी रह्यौ।
किन्तु या दैव कौ रूठिवौ तो लखौ, श्रेय तैं प्रेय कौ रुठिबौ तो लखौ॥ -मधुपर्क, पृष्ठ-344

यहाँ महाभारत के एक उदाहरण को देखिये जिसमें कृष्ण की कितनी सद्भावना है समझौते के प्रति। कृष्ण के वे वचन अमृत हैं जो धृतराष्ट्र के लिए कहे गये हैं-"अपने पुत्रों से समन्वित धृतराष्ट्र वन हैं तथा पाण्डु के पुत्र व्याघ्र हैं। व्याघ्र के साथ वन को न काटो। ऐसा दुर्दिन भी न आवे कि वन से व्याघ्र नष्ट हो जायें-

"वनं राजा धृतराष्ट्रः सपुत्रो व्याघ्रास्ते वै संजय पाण्डु पुत्राः।
मा वनं छिन्दि सव्याघ्रं मा व्याघ्राऽनीनशन वनात्॥" -(सभापर्व, 29/542)

7-राष्ट्र एवं संस्कृति के सजग प्रहरी

कृष्णायनकार एवं मधुपर्क के गायक "करील" महात्मागाँधी के अनुयायी हैं। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र एवं "करील" जी ने अपने ग्रन्थों में कृष्ण को सर्वत्र राष्ट्रोद्धारक के रूप में दिखाया है। वे राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत एक जागरूक नागरिक ही नहीं प्रत्युत प्रजातांत्रिक रूप से अच्छे जन-संगठन कर्ता भी हैं। "प्रियप्रवास" में उनका मानवीय दृष्टिकोण नये रूप में आया है किन्तु प्राचीन भारतीय संस्कृति के

117-जयभारत, पृ.221-323, 118-वही, पृष्ठ 324, 119-वही, पृ.326, 120-(क) दो न्याय अगर तो आधा दो पर इसमें भी यदि बाधा हो। तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रखो अपनी धरती तमाम॥ रश्मिरथी, पृ.25, (ख) कृष्णायन, पृ.283, (ग) जयभारत, पृ.331 (121)-(क) वही, पृ.332, (ख) कृष्णायन, पृ.284, (ग) मधुपर्क, पृष्ठ-295

समर्थन प्राप्त था।[110] कृष्ण की आदर्श मान्यता है कि विपत्तिग्रस्त होने पर अथवा प्रेमभावपूर्वक खिलाये जाने पर ही किसी के यहाँ भोजन करना चाहिए। इसी सिद्धान्त को मानकर कृष्ण दुर्योधन के यहाँ भोजन नहीं करते।[111] दूषित अन्न खाने से उसके प्रभाव से सुरगण भी नहीं बच सकते। पाण्डवों का जो राज्य छलपूर्वक ले लिया गया है, इसी से दुर्योधन का अन्न दूषित है।[112]

6-शान्ति-दूत

श्रीकृष्ण पाण्डवों और कौरवों के परस्पर सौहार्द्र एवं मित्रता के दृढ़ अभिलाषी थे। उन्होंने महाभारत युद्ध के प्रारम्भ से बहुत पहले ही युद्ध रोकने के लिए पूर्व उद्योग किया। वे सम्भाव्यमान युद्ध की विभीषिका से परिचित थे। उनकी इच्छा थी कि भारत में युद्ध का प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित न हो। यही कारण है कि दूत बनकर वे धृतराष्ट्र तक गये। युद्ध रोकने के लिए उनका दौत्यकर्म उनके उज्ज्वल चरित्र का परिचायक है। महाभारत में इस घटना का पूर्ण विवरण उद्योगपर्व में व्यवस्थित है। कृष्ण यह कार्य इसलिए भी करते हैं कि बाद में उनकी कोई निन्दा न करे कि समर्थ रहते हुए भी कृष्ण ने कौरव-पाण्डवों को नहीं रोका। कम से कम मूढ़ों की आलोचना से बच जायेंगे।[113] वास्तव में कृष्ण का यह कार्य बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। पाण्डवों का भी हितसाधन होता और कौरव भी मृत्यु से बच जाते। दुर्योधन एवं धृतराष्ट्र के अपमानजनक विचारों को सुनकर कृष्ण उद्धव से जो कुछ कहते हैं उससे उनकी व्यथा का परिचय मिलता है-

समर समुद्यत रक्त पियासी दिशि दोउ जुरी आर्य जनराशी।
सकहि निवारि महाक्षय जोई, पुण्यश्लोक न तेहि सम कोई।
करन हेतु बहुजन कल्याणा सहिहौं सब अविनय अपमाना। -(कृष्णायन, पृष्ठ-278)

शान्ति का सन्देश लिए हुए राजसभा में प्रवेश कर दोनों पक्षों के मध्य निबटारे का प्रस्ताव रखते हैं।[114] जब निराशामय मुद्रा में भीष्म कहते हैं कि क्षत्रिय-समाज का काल पक गया है, तब मुस्कराते हुए कृष्ण कहते हैं कि बाण अभी छूटा नहीं है, पावक प्रकट तो है किन्तु फूटी नहीं है। अस्तु-

"अबी भी कुल का राहु-केतु यह झुक सकता है।
सुनिए, अब भी प्रलय कांड वह रुक सकता है।"-(जयभारत, पृ०-320)

अपने भाषण में कृष्ण ने शान्ति व्यवस्था के लिए जितने मानवतावादी तथ्य एवं हृदय विदारक सत्य कहा है, उससे कोई भी हठी होता तो पिघल जाता किन्तु दुर्योधन नहीं मानता है। कृष्ण धृतराष्ट्र से कहते हैं कि-"आर्य जाति-कल्याण के लिए आपने जो साम्राज्य प्राप्त किया, उसे आपने अपने पुत्रों को अपनी पैतृक सम्पत्ति मान सौंप दिया। आपने परमार्थ एवं राष्ट्रहित को नष्ट कर दिया है। अब तो अन्य मार्ग यही है कि भीषण समर हो, जिससे पुत्र एवं राज्य का नाश होगा। अत: तात! बार-बार प्रार्थना करता हूँ कि आत्म विघात न करें।[115] श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि पाण्डु-सुतों ने क्या यही पाप किया है कि वे इसी वंश में पैदा हुए हैं।[116] अपने भ्रान्त पुत्रों को यहाँ आप शान्त करें, मैं वहाँ विक्रान्त पाण्डवों को शान्त करूँगा। पाण्डवों ने आपके चरणों में झुकवाया गया। फिर भी आपका उन पर अत्याचार कम नहीं हुआ। सभा-मध्य में कृष्ण की जो दुर्गति की गई उसको सुनकर भावी पीढ़ियाँ हमें क्या कहेंगी ? क्षमा की एक सीमा होती है। अन्त में वह प्रतिहिंसा का बीज ही बोती है। फिर भी आप पर उनकी अभी अप्रीति नहीं है

110-वही, पृष्ठ 263, 111-जयभारत, पृष्ठ 334, 112-कृष्णायन, पृष्ठ 266, 113-महाभारत, उद्योगपर्व 93/16, 114-जयभारत, पृष्ठ-319, 115-वही, पृष्ठ-282, 116-वही, पृष्ठ-321

किन्तु ऐसा अशक्ति एवं भीति के कारण नहीं है। अब भी युधिष्ठिर आप पर सम्पूर्ण उत्तरदायित्व रखते हैं। "सेवा कराइए वा समर, प्रस्तुत सभी प्रकार हैं।"[117] दोनों पक्षों का क्षेम-भाव एवं शान्ति-सन्देश लेकर आये हैं, उसका कुछ कारण है-

"आया हूँ मैं, दोष न फिर कोई दे पावे,
रुकना हो तो यह अनर्थ अब भी रुक जावे।
न हो व्यर्थ विध्वंस, ग्रहण सा सबका छूटे।
सन्धि-शान्ति हो जाये, सहज सम्बन्ध न टूटे।"[118]

दुर्योधन के यह कहने पर कि बहुमत उसके साथ है, कृष्ण चुनौती भरे शब्दों में कहते हैं कि सभी मान्यजन यदि यह कह दें कि पाण्डव पक्ष झूठा है तो बिना युद्ध के ही तुम्हारा लक्ष्य सिद्ध माना जायेगा।[119] फिर भी दुर्योधन नहीं मानता, तब भी कृष्ण बहुत अनुनय-विनय करते हैं और पाण्डवों की प्रार्थना को उन्हीं के शब्दों में धृतराष्ट्र से कहते हैं-

"वह प्यार तात का हाय, क्या कोरा कपटाचार था,
हम पाँच मात्र ही भार, वह सौ का परिवार था। -(जयभारत, पृष्ठ-330)

अन्त में कृष्ण केवल पाँच गाँव ही याचना करते हैं और प्राप्त होने वाले उन गाँवों का भी उल्लेख करते हैं।[120] दुर्योधन सुई के नोंक के अगले भाग के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं है पाँच ग्राम की कौन कहे।[121] अन्त में कृष्ण जब अपने शान्ति सन्देश में कृतकार्य नहीं हुए तब समर को अन्तिम अस्त्र बताते हुए वहाँ से चल पड़े। कृष्ण सदैव शान्ति-स्थापना का प्रयास करते रहे। जीवन में युद्ध करना उनका अभीष्ट नहीं था। वे कहते हैं-

सर्वदा युद्ध कौ हौं विरोधी रहौ, सर्वदा सान्तह्वै सान्ति सोधी रह्यौ।
किन्तु या दैव कौ रूठिवौ तो लखौ, श्रेय तैं प्रेय कौ रुठिबौ तो लखौ॥-मधुपर्क, पृष्ठ-344

यहाँ महाभारत के एक उदाहरण को देखिये जिसमें कृष्ण की कितनी सद्भावना है समझौते के प्रति। कृष्ण के वे वचन अमृत हैं जो धृतराष्ट्र के लिए कहे गये हैं-"अपने पुत्रों से समन्वित धृतराष्ट्र वन हैं तथा पाण्डु के पुत्र व्याघ्र हैं। व्याघ्र के साथ वन को न काटो। ऐसा दुर्दिन भी न आवे कि वन से व्याघ्र नष्ट हो जायें-

"वनं राजा धृतराष्ट्र: सपुत्रो व्याघ्रास्ते वै संजय पाण्डु पुत्राः।
मा वनं छिन्दि सव्याघ्रं मा व्याघ्राऽनीनशन वनात्॥" -(सभापर्व, 29/542)

7-राष्ट्र एवं संस्कृति के सजग प्रहरी

कृष्णायनकार एवं मधुपर्क के गायक "करील" महात्मागाँधी के अनुयायी हैं। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र एवं "करील" जी ने अपने ग्रन्थों में कृष्ण को सर्वत्र राष्ट्रोद्धारक के रूप में दिखाया है। वे राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत एक जागरूक नागरिक ही नहीं प्रत्युत प्रजातांत्रिक रूप से अच्छे जन-संगठन कर्ता भी हैं। "प्रियप्रवास" में उनका मानवीय दृष्टिकोण नये रूप में आया है किन्तु प्राचीन भारतीय संस्कृति के

117-जयभारत, पृ.221-323, 118-वही, पृष्ठ 324, 119-वही, पृ.326, 120-(क) दो न्याय अगर तो आधा दो पर इसमें भी यदि बाधा हो। तो दे दो केवल पाँच ग्राम, रखो अपनी धरती तमाम॥ रश्मिरथी, पृ.25, (ख) कृष्णायन, पृ.283, (ग) जयभारत, पृ.331 (121)-(क) वही, पृ.332, (ख) कृष्णायन, पृ.284, (ग) मधुपर्क, पृष्ठ-295

उत्थान हेतु वे सदैव चैतन्य रहे हैं। कहीं भी उनकी मर्यादा में प्रश्न-चिह्न नहीं लगने पाया है। इसी में उनका चरित्र उत्कृष्ट हो गया है। नीचे कृष्ण के चरित्र को उन्मीलित करने वाले विविध प्रसंग दिये जाते हैं-

(क) देश की उन्नति एवं अनुशासन हेतु बिना राजकर चुकाये व्यापार करना अनुचित है, इसे भी तस्कर व्यापार कहा जाता है। यह भी एक प्रकार की चोरी है। देश के बड़े-बड़े पूँजीपति व्यापारी ऐसे ही चोर हुआ करते हैं। आज हमारे देश में बड़े पैमाने पर तस्कर माल का अपहरण सरकार कर रही है और माल-धारकों को कारागार में बन्द कर रही है। प्रशासन का यह अनिवार्य कार्य है कि सरकार से बिना अनुमति लिए कोई बाहर से व्यापार न करे। "कृष्णायन" ने दधिदान-प्रसंग में कृष्ण का ऐसा ही राजपुरुष-रूप दृष्टिगत हुआ है। गोपियों द्वारा ब्रज से मथुरा में जाकर दधि बेचने की परम्परा को कृष्ण तोड़ना चाहते हैं और यदि कोई बेचने जाना ही चाहता है तो वह राजभाग देकर ही जाये। अपने साथियों सहित वे इसका विरोध करते हैं-

"जात जे मधुपुर लै दधि प्राता, लेहु तिनहिं ते प्रथम जकाता।
काल्हि सजग रोकहु बनबाटा, घेरहु सब मिलि यमुना-घाटा।"[122]

एक सजग पुलिस कर्मचारी की भाँति कृष्ण का कार्यक्रम बनता है नदी पर पहुँच जाते हैं। गोपियाँ तो कृष्ण के पूर्व माखन-चोर प्रसंग का ध्यान दिलाकर कृष्ण का उपहास करती हैं, उन्हें यह कहाँ ज्ञात है कि कृष्ण अब एक विचारवान नागरिक हैं। कृष्ण उन्हें सावधान करते हैं-

"चोरी ते व्यापार बढ़ावा, राजभाग नहिं कबहुँ चुकावा।
आजु लेहुँ जब कसरि निकारी, देहुँ धरन तब पाँव अगारी।"[123]

दही तैयार हो गोकुल-ब्रज में और भेज दिया जाये मथुरा में, यह कहाँ का न्याय है? और वह भी बिना कर चुकाये। कृष्ण इसे कैसे बरदाश्त कर सकते हैं। वे तो निर्बल जन-जन के पालक हैं।

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अंग्रेजों के राजनैतिक इतिहास की ओर संकेत किया है। अंग्रेजों का भारत आगमन और गुप्त रीत्या भारत में रहकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करना तथा अन्त में यहीं का अधिपति बन जाना कवि को पीड़ित कर रहा है।

(ख) स्यमन्तक मणि-प्रसंग में श्रीकृष्ण की स्पष्टवादिता एवं जन-कल्याण मुख्य है। सत्राजित नामक यादव सूर्योपासना से स्यमन्तक मणि प्राप्त करता है। उसे पहनकर एक दिन कृष्ण के दरबार में आता है। मणि का गुण जानकर कृष्ण सत्राजित से कहते हैं, "जिस देश में यह रत्न रहता है उस देश में राजा और प्रजा का सम्पूर्ण कल्याण होता है। एक बार आकर यह मणि यदि अन्यत्र चली जाये तो देश में "इतिभय" उत्पन्न हो जाता है। आधि-व्याधि का विस्तार एवं आकर्षण के कारण दुष्काल पड़ जाता है। यह मणि तो है आपकी किन्तु इसमें जन-कल्याण है। छल-बल से यदि इसे कोई हर लेगा तो महान् अनर्थ होगा। तुम्हारे द्वारा इसकी रक्षा नहीं हो सकेगी, अत: प्रजा-हित में इसे राजा उग्रसेन को दे दो। प्रतिदिन इससे निकलने वाले कंचन-भार पर अपना अधिकार करते रहना। प्रजा-हित में मेरा यह प्रस्ताव है, अन्यथा न मानना।"[124] सत्राजित ने ऐसा नहीं किया। सत्राजित को मारकर शतधन्वा मणि छीन लेता है और अपने घोड़े पर सवार होकर नदी-नालों, पर्वतों को लाँघता हुआ दक्षिण दिशा में भागता है। अपने अग्रज बलराम के साथ कृष्ण उसका पीछा करते हैं। मिथिला नगर के सन्निकट जाते-जाते कृष्ण शतधन्वा का वध कर देते हैं किन्तु मणि नहीं पाते। इधर द्वारावती में पहुँचकर कृष्ण को ज्ञात हुआ कि अक्रूर जी

122-कृष्णायन, पृष्ठ-46, 123-वही, पृ.47, 124-वही, पृ.157

मणि लेकर तीर्थाटन चले गये हैं, इसीलिए राज्य में अकाल पड़ गया। काशी से जब अक्रूर आए और सभा में गये तब कृष्ण ने कहा कि प्रजा का कल्याण भूलकर आप मणि लेकर विदेश चले गये। राज्य में अनेक संकट उत्पन्न हो गया है, फिर भी आप मणि छिपा रहे हैं-

"तुमहु बिसारि प्रजा-कल्याणा, लै मणि कीन्ह विदेश प्रयाणा।
संकट अगणित मणि उपजाए, फिरत तदपि तुम ताहि दुराये।"[125]

अब भी मणि आपके पास है। बिना मणि को यहाँ प्रकट किये यहाँ से आपका जाना उचित नहीं है।[126] पश्चात्ताप की अग्नि से अनुतप्त, घबड़ाए हुए अक्रूर सभा में मणि रखकर भाग जाते हैं किन्तु पीछे-पीछे दौड़ते हुए कृष्ण जाकर सप्रीति उन्हें मणि लौटा देते हैं।[127]

यहाँ विचारणीय यह है कि मणि प्राप्त करके भी कृष्ण ने उसे स्वीकार नहीं किया। विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश के तेरहवें अध्याय में इस कथा का वर्णन है। श्रीकृष्ण कहते हैं-"यह मणि सदा शुद्ध और ब्रह्मचर्यादि गुणयुक्त रहकर धारण करने से सम्पूर्ण राष्ट्र का हित करती है और अशुद्धावस्था में धारण करने से अपने आश्रयदाता को भी मार डालती है। मेरे 16 हजार स्त्रियाँ हैं, इसलिए मैं इसके धारण करने में समर्थ नहीं हूँ, इसीलिए सत्यभामा भी इसको कैसे धारण कर सकती है? आप बलभद्र को भी इसके धारण से मदिरापान आदि सम्पूर्ण भोगों को त्यागना पड़ेगा। आपके धारण करने से सह सम्पूर्ण राष्ट्र का हित करेगा।[128]

राष्ट्र कल्याण के लिए भरी सभा में कृष्ण ने मणि धारण करने की अपनी अयोग्यता का कथन किया। यहाँ कृष्ण की स्पष्टवादिता उनके चरित्र को उज्ज्वल करती है। पंचों के सामने अपने दोषों को स्वीकार करना महान् आत्माओं का कार्य है।

(ग) कृष्ण का विचार है कि धर्म से उन्नति होती है और सुख मिलता है। केवल बल से ही अधिकार नहीं चलता। जहाँ औदार्य, शौर्य, उदारता, आत्मसमृद्धि, त्याग भावना तथा धर्म की उपस्थिति होती है, वहाँ शाश्वत रूप से विजय विभूति निवास करती है।[129] कृष्ण कहते हैं कि जिसके मन में स्वजनों का ही निवास सदैव रहता है उससे धर्म हित की सिद्धि नहीं होती। पूर्ण धर्मोत्थान-हेतु इसे त्यागना होगा। समष्टि के लिए व्यक्ति का बलिदान करना ही होगा।

"एकहि नीति तत्त्व मैं जाना-हेतु समष्टि व्यक्ति बलिदाना।
स्वजनहिं बसत जासु मन माहीं, सधत धर्म-हित तेहि ते नाहीं।।"[130]

बलराम जी पाण्डवों के प्रति कृष्ण की सहज प्रीति पर क्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यदुजनों ने ही असुरों का संहार किया, हमी ने आर्यसंघ का नेतृत्व किया किन्तु कृष्ण ने छीनकर उसे पाण्डवों को दे दिया और पाण्डवों ने यही यश कमाया कि उसे जुए के दाँव पर रखकर सम्पूर्ण राज्य गँवा दिया।[131] यहाँ बलराम की जातिगत एवं सीमित क्षेत्र की स्वार्थमयी भावनायें व्यक्त हुई हैं। कृष्ण कहते हैं कि हम लोग तो उन पाण्डवों से भी अयोग्य हैं। एक स्यमन्तक मणि प्राप्त हुई, यादवों में कलह मच गई थी। लोभ किसके हृदय में वास नहीं करता। किसने किस पर सन्देह नहीं किया? बिना संयम एवं अनुशासन से

125-कृष्णायन, पृ.165, 126-वही, पृ.165, 127-"मणि सप्रीति साग्रह लौटायी"-कृष्णायन, पृष्ठ-165, 128-विष्णु पुराण (4/13/155, 56, 57, 58, 60), 129-कृष्णायन, पृष्ठ-212, 213, 130-वही, पृष्ठ-212, 131-वही, पृष्ठ-267,

राज्य का संचालन और उसकी रक्षा नहीं हो सकती। मुझे पाण्डु-पुत्र प्रिय नहीं, बल्कि शील, त्याग, धर्म मुझे प्रिय हैं।[132] कृष्ण धर्म एवं धर्माधृत पाण्डु-पुत्रों से कभी भी विलग नहीं हो सकते।[133] कौरवों की भरी सभा में दुर्योधन के व्यवहार को देखकर सम्पूर्ण सभा की ओर देखते हुए भीष्म-द्रोणादि गुरुजनों से कहते हैं कि कुल हित-अवरोध व्यक्ति, ग्राम-विरोधी कुल, राष्ट्र विरोधी ग्राम, सर्वनाशक दुर्योधन त्याज्य है।[134]

(घ) हमारी प्राचीन परम्परा रही है कि कहीं प्रस्थान करते समय या शुभ कर्मों के अवसर पर बड़े-बूढ़ों एवं विप्रों का चरणस्पर्श कर आशीर्वाद प्राप्त कर लेना चाहिए। भारतीय संस्कृति का यह गुण कृष्ण में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। पाण्डवपुर में कुछ दिन वास करने के बाद कृष्ण जब वहाँ से प्रयाण करते हैं तब पहले वे पृथा-पद की वन्दना करते हैं-"जाय पृथा-पद बन्दन कीन्हा।" सुभद्रा और कृष्ण से मिलने के बाद धौम्य ऋषि एवं ब्राह्मणों की अर्चना करते हैं।[135] अक्रूर के साथ ब्रज से मथुरा आते समय भी उनका यह स्वरूप पूर्ण मर्यादित है। माता का चरणरज लेकर ब्राह्मणों की चरण वन्दना करते हैं और अन्य श्रेष्ठजनों से हाथ जोड़ते हैं।[136]

(ङ) भारत के लोकादर्श कृष्ण कंस के विरुद्ध आयोजित जनसभा में प्रस्तावनात्मक भाषण में भारत की महिमा का गान करते हैं-हमारा भारतवर्ष परमाराध्य है। यहाँ विश्व के सर्वश्रेष्ठ सत्यशक्ति सम्पन्न महर्षियों का जन्म हुआ है। प्राचीन वेद मत को ग्रहण करने वाले अनेक अग्रगण्य महर्षि, धर्म-तत्त्वज्ञ, लोकशास्त्र-विचक्षण, शान्ति एवं दान से यशस्वी-तपस्वी, लोक-लाभ के व्याख्या महात्मागण हो चुके हैं जिसमें वशिष्ठ, भरद्वाज, वाल्मीकि, हरिश्चन्द्र, पृथु, शिवि, दधीच, मान्धाता, दशरथ, रामचन्द्र अग्रगण्य हैं। इन लोगों ने लोक-प्रतिष्ठा की रक्षा की है। प्राणियों को प्राण और पुत्र को प्रजा माना है।[137] किन्तु छुद्रात्मा कंस का अत्याचार बहुत बढ़ गया है। लोकरंजन के लिए राम ने सीता को त्याग दिया था किन्तु त्यागवृत्ति कहाँ है? अपनी आत्मा के समान कंस प्रजा को कैसे मान सकता है कि जबकि पिता को ही काराबद्ध कर चुका है।[138] कंस के क्रूर अत्याचार के विरुद्ध एवं देश के उद्धारार्थ कृष्ण जनता को उत्साहित करते हैं।[139] वास्तव में विक्रमी, विभवी, वाग्मी, सक्षमी, लोकसंग्रही, सदाचारी, धर्म-कर्म-समन्वयी, गौब्राह्मण-प्रतिष्ठाता, विनयी, विद्वान, ओजस्वी, तेजस्वी कृष्ण के प्रत्येक कर्म में मानवीय लोक-निष्ठा संस्कृति का मूलाधार है।[140] कृष्ण के लिए "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" मानक आदर्श है। वे भारतभूमि को जननी के समान मानते हैं। भारत की नदियों, ऋषियों एवं कूप-तड़ागों पर कृष्ण को गर्व है।[141] जिस धरती पर पिता की प्रीति पर पुत्र धनधाम तज देता था, उसी पृथ्वी पर आज पिता को बन्दीगृह में डालकर पुत्र बढ़ रहा है, इस पर कृष्ण को चिन्ता है। सभा के मध्य उग्रसेन को राजा बनाकर कृष्ण कहते हैं-जिनकी सात संतानें कंस के हाथों से मारी गई हैं वे दोनों आज आपके साथ हैं और अब मेरा अपने पूर्वस्थान ब्रज में जाना उचित है। पिता की बात मानकर माता देवकी मुझे यशोदा के लिए दे रही हैं। हे माँ! वृन्दावन के लिए आज मुझे नन्दगाँव भेज दीजिए।[142] यहाँ कृष्ण की मन:स्थिति का तनिक विचार करें। कंस-वध के पश्चात् धर्म-कर्म की इतनी विजय प्राप्त करके भी कृष्ण ब्रज चले

132-कृष्णायन, पृ.267, 133-धर्म धर्मसुत ते कबहुँ सकत न हरि बिलगाय।, 134-वही, पृ.284, 135-वही, पृ. 232. 136-प्रियप्रवास, पृ.52, 137-मधुपर्क, पृ.169, 138-वही, पृ.170, 139-वही, पृ.172, 140-वही, पृ. 168, 141-वही, पृष्ठ 199-200, 142-वही, पृष्ठ 202-203

जाना चाहते हैं किन्तु प्रजा नन्द से कृष्ण को विश्व हेतु माँग लेती है। वह नन्द गाँव धन्य है जिसके छोकरे को आज जनगण अलौकिक रीति से माँग रहा है। दूध का मोल पाकर यशोदा धन्य हो गई। माता से पुत्र माँगने के लिए सारा संसार खड़ा है। यह विश्व की सबसे बड़ी भिक्षा है। इससे बढ़कर कौन त्याग हो सकता है।[143]

मथुरा में कृष्ण राजसी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। नित्य विभिन्न राज-काज के पेचीदे मामलों को सुलझाते हुए मगधेश की घातों का शमन करते रहते हैं। रानियों और पंडितों की जमातों से भी साक्षात्कार करते हैं किन्तु प्यारे ब्रज की याद कचोटती रहती है। हृदय में ब्रज से बिछुड़ते समय जो चोट बन गई थी, वह आज भी दर्द कर रही है। स्वर्णकलशों को देखकर कृष्ण गोपियों की जलभरी गगरियों की याद करते हैं। मथुरा के राजमार्गों पर ब्रज की सँकरी गलियों की याद आ जाती है। व्यंजनों को देखकर उन्हें सन्देह हो जाता है कि अब कभी माखन-रोटी नहीं मिलेगी। गणतंत्रीय शासन में वे माता की सुशासित सांटी का स्मरण करते हैं। क्या जमुना में कूदकर अब कभी अपनी कछोटी नहीं धोऊँगा? अटा पर चढ़ते हुए उन्हें गिरिराज की याद आने लगती है।[144] संसार में सबसे बड़ा अनुशासन माता का होता है, ऐसा कृष्ण मानते हैं।[145] अपने शत्रु के भी प्रति उचित व्यवहार करना चाहिए। जरासंध के मरने पर कृष्ण उसकी अन्त्येष्टि भी करवाते हैं।[146]

(च) लोकनीति के अनुसार विवाह में कन्या की स्वीकृति आवश्यक होनी चाहिए। इसीलिए कृष्ण रुक्मिणी का हरण करते हैं और अपनी भगिनी सुभद्रा का हरण अर्जुन द्वारा करवाते हैं। रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण बस चुके थे और अर्जुन पर चंचला सुभद्रा का मन अनुरक्त हो गया था।[147] कृष्ण कहते हैं कि दुष्ट रुक्मि अपनी भगिनी के मनोरथ को दबाकर शिशुपाल के साथ व्याहना चाहता है, इसीलिए रुक्मिणी का हरण कर लेना लोकनीति है।[148] रैवतक पर्वत पर एक दिन सहसा सुभद्रा और कृष्ण का मिलन हो जाता है, दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं।[149] एकान्त पाकर कृष्ण प्रेम-तप्त अर्जुन से कहते हैं-

" भगिनी सुभद्रा यह प्रिय मोरी, मृग-शिशु-सदृश चपल मतिभोरी।

X X X X X

तहु सखा परिताप उर, सुन्दरि अबहुँ कुंवरि।" कृष्णायन, पृष्ठ-200

इस प्रकार अर्जुन को प्रेरित करके, सुभद्रा की भावनाओं के अनुकूल विवाह सम्पन्न कराके कृष्ण कन्या की स्वीकृति को महत्त्व देते हैं।

8-कुशल गृहस्थ

कृष्ण की कुल आठ पटरानियाँ थीं जिन्हें समय-समय पर विशेष परिस्थितियों में कृष्ण ने वरण किया था। अपने "भुज-विक्रम" से रुक्मिणी का कृष्ण ने ऐसा वरण किया मानो धेनु को अधम वधिक-शिशुपाल से मुक्त किया हो। स्यमन्तक मणि खोजते समय ऋक्षराज जाम्बवान की कन्या जाम्बवती मिलीं। इसी प्रकार सत्यभामा, कालिंदी, मद्रा, सत्या, मित्रविन्दा और रोहिणी पटरानी बनी। नरकासुर की 16 हजार बंदिनी नारियों का उद्धार किया।[150] कृष्णायन और फेरिमिलिबो में कृष्ण के कुशल गृहस्थ जीवन का बड़ी तन्मयता से वर्णन किया गया है। नारद मुनि कृष्ण को एक साथ तीस काम करते हुए देखते हैं।

143-मधुपर्क, पृष्ठ 203-204, 144-वही, पृष्ठ 205, 145-वही, पृष्ठ 206, 146-वही, पृष्ठ 219, 147-कृष्णायन, पृष्ठ 133, 148-वही, पृष्ठ 135, 149-वही, पृष्ठ 200, 150-वही, पृष्ठ-203

रुक्मिणी के भवन में सोते हुए, उद्धव के साथ चौसर खेलते हुए, अपने पुत्र के साथ समोद खेलते हुए, अपनी स्त्रियों का केश सँवारते हुए और कहीं उनके गले में गजरा डालते हुए, कहीं घर में हवन करते हुए और कहीं ब्राह्मणों को भोज कराते हुए, कहीं सन्ध्योपासना करते हुए अन्य अनेक कार्य करते हुए नारद ने कृष्ण को देखा।[151] लीला नटवर की आश्चर्यमयी इन लोक-लीलाओं को देखकर नारद विस्मित हो जाते हैं और उनके हाथ से वीणा खिसक जाती है। अपनी गृहस्थी में लगे हुए कृष्ण का स्वरूप आश्चर्यमय है। वस्तुत: लोक-परम्परा की स्थापना करके "महाजन" लोक में ऐसे ही आचरण करते हैं।[152]

9- शांति समर्थक

कृष्ण निरर्थक रक्तपात नहीं चाहते किन्तु जनगण के मंगल हेतु वे अपना सिर भेंट कर देने में हिचकेंगे नहीं क्योंकि जन ही आदि विनायक है।[153] वे कहते हैं कि विधि की सम्पूर्ण सृष्टि गुण-कर्म-प्रधान, वर्णाश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था ही कर्त्तव्यपालन पर आधृत है। जीवन-सत्ता हेतु सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं। किसी की लघुता और किसी की प्रभुता मिथ्या है। जो जनमंगल के लिए एक लंगोटी धारण करता है वह प्रभु है, जिसके तपबल से जन-जन का पोषण होता है वह प्रभु है। उस व्यक्ति को प्रभु कैसे कहा जा सकता है जो "जन" "शोषक, अत्याचारी एवं जन-जन के तन-मन, धन का भोग करने वाला है।[154] यहाँ कवि ने अंग्रेजों की प्रभुता एवं गाँधी जी के त्याग की ओर संकेत किया है। "गणबल" का विस्तार करने वाले कृष्ण यहाँ गाँधी जी के व्यक्तित्व का संस्पर्श करते हुए दिखाये गये हैं। उन्हें हिंसा की भूख नहीं है। हाँ, अत्याचारियों के संहार हेतु वे अपना सिर हथेलियों पर लेकर उनसे जूझेंगे।[155] कृष्ण सर्वत्र गाँधी जी की तरह शान्ति-मार्ग की स्थापना में संलग्न रहे। जब शान्ति मार्ग से धर्म-कर्त्तव्य के पालन में बाधा देखी तब "क्रान्ति-बलिदान" का आह्वान किया है। उनकी स्पष्ट धारणा है-

"यदि महीप जन गन की कीरति राखि हैं
तौ हम मिथ्या रक्तपात करिहैं नहीं
पै अनास छल छद्म प्रचण्ड विरोधि कै
हम अपनो बलिदान करत डरिहैं नहीं। -(मधुपर्क, पृष्ठ-184)

10-आध्यात्मिक उपदेष्टा एवं परब्रह्म

कृष्ण ने आत्मबल को जनबल से अधिक महत्त्व दिया है। इसीलिए अर्जुन नारायणी सेना को नहीं, कृष्ण को अपनाते हैं। दोनों सेनाओं के मध्य जब अर्जुन सांसारिकता से विमोहित हो जाते हैं, तब कृष्ण ने जो कुछ उन्हें प्रबोध दिया वह कृष्ण के आत्मिक बल का मुख्य प्रकाशन है। यही आत्मबल सँजोकर अर्जुन क्षात्रोचित युद्ध-कार्य में प्रवृत्त हुए। कृष्णायन के गीता काण्ड में कृष्ण का उपदेष्टा रूप अधिक विकसित हुआ है। यद्यपि आधुनिक युग में कृष्ण का नवीन रूप प्रियप्रवास आदि काव्यों में निबद्धित है तथापि कुछ ऐसे भी कवि इस युग में हुए हैं जो कृष्ण के ईश्वरत्व को नहीं त्याग सके हैं। कृष्णायनकार उनके ब्रह्मत्व की घोषणा करते हैं।[156] इसी प्रकार जयद्रथ वध, द्रौपदी चीर-हरण, अक्रूर के साथ मथुरागमन, राजसूय यज्ञ आदि विविध प्रसंगों में उनके दिव्य रूप का प्रकाशन हुआ है। अक्रूर, युधिष्ठिर, भीष्म, दुर्योधन, अर्जुन तथा उद्धव के द्वारा विभिन्न स्थलों पर उनके गरिमामय ईश्वरत्व का कथन किया गया है।

151-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-89, 90, 91, 152-कृष्णायन, पृष्ठ 199, 153-मधुपर्क, पृष्ठ 241-240, 154-वही, पृष्ठ-241, 155-वही, पृष्ठ-242, (19), 243 (21), 156-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-89

11-धार्मिक एवं ब्राह्मण-पद-पूजक

गृहस्थ आश्रम का सम्यक् पालन करते सिद्धासनासीन होकर सन्ध्यावन्दन करना और उनकी सेवा में लगे रहना उनका प्रधान कर्म है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कौरवों को भी व्यवस्था का कार्यभार दिया जाता है। भोजन-व्यवस्था, धन-धान्य एकत्रित करने सम्बन्धी महनीय उच्च पदों पर कृष्ण ने दुर्योधन आदि कौरवों को प्रतिष्ठित किया और देश-विदेश से आने वाले ऋषि-मुनियों एवं ब्राह्मणों के चरण-प्रक्षालन का कार्य स्वयं ग्रहण किया। वे कहते हैं-

"बहु वेदज्ञ नियत-व्रतधारी, मर्मनिष्ठ, त्यागी आचारी।
करि नित तिनके पद-प्रक्षालन चहत अनन्त पुण्य मैं अर्जन।
जो प्रसन्न मोहिं पर नरराजू। देहु कृपा करि मोहि यह काजू।" -(कृष्णायन, पृष्ठ 221)

यहाँ कृष्ण की निरभिमानता, नम्रता एवं आप्तजनों की सेवा से पुण्य-ग्राहकता का अद्वितीय दृष्टान्त उपस्थित हुआ है। यही कृष्ण आगे चलकर सुदामा नामक एक गरीब ब्राह्मण की सेवा करके समाजवाद की आत्मीयता का जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह आज अधिक प्रासंगिक है। कहाँ द्वारिकाधीश कहाँ गरीब ब्राह्मण[157] किन्तु द्विज के च ़ण धोने में संकोच नहीं करते। जिस विह्वलता एवं आत्मीयता से उनका मिलन होता है उससे उनकी चारित्रिक महत्ता का बोध होता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि कृष्ण-सुदामा की मित्रता भी असाधारण कोटि की रही है-

"धोवन पैर लगे द्विज के जल ढारति पावन रुक्मिणी रानी।
कंटक काढ़ि अँगौछत पाँय भई जग बीच प्रसिद्ध कहानी।
चीर बिवाइन की उनकी इनकौ उर-अन्तर चीरि पिरानी।।"-(मधुपर्क, पृष्ठ-373)

वे धर्मज्ञ एवं शास्त्रज्ञ हैं-

न ऋचा, नहिं मन्त्र, न छन्द बचे जिन पैहरि कौ अधिकार नहीं।
नहिं सास्त्रणि कौं कछु ज्ञान बच्यो, जिहिं पै तिहिं कौ तो प्रसार नहीं।" (मधुपर्क, पृष्ठ-223)

12-कुरुक्षेत्रमिलन-प्रसंग

प्रभास क्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय एक बार पुन: ब्रजवासियों एवं मथुरावासियों से कृष्ण-मिलन होता है। आधुनिक आलोच्य काव्यों में कृष्ण का वैसा स्वरूप वर्णित नहीं है जैसा सूरदास ने किया है। इस अन्तिम मिलन में भी कृष्ण हँसते हुए राधा से ऐसे मिलते हैं जिससे उनकी निर्ममता एवं निज श्रेष्ठत्व की हृदयहीन प्रतीति का परिचय मिलता है। मधुपर्क में कृष्ण 65 वर्ष की अवस्था में जगतपिता के रूप में जगत्जननी राधा से मिलते हैं।[158] "कृष्णायन" एवं "फेरिमिलिबो" में इन प्रसंगों का अधिक विस्तार है। कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहा गया है और धर्मयुद्ध हो भी रहा था। इसी बीच सूर्यग्रहण पड़ने से युद्ध द्वारा धर्म में बाधा पड़ने की सम्भावना हो गई। व्यास के, परामर्श के अनुसार कृष्ण उतने दिनों के लिए युद्ध बन्द करवा देते हैं जब तक मोक्षग्रहण न हो जाये और इस क्षेत्र में कोई भी मुनि रहे।[159] धर्म के लिए महाभारत के युद्ध का स्थगन कृष्ण के चारित्रिक मनोभावों का परिचायक है। ध्यातव्य है कि विगत दिनों जर्मनी और इंग्लैण्ड के मध्य उनके प्रमुख त्यौहार क्रिसमस के दिन भी रक्तपात हुआ, युद्ध नहीं बन्द किया गया। सात

157-"पूज्य जनों के पग धोने का है मेरा अधिकार"- जयभारत, पृष्ठ-142, 158-मधुपर्क, पृष्ठ 383-384, 159-कृष्णायन, पृष्ठ 291

दिन के इस पर्व में कृष्ण ब्रज, मथुरा के सभी वर्गों से मिले। उनकी प्रेम-तन्मयता एवं आत्म-विह्वलता से सभी आनन्दसिक्त थे। गोपियों, राधा, गोप बालकों, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी से मिलकर पूर्व स्मृतियों को सजीव करके सबको प्रेमाश्रुपूरित कर देते हैं।[160] मिलन-व्याकुलता एवं ललक का ऐसा सुन्दर चित्रण अन्यत्र कहीं नहीं है।

13-श्रीकृष्ण; एक नैतिक शक्ति

श्री धर्मवीर भारती ने अपनी शक्तिशालिनी लेखनी से महाभारत युद्ध एवं कृष्ण के परिप्रेक्ष्य में सत्य एवं मर्यादा के कुछ कणों को बटोरकर, बचाकर निकाला है जिसका विवेचन अंधायुग में निबद्धित है। कृष्ण का ऐसा व्यक्तित्व है जिसके द्वारा आस्था, अनास्था, मर्यादा, अमर्यादा, सत्-असत् के अन्तर्द्वन्द्व में पड़े हुए मानव को आस्था, मर्यादा और सत् की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा मिलती है। अंधायुग के पात्र गांधारी, अश्वत्थामा और युयुत्सु पहले तो कृष्ण के प्रति आस्थावान रहते हैं और उनमें अमर्यादा बुद्धि का दर्शन करते रहे किन्तु अन्त में आस्था-मर्यादा का भाव ग्रहण करते हैं। गांधारी की दृष्टि में कृष्ण मर्यादा का उल्लंघन करने वाले अन्यायी, स्वार्थी, वंचक हैं जिनकी नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति और कृष्णार्पण अंधी प्रवृत्तियों की पोशाकें हैं।[161] बलराम मर्यादाहीन कूट बुद्धि बताते हैं।[162] अश्वत्थामा भी अन्यायी कहता है।[163] इसके विपरीत विदुर प्रभु कहकर सम्बोधित करते हैं।[164]

वृद्ध याचक उनके ज्ञान-कर्म-उपदेश के प्रति निष्ठा का भाव व्यक्त करता है। याचक कृष्ण को नक्षत्रों की गति से भी अधिक शक्तिशाली बताता है। कृष्ण के द्वारा नियति का निर्धारण होता है, ऐसी उसकी आस्था है।[165] कृष्ण की यहाँ प्रमुख विशेषता यह है कि वे आस्था, अनास्था, मर्यादा-अमर्यादा, शाप-आशीर्वाद सबको अनासक्त रूप में स्वीकार करते हैं। अश्वत्थामा उस समय आस्थावान हो जाता है जब कृष्ण के तलवे में वाण विंधता है और उसमें से पीब भरा दुर्गंधित नीला रक्त बहने लगता है तथा अश्वत्थामा के जख्मों की पीर जाती रही है। उसे ऐसा लगता है मानो कृष्ण उसके नरपशुत्व को अपने चरणों पर धारण किये रहे हैं।[166] इस प्रकार कृष्ण अपने मानवत्व एवं ईश्वरत्व की सीमा रेखाओं में अभिन्न से हैं। यहाँ कृष्ण के दोनों रूपों का अस्तित्व बोध कराया गया है।

विशेष

प्रभु रूप में किये गये कृष्ण के कुछ कृत्यों को मानवीय धारणाओं एवं मर्यादाओं के विरुद्ध कहा जाता है। यह भेद-बुद्धि तभी उत्पन्न होती है जब कृष्ण को साधारण प्राकृत जन मान लिया जाता है और इसी से माखन-चोरी, चीरहरण, रासलीला एवं सोलह हजार एक सौ आठ रानियों को अपनाने के कृत्य पर कृष्ण के ऊपर अंगुलि-निर्देश दिया जाता है। आधुनिक कृष्ण काव्यों की प्राचीन भूमिका में उक्त कार्यों का वर्णन भागवतानुसार है, वहाँ कृष्ण की दिव्यता में लेशमात्र भी शंका नहीं है। ऐसे ही स्थलों को जब तक मानवीय आधार देने की भूल की जाती रहेगी तब तक शंका का समाधान सम्भव नहीं होगा। आधुनिक युग की नवीन भूमिकाओं में लिखे गये काव्यों में कवि या तो इन प्रसंगों को बचा गया है अथवा उसका सम्यक् निराकरण किया है। मधुपर्क में रास की लोकोत्सव भूमिका प्रस्तुत की गई है जो देशभर में अब भी नाना रूपों में प्रचलित है। वहाँ उसका श्रृंगारी रूप नहीं है। राधा-कृष्ण के ओजमय नृत्य का

160-फेरिमिलिबो, पृष्ठ 186 से 216 तक तथा कृष्णायन, पृष्ठ 293 से 297 तक, 161-अंधायुग, पृष्ठ 24, 23, 83, 162-वही, पृष्ठ 63, 163-वही, पृष्ठ-95, 164-वही, पृष्ठ 22, 165-वही, पृष्ठ-26, 166-वही, पृष्ठ 128

वर्णन अवश्य है। मधुपर्क में चीरहरण का प्रसंग है ही नहीं। देवकी के भाव राज्य के विश्लेषण पर आधारित मातृ जगत की लालसाओं, दुश्चिन्ताओं का वर्णन किया गया है। जब जन्म देने वाली माँ बन्दिनी हो, पिता असहाय, निरुपाय हो तब ऐसे अवसर पर कृष्ण मूक द्रष्टा हों और रास का भी आयोजन करें, इस पर दु:खद-शंका व्यक्त करते हुए कवि ने आगे उसका समाधान भी किया है।[167] प्रधानत: भगवान् की तीन प्रकार की लीलायें हैं-

1-लोक संग्रह या लोक शिक्षा के लिए की जाने वाली आदर्श लीला

2-अद्भुत असम्भव जान पड़ने वाली प्रेम लीला

3-अन्तरंग प्रेमी भक्तों के साथ की जाने वाली प्रेममयी लीला।

इन सबमें प्रथम लीला ही अनुकरणीय है। शेष का अनुकरण करना सम्भव नहीं है। उक्त विषयों पर तनिक अलग-अलग विचार करें।

जिसके यहाँ हजारों गायें दूध देती हों तथा वह स्वयं अपने ब्रजमण्डल का मण्डलाधीश हो, उसका बेटा घर-घर माखन की चोरी करे, कैसी विचित्र बात है। कृष्ण सच्चिदानन्द हैं और गोपियाँ भी उनकी नित्य सिद्धा थो, कुछ पूर्व जन्म की देव-कन्यायें थीं, कुछ तपस्वी ऋषि थे और वेद-ऋचायें थीं। भगवान् को प्राप्त करने के लिए जिन भक्तों ने कठोर तप किया और गोपियों का तन, मन प्राप्त किया उनकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए, उन्हें आनन्द देने के लिए कृष्ण यदि उनकी मनचाही लीला करते हैं तो इसमें अनाचार का अंश कहाँ है? यह चोरी कैसे हुई? जब कोई दूसरे की वस्तु उनके अनजान में उसकी इच्छा के बिना ले लेता है, तब चोरी कही जाती है। यहाँ तो कृष्ण गोपियों की इच्छा से माखन लेते हैं, उनके अनजान में नहीं और उनके देखते ही दौड़कर भाग जाते थे। इस प्रकार उनकी चिर लालसा की पूर्ति लीला करते थे। हाँ, चूँकि वे प्रेमास्पद गोपियों का चित्त भी चुराते थे, इसलिए प्रेमाधिक्य से वे उन्हें चितचोर कहती थीं।

गोपियाँ कृष्ण को प्राप्त करने के लिए जो व्रत कर रही थीं उसमें वे मर्यादा एवं परम्परा के विरुद्ध यमुना में निर्वसन होकर स्नान कर रही थीं-"नग्न नीर अवगाहत नारी"[168] जिसका निवारण चीर-हरण करके कृष्ण ने किया। निर्वसन होकर गोपियों का कृष्ण के सम्मुख उपस्थित होना भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण है। गोपियाँ भी इस मर्यादा को जान जाती हैं कि जल में वरुण देवता निवास करते हैं और "कीन्ह हम चूक मुरारी" कहकर अपनी गलती स्वीकार करती हैं। उन्हें कृष्ण के इस कृत्य पर सन्तोष है-

"जदपि कीन्ह घनश्याम ढिठाई, तौहू नीकी चलनि बतायी।"[169]

मानवीय दृष्टि से भी विचार करने पर यह शंका निर्मूल होती है। मथुरा जाते समय कृष्ण की आयु 11 वर्ष की थी। नौवें दसवें वर्ष में चीर-हरण लीला हुई रही होगी। इस अवस्था में बालक में कामोत्तेजना की लेशमात्र गुंजाइश नहीं है। वास्तव में "वृत्तियों का आवरण नष्ट हो जाना ही चीरहरण लीला है और उनका आत्मा में रम जाना ही रास है।"[170]

शारदीय निशा में जब अधीरा गोपियाँ कृष्ण के पास वन में आती हैं तब उनके लिए कृष्ण का जो उपदेश होता है वह गृहस्थ-मर्यादा एवं सनातन धर्म का संस्पर्श करता है-"गोपियो! ब्रज में कोई विपत्ति तो नहीं है। घोर रात्रि में यहाँ आने का कारण क्या है। घरवाले तुम्हें ढूँढ़ते होंगे। अब फुहरना नहीं चाहिए। वन की शोभा देख लो। अब बच्चों और बछड़ों का भी ध्यान करो। धर्म के अनुकूल मोक्ष के खुले हुए

167-देवकी, पृष्ठ 140-143, 168-कृष्णायन, पृ.38, 169-वही, पृष्ठ-39, 170-राधामाधव-चिन्तन, पृ. 479

द्वार-अपने सगे सम्बन्धियों की सेवा छोड़कर वन में दर-दर भटकना स्त्रियों के लिए अनुचित है। स्त्री को अपने पति की ही सेवा करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि तुम सब मुझसे प्रेम करती हो, परन्तु प्रेम की शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं है।

श्रवण, स्मरण, दर्शन और ध्यान से सान्निध्य की अपेक्षा अधिक प्रेम बढ़ता है।[171] समस्त नारी जाति को इस प्रकार की शिक्षा देने वाले कृष्ण को मर्यादाहीन कैसे कहा जा सकता है। वस्तुत: रास में भाग लेने वालों में कोई भी जड़ या प्राकृत शरीर का नहीं था। यह चिदानन्द भगवान् के दिव्य विहार की झाँकी है। "रमे रमेशे ब्रज सुन्दरीभिर्यथार्भक: स्वप्रतिविभ्रम:" का उद्धरण देते हुए सन्त हृदय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार कहते हैं कि जैसे नन्हा शिशु दर्पण अथवा जल में पड़े हुए अपने प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है, वैसे ही रमेश भगवान् और ब्रज सुन्दरियों ने रमण किया। अर्थात् सच्चिदानन्दघन सर्वान्तर्यामी प्रेमरसरूप, लीला रसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी ह्लादिनी शक्तिरूपा आनन्द-चिन्मयरस प्रतिभाविता अपनी प्रतिमूर्ति से उत्पन्ना अपनी प्रतिबिम्बस्वरूपा गोपियों से आत्मक्रीड़ा की। पूर्ण ब्रह्म सनातन, रसरूप रसराज, रसिक शेखर, रसपर-ब्रह्म, अखिल रसामृत विग्रह भगवान् श्रीकृष्ण की इस चिदानंद रसमयी दिव्य क्रीड़ा का नाम ही रास है। इसमें न कोई जड़ शरीर था, न प्राकृत अङ्ग-सङ्ग था और न इसके सम्बन्ध की प्राकृत और स्थूल कल्पनायें ही थीं।[172]

ईश्वर का यह गूढ़ रहस्य है। प्राकृतजन इस रहस्य की कल्पना नहीं कर सकते।

इसी प्रकार सोलह हजार एक सौ गलित सतीत्व कुमारियों को दैत्य के चंगुल से मुक्त कराके समाज में प्रतिष्ठित किया। कुमारियों ने प्रार्थना की (कृष्णायन, पृष्ठ-186) स्वयं को समाज में सम्मान पूर्वक जीने के लिए। आततायियों द्वारा भगाई गई स्त्रियों के कल्याण का यह जितना ऊँचा मार्ग है। समाज सुधार की यह आधुनिक युग की विशेषता है।

अस्तु, उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कृष्ण का समग्र जीवन मर्यादायुक्त धर्म-जीवन की स्थापना में लगा रहा। कभी भी उन्होंने समष्टि एवं धर्म के सम्मुख व्यष्टि एवं अधर्म को प्रश्रय नहीं दिया। धर्मपथगामी पाण्डवों की प्रजातांत्रिक प्रणाली के अनुमोदन में कृष्ण ने अपने सगे-सम्बन्धी दुर्योधन का भी विरोध किया। ध्यातव्य है कि कृष्ण के पुत्र साम्ब से दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा व्याही थी।

राधा का शीलनिरूपण

प्रथम अध्याय में भक्ति एवं रीतिकालीन कविता में राधा के विविध रूपों की हम समीक्षा कर चुके हैं। आधुनिक काल में सन् 1813 ई० से लेकर आज तक कृष्ण-कथा को केन्द्र मानकर विपुल काव्य रचे गये हैं। प्रकृति के विचार से कृष्ण की भाँति राधा के भी चरित्र को दो अंशों में देखा जा सकता है। इसका कारण है कवियों की रचना-धर्मिता का भेदत्व। इस भेदत्व का विवेचन करने के पूर्व राधा के चरित्रांकन की समग्रता को ध्यान में रखकर हम भक्ति एवं सम्प्रदाय कहते हैं कि केहरी का दुग्ध स्वर्णपात्र में ही सुरक्षित रहता है, इसी तरह राधा का श्रृंगार सात्त्विक चित्तवृत्ति वाले भक्तों के चित्त में ही शुद्ध रहा है। मलिन मन वाले कवियों के लिए राधा-कृष्ण का वर्णन "सुमिरन" का बहाना रह गया था।

171-श्रीमद्‌भागवत 10/29/18-27, 172-राधामाधव-चिन्तन, पृष्ठ 493

भक्तिकाल में जिस राधा की चरण-धूलि को सद्य: वशीकरण चूर्ण समझकर आराधना की गई थी, जिसकी प्रेम और विरह की दशाओं का ध्यान करके कवि न केवल अपनी वासना पर विजय प्राप्त करते थे अपितु जन-मन-रंजन विधि द्वारा जनमानस का संस्कार भी करते थे। जो राधा समर्पण की आदर्श थीं और इस सामाजिक भाव की प्रेरक थीं कि प्रेम जिससे किया जाता है उसके लिए सर्वस्व समर्पण की आवश्यकता है। व्यक्तित्व की रक्षा में सम्भव नहीं है। चित्त की चंचलता प्रेम में असह्य है, अक्षम्य है। प्रेम एक साधना है जिसमें क्षण-क्षण तपकर ही स्वर्ण बनता है और तभी उस स्वर्णिम चित्त में प्रेम का भाव शुद्ध सात्विक रूप में रह सकता है। राधा ऐसी ही समर्पिता प्रेमिका है। राधा का प्रेम न तो सुविधाजनक समझौता है और न ही जीवन निर्वाह मात्र के लिए किया गया "विशिष्ट बन्धन" है। राधा का प्रेम उसके लिए महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। राधा ने अपने मन पर विजय प्राप्त की है, इसके लिए उसे अपने मन को मल-मल कर स्वच्छ करना पड़ा है। प्रारम्भ में प्रेम अनैतिक लग सकता है किन्तु मध्य और अन्त में प्रेम नैतिकता का रक्षक बन जाता है। राधा भक्तों की आराध्य देवी हैं जिसके प्रेम में बाह्य बन्धन को तोड़ने की प्रवृत्ति है, सर्वस्व सम्पूर्ण की पुकार है।

इस प्रकार भक्तों की राधा प्रेम की आराध्या देवी हैं, सीता, सावित्री आदि के प्रेम में चित्त मुक्त नहीं हो पाता, वहाँ कर्त्तव्य की बेड़ी पैरों में पड़ी रहती है। चित्त में मर्यादा का भय बना रहता है, अत: भक्त कवियों ने राधा नामक प्रेमिका का आविष्कार किया था तो बन्धनों से अतीत अवस्था में जाकर भी प्रेम के बन्धन में बँधी हुई थी, जो नैतिकता और मर्यादा का विरोध करके भी इन्हीं गुणों की रक्षा के लिए अवतरित हुई थीं। जिसकी आराधना सभी कर सकते थे, जिसकी आराधना के लिए प्रेम-शक्ति की अपेक्षा थी। प्रेम की देवी "राधा" का यह उदात्त रूप रीतिकाल में विकृत हो गया। राधा-कृष्ण का श्रृंगार भक्तिकाल में साधनात्मक है किन्तु, रीतिकाल में इसका अभाव है। प्रत्येक काव्य-कौशल का उद्‌देश्य रीतिकाल में "भोग" दिखाई पड़ता है। फलत: "राधा" के चित्रण में जो सूक्ष्म सौंदर्य था, सांकेतिक अध्यात्म की रहस्यमयता थी, दार्शनिकता थी, जो चित्त को निर्मल बनाने का आश्वासन था, वह लुप्त हो गया।

समीक्षकों द्वारा भारतेन्दु जी यद्यपि आधुनिक काल के जनक माने जाते हैं तथापि उनका रचना-कौशल रीतिकालीन परम्परा से विलग नहीं हो सका। उन्होंने मूलत: भक्ति तथा रीतिकालीन परम्परा का ही निर्वाह किया है। वह स्पष्ट कहते थे-"सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधा रानी के" भारतेन्दु की चित्तवृत्ति में कुल मिलाकर "रसिकता" अधिक थी, भक्तों जैसी निर्लिप्तता कम, अत: भारतेन्दु मण्डली में "राधा" की विशेष उन्नति नहीं हो सकी। राधा को नये परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास ही नहीं हुआ।

आधुनिक काल में भक्तिकालीन रचना-धर्मिता के आधार पर विशेषत: ब्रज भाषा में काव्य-ग्रन्थों की अधिकता है। ऐसी रचनाओं में श्री नारायण स्वामी जी की वाणी, राधिका सुखमा, ब्रजविहार, गोविन्द विलास, गोकुल बाल बिहार, श्रीकृष्ण जन्मोत्सव, प्रेम की पीर, निकुंज केलि माधुरी, प्रेमधन सर्वस्व, घनश्यामसागर, गोपाल विलास, श्रीकृष्ण कौस्तुभ, प्रेमरसमदिरा, रास पंचाध्यायी, अध्यात्मभागवत और माधवमाधवी आदि प्रमुख हैं। इन सबमें भक्तिकालीन प्रेमिका राधा का वर्णन दोहा, सोरठा, पदों एवं विभिन्न छन्दों के माध्यम से हुआ है। इसके अतिरिक्त जिन काव्यों में राधा को नवीन रूप में चित्रित किया गया है उनको मैं द्वितीय श्रेणी में रखता हूँ। सन् 1913 ई० में हरिऔध जी ने प्रियप्रवास लिखकर राधा को नवीन दृष्टि प्रदान की। एक नई परिस्थिति के अनुसार राधा को बदलने का प्रयत्न किया। आगे चलकर कृष्ण काव्यों पर समाज की विभिन्न समस्याओं का भी प्रभाव पड़ा जैसे-सुशासन की स्थापना, निवृत्ति-प्रवृत्ति

का द्वन्द्व, भाग्य और पौरुष आदि। मानववाद, व्यक्तिवाद, मार्क्सवाद, गाँधीवाद आदि दर्शनों तथा साहित्य, कला, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि के सम्बन्ध में आधुनिक विचारों का चित्रण हुआ है। जिन काव्य ग्रन्थों पर नवीनता की कुछ भी छाप है और जिनमें प्राचीन परम्परा से हटाकर आधुनिक विचारों का समावेश है उनमें प्रियप्रवास, तीनों उद्धव शतक (रत्नाकर, रसाल, गजेन्द्र नाथ चतुर्वेदी), द्वापर, कृष्णायन, पुरुषोत्तम, फेरिमिलिबो, राधा, जानकी वल्लभ शास्त्री कृत, मधुपर्क, कनुप्रिया आदि मुख्य हैं।

राधा ब्रज की रानी हैं। वह राधा तीन लोक के ठाकुर की ठकुरानी, समस्त ब्रज की सिरताज, लाड़िली, सखियों को सुख देने वाली और कृपा की खानि है।[173] वह कुंज की नायिका, कीर्ति के कुल की उजाली, तरुणियों में श्रेष्ठ और सखियों में सुकुमारी है। वह मोहन को प्राणों से भी प्रिय है। वह निशिदिन गलबाँही देकर मोहन के साथ बिहार करती हैं। वह कृष्ण का जीवन-मूल ही नहीं उन्हें उसने अपने वश में भी कर रखा है। उसके भाव से कृष्ण भी भयभीत हैं।[174] राधा के प्रकट होने से समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। भारतेन्दु जी राधा को युग-युग तक जीने के लिए आशीर्वाद भी दे देते हैं।[175] राधा मोहन-रस में डूब गई है, इसलिए लोक-लाज त्यागने में गुरुजनों का भय नहीं करती।[176] वह अपना ध्यान भूलकर कुंजों में राधे-राधे पुकारती है-

राधे भई आपु घनश्याम।
आपुन को गोविन्द कहत है छांड़ि राधिका नाम।
वैसेइ झुकि-झुकि के कुंजन में कबहुँक बेनु बजावे।
कबहुँ आपनो नाम लेइ के राधा राधा गावे।[177]

वह दु:ख दूर कर आनन्द को प्रकट करने वाली है।[178] राधा मंगल की नवीन बेलि है।[179] प्रेमाश्रु वर्णन के विभिन्न पदों में राधा के झूला झूलने का चित्रण हुआ है। भारतेन्दु जी ने राधा-कृष्ण का विवाह भी करा दिया है।[180] वह अपने प्राणप्रिय के लिए अपने करों से कुंज में पुष्पों की सेज रचती है।[181] रत्नाकर की राधा में कितनी मर्यादा, कितना धैर्य, कितनी आत्मनिष्ठा, कितना संयम और कितना संतोष है कि वह अन्य गोपियों की भाँति वह उद्धव द्वारा सन्देश भी नहीं भेजती किन्तु उद्धव की विदाई-वेला में उसका प्रणयी हृदय भाव-विभोर हो जाता है। वह कृष्ण को उनकी "बाँसुरी" प्रेषित कर देती है-"कीरति कुमारी सुखारी दई बाँसुरी।"[182] कृष्ण को राधा कभी भुलाए से भी नहीं भूलती।[183] राधा को सन्तोष है कि "कूबरी" भले ही "मुरारी" के गले में पड़ी रहे किन्तु तब भी कृष्ण दासिका-दुलारी के नहीं कहे जायेंगे। उन्हें तो राधा नाम का ही अनुगमन करना होगा। अर्थात् वे राधा-कृष्ण कहते जायेंगे।[184] गोपी-नाथ तो कहे जा सकते हैं किन्तु उन्हें कुब्जा-नाथ कोई नहीं कहता।[185] कृष्ण "राधिका-रमन" के रूप में ही लोक-विश्रुत हैं-

बाजत हैं बाजतैई रैहैं राधिका-रमन, कूबरी-रमन कान्ह बाजिहैं न बाजे हैं।[186]

रत्नाकर और डॉ० रसालजी ने राधा को भक्तों की भाँति कृष्ण की ह्लादिनीशक्ति के रूप में चित्रित किया है। राधा के चरणों को पार्वती, लक्ष्मी एवं ब्रह्माणी आदि अपने सिर पर रखती हैं, अतएव उनके

173-भारतेन्दु ग्रन्थावली, प्रेम तरंग, पृष्ठ-179, पद-1, 174-वही, वर्षाविनोद, पृष्ठ 499, पद-35, 175-वही, पृष्ठ 446, पद-31, 176-वही, पृष्ठ 656, पद 1, 177-वही, पृष्ठ 656, पद-2, 178-वही, पृष्ठ 514, पद-77, 179-वही, पृष्ठ 472, पद-103, 180-वही, पृष्ठ 445, 181-वही, पृष्ठ 64, पद-65, 182-उद्धव शतक, रत्नाकर, पद -97, 183-वही, डॉ० रामशंकर शुक्ल "रसाल"- पद-12 184-वही, पद सं० 122, 185-वही, पद सं० 123, 186-वही, पद सं० 124,

सुहाग के सिन्दूर लग-लगकर किशोरी जी के चरण लाल हो जाते हैं।[187] कृष्ण भी राधा के क्रीतदास हो गये हैं।[188]

आधुनिक युग में ईश्वरवादी साहित्य के अलौकिकत्व का निषेध करके मानवतावाद का उद्घोष किया गया। हरिऔधजी ने राधा को शुद्ध मानवीय रूप प्रदान किया। राधा सुधारवादी नैतिकता का फल है। सुधारवादी युग में नैतिक आग्रह प्रबल हो उठा था, अत: नैतिक शिथिलता के भय से शृंगारिक क्रीड़ाओं का सूक्ष्म संकेत भी अपराध माना जाता था। यह नैतिकता का ही प्रभाव है कि राधा विवाह सूत्र में बँधना चाहती है। समाज की स्वीकृति चाहती है-

हृदय चरण में तो मैं चढ़ा ही चुकी हूँ।
सविधि वरण की थी कामना और मेरी।[189]

आधुनिक कृष्ण काव्यों में राधा-कृष्ण के प्रेम में गौरव-गरिमा की प्रतिष्ठा एक ऐसी नवीनता है जिसका श्रेय हरिऔध जी को है। राधा के चरित्र-चित्रण की विशेषता है—प्रेम में गौरव-गरिमा की प्रतिष्ठा। वह अपने पति के गौरव एवं स्वाभिमान को स्मरण करती है-

राजाओं का शिर पर लसा दिव्य आपीड़ होगा।
शोभा होगी उभय श्रुति में स्वर्ण के कुण्डलों की।
बैठे होंगे निकट जितने शान्त औ शिष्ट होंगे।
मर्यादा का प्रतिपुरुष को ध्यान होगा बड़ा ही।[190]

भारतीय एकात्मवाद का सिद्धान्त है कि ईश्वर कण-कण में व्याप्त है अस्तु, सभी जीवों की पारस्परिक सरसता बनी रहनी चाहिए। राधा अपने मन को इतना व्यापक बना लेती है कि उसका निजी प्रेम विश्वप्रेम में परिवर्तित हो जाता है-

पाई जाती विविध जितनी वस्तुएँ हैं सबों में।
जो प्यारे को अमित रंग और रूप में देखती हूँ।
तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूँगी।
यों है मेरे हृदय तल में विश्व का प्रेम जागा॥[191]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वह अपने प्रिय का ही प्रतिबिम्ब देखती है-

व्यापी हैं विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राण प्यारा।
यों है मैंने जगपति को श्याम में है विलोका॥[192]

यद्यपि राधा में नायिका का परम्परागत समर्पिता रूप स्पष्टत: दिखायी देता है-"प्राणाधारे परम-सरले की मूर्ति राधे।"[193] तथापि वह लोक-चेतना एवं विश्व हित-भावना से परिपूर्ण है-

प्यारे आवें सुबयन कहें प्यार से गोद लेवें।
ठंडे होवें नयन-दु:ख हों दूर मैं गोद पाऊँ।
ये भी हैं भाव मम उरके और एक भाव भी है।
प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें॥[194]

187-प्रेमरसमदिरा, कृपालुदास, पृ० 191-92, 188-वही, पृ० 106, 189-प्रियप्रवास, चतुर्थसर्ग, पृष्ठ-41, 190-वही, षष्ठ सर्ग, पृष्ठ 68-69, 191-वही, षोडश सर्ग, पृष्ठ-254, 192-वही, पृष्ठ-255

जीवन में शान्ति चाहने वाले व्यक्ति को राधा सच्चा मार्ग बताती है-

देखो प्यारी भगिनी भव को प्यार की दृष्टियों से।
जो थोड़ा भी हृदय-तल में शान्ति की कामना है।[195]

वह ब्रजवासियों के दु:ख से अधिक दु:खी हैं-

मैं ऐसी हूँ न निज-दु:ख से कष्टिता शोकमग्ना।
हा! जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दु:खों से।[196]

राधा के प्रेम में विश्व-प्रेम का आभास होता है। वह अपने प्रियतम की आज्ञाकारिणी होने की कामना करती है। उसकी इच्छा है कि उसका कौमार-व्रत विश्व में पूर्णता को प्राप्त हो जाये-

आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की विश्व के काम आऊँ।
मेरा कौमार-व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे॥[197]

कृष्ण के विरह में उसे सारा जगत कृष्णमय दिखाई देता है। कालिन्दी के जल में उन्हें श्याम के गात की आभा दिखाई देती है। सरोवरों में खिले कमलों में कृष्ण के कर पग दिखाई देते हैं।[198] ताराओं से खचित मेघों में मुदित बक-पंक्ति में उन्हें श्याम का मुक्तालसित उर दिखाई देता है।[199] ऊँचे शिखरों में कृष्ण के चित्त की उच्चता[200] फूली संध्या में परम प्रिय की कान्ति, रजनी में श्याम-तन कर रंग,[201] मृगमालिका में अलक-सुषमा, मृगों में आँखों की छवि,[202] गगन तल में श्यामगात की नीलिमा, भू में शोभा[203] और खग-कुंजन में उन्हें श्याम की मोहिनी वंशिका की धुनि सुनाई देती है।[204] सारे संसार में कृष्ण व्याप्त है, इसीलिए राधा सबसे प्यार करती ह[205] कृष्ण को विश्वमय देखने से उसे दो लाभ भी प्राप्त हो गये-

हो जाने से हृदय-तल का भाव ऐसा निराला।
मैंने प्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाए।
मेरे जी में हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय-प्राणेश ही में।[206]

"ईशावास्यमिदं सर्वं जगत" मानकर पक्षी, चींटी और कीट-पतंगों को भी वह अन्न-जल प्रदान करती थीं। उनकी करुणा का आलम्बन इतना व्यापक था कि वृक्षों के पत्तों को भी निरर्थक तोड़ती थीं।[207] समाज के प्रत्येक वर्ग को उनका आश्रय सदा सुलभ था-

कंगालों की परमनिधि थीं औषधी पीड़ितों की।
दीनों की थीं बहिन, जननी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं ब्रज-अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं।[208]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने "द्वापर" में राधा के प्रणयिनी रूप का चित्रण किया है। यहाँ राधा एक समर्पित भक्त के रूप में चित्रित की गई हैं। राष्ट्र तथा समाज के रक्षक कृष्ण उसके प्रिय हैं और प्रेमी भी हैं। सभी धर्मों को त्यागकर वह कृष्ण के शरणागत है और उसके सभी कर्म कृष्णार्पित हैं-"शरण एक तेरे में आई, धरे रहें सब धर्म हरे। तुझको-एक तुझी को अर्पित राधा के सर्व कर्म हरे।"[209] राधा-कृष्ण के प्रेम

193-प्रियप्रवास, षोडश सर्ग, पृ० 243, 194-वही, षोडश सर्ग पृ० 253, 195-वही, सप्तम सर्ग-पृ० 264, 196-वही, पृष्ठ-259, 197-वही, पृष्ठ-259, 198-प्रियप्रवास, पृष्ठ-250, 199-वही, पृष्ठ-250, 200-वही, पृष्ठ-250, 201-वही, पृष्ठ-251, 202-वही, पृष्ठ-251, 203-वही, पृष्ठ 251, 204-वही, पृष्ठ-251, 205-वही, पृष्ठ 254, पद-105, 206-वही, पृष्ठ 254, पद-104, 207-प्रियप्रवास, पृष्ठ 268, पद-48, 208-वही, पृष्ठ 268, पद संख्या 49, 209-द्वापर, पृष्ठ-13,

से तृप्त हैं किन्तु वह चाहती है कि कृष्ण अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलते रहें। उसे तो कृष्ण याद करते रहे, यही बहुत है-

निज पथ धरे चले जाना तू,
अलं मुझे सुधि सुधा हरे।[210]

विश्व-वेदना दूर करने में कृष्ण की सहायता न कर पाने का पश्चात्ताप उसे है। उसे चिन्ता है कि उसने उस भावुक कृष्ण का प्रेम-रस सदा के लिए जूठा कर दिया है-

व्यथा विश्व-विषयक न तनिक भी, बँटास की निर्मम की।
उलटा अपना दु:ख लोक को, मैंने दिया सदा को,
उस भावुक का रस जितना था, जूठा किया सदा को। -द्वापर-पृष्ठ 202

किन्तु इसी चिन्ता को "मधुपर्क" में कार्य-रूप में किया गया है। राधा-कृष्ण का भार हल्का करने के लिए सेना तैयार करती है और अत्याचारियों से लड़ती भी है-

जिन जन-गन-हित-हेतु लड़ी चण्डी बनि राधा। -मधुपर्क, पृष्ठ 359

उसका मन सदैव प्रेमसागर में निमग्न रहता है,[211] वह कृष्ण से अपने वाम कपोल एवं अवतंस के चुम्बन की कामना करती है।[212] देवकी ने बिलखते हुए जब नन्द से यह कहा कि बिना बेटी लौटाए बेटा कैसे लूँ तो नन्द ने कहा कि उनकी बेटी राधा ब्रज में बैठी है-

बेटा कैसे लूँ, लौटाए बिना तुम्हारी बेटी ? शुभे शान्त हो, ब्रज में बैठी मेरी बेटी राधा।[213]

उसकी विदाई तो मैंने तभी करा ली जब कृष्ण को वहाँ छोड़ने गया था-

किन्तु वस्तुत: मैं बेटी की आज विदा कर आया। पुत्र रूप में ही राधा को यहाँ नन्द ने पाया।[214]

गोपियाँ राधा को विश्व का श्रेष्ठ जन-रत्न मानती हैं—राधा-सा जन-रत्न कहीं भी, जब जाने पाले व[215] हरिऔध की राधा की भाँति गुप्त की राधा भी जगत पीड़ा से ग्रस्त है। वह जनकल्याण के लिए ब्रज की सुखद क्रीड़ाओं का उत्सर्ग कर सकती है।[216] गुप्त जी राधा और कृष्ण की एकता के समर्थक हैं-

"एक मूर्ति आधे में राधा आधे में हरि पूरे"[217]

राधा की प्रेम पीड़ा से कुब्जा अवगत है, वह राधा के आदर्श प्रेम पर इतनी विह्वल है कि राधा की दासी बनने की कल्पना करती है-

होती हाय आज कुब्जा ही यदि राधा की दूती।
जाकर शरण इसी मिस तो वे अरुण-चरण तो छूती।[218]

कृष्ण के हाथ बेदाम बिकने वाली राधा के आँखों में जब आँसू छलक आते हैं तब उसे शंका होती है कि कहीं पुतली में बनी हुई प्रियतम की "तस्वीर" धुल न जाये।[219] मंजुल मूर्ति के दर्शन की अपराधिनी वह स्वयं है क्योंकि उसने कृष्ण को देखा क्यों ? पुन: वह विश्वास व्यक्त करती है कि बनमाली की बाँकी छवि अब नेत्रों से वियुक्त नहीं हो सकती-"बनमाली हमसे न धुलेगी ऐसी बाँकी झाँकी।"[220] हरिऔध की राधा के विरुद्ध गोपाल शरण सिंह की राधा अधीर है, हताश है, साहस नहीं है, कायरता का परिचय देती है-

210-द्वापर, पृष्ठ-14, 211-वही, पृष्ठ 15, 212-झुक वह वाम कपोल चूम ले, यह दक्षिण अवतंस हरे।-वही, पृष्ठ-15, 213-वही, पृष्ठ 136, 214-वही, पृष्ठ 137, 215-वही, पृष्ठ 201, 216-वही, पृष्ठ 202, 217-वही, पृष्ठ 203-, 218-वही, पृष्ठ 152, 219-अरे बिकी बेदाम कहाँ, मैं हुई बड़ी तकसीर। धोती हूँ जो बना चकी हूँ पुतली में तस्वीर। हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, पृ० 23, 220-वही, पृ०24

मुझे मृत्यु दो तुम्हीं आज अब
दयाधाम त्रिपुरारे
यही भीख मैं माँग रही हूँ
आँचल यहाँ पसारे।[221]

उसका विश्वास है कि अबला नारी विरह-व्यथा नहीं सहन कर सकेगी।[222] यही राधा पं० अनूप शर्मा की तूलिका को पाकर पार्वती की तरह से बाल तपस्विनी बन जाती है। संदेह और हताशा का कहीं नामोनिशान नहीं है।[223] उसके प्रेम की विजय होती है। कृष्ण भी "दीने पलक-कपाट राखि राधै दृग-अंचल" ऐसा करते हुए प्रेम का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं।[224] राधा-कृष्ण का प्रेम प्राचीन है। प्रथम दर्शन में ही कृष्ण को "क्षीरसिन्धु" की याद आ जाती है और राधा में अपनी प्राण-प्रिया लक्ष्मी का ध्यान करने लगते हैं। श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र जी कृष्णायन की रचना में मानस को आदर्श मानते हैं और उसका भाव पक्ष सूरदास का अनुगमन करता है। सूरदास की राधा का क्रमिक-प्रेम-विकास यहाँ देखा जा सकता है-

एक दिवस खेलन ब्रज खोरी, देखी श्याम राधिका भोरी।
जनु कछु क्षीर-सिन्धु सुधि आयी, औचक मोहित भये कन्हाई।
पूछत श्याम-"कहा तुम नामा, को तव पिता? कवन तव ग्रामा?
पहिले कबहुँ न परी लखायी, आजु कहाँ ब्रज खेलन आयी?[225]

राधा तुरन्त उत्तर देती है-

"राधा मैं, तुम कहँ भूल जाना, चोर ! चोर ! कहि जग पहिचाना।
मुदित श्याम कह मधु मुसुकायी, लीन्हेउ काह तुम्हार चोराई।[226]

राधा का चरित्र अचिन्त्य है, स्वभाव अथाह है। राधा जगाराध्या है। कृष्ण सदा राधा के वश में रहते हैं। देवकी की जिज्ञासा पर यशोदा कहती है कि राधा-कृष्ण की बाल लीला प्रत्यक्ष दिखा सकती है। फिर देखते ही देखते राधा ने अपने आजीवन एकनिष्ठ प्रेम को दाँव पर लगा दिया और कहा "केवल हरि-मय जो मम प्राणा, प्रगटहिं इष्टदेव भगवाना" विशाल लीला-स्थल पर ऐसा चमत्कार हुआ कि दर्शक रूप में इधर प्रौढ़ कृष्ण विद्यमान और उधर यशोदा की गोद में बालकृष्ण प्रकट-"चकित लखेउ जन-मंच पै, इत शोभित यदुराज, प्रकटे यशुमति अंक उत शिशु-स्वरूप ब्रजराज।"[227] प्रौढ़ कृष्ण भी यह चमत्कार देखकर चकित रह गये-"लखत हरिहु सोचत मनमाहीं, मैं कृतकार्य प्रिया सम नाहीं।" कृष्ण-भयंकर-युद्ध-क्षेत्र में पापियों को जड़ से नष्ट नहीं कर सके किन्तु राधा ने कृष्ण के प्रेम-विटप को सींचकर बड़ा कर दिया-

सकेउँ न मैं उन्मूलि खल, सन्मुख समर कराल,
पै राधा मम प्रेम-तरु, सींचि कीन्ह सुविशाल।"[228]

राधा कभी घर पर काम नहीं करती, यह उसके क्रोधित होकर खीझकर उत्तर देने से प्रकट होता है।[229] धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" गृहकार्य करते-करते जब अलसा जाती है, तब कदम्ब की छाया की ओर चली जाती है-

---

221-संचिता-गोपाल शरण सिंह, पृष्ठ-30, 222-वही, पृष्ठ-29, 223-फेरिमिलिबो-अनूप शर्मा, पृष्ठ-20, 224-वही, पृष्ठ-216, 225-कृष्णायन, पृष्ठ 30, 226-वही, पृष्ठ-30, 227-वही, पृष्ठ-297, 228-वही, पृष्ठ-297, 229-दासी दास बहुत मम धामा, कबहुँ न करहुँ हाथ निज कामा। आवहुँ खेलन संग कन्हाई, महरि मथानी देति गहायी। वही, पृष्ठ-39

यह लो मैं गृहकाज से अलसाकर अक्सर
इधर चली आती हूँ
और कदम्ब की छांह में शिथिल अस्त व्यस्त
अनमनी-सी पड़ी रहती हूँ............।"[230]

राधा का चित्रण स्वकीया में रूप में कहीं-कहीं हुआ है। आधुनिक परम्परा के अनुसार उसका विवाह होता है। विवाह में जयमाला और वैदिक रीति दोनों का सहारा लिया जाता है-

डाल दी राधा ने जयमाल, कृष्ण ने भी डाला था हार।
कहा-"यह हार तुम्हारी जीत, हार देकर भी मेरी हार।
हुआ सब धर्म रीति अनुसार, पूर्ण वैवाहिक कार्य विधान।
पिता के तुल्य समर्पण युक्त किया ब्रह्मा ने कन्यादान।[231]

दाऊदयाल जी ने राधा और कृष्ण का पुनर्मिलन कराकर नवीन उद्भावना का श्रीगणेश किया है।[232] डॉ० किशोरी लाल गुप्त की राधा भी परकीया से स्वकीया बन गयी है। इसीलिए वह कृष्ण को "छिगुनी (अर्थात् "कनगुरिया" पर नचाती है। वह जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकान्त संगिनी है।[234] श्रीकृष्ण आम्र मंजरी को चूर-चूर कर राधा की क्वांरी उजली माँग भरकर प्रेम को मर्यादित करना चाहते हैं। जंगली लतरों के पके फलों को मसल कर राधा के पांवों में महावर लगाकर उसे अपना बनाना चाहते हैं।[235]

उसकी शोख चंचल विचुम्बित पलकें, गोरी अनावृत बांह, अधर, पलकें, चरण, अंग-प्रत्यंग, सारी चम्पक वर्णी देह मात्र पगडंडियाँ" हैं जिसके सहारे कृष्ण राधा के प्रेम तक पहुँच जाते हैं।[236] वह आकार हीन, वर्ण हीन, रूप हीन एक सुगंध है जिसमें प्यार की "तुर्श" महक है।[237] यह प्रेम निर्मल एवं निष्कलुष था जिसे राधा ने कृष्ण को दिया-

आम का वह बौर,
मौसम का पहला बौर था,
अछूता, ताजा, सर्वप्रथम।
मैंने जो कुछ तुम्हें दिया है,
वह सब अछूता था, ताजा था, सर्वप्रथम प्रस्फुटन था।[238]

प्रेम के विह्वल क्षणों में अपनी हँसी कराती हुई "श्याम ले लो, श्याम ले लो" उच्चरित मुद्रा में नगर-डगर की हाट-बाट में घूमती रहती है। उसके जिस्म में आम के बौर टीस रहे हैं।[239] कृष्ण इस स्थिति को मर्यादित करना चाहते हैं-

और जब तुमने कहा कि "माथे पर पल्ला डाल लो।"
तो क्या तुम चिता रहे थे
कि अपने इसी निजत्व को, अपने आन्तरिक अर्थ को

230-कनुप्रिया, पृष्ठ 18, 231-राधा-दाऊदयाल गुप्त, पृष्ठ 87, 232-वही, पृष्ठ 271, 233-छिगुनी पै धार्यो गिरि जानैं सखी, तू नचावत ताकहँ हैं छिगुनी। राधा-डॉ० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ 55, 234-कनुप्रिया, पृष्ठ-23, 235-वही, पृष्ठ 25-26, 236-वही, पृष्ठ-29, 237-वही, पृष्ठ-30, 238-वही, पृष्ठ-33, 239-वही, पृष्ठ-33,

मैं सदा मर्यादित रक्खूँ, रसमय और
पवित्र रक्खूँ
नव वधू की भाँति।"[240]

राधा भी मर्यादा की सीमा में रहना चाहती है। सांसारिक विपत्तियों से रक्षा करने के कारण वह "कान्ह मेरा रक्षक है, मेरा बन्धु है, सहोदर है, कहती है और प्रेमानुभूति के क्षेत्र में कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गन्तव्य।" पुकार उठती है किन्तु जब कृष्ण उसे सखियों के सामने बुरी तरह से छेड़ देते हैं तब वह खीजकर, आँखों में आँसू भरकर, शपथ खा-खा कर सखी से कहती है-

कान्हा मेरा कोई नहीं है, कोई नहीं है
मैं कसम खा कर कहती हूँ
मेरा कोई नहीं है।"[241]

क्या सुहाग सीमा बन्धन है? स्वतन्त्रता छिन जाती है? ऐसा प्रश्न उद्घाटित करती हुई राधा कहती है, "आम के एक बौर को चूर-चूरकर, अपनी चुटकी में भरकर मेरे सीमंत पर बिखेरकर तूने क्या किया? अकस्मात् सिमट आई हूँ, सीमा में बँध गई हूँ, ऐसा क्या चाहा तुम्हें कान्ह?"[242] राधा के स्वरूप में सदैव परिवर्तन होता रहा है। पुराणों की राधा अपने स्वरूप की चिन्ता करती है-

मुझे इतने आकस्मिक मोड़ लेने पड़े हैं
कि मैं बिल्कुल भूल गई हूँ कि
मैं अब कहाँ हूँ
और तुम मेरे कौन हो?[243]

वह युगानुकूल लोक-चेतना से प्रेरित होकर सखी, साधिका, बान्धवी, माँ, वधू, सहचरी बनती रही है और "कनु" में सदैव विलीन होती रहती है।[244] वह युद्ध को निरर्थक मानती है-

हारी हुई सेनायें, जीती हुई सेनायें
नभ कँपाते हुए, युद्ध-घोष-क्रन्दन-स्वर
भागे हुए सैनिकों से सूनी हुई
अकल्पनीय अमानुषिक घटनायें युद्ध की
क्या ये सब सार्थक हैं?"[245]

कनुप्रिया की सम्पूर्ण प्रतिक्रियायें भावाकुल तन्मयता के क्षणों की विभिन्न स्थितियाँ हैं। जीवन के उत्तरार्द्ध में कृष्ण को राधा की आँखों का प्रेम-वीर स्मरण आता है। राधा उनकी अपनी है जिसे कभी पथ-बाधा मानकर लोकसेवा में प्रवृत्त हो गये थे। उनके "प्रेम-परश" और आँचल की घनी छाँह "के बिना कृष्ण अकेले हैं।[246] "राधा" जीवन का प्रश्न बनकर जीती रही है।[247] यद्यपि राधा के बिना कृष्ण सम्पूर्ण नहीं हैं-"राधा के बिना भी आप प्रभु! सम्पूर्ण रहे?", वे सदा राधा के मन में जीवित रह[248] तथापि कृष्ण वियोग में राधा को समाज ने परकीया के रूप में देखा, यही चिन्ता राधा को है-

---

240-कनुप्रिया, पृष्ठ-37, 241-वही, पृष्ठ-37, 242-वही, पृष्ठ-39, 243-वही, पृष्ठ-40, 244-वही, पृष्ठ-40, 245-वही, पृष्ठ-73, 246-योगनिद्रा, पृष्ठ-17, 247-वही, पृष्ठ-43, 248-वही, पृष्ठ-51

समस्त गोकुल में मैं पगली कहाती रही,
परकीया का प्रेम, उदाहृत मुझ पर ही हुआ
पर तुम तो दूर सोये रहे, अपने में ही खोये रहे
पारिजात पुष्पों से, सत्यभामा की माँग सजाते रहे
रहा-सहा स्नेह-दान, कुब्जा को देते रहे।"[249]

राधा अपनी "भरी-भरी आँखें, थकी-थकी पाँखें लिए चकोरी-सी" सी सूने वृन्दावन में पगली-सी भटकती रही है। तभी तो उसके व्यथापूर्ण जीवन को देखकर गोरी कोयल काली हो गयी थी। कृष्ण से वह पूछती है-

"पर तुमने किया क्या?
क्या वह न्यायोचित था,
पुरुषोचित कार्य था वह,
जो तुमने किया था?
बोलो तो?"[250]

मन के अनथके चरण बहुत दूर जा चुके हैं किन्तु तन की यात्रा (कृष्ण-मिलन) अभी अधूरी है। उड़ता हुआ मन शरीर को शिथिल कर देता है। इसीलिए राधा मन के भुलावे में न आने के लिए निर्देशित करती है।[251] कन्याओं के जीवन में एक समय ऐसा अवश्य होता है कि जब वह सहज रूप में माता-पिता को छोड़कर प्रियतम के घर चली जाती है। राधा जानना चाहती है कि ऐसा क्यों होता है।[252] नारी समाज नर का निर्व्याज मूलधन है, फिर भी राधा कभी भी स्नेह-परम्परा को दूषित नहीं करना चाहती है-

चन्दन वन में क्यों गरल-वल्लरी हूँगी?
जगभर का अपयश निज सिर माथे लूँगी?
नारी समाज निर्व्याज मूलधन नर का।
वर्जित न करूँगी, अर्जन जीवनभर का।[253]

सुरधनुषी क्षितिज पर राधा अपने पुलकित सपने वैसे ही सजाती रही है जैसे कोई रातभर ऐसी नाव खेता रहा हो जिसका लंगर उठा ही न हो। उसके सपने यात्री पूरी नहीं कर पाये।[254] वह शलभ की भाँति कृष्ण "रूप-दीप" पर जलती हुई उनके सदैव प्रकाशित बने रहने की कामना करती है।[255] राधा का हृदय मृग की तरह वंशी रूपी बीन पर मुग्ध होकर अपने को रिक्त करता रहा है।[256] प्रेम-वेदना से प्रताड़ित राधा की दशा देखकर सहानुभूति प्रकट करती हुई माँ कहती है कि सिन्दूर-बिन्दु लग जाने पर आँसुरी-बाँसुरी भूल जायेगी। राधा के जीवन में भू-चाल है, हलचल है। माँ के आँचल में वह निरीह हिरनी-सी शरण पा जाती है। उसका मन कभी घर में, कभी मधुवन में विचरण करता रहता है।[257]

अपनी इस दशा पर वह खीझती-सी प्रतीत होती है-

क्यों फूल बनी, काँटों में गई घसीटी,
क्या क्षार अश्रु के लिए हँसी थी मीठी?

249-योगनिद्रा, पृष्ठ-45, 250-वही, पृष्ठ 46, 251-राधा-जानकी वल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-4, 252-वही, पृष्ठ-9, 253-वही, पृष्ठ-21, 254-वही, पृष्ठ-32, 255-वही, पृष्ठ-50, 256-वही, पृष्ठ-40, 257-वही, पृष्ठ-31,

अपने सौरभ के लिए-दिए रह जाती,
क्या होता इस वन में न मत्त ऋतु आती?[258]

वह कहती है कि मेरा जन्म पीड़ा के डर से हुआ है। उसके जीवन में क्रन्दन की नीरवता सदा गूँजती रही है।[259] कुल-मर्यादा लाँघकर उसने प्रेम-राज्य में एक उच्च स्थान प्राप्त किया है।[260]

वस्तुत: धर्मवीर भारती और जानकीवल्लभ शास्त्री की राधा का चरित्र अनुभूतिपरक है। वह एक तन्मयी संवेदना है, चिन्तन का कौशल है। संवेदना की विविध सीढ़ियों पर चढ़कर, परिस्थिति सापेक्ष चिन्तन-धारा में अवगाहन करके ही राधा के चरित्र का आकलन किया जा सकता है। संस्कृति काल-जयी अनुभूति है जो पीढ़ी दर पीढ़ी समाज में सम्प्रेषित होती रहती है। संस्कृति की परिधि में इतिहास समाहित है। संस्कृति और इतिहास एक-दूसरे के सहायक हैं। राधा प्रेम-विश्व की एक संस्कृति है। जो प्रीति-प्रतीति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाये वही राधा है। प्रिय के प्रति आस्था एवं आराधना ही राधा है।[261] राधा तन्मयता एवं संवेदन के आवेग का प्रतीत है।

कंस की शासन-सत्ता जब यह प्रचार करने लगी कि युवक-युवतियों का "रासरंग सम्मेलन" लोक-मर्यादा के विरुद्ध है। युवक-युवतियों का पारस्परिक सम्पर्क तृण-अग्नि का संयोग है जो समाज को जला देगा, रास, नृत्य गीत की परम्परा अनार्य है, तब राधा रास को समाज-हित की पोषिका बताती हुई उसकी पवित्रता का प्रकाशन करती है-

रास रंग रचना सखि।
वैदिक परम्परा की मधुमती भूमिका है,
लोकोल्लास दायिनी तथा
तरंगवती गंगा-सी पतित पावनी।[262]

समस्त मानव समाज की रचना आनन्द के लिए हुई है, आत्मा का मंगल ही समाज का प्राण है। नर और नारी की शारीरिक रचना भिन्न तो है किन्तु एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं, वे मानव की मंगलात्मा के सहज एकीकृत रूप हैं।[263] रास रचना मानव की सहज भावना है। अपने ओजस्वी भाषण में राधा रास को पवित्र वैदिक परम्परा मानती है। युवा-शक्ति से समाज में पवित्रता छा जायेगी।[264] महात्मा गाँधी के अनुयायी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी श्री देवी रत्न अवस्थी की काव्य-तूलिका अंग्रेजों के अत्याचारों से पूर्णत: प्रभावित है, जिसका आभास हमें प्रजातन्त्र के समर्थन और कंस के अत्याचारों के विरोध में राजा के निम्न कथन से प्राप्त होता है-

राज्य नीकौ वह तौ जो न्यूनतम सासनकरि,
व्यक्ति की महत्ता कौ हुलासि कै बढ़ावै है,
किन्तु आज राज्य में तौ व्यक्ति सक्तिहीन करि,
कुचरि पछारौ जात, गाँसि गाँसि मारौ जात।[265]

वह गणतंत्र की समर्थिका है। राष्ट्रीय चेतना से मण्डित राधा नारी धर्मबाधा को सहने के लिए उद्यत नहीं है। वह नारियों को संगठित करती है और देश के उद्धार हेतु उन्हें उत्साहित करती है। समाज के प्रत्येक वर्ग का आह्वान करती है-

---

258-राधा, जानकीवल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-32, 259-वही, पृष्ठ-73, 260-वही, पृष्ठ-89, 261-वही, पृष्ठ-59, 262-मधुपर्क, पृष्ठ-49, 263-वही, पृष्ठ-50, 264-वही, पृष्ठ-58, 265-मधुपर्क, पृ.61

मिलौ ह्वै एक सारे देसबासी,
खिलौ ह्वै एक सारे देसबासी,
हिलौ ह्वै एक सारे देसबासी,
रिलौ ह्वै एक सारे देसबासी॥ -मधुपर्क, पृष्ठ-162

कंस के भ्रष्ट आचरण की निन्दा करती है-

जहाँ राजा पिता कौ मंच तोरै,
जहाँ राजा प्रजा कै सीस फोरै,
जहाँ राजा चिचोरै औ निचोरै,
धरा कौ धाइ कै तोरै मरोरै। -मधुपर्क, पृष्ठ 163

जहाँ राजा प्रजा का रक्त चाहता है, "घर बार" जलाता है, पीड़ा पहुँचाता है, धर्म का विरोध करता है, पापाचार बढ़ाता है, प्रजा को सुख नहीं पहुँचाता वहाँ राजा की सत्ता का विरोध करना धर्म है।[266] राधा की ललकार आज के किसी नेता से कम नहीं है-

उठौ लच्छाधिकी संसार वाही,
उठौ सत्कर्म सृष्टा भारवाही,
हलग्राही उठौ ध्रुव धारवाही,
उठौ कर कोटि ह्वै ह्वै कै सिपाही।[267]

राधा की इस राष्ट्रीय भावना का समर्थन कृष्ण करते हैं। वे "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" सभी गुरुसम्मत उपाय करने को तैयार हैं।[268]

राधा कहीं लोक की साधिका, निगमागम की वाणी, आँगन की रानी और कहीं कृपाण लेकर भवानी बन जाती है। वह समाज के सभी भावों एवं समस्त सम्बन्धों की आलम्बन बनी हुई है-कहीं सुन्दरता में वह सौन्दर्य भरती है, कहीं अश्व पर बैठकर दौड़ती है, कहीं "घूँघट काढ़ि" दिखाई पड़ती है और कहीं जीवन-ज्योति जगाकर विश्व की व्याकुलता का हरण करती है।[269] उसके विविध रूप हमारे समक्ष इस प्रकार दृष्टिगत हैं-

वह राधिका तौ रसरञ्जना ह्वै, कहूँ बाप के बेटी दुलारी भई।
अनुजा ह्वै कहूँ, कहुँ अग्रजा ह्वै, भगिनी सुभगा, सुकुमारी भई।
बनिता ह्वै, वधू ह्वै, कहूँ वह तौ घर आँगन की उजियारी भई।
भवभार सँभारन हेतु कहूँ, वह पुण्यमयी महतारी भई।[270]

गीता-भाव के अनुसार वह जय-पराजय, सुख-दु:ख को समान भाव से मानकर प्रेम पुजारिन बनेगी।[271] उसका विचार है कि जब हमने कृष्ण को पाँचजन्य ग्रहण करवा दिया, तन, मन, धन दे दिया, जन गौरव की महत्ता को स्वीकार कर लिया, तब हरि-स्मरण किया काम का, हरि तो मुझमें मिल गय हैं।[272] राधा का यह सन्तोष परम्परागत राधा से भिन्न है। चौंतीस वर्षों तक जिस ब्रज में "नहिं रास रची न मची होरी" और "कोदण्डनि तैं उतरे न बान" उस ब्रज में राधा रणचण्डी बनी रही।[273] उसकी कमर से चौंतीस वर्षों तक परिकर एवं तलवार नहीं छूटी।[274] भारत की पूरी संसद उसे सर्वोपरि नागरिक का पद

266-मधुपर्क, पृ.163, 267-वही, पृ.164, 268-वही, पृ.166, 269-वही, पृ.207, 270-वही, पृ. 208, 271-वही, पृष्ठ 235, 272-वही, पृष्ठ 236, 273-वही, पृष्ठ 259, 274-वही, पृ.260

प्रदान करती है। राजनेत्री राधा सैनिक गणवेश में कटि में खड्ग कसे हुए मंच पर आती है। वह प्रजातंत्र के गुण-भगवान् को साधुवाद देती है। राधा दूसरों को सम्मान देना चाहती है।[275]

अश्वत्थामा कृष्ण के ऊपर आक्षेप करता हुआ कहता है कि जिस राधा से आपने प्रेम किया उसे वृद्धा समझकर आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। इस पर कृष्ण का उत्तर राधा के चारित्रिक गुणों को वाणी प्रदान करता है-

आपु चिन्ता व्यर्थ जानि वाकी करैं
है स्वयं की राधिका अवलम्बिका।
राधा वृद्धा नहीं अक्षय यौवना है-
राधिका तौ विप्र ! अच्छययोबना
सो कि वृद्धा जो जनोदय रञ्जिनी।

क्या दिव्य विद्युत ज्योति की उपेक्षा की जा सकती है? राधिका विश्व का उपकार करने वाली शास्त्र रूपी वंशी की "सुधा-सङ्गीति" है।[276] राधा विष्णु की आह्लादिका, शिव की चण्डिका, विधि की सुता, कर्मकौशल-योगबल की मण्डिका है। राधा की जवानी निर्जरा है। इस जगतमाता की शरण में सारा संसार सोता रहता है।[277] लोक की शक्तिदात्री, सर्वदेशाग्रगण्या एवं तिरसठवर्षीय राधा जनगणधन्या है, प्रेम प्रतिष्ठा की मूर्ति हैं।[278] उसके प्रेम की एकनिष्ठता, चिरजता अमेय है। उसका प्रेमल बहुआयामी स्वरूप शारुता नयज्ञ कृष्ण के मन को खींच लेता है। कुरुक्षेत्र मिलन-पर्व पर तन्मयी राधा के हाथ से माला सरक जाती है, सजल लोचन सिक्त कण्ठा राधा स्वयं "मालासमान हरि के परिकण्ठ सोही" का चित्र उपस्थित कर देती है।[279]

आलोच्य काव्यों के इस विविध चरित्र-चित्रण से ज्ञात होता है कि कवियों ने अपने मेधा-बल से राधा को मानवता का ऐसा स्वरूप प्रदान किया है जिससे वह आगे भी हिन्दी साहित्य में युगधर्म का हुँकार भरती रहेगी। पुराण काल से लेकर आज तक राधा के चरित्र विकास के विभिन्न सोपानों का दर्शन करने से उसके विशद् व्यक्तित्व का बोध होता है। कुंजों और यमुना-कछारों में कृष्ण की बाँसुरी पर अपने को न्यौछावर कर प्रेमगीत गाने वाली राधा जब घोड़े की पीठ पर बैठकर तलवार भाँजती है, मंच पर चढ़कर भ्रष्ट राजसत्ता के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करती है, नारियों की शक्ति को जगाकर प्रोत्साहित करती है, तब उसे देखकर "साहित्य समाज का दर्पण है" सिद्ध होता सा प्रतीत होने लगता है। देश-काल की परिस्थितियों ने राधा को इतना बदल दिया कि आद्यन्त रूप में विभ्राटान्तर दृष्टिगत होने लगा।

आधुनिक हिन्दी काव्य में राधा के नवीन स्वरूप का चित्रांकन करने वाले काव्य ग्रन्थों में मधुपर्क, कृष्णायन, कनुप्रिया और जानकीवल्लभ शास्त्री की "राधा" अप्रमेय हैं। मेरा विश्वास है कि आगे के कवियों के लिए ये रचनाएँ मील का पत्थर सिद्ध होंगी।

275-मधुपर्क, पृष्ठ 260-61, 276-वही, पृष्ठ-293, 277-वही, पृष्ठ-377, 278-वही, पृष्ठ-377, 279-वही, पृष्ठ-384

5 आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रित राधा-कृष्ण सन्दर्भों में परम्परा एवं नवीनता की योजना

आलोच्य काव्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि राधा-कृष्ण प्रसंगों में अधिकांश कवियों ने परम्परा का निर्वाह किया है। ऐसी रचनाओं का सृजन भारतेन्दु (सन् 1870 ई०) से लेकर डॉ० माधवी लता शुक्ल (सन् 1991 ई०) तक होता रहा है। यह परिस्थितिजन्य संयोग ही कहा जायेगा कि ऐसी रचनाओं की भावोद्वाहिका ब्रजभाषा ही रही है। गत शताधिक वर्षों के इस काव्य-निचय एवं रचना-धर्मिता की निरन्तरता को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि कृष्ण-कथा की यह परम्परा आगे टूटने वाली नहीं है। इन कृतियों में भारतेन्दु के प्रेमगीत, नारायण स्वामी की वाणी (सर्वेश्वर पत्रिका का ब्रजविहार अंक), लोकनाथ चौबे की राधिका सुखमा, पं० रंगीलाल का ब्रजविहार, ठा० गोविन्द सिंह का गोविन्द विलास, भगवानदास का गोकुल बालविहार, भोलानाथ की प्रेम की पीर, उमाशंकर बाजपेयी की ब्रजभारती, माधवदास की निकुंज केलि माधुरी, सत्य नारायण "कविरत्न" का भ्रमरदूत, दुलारे लाल भार्गव की दुलारे दोहावली, राम प्रसाद त्रिपाठी की मुक्तमाला, कार्ष्णिगोपालदास का गोपाल विलास, कृपालुदास की प्रेमरस मदिरा, रत्नाकर और रसाल जी का उद्धव शतक, दाऊदयाल गुप्त का केशव, सुश्रीकृष्णा माँ का जुगल पद वन्दन, डॉ० माधवी लता शुक्ल की माधव-माधवी आदि काव्यग्रन्थ प्रमुख हैं। कुछ काव्य शिल्पियों ने परम्परा एवं नवीनता का सामंजस्य प्रस्तुत किया है। इनकी कृतियों पर स्वतंत्रता आन्दोलन एवं आधुनिक बुद्धिवाद का प्रभाव प्रतीत होता है। ऐसी रचनाओं में कृष्णायन, द्वापर, जय-भारत, जयद्रथ-वध, पुरुषोत्तम, रश्मिरथी, कृष्णायन और श्रीकृष्णचरित आदि मुख्य हैं। द्वारका प्रसाद मिश्र कृत अवधी भाषा के कृष्णायन को छोड़कर प्राय: सभी काव्य-ग्रन्थ खड़ी बोली के हैं। प्राचीनता एवं परम्परा को धता बताने वाले कवियों के राधा-कृष्ण बिल्कुल नये-नये हैं। इस नवीन काव्य-शृंखला में हरिऔध का "प्रियप्रवास" देवीरत्न अवस्थी का "मधुपर्क" धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" और अंधायुग, जानकीवल्लभ शास्त्री की "राधा" मैथिलीशरण गुप्त का "द्वापर", कृष्णानन्द "पीयूष" की "योगनिद्रा" पं० अनूप शर्मा का "फेरिमिलिबो" तथा उमाकान्त मालवीय की "देवकी" आदि ग्रन्थ आते हैं।

उपर्युक्त आलोच्य काव्यों के वर्णनों में प्राचीनता एवं नवीनता की योजना में अन्तर स्थापित करना मेरा आग्रह नहीं है। वास्तविकता यह है कि किसी ने परम्परा का गान ज्यों का त्यों किया और किसी ने उसे अपना बनाकर गाया। अपना बनाकर गाने वालों के सन्दर्भों में राधा-कृष्ण का कुछ नव्य हो जाना असम्भव नहीं है। कुछ विद्वानों को उपर्युक्त रचनाओं की प्राचीनता में नव्यता के और नवीन काव्यों में राधा-कृष्ण के परम्परागत प्राचीन रूप के दर्शन हो सकते हैं किन्तु ऐसे प्रसंगों की संख्या अत्यल्प ही होगी; ऐसा मेरा विश्वास है। प्रियप्रवास, मधुपर्क, कनुप्रिया, देवकी, अंधायुग, फेरिमिलिबो, योगनिद्रा और जानकीवल्लभ शास्त्री की "राधा" के राधा-कृष्ण सन्दर्भों की योजना और उसका प्रस्तुतीकरण मूलत: नया-नया है जिनके विविध वर्णनों का दिग्दर्शन हम आगे करायेंगे। यहाँ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि राधा और कृष्ण के सन्दर्भों में जहाँ नवीनता की योजना है, मात्र उसी का वर्णन आगे प्रस्तुत किया जायेगा। परम्परागत समस्त वर्णनों की समीक्षा करना यहाँ सम्भव नहीं है।

परम्परा के अनुसार श्रीकृष्ण पहले विष्णु के अवतार चतुर्भुज रूप में देवकी के गर्भ से प्रकट होते हैं।[1] दम्पति-माता-पिता के अनुरोध पर शिशु रूप दर्शाते हैं।[2] "कृष्णायन" में कृष्ण पहले शिशुरूप में प्रकट होते हैं-

देखी दम्पति बालक शोभा, रूप अनूप प्राण मन लोभा।[3]

बालक की शोभा देखकर और भाई कंस के हत्यारे-रूप का स्मरण कर "छिन्न-हृदय" होती हुई देवकी पति से कहती है-

"करहु युक्ति कुछ तनय उबारहु।"[4]

माता-पिता को अवलम्बन हीन जानकर कृष्ण शिशु वेष छिपाकर चतुर्भुज रूप प्रकट कर देते हैं। यह हुआ भागवत और कृष्णायन के कृष्णजन्म का अन्तर। समानता दोनों में इस बात की है कि दोनों ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के कहने पर वसुदेव उन्हें गोकुल ले जाते हैं[5] किन्तु रूपनारायण पाण्डेय के "कृष्णचरित" में वसुदेव अपने सबकी प्राण रक्षा हेतु बचपन तक ब्रज में रहने का परामर्श देते हैं।[6] इस पर श्रीकृष्ण कंस वध की घोषणा करके अपने माता-पिता को अभय कर देते हैं।[7] आकाश में चन्द्रमा देखकर कृष्ण उसे माँगते हैं खेलने के लिए, ऐसी परम्परा है किन्तु "कृष्णायन" में उसे खाने के लिए माँगते हैं-

लाउ मातु! मैं चन्दा लेहौं, भूख लागि, मैं चन्दहिं खैहौं। -कृष्णायन, पृ० 21

आधुनिकता के इस युग में लोगों का मानवतावादी दृष्टिकोण बहुत उभरा है। वे अब कृष्ण को लीलामय आराध्य नहीं किन्तु अनुकरणीय लोकहितकारी महामानव के रूप में देखना चाहते हैं किन्तु भावुक भक्तों को नर चरित्र की कोरी इतिवृत्तात्मकता से सन्तोष नहीं होता। वे अवतारवाद के परम्परागत रूप को छोड़ना नहीं चाहते और आधुनिक युगधर्म के मानवतावाद की उपेक्षा करना उनके लिए सम्भव नहीं है। ऐसे कवियों में द्वारका प्रसाद मिश्र अग्रगण्य हैं। वे स्वयं कहते हैं-

परम्परा-प्रिय मति मैं पाई,
पैतृक सम्पति तजि नहीं जायी।
बीज रूप सब निज उर धारी,
माँगति कर्म-भूमि नव वारी।
बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर जदपि प्राचीन।
भक्त श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन। कृष्णायन, पृष्ठ-2

अर्थात् बीज रूप में परम्परा को विकसित करने के लिए "नव वारी" की आवश्यकता है। ब्रज में बजने वाली बाँसुरी यद्यपि आज भी प्राचीन है किन्तु भक्तों के कर्ण-कुहरों में उसका युगानुकूल नवीन संगीत प्रविष्ट हो रहा है। कवि की इस भावना के आधार पर हम कह सकते हैं कि कृष्णायन के राधा-कृष्ण सन्दर्भों की परम्परा पुरानी है किन्तु उसका प्रस्तुतीकरण नव्य है। दूध पिलाने की प्रतिद्वन्द्विता

1-श्रीमद्भागवत, 10/3/8, 9, 10, 2-वही, 10/3/47, 3-कृष्णायन, अवतरण काण्ड, पृ० 12, 4-वही, अवतरण काण्ड, पृष्ठ-13, 5-ततश्च शौरिभगवत प्रचोदितः सुतं समादाय च सूतिकागृहात्। यदा बहिर्गन्तुमियेषु तर्ह्यजा या योगमायाजनि नन्द जायया। श्रीमद्भागवत 10/3/47 "गोकुल वेगि मोंहि लै धावहु, नन्द यशोदा ढिंग पहुँचावहु। मोरि योगमाया गुणखानी, यशुदा-गर्भ आजु प्रकटानी। राखि मोहिं तेहि यहि थल लावहु, कंसहिं कन्या जन्म जनावहु। -कृष्णायन, अवतरण काण्ड, पृष्ठ-14, 6-हम सबकी जान बचाने को बचपन तक ब्रज में हो आओ, -श्रीकृष्ण चरित, पृष्ठ-37, 7-वही, पृष्ठ-38

में चोटी मोटी होने की बात सर्वत्र कही गई है किन्तु कृष्णायन के कृष्ण और यशोदा का पारस्परिक परिसम्वाद और क्रियान्वयन सर्वथा नवीन एवं मधुर योजना है-

माखन खाये बढ़ति न चोटी, होति लाल पर्याप्तहिं मोटी।
सुनतहिं फेंकेउ कर ते माखन, चोटी गहि लागे पय माँगन॥
देहिं अबहिं मोंहि दूध पियायी कबहुँ न खैहौं माखन माई।
पियेउ घूँट दुइ दूध कन्हैया, कहत-"न बाढ़ी चोटी मैया॥ -कृष्णायन, पृ० 21

कालीदह में गिरी हुई गेंद को प्राप्त करने के लिए कृष्ण उसमें कूदते हैं, ऐसा सर्वत्र वर्णन है किन्तु मैथिलीशरण गुप्त के "द्वापर" में भिड-भरा मठोला" से निकलने वाली बर्रों से जान बचाने के लिए भोले कृष्ण कालीदह में कूद पड़े और यशोदा द्वारा पूछने पर उन्हीं के ऊपर लांछन लगाते हुए कहते हैं कि तुम्हीं ने "मठोला"में भिड़ (ततैया) रख दिया था, जब मैं मक्खन लेने गया तो पहले भिड़ें उड़ने लगीं-

तू कहती थी-"और चुराना तुम मक्खन का गोला।
छींके पर रख छोड़ेगी सब अब भिड़-भरा मठोला।
निकल उड़ी वे भिड़ें प्रथम ही भाग बचा मैं भोला।" -द्वापर, पृ० 24

"जातस्य हि ध्रुवोर्मुत्यु: ध्रुवं जन्म मृतस्य च" गीता के इस श्लोक के आधार पर उसका भावानुवाद करके कृष्ण के परम्परित रूप का वर्णन किया गया है-

जीवित की मृत्यु सुनिश्चित है मरिकै जीवित जीवन पावै।
मारै को काकों या जग मैं कौ काकौ नासै नसवावै। मधुपर्क, पृ० 269

इसी प्रकार "कृष्णायन" में परम्परा का त्याग न करते हुए कहीं-कहीं मूल भावों में और कहीं-कहीं वर्णनात्मक शैली की योजना में सर्वत्र ही नवीनता के दर्शन होते हैं।

मथुरा से उद्धव-ब्रज-प्रेषण-प्रसंग में भी नवीन योजना का दर्शन होता है। रत्नाकर जी "उद्धव-शतक" का श्रीगणेश ही इस कल्पना से करते हैं कि जमुना में स्नान हेतु कृष्ण जाते हैं और वहाँ-

न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।"[1]

ऐसे कमल में उन्हें राधा की गन्ध का अनुभव हो जाता है और वे वेहोश हो जाते हैं। पुनः तोते के मुख से राधा का नाम सुनकर होश में आ जाते हैं। यह सब परम्परा में कहीं नहीं मिलता है। रत्नाकर जी की यह कल्पना बड़ी ओछी लगती है कि कमल को सूँघकर ही उन्हें राधा का स्मरण हुआ। यह बात भी बहुत सटीक नहीं लगती कि उग्रसेन का नाती और मथुरा की शासन सत्ता का राजकुमार जमुना में स्नान करने जायेगा। रसाल जी के कृष्ण अपनी भक्तिभूषिता गोपियों को सदैव स्वस्मृति में रखते हैं और पूर्व सुख की स्थायी स्मृति के आधार पर उद्धव से अपना ब्रज प्रेम प्रदर्शित करते हैं। इस संदर्भ में "रसाल" जी ने एक नवीनता की योजना की है कि कृष्ण द्वारा चार पत्र भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के नाम भिजवाये हैं। एक पत्र यशोदा के नाम, दूसरा वृषभानु के नाम, तीसरा गोपियों के लिए और चौथा स्वयं राधिका की सेवा में प्रेषित है। कृष्ण की ओर से उद्धव के प्रति ब्रज में शिष्टाचार का उपदेश और पत्र देने का क्रम भी नियोजित कर दिया गया है।[2] यह परम्परा में कहीं दृष्टिगत नहीं होता है। अमृत लाल चतुर्वेदी के "स्याम संदेसौ" में ब्रज की व्यथा देखकर सारिका स्वयं मथुरा चली जाती है और कुब्जा के निवास पर "राधा कृष्ण" नाम की

1-उद्धव शतक-रत्नाकर, पृष्ठ-3, 1-उद्धव शतक-डॉ० रामशंकर शुक्ल, पृष्ठ-28,
2-स्याम सँदेसौ- अमृतलाल चतुर्वेदी, पृष्ठ-21, 22

रट लगा देती है जिसे सुनकर वे विकल हो जाते हैं। ब्रज पहुँचने पर उद्धव को राधा की मुख-मुद्रा में कृष्ण के दर्शन होते हैं।[3] यह नवीनता है। परम्परा है कि उद्धव मथुरा से ब्रज आते हैं और वहाँ की दशा की जानकारी कृष्ण को देने के लिए मथुरा ही वापस हो जाते हैं किन्तु एक स्थल पर ब्रज की व्यथा लेकर वे द्वारिका जाते हैं-

ब्रज बिहाइ ऊधै चले धँसे द्वारिका आइ।
अक्क बक्क भूले सबै कछू कही नहिं जाइ।[4]

ऐसा प्रतीत होता है कि जब तक कृष्ण जरासंध आदि राजाओं से सत्रह-सत्रह बार लड़ते रहे और रणछोड़ बनकर द्वारिका चले गये तब तक उद्धव जी ब्रज में ही छाए रहे। वे ब्रज में चार दिन के लिए गये किन्तु वहाँ रुक गये छ: माह तक।[5]

वियोगिनी राधा-कृष्ण को संदेश भेजती है कि यदि तुम शीघ्र नहीं आओगे तो राधा को जीवित नहीं पाओगे।[2] कृष्ण कालान्तर में आते हैं और राधा से मिलते हैं। कृष्ण प्रेमाकुल होकर राधा से कहते हैं-

बोले हे प्रिये! तुम्हारी आकुलता सुनकर आया।
यह कैसी दशा बनाई, कुम्हलाया जीवन यौवन।
लगता है मुझे बना अब, यह उपवन पूर्ण तपोवन।[3]

परम्परा है कि राधा सन्देश तो प्रेषित करती है किन्तु मिलन के लिए अपनी मृत्यु को दाँव पर नहीं लगाती है और न कृष्ण उससे कभी प्रभास क्षेत्र के पूर्व जीवन में मिलते हैं। दाऊदयाल गुप्त ने राधा-कृष्ण का मधुर मिलन कराकर अपूर्व नवीनता एवं विलक्षणता का परिचय दिया है।

(क) सुदामा-प्रसंग

श्रीमद्भागवत एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थों में सुदामा एवं कृष्ण की मित्रता का वर्णन है। सांदीपनि गुरु के यहाँ उज्जैन में दोनों ने बालसखा के रूप में विद्याध्ययन किया। गुरु-पत्नी के आदेश से दोनों समिधा एकत्रित करने जाते हैं। नरोत्तम दास जी ने वर्णन किया है कि गुरुपत्नी के द्वारा दिये गये चने को सुदामा स्वयं चबा लेते हैं और कृष्ण को नहीं मिल पाता है। जीवन के उत्तरार्द्ध में अपनी पत्नी द्वारा प्रेषित होकर गरीब सुदामा महाराजाधिराज कृष्ण के पास जाते हैं। दोनों का मिलन मार्मिक है। कृष्ण की कृपा से सुदामा धनवान हो जाते हैं।

इन्हीं प्रसंगों को मधुपर्क, कृष्णायन, द्वापर और देवकी में क्रमश: प्रस्तुत किया गया है। मधुपर्क के अष्टादश सर्ग में महाशिवरात्रि के समय सुदामा अपनी पत्नी के साथ दृष्टिगत होते हैं। उनके ब्राह्मणोचित श्रेष्ठ कार्यों की समीक्षा करके कवि इन्हें कृष्ण का मित्र बताता है। गुरु आश्रम में सुदामा सदैव कृष्ण को सम्मान देते रहे हैं। स्वयं "छाछ" पीकर कृष्ण के लिए "दधिआँठी" सँजोते रहे हैं।[6] वन में समिधा एकत्रित करते समय भीग जाने पर कृष्ण की "दुपटी" स्वयं निचोरते रहे हैं। ये "मुरलीधर के बिनु बेनु बजाए" गाते नहीं थे। बिना हरि से "बेद बँचाये" सोते नहीं थे और "माधव के बिनु हौंस जगाए" जागते नहीं थे।[7] कृष्ण

3-स्याम सँदेसौ-अमृतलाल चतुर्वेदी, पृ० 69, 4-स्याम सँदेसौ-अमृतलाल चतुर्वेदी, पृ० 73, 5-मधुपर्क, पृष्ठ-363, 6-वही, पृष्ठ-263, 7-"स्याम गए ब्रज कौं तजि कै इहिं बीच परे द्विजदेव अकेले"-मधुपर्क, पृष्ठ-264

को सदा खेल में जिताते रहे और सैन्य प्रशिक्षण में कृष्ण के साथ "तुरंग फँदावत" की भूमिका निभाते रहे हैं। यहाँ कृष्ण को सुदामा के साथ ऐसा प्रस्तुत किया गया है जैसे दोनों गोकुल के सखा हों। अपने धर्म को "कर्मप्रधान" बताते हुए सुदामा उस समय अकेले ही रह जाते हैं जब कृष्ण चले जाते हैं। यहाँ कथा में कोई क्रम नहीं है। उज्जैन से कृष्ण के मथुरा जाने की बात सर्वत्र कही गयी है किन्तु ब्रज जाने की घटना नवीन है।[3] कृष्ण के यहाँ जाने के लिए यहाँ सुदामा की पत्नी धन हेतु उन्हें प्रेषित नहीं करती बल्कि मित्रभाव को ही महत्त्व देती हैं। शिष्यों द्वारा रथ-वाहन उपस्थित करने पर भी ब्राह्मण सुदामा मंगल मंत्रों के बीच "धरे निज कंध अधारी" पैदल चल पड़ते हैं। केसर-"जित तण्डुल, कुंकुम और "पान-सुपारी" उपहार हेतु लेकर "निगमागमधारी" सुदामा गृह-त्याग करते हैं। कृष्ण के घर पर पहुँचकर और नाम पट्ट (नेम प्लेट) बाँचकर कुछ समय के लिए सुदामा प्रीति-विमुग्ध हो जाते हैं। अपना नाम और ग्राम लिखकर भेज देते हैं और कृष्ण-दर्शन के लिए व्याकुल हो जाते हैं। यहाँ कृष्ण को आधुनिक आफीसर के रूप में चित्रित किया गया है।[1] आजकल अधिकारियों से मिलने के लिए मिलनकर्ता की चिट पहले भेजी जाती है। सुदामा नाम पढ़कर परम्परागत रूप से कृष्ण दिल खोलकर उनका सम्मान करते हैं और कुछ समय के लिए "राजकाज" स्थगित कर देते हैं। यहाँ नवीनता एक यह है कि सुदामा कृष्ण के भाल पर कुंकुम लगाते हैं और कृष्ण की भाभी के द्वारा भेजे गये पान-सुपारी और तण्डुल को उनके समक्ष रख देते हैं। परम्परा के अनुसार सुदामा उपहार को अपनी काँख में छिपाते नहीं हैं। कृष्ण ने ताम्बूल खा लिया और इसे सुदामा के लिए निषिद्ध बताया। तण्डुल को अपने मस्तक पर लगाकर उपहार का यशोगान करते हैं। चरण-प्रक्षालन के समय कृष्ण की पीड़ा बढ़ जाती है।[2] द्वापर में मैथिलीशरण गुप्त ने सुदामा की मन:स्थितियों में कृष्ण के विभिन्न कार्यों का चित्रण किया है किन्तु उन्हें कृष्ण से मिलाया नहीं है।[3] उमाकान्त मालवीय के "देवकी" में नवीनता की योजना है। भोजन की तैयारी के लिए कृष्ण सुदामा लकड़ी लेने के लिए जंगल गये हैं। अँधेरी रात में जलवृष्टि से कृष्ण काँपने लगे। सुदामा ने अपना वस्त्र उतारकर कृष्ण को वस्त्र के ऊपर से पहना दिया और स्वयं विवस्त्र हो गया। भूख लगने पर सुदामा ने कृष्ण को अपने हिस्से के चने भी खिला दिये और स्वयं भूखा रह गया। देवकी कृष्ण की इस स्वार्थ-अंधता पर चिन्तित होती है और सुदामा को कोटिश: शुभाशीष देती है। देवकी को तरस इस बात की भी है कि नवनीत चोर के कण्ठ से सूखे चने कैसे उतरे होंगे।[4] "कृष्णायन" के गुरुकुल में एक नवीनता यह है कि लकड़ी बीनते समय सन्ध्या हो गई, वर्षा के साथ तूफान भी तेज था, कृष्ण और सुदामा अभय होकर बट-छाया में निशा-यापन कर लेते हैं। गुरु सांदीपनि भी जंगल में रात्रि भर दोनों शिष्यों को ढूँढ़ते रहे। प्रभात की स्वर्णिम वेला में गुरु ने देखा कि शिष्यगण सिर पर काष्ठ लेकर आ रहे हैं। बच्चों की कर्म-निष्ठा देखकर सांदीपनि जी की आँखों में आँसू आ गये और भाव-विह्वल कण्ठ से दोनों को हार्दिक आशीर्वाद दे दिया।[1] इस प्रबन्ध काव्य में सुदामा का प्रसंग प्राचीन होते हुए भी नवीन है। सुदामा जी "जनु रंकत्व आपु वपु धारें" रूप में कृष्ण के यहाँ पहुँचकर "सखा यदुनाथ मम, विप्र सुदामा नाम" की सूचना मध्याह्न काल में रमानिवास में भिजवा देते हैं। सुदामा का आगमन सुनकर कृष्ण आतुर होकर मिलने के लिए सवेग दौड़े। यहाँ उनका व्याकुल होकर

1-बाँचि नामपट द्वार पर वासुदेव श्रीकृष्ण, हरि के हित लोचन भये प्रीति-विमुग्ध सतृष्ण। नाम-ग्राम लिखि, भेजि पुनि बैठि विप्र संहितात। हरि दर्शन के हेतु मन बार-बार अकुलात॥-मधुपर्क, पृष्ठ 371, 2-चीर बिवाइन की उनकां इनकौ उर-अन्तर पीरि पिरानी।-वही, पृ० 373, 3-द्वापर, पृष्ठ 220, 21, 22, 4-देवकी, उमाकान्त मालवीय, पृष्ठ 126, 127, 128, 129

मित्र से की चीर बढ़ाने के लिए स्वयं कृष्ण दौड़े हों और गुरु वशिष्ठ और भरत के चित्रकूट पहुँचने पर राम व्याकुल होकर दौड़े हों। कृष्ण राजसमाज एवं रनिवास के समक्ष सुदामा का परिचय "बाल सखा ये प्राण पियारे", जननी गर्भ युग्म मिलि जैसे और "नेह-बद्ध हम दोउ भये, एक प्राण दुइ देह" के रूप में कराते हैं।[1] कृष्ण जब "प्रीति-उपहार" की बात करते हैं तब संकोची सुदामा न तो अस्वीकार कर पाते हैं और न लक्ष्मीपति को तण्डुल देने का साहस बटोर पाते हैं-

लक्ष्मी-पतिहिं न दै सकत, द्विज तण्डुल उपहार।
सकत असत्य न भाखि मुख टूटेउ बिपति पहार।
तेहि क्षण चीर-बँधे हरि चाउर, अइँचे, भयेउ विप्र भय-बाउर।
परसत ही काँपे अंग सारे, बहे देह ते स्वेद पनारे।[2]

सुदामा को "अक्षतदानी" बताते हुए कृष्ण अपनी सरलता का प्रतिपादन करते हैं-

केवल पत्र, पुष्प, फल, वारी, अर्पत जो सभक्ति नर-नारी।
करत ग्रहण मैं नवनिधि मानी, कस सकुचत तुम अक्षत दानी।[3]

विदा होकर मार्ग में सुदामा का चिन्तन शुभ दिखायी देता है। उन्हें सन्तोष है कि कृष्ण ने उनके धन-अभिलाषी मन की आशा को तृप्त नहीं किया।[4]

जब कृष्ण मथुरा आये तव लोगों में यह साहस आया कि "व्यूह बद्ध जन कंस भय राखेउ हरिहिं दुराय। और जब वे कंस के दरबार में प्रविष्ट हुए तब—

"कोलाहल कल्लोलकरि, गरजत जय ब्रजनाथ,
धँसेउ रंग जन वारिनिधि, हहरि हहरि हरि साथ।[5]

कंस-वध के समय जनता इतनी उन्मत्त हो उठी थी कि उसने नारे लगाकर-नासहु असुरन धन सुत द्वारा।" यह तो कृष्ण की मनोवैज्ञानिकता थी कि उन्होंने उस उद्वेलित जनशक्ति को निरीह सुतद्वारा-वध के मार्ग से निवृत करके बन्दीगृह-ध्वंस की ओर प्रवृत्त कर दिया जहाँ से नाना उग्रसेन और माता-पिता को छुड़ाना था-

"बन्दीगृह"-हरि मुख कढ़त, बन्दीगृह प्रति रोर,
धाये "बन्दीगृह" कहत, जन लाखन तेहि ओर।[6]

कृष्णायन के कृष्ण की सबसे बड़ी नवीन विशेषता यह है कि उन्होंने न कर्ण के कवच-कुण्डल अलग करवाये न युधिष्ठिर का कभी किसी प्रकार का अनुचित पक्ष लिया और न "अश्वत्थामा मरो, नरो वा कुंजरो" सरीखा झूठ बोलवाकर द्रोणाचार्य का वध करवाया। कृष्ण चरित्र के लेखकों ने प्रायः कृष्ण के अनासक्ति को निष्ठुरता का स्वरूप दे दिया है, कृष्ण ने ब्रज छोड़ा तो फिर आये ही नहीं, वे इतने निर्मोही बन गये किन्तु "कृष्णायन" के कृष्ण निर्मोही नहीं हैं। उन्हें तो राजनीतिक घटनाचक्रों से विवश होकर मथुरा संरक्षण के लिए रुक जाना पड़ा था। कंस-वध और उग्रसेन को राज्य सौंपने के अनन्तर ब्रज लौटने की तीव्र लालसा पर उद्धव जी का कितना करारा व्यंग्य है-

1-शिष्य प्रभात मुनीश निहारे, आवत काष्ठ अबहुँ सिर धारे। निष्ठा लखत पुलक तनु छाये, आशिष देत नयन भरि आये।-कृष्णायन, पृ० 104, 2-वही, पृष्ठ-491, 3-वही, पृष्ठ-492, 4-वही, पृष्ठ-492, 5-"कीन्ह परम उपकार प्रभु, पूँजी जो नहिं आस"-वही, पृष्ठ-492, 6-वही, पृष्ठ-85, 7-वही, पृष्ठ-88

यहि विधि जब मथुरा घिरि जाई, हरि बिनु को तेहि सकै बचाई।
चहत सोइ हरि ग्राम बसि, बहुरि चरावन धेनु।
यवन जरैहैं मधुपुरी, श्याम बजैहैं बेनु।[1]

इन परिस्थितियों में कृष्ण उस ब्रज या वृन्दावन में कुंजगली में कैसे लौट सकते हैं? घटनाचक्र उन्हें ब्रज से दूर ही रखता गया किन्तु ब्रज में उन्होंने ऐसा वातावरण निर्मित कर दिया था और अपनी ही द्वितीय आत्मारूप राधा को ऐसा दायित्व सौंप दिया था कि ब्रजवासी नित्य बालगोपाल के दर्शन पा सकते थे और अनति दीर्घ काम में सन्तोष-मूर्ति हो गये थे। जब वे कुरुक्षेत्र में मिले तक वर्णन की नवीनता यह है कि ब्रज-जन प्रसन्नतापूर्वक तीर्थक्षेत्र में आ रहे हैं-

सुन्दर इन्दु वदन नर-नारी, तोष मूर्ति सब परम सुखारी।
वंशीधर गिरिधर यश गावत, जयध्वनि करत गोपगण आवत।

और कृष्ण की यह दशा थी कि-

सुने तबहिं भगवान आवत ब्रज जन शब्द ये। विस्मृत रथ पद त्राण, धाये विकल सुपर्ण पति।[2]

उन्होंने सम्पूर्ण राजवैभव त्यागकर उन गोपों की झोपड़ियों में सुखपूर्वक निवास किया। प्रेम एवं त्याग, करुणा और कल्याण के ऐसे नवीन वातावरण में कृष्ण की अनासक्ति दृष्टिगत होती है। तुलसीराम शर्मा "दिनेश" की पुस्तक पुरुषोत्तम" में कृष्ण द्वारा गोपियों को संदेश भेजा जाता है कि वह आधुनिक युग के अनुकूल हैं और नवीन योजना है-

दीन दरिद्रों के देहों को मेरा मन्दिर मानो।
उनके आर्त्त असांसों को ही वंशी के स्वर जानो।[1]

आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्यों में प्रियप्रवास एक ऐसा काव्य-ग्रन्थ है जिसमें राधा-कृष्ण के स्वरूप में सर्वाधिक नवीन योजना का सर्जन किया गया है। प्रियप्रवास में बुद्धितत्त्व का प्रथम योगदान कृष्ण के अलौकिकत्व को दूर कर उनके मानवीकरण और मर्यादावाद में दिखायी पड़ता है। हरिऔध जी ने प्रथम सर्ग में कृष्ण को एक जनप्रिय, जनहितैषी, परम मनोहर किशोर के रूप में चित्रित किया है और मध्यकालीन दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित कृष्ण के ब्रह्मत्व को अन्तर्धान कर दिया है। इसे ब्रह्म का नवीन "बौद्धीकरण" कहा जा सकता है। परम्परा से हटकर नवीन योजना का यह परम कारण है। बूढ़े नन्द अक्रूर से प्रार्थना करते हैं कि मेरा लाल सम्पूर्ण पृथ्वी का प्राण है। इसलिए इसे न ले जायें।[2] ऐसा ही निवेदन दशरथ जी विश्मामित्र से त्रेतायुग में कर चुके हैं। कालिदास के मेघदूत की भाँति हरिऔध जी ने राधा की ओर से कृष्ण को सन्देश प्रेषण के लिए "पवनदूतिका" की नवीन योजना की है। दूती द्वारा सन्देश भेजने में राधा के जिन भावों का प्रकाशन होता है उससे वह लोकहितैषिणी और परोपकारिणी का रूप धारण कर लेती है-

कोई क्लान्ता कृषक ललना खेत में जो दिखावे।
धीरे-धीरे परस उसकी क्लान्तियों को मिटाना।[3]

एकादश सर्ग में कृष्ण के कथन से उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का उद्घाटन होता है-

1-कृष्णायन, पृष्ठ-91, 2-वही, पृष्ठ-293, 1-हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 636, 2-हा! हा! सारी ब्रज अवनि का प्राण है लाल मेरा। क्यों जीयेंगे हम सब उसे आप ले जायेंगे जो॥, 3-प्रियप्रवास, पृष्ठ-66

विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का।
सहाय होना असहाय जीव का।
उबारना संकट से स्वजाति का।
मनुष्य का सर्वप्रधान कार्य है।[1]

कृष्ण सम्पूर्ण अवनि-जन के हितैषी हैं। उन्हें प्राणों से भी अधिक विश्वप्रेम प्यारा है।[2] राधा ही जग-हित के लिए कृष्ण को प्रेरित करती है-

प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।[3]

कृष्ण अपने लोक संग्रहवाद का संदेश देते हैं जिसका भावार्थ है कि जगत में भोग की लालसा से जगत-हित की लिप्सा मनोज्ञतर है। केवल मुक्ति की कामना आत्मार्थ अथवा स्वार्थ है, उसे आत्मत्याग नहीं कर सकते। आत्म-त्यागी वही है जो लोकसेवक है। अपना सुख तो सबको प्रिय होता है किन्तु सफल जीवन उसी का है जो भोगों में लिप्त न होकर परोपकार करे।[4] इस प्रकार कृष्ण के सन्देश में मध्यकालीन कृष्णोपदेशों की तरह "वेदान्त" और योग का उपदेश नहीं है। सत्यता तो यह है कि कृष्ण एक महान् कर्म सम्पन्न कर रहे हैं अत: व्यक्तिगत प्रेम के लिए अवकाश नहीं है। जब उद्धव श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर ब्रज आते हैं तो विरही ब्रज-जन कृष्ण के लोकसेवी रूप का विस्तृत वर्णन करते हैं।[5] कृष्ण की प्रेमिका राधा अन्त में कृष्ण जीवन के आदर्श को प्राप्त कर लोकसेविका बन जाती है। वह अपने श्रीकृष्ण को समस्त विश्व में देखती है। फलत: उसका प्रियविषयक प्रेम, विश्व-मावन-प्रेम में बदल जाता है।

कथानक की नवीनता यहाँ सर्वोपरि है।[6] श्रीकृष्ण सूर की भाँति लोकरंजक नहीं लोकरक्षक हैं। श्रीकृष्ण अपने जीवन से समाजसेवा, स्वार्थत्याग, विश्वप्रेम, परोपकार, देश-सेवा का संदेश देते हैं। यहाँ कृष्ण की राधा में प्रेम के स्थान पर कर्त्तव्यभावना की प्रधानता है। वह त्याग, शालीनता, विनम्रता, गंभीरता, साधना और विश्व-प्रेम की साकार मूर्ति है।[7] अस्तु अष्टछाप के राधा-कृष्ण प्रियप्रवास में नये रूप में चित्रित हुए हैं। वस्तुत: राधा-कृष्ण सन्दर्भों में अध्यात्मवाद पर मानवतावाद की विजय दिखाई गई है।

उपर्युक्त नवीन योजना का श्रीगणेश 1913 ई० में हो चुका था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कृष्ण काव्यों में सर्वत्र मानवतावाद एवं लोकतन्त्र को राधा-कृष्ण के साथ जोड़ा गया है। प्रियप्रवास के रचनाकाल से 54 वर्ष बाद "मधुपर्क" की रचना 1967 ई० में हुई। ब्रजभाषा के इस प्रबन्ध में राधा-कृष्ण के बालजीवन से लेकर प्रौढ़ावस्था तक की कथाओं में सर्वत्र नवीनता है, सब कुछ नया है। इस नवीन योजना का विस्तृत दिग्दर्शन आगे कराया जा रहा है-

(ख) रास की सार्वजनिक भूमिका

पौराणिक ग्रन्थों में गोलोक की आध्यात्मिक रासलीला का वर्णन है। ब्रजभूमि में मनाये जाने वाले शारदोत्सव में उक्त रास-लीला का आरोपण करके भक्तिकाल के कवियों ने विस्तार से वर्णन किया है जिसमें राधा और समस्त गोपियाँ कृष्ण के साथ रंगरास, नृत्यादि करती हैं। इस रास का केन्द्रीय भाव पारस्परिक प्रेम होता है। कृष्ण सबको प्रेमदान करते हैं वंशी बजाकर। "मधुपर्क" का प्रबन्ध काव्य रास की उक्त दिशा और प्रकृति का समाश्रयण नहीं करता है क्योंकि काव्यकार देवीरत्न अवस्थी लौकिक जन

1-प्रियप्रवास, पृष्ठ 150, 2-वही, पृष्ठ-193, 3-वही, पृष्ठ 253, 4-वही, पृष्ठ-244, 5-वही, पृष्ठ 195, 6-वही, पृष्ठ 259, 7-वही, पृष्ठ 269

ही रहना चाहते हैं। सूरदास एवं जयदेव की पारम्परिक रास लीलाओं का इन पर कोई प्रभाव नहीं है। काव्यकार रास के सम्बन्ध में अपने विचार स्वयं व्यक्त करते हुए कहता है, "मुझमें न तो जयदेव बनने की क्षमता है और न उसे सूरदास ही का आशीर्वाद प्राप्त है। उसे तो लौकिक प्राणी बनकर रहना है, इसलिए उसने रास के लोकोत्सव का चित्रण किया है; जो देशभर में अब भी नाना रूपों में प्रचलित है। रास के नृत्य का चित्रण करते समय मेरे सामने यह विकट प्रश्न उपस्थित हुआ कि रास का नृत्य शृंगारी स्वरूप से रहित भी हो सकता है या नहीं। जिस प्रकार व्याकरण का एक आचार्य वर्णमाला के सभी अक्षरों, शब्दों और रूपों का पारंगत हो सकता है, उसी प्रकार कृष्ण चौंसठ कलाओं के आचार्य होने के कारण सब कुछ जानते थे और सारी विधाओं में पारंगत थे। वे अच्छे से अच्छे विद्वान से अधिक विद्वान थे। वे अच्छे से अच्छे योद्धा से अधिक अच्छे योद्धा थे। वे अद्वितीय घुड़सवार, यान चालक, नृत्य-शास्त्र विशारद थे। नृत्य के सबसे बड़े वेत्ता होने के कारण साहित्य उन्हें नटनागर कहता है।"[1] नृत्य के दो भेद माने गये हैं, 1-लास्य और दूसरा ताण्डव। लास्य में माधुर्य और ताण्डव में ओज का प्राधान्य है। कवि की मान्यता है कि आज के युग में यदि उदयशंकर अपनी पत्नी के साथ ओजपूर्ण नृत्य कर सकते हैं, तो कृष्ण राधा के साथ ओजपूर्ण नृत्य क्यों नहीं कर सकते। सभा में भाषण करती हुई राधा रास के औचित्य का प्रतिपादन करती है-

मानव समाज की समस्त पुण्य रचना,
केवल आनन्द कोस हेतु भई निर्मिता,
आत्मा कौ मंगल ही प्रान है समाज कौ,
ताकि रास रचना सखि ! जय है, विजय है। -मधुपर्क, पृष्ठ 49

शुष्क शास्त्रवाद-रत लोग श्रुति समर्थिता, प्रसादमयी, जीवनोल्लास की प्रीति-रीति नहीं जान पाते। युवक और युवतियाँ मानव की मंगलात्मा के सहज एकीकृत रूप हैं।

रास जीवनोल्लासिका है। रास मानवोत्थापिका है। रास लोकोद्दीपिका है। रास से वैदिक परम्परा एवं जीवन की पवित्रता की निरन्तरता बनी रहेगी। रास से राजनीति का सम्बन्ध है। युवक-युवतियों की एकता से कंस का प्रभाव समाप्त होगा?[2] नवीन शारदागमन पर जब "रास रस रंग" की तरङ्ग लहराने लगी तब ब्रज के जीवन की जवानी जग गई।[3] रास के प्रारम्भ में राधा के रूप एवं प्रेम-सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया गया है। राधा के केश, भाल, कर्ण, भृकुटि, नेत्र, नासिका, अधर, दसन, कपोल, चिबुक, मुख, कण्ठ, स्तन, भुजदण्ड, बाँहें, उदर, नाभि, कटि, नितम्ब, जघन आदि का ओजपूर्ण वर्णन है।[4] रासलीला में कृष्ण का सौंदर्य राधिका से कम नहीं है-

जैसकी कवि बन्दित लुनाई राधिका मैं लसी,
वैसियै मुकुन्द छवि छांव की जुन्हाई है।[5]

पूरे ब्रजमण्डल के लोग रास की तैयारी में लगे हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

नन्द वृषभानु के आवासनि में धूमधाम, उत बनवारी, इत कीरति कुमारी हैं।
कोऊ रूपरानी, कविवारी की जवानी जिमि, ब्रज की भवानी सी, हुलास वै भरै लगीं।

1-मधुपर्क-श्री देवीरत्न अवस्थी "करील", पृष्ठ 21, 2-वही, पृष्ठ-50, 3-वही, पृष्ठ 104, 4-वही, पृष्ठ 108 से 115 तक, 5-वही, पृष्ठ 116

गोरे, गदरारे, गुरु, गुम्फित, उरोजनि कौ,
चन्दन चुपार कोऊ नैंसुक ऊचावती।
लोचन लुभावै काहू लाल को पटम्बर तौ,
मन हुलसावै काहू लाली की लहरिया।[1]

रास रंग में डूबे हुए राधा-कृष्ण की जवानी अभिनन्दनीय है। इनका रूप अतुलनीय और अनूप है।[2] कृष्ण के लोकमङ्गल स्वरूप को देखकर वृन्दावन की सभा आगे बढ़ने लगी, वेद और पुराणों की प्रभा बढ़ने लगी, आर्य शक्ति की विभा बढ़ने लगी।[3]

इस रास-नृत्य में व्यास, शुकदेव, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद साभिमान गीत गाने लगे। सभी देश-देशों के राजा इस पर्व की विभूतियों को बढ़ा रहे हैं।[4] नन्द और वृषभानु भी हुलसित हैं-

कीरति कुमारी, बनवारी की बिलोकनि तै,
नन्द हुलसाने, वृसभानु पुलकाने है।[5]

गोपाल के नृत्य करते ही ललिता आदि सखियों को लेकर अलबेली राधा भी 'छम छम छमकने' लगी। बाधा तोड़कर राधा अविराम गति से कृष्ण का साथ देने लगी, राधा तोरि बाधा जब नाची अबिरामा है।"

नर भये अमर, अमर नर सारे भये,
हरस बिभोर पुण्य घेरैं ब्रज बानी कौं।"[6]

विरंचि का वेद-पाठ रुक गया, पुरारी गंगा को तरंगित ही नहीं करते, इन्द्र के ऐरावत ने काम करना बन्द कर दिया, गरुड़ चक्रपाणि को सवारी नहीं दे रहा है। तुन्दिल गणेश का वाहन गायब हो गया। यही नहीं "राधिका कै नृत्त तैं निमंत्र जंत्र तंत्र भए, कुण्ठित करील और कदम्ब रहे दङ्ग है।" राधा के साथ प्रसन्न होकर शंकर, ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, देवराज, भूमिद्विजराज, बार-बार नाचते रहे। नन्द वृषभानु के साथ "कीरति जसोदा नाची" और "राधिका कैं नृत्त तैं मुकुन्द नाचे हर ह्वै।"[7] राधा पुण्य की प्रतीक हो गई और सर्वत्र- जय जय जय भई जमुना कंछरनि की,
गङ्गा जल धारनि की, झारनि की झाऊ की।[8]

'मधुपर्क' कृष्ण के प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली का समर्थन करता है। श्रीकृष्ण रामराज्य की स्थापना करना चाहते हैं पूरे देश में। वे चाहते हैं कि "भरतोदिक भायप की महिमा," रिपुसूदन सायक की महिमा", 'वरदायक रघुनायक की महिमा' सर्वत्र व्याप्त हो जाये। हिमालय से लेकर सागरपर्यन्त समर्थवान समाज बने और जनता जन की अधिराज बन जाये। वे अनुशासन से पूर्ण मण्डल बनाना चाहते हैं।[9]

कंस का अत्याचार जहाँ-जहाँ था, वहाँ कृष्ण तुरन्त पहुँच जाते थे, "अंटै श्रीकृष्ण लौकोद्देस्यधारी, दुरैं वा ठौंर तैं राज्याधिकारी।"[10] राष्ट्रीय नेता राधा एक अच्छी संगठनकर्त्री हैं। धर्म, कर्म, शक्ति, वेदन, पुण्य, यज्ञ, पुत्र, बन्धु और जीवन-गति को वह जगाना चाहती है। अष्टम् सर्ग में राधा की ओजमयी जीवनी शक्ति का प्रखर तेज हुंकार भरता है-

उठौ संसार के स्वर्गाधिकारी, उठौ संसार के वर्गाधिकारी।
उठौ संसार के सर्गाधिकारी, उठौ संसार के दुर्गाधिकारी।[11]

1-मधुपर्क, पृष्ठ 117, 118, 2-वही, पृष्ठ 123, 3-वही, पृष्ठ 125, 4-वही, पृष्ठ 125, 5-वही, पृष्ठ 127, 6-वही, पृष्ठ 141, 7-वही, पृष्ठ 143, 8-वही, पृष्ठ 144, 9-वही, पृष्ठ 213, 10-वही, पृष्ठ 147, 11-वही, पृष्ठ 161

धर्म, कर्म, मर्म के ज्योतिवाही उठो, अत्याचार का विरोध करो। राधा के अनुसार वह राजा योग्य नहीं है जो अन्यायी, इच्छानुसारी, आतङ्कधारी, अनारी है, जो प्रजा का रक्त चाहता है, पापाचार करता है, प्रजा को मारता है, प्रजा के लिए भार होता है, धर्म का विरोध करता है, वह दण्डनीय है। ऐसे राजा का विरोध करना धर्म है।[1] राधा के वक्तव्य का समर्थन सिर झुकाकर कृष्ण करते हैं-

बोले हरि राधा भरित भाय,
सिर नाइ सकल ब्रीड़ा बिहाय,
करिहैं गुरु सम्मत सब उपाय,
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।[2]

राधा-कृष्ण के इस युयुत्सु-आन्दोलन से कंस काँप उठा। यमराज, विष्णु और शम्भु चैतन्य हो गये। कंस द्वारा प्रेरित जितनी बाधाएँ थीं सब नष्ट हो गईं-

भई जनु नष्ट भ्रष्ट लोक बाधा,
हिली अघ ओघ की माया अगाधा।
भयौ दुष्कृत्य कौ तप तेज आधा,
खड़े जब एक ह्वै हरि और राधा।[3]

राष्ट्रीय नेत्री राधा और राष्ट्रपुरुष कृष्ण के आह्वान से योगी, गृही, जती, व्रती तथा समाज के सभी वर्ग के लोग राजद्रोह की ध्वजा लेकर फहराने लगे। कृष्ण जनजाति के जागरण में लग गये।[4] क्रान्ति को प्रोत्साहन देते हुए कृष्ण जनसमूह के समक्ष सर्वजन का आह्वान करते हैं-

सूद्र वैश्य तथा छत्री ब्राह्मण सर्व एक है,
कहौ क्रान्ति! महाक्रान्ति! जीवै! जागै! जनोन्मुखी।
व्यापारी घोस लोकस्वी पर्जटी एक ह्वै सबै
धातुकार कलाकार कृसिकारादि एक ह्वै
विद्यार्थी औ गृही जेते सन्यासी औ बनी सबै
बाल वृद्ध जुवा सारे धर्म के हेतु एक ह्वै
कहौ क्रान्ति ! महाक्रान्ति ! जीवै ! जागै ! जनोन्मुखी।[5]

जनसत्ता के समक्ष संसार की कोई शक्ति रुक नहीं सकती। कंस का वध करने के बाद आर्य जाति की पताका विजय के रूप में फहराई गई। विनययुक्त सज्जित वेदी पर आसीन होकर मातृभूमि को जननी के तुल्य बताते हैं। विजय का श्रेय कृष्ण अपने ऊपर नहीं लेते-

गर्व न कीजै नैकु विजय यह रावरी,
धर्म कर्म की विजय मात्र है जानियै,
वैदिक पथ कौ यह कर्त्तव्य विधान है,
याकौं जन मन की गुरु गरिमा मानिये।[6]

उग्रसेन को गण अधिपति बनाकर कृष्ण ने वैदिक गीत और पुरुष सूक्त को राष्ट्गीत के रूप में स्थापित किया और ब्रज जाने की अपनी अभिलाषा प्रकट की।[7]

1-मधुपर्क, पृष्ठ 163, 2-वही, पृष्ठ 166, 3-वही, पृष्ठ 166, 4-वही, पृष्ठ 167, 5-वही, पृष्ठ 172, 6-वही, पृष्ठ 201, 7-वही, पृष्ठ 202

कृष्ण देवकी-वसुदेव की आज्ञा लेकर जब ब्रजगमन की बात जन-सागर के सम्मुख करते हैं तो मथुरा और आर्य जाति की सारी सभा इसका विरोध करती हुई नन्द-यशोदा की प्रशंसा करने लगती है। सम्पूर्ण जन-समूह विश्व के लिए कृष्ण को दान करने हेतु नन्द से कहता है। कृष्ण के प्रति आदर-भाव और जनरक्षक रूप की कैसी उद्भावना "करील" जी ने की है-

नन्द महरि की जय उमड़ी चहूँ को दतैं
हाथ उछारि उछारि कहैं जन रोर कै,
दीजै ! दीजै ! दै दीजै ! जनजाति कौं
पुत्र रावरौ दीजै ! हमरी ओर कै।
भरै वायु स्वर, दै दीजे! सुत लोक कौं,
दीजै, दीजै, दसौं दिसा बोलन लगीं,
कीजै, कीजै, दान-पुत्र कौ विस्व मैं,
कहि, कहि जमुना लहरि लहरि डोलन लगीं? -मधुपर्क, पृष्ठ 203

जब लाखों-लाख लोग गोविन्द को विश्व के कल्याण के लिए नन्द से माँग रहे हैं तब रुँधे कण्ठ से नन्द की स्वीकारोक्ति स्वाभाविक ही थी। वह नन्दगाँव धन्य है जहाँ के "छोहरे" को अलौकिक रीति से जनगण माँग रहे हैं।[1] राधा आदि गोपियाँ धन्य हैं जिनके प्रिय को संसार चाहता है। यशोदा को भी अपने दूध का मोल मिल गया। इससे बड़ा त्याग और क्या हो सकता है-

पाइ दूध कौ मोल धन्य जसुदा भई,
माता तैं संसार सुवन माँगै खड़ौ,
सर्वोपरि यह भीख जगत की आजु लौं,
या सौं बढ़ि कै त्याग कौन करिहै बड़ौ। -मधुपर्क, पृष्ठ 204

तत्कालीन लोकमानस में राधा समरसता की प्रतीक बन गई। वह निगमागम की वाणी, कृपाणभवानी, आँगन की रानी और मूर्तिवत् जवानी बनी हुई दृष्टिगत होती है। वह-

"दौरति अस्व सवार कहूँ, कहुँ घूँघट काढ़ि दिखाई परै,
निज जीवन ज्योति जगाइ कहूँ, जनकी वह कातरताई हरैं,
वह राधिका व्यौम बिहारिणी ह्वै कहूँ चन्द पै दौरि चढ़ाई करै।"[2]

राधारानी "गजसेना" की भण्डाराध्यक्षा हैं। प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर नित्यकार्य करना, सेना की साजसज्जा तथा युद्ध की दैनिक क्रियाओं की व्यवस्था करना उनका नैत्यिक कर्म है। जब गणवेष धारण करके ठकुरानी राधा सुसज्जित हो जाती हैं "तब गङ्गा-जमुना बनि हुलसै कृष्णा-काबेरी कौ पानी।"[1] युद्धस्थल के प्रत्येक अंगों की व्यवस्था वे रोज करती थीं। नित्य आए हुए वक्तव्यों को देखकर उस पर आदेश करती थीं, अश्वारूढ़ होकर भण्डारगृहों में जाती थीं, शस्त्रास्त्र तथा बसनासव और हाथी तथा घोड़ों की व्यवस्था स्वयं करती थीं।[2] मगधेश्वर जरासन्ध 17 बार आक्रमण करता रहा और राधा की विकट वाहिनी के सम्मुख हारता रहा। भारतीय गणतन्त्र को समर्थ बनाने के लिए राधा को राष्ट्रमाता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।[3]

1-मधुपर्क, पृष्ठ 204, 2-वही, पृष्ठ 207, 3-वही, पृष्ठ 249, 4-वही, पृष्ठ 250, 5-वही, पृष्ठ 358,

कार्याधिक्य होने पर कृष्ण आधुनिक नेताओं की भाँति विमान से यात्रा करते हैं। वे वायुयान में अर्जुन को पृथ्वी से सम्बन्धित सभी वस्तुओं, खेतों, खलिहानों, ऋषियों के आश्रमों और ब्रजमण्डल को दिखाते रहते हैं। गोकुल के ऊपर से जब उनका विमान उड़ता है, तब उन्हें माता-पिता का स्मरण आ जाता है। शान्ति स्थापना के लिए दुर्योधन को समझाने के लिए कृष्ण ऋषि-मुनियों से भी परामर्श लेते थे। व्यासाश्रम की विमान यात्रा इसी उद्देश्य से हुई थी। इस यात्रा का वर्णन चतुर्दश सर्ग के पृष्ठ 305 से 316 तक किया गया है। श्रीकृष्ण दुर्योधन और पाण्डवों की संधि हेतु दु:खी हैं और इसीलिए चाहते हैं कि देश के सभी आप्तपुरुष ऋषि-मुनि हस्तिनापुर चलकर समस्या का समाधान ढूँढ़ें। व्यास से जब यही प्रस्ताव रखते हैं तो व्यास उद्यत हो जाते हैं किन्तु विमान से न चलने को कहते हैं-

जैहों न पै वायुविमान द्वारा,
सपार्थ ह्वै अग्रिम आप धावैं,
सङ्का करौ नैंकु न पार्थ यामैं
यै सर्वज्ञाता सब भेद जावैं।[1]

योग-बल की महत्ता कितनी बड़ी है, इसका परिचय हमें तब मिलता है जब विमान द्वारा अर्जुन और कृष्ण नहीं पहुँच पाये किन्तु ऋषियों और मुनियों के दल को लिए हुए व्यास पहले पहुँच गये-

पग परि गवने यान की ओर दोऊ,
सब मुनि दुहिता तौ स्वस्ति बाँचै
हरि पहुँचि न पाए जोग की सक्ति देखो,
दल रिसि-मुनि कौ लै व्यास जू आई राजे।[2]

श्रीमद्भागवत और महाभारत के केन्द्रबिन्दु श्रीकृष्ण, जिनका पौरुष-व्यंजक चरित्र सर्वत्र द्युतिमान था आज खोखला हो गया है। कृष्ण स्वयं अनुभव करते हैं-

आस्था और आत्मविश्वास का टूटा गढ़
झूठी वैशाखी पर चला नहीं जाता है।[3]

जिस कृष्ण ने गीता का उपदेश दिया, संकट की घड़ियों में प्रकाश-पथ ज्योतित करते रहे वहीं जीवन की सन्ध्या में घुटन का अनुभव करते हैं-

पथ की निर्जनता
यह भटका-सा आत्मबोध,
कैसे करूँगा पार
क्षण की अभेद दीवार आज
सोच नहीं पाता हूँ
जलता जो कण्ठ में है
उगल नहीं पाता हूँ।[4]

1-मधुपर्क, पृष्ठ 316, 2-वही, पृष्ठ 316, 3-योगनिद्रा-कृष्णानन्द पीयूष, पृष्ठ 11, 4-वही, पृष्ठ 11, 12

और अपने पूर्व घोषित विचारों को छल एवं प्रपंचना की भूमि पर रूपायित मानते हैं-

जानते हो अहेरी, कहा था जो भी मैंने आज तक,
लगता है, वह सब मात्र छलना था,
सभी माध्यम थे मृत्यु के ही,
गीता में जो भी कहा वह सब प्रवंचना थी।
x x x x x
राह वह मेरे युग-धर्म की खो गई कहीं।[1]

जीवन की अशेष परिधि में अपने विराट, विभ्राट रूप का उन्मीलन करने वाले पाण्डवों को आत्मबोध का प्रशिक्षण देने वाले कृष्ण को स्वयं आत्मबोध तब होता है जब जरा नामक व्याध वाणों से उन्हें वेध देता है-

मिला आत्मबोध तुम से ही,
होकर विद्ध आज तेरे शर से ही हुआ बोध
युग का विराट पुरुष,
कृष्ण सही बौना है।

प्रयाण करते समय कृष्ण कहते हैं, "मैं विवश था, असहाय था, कटते रहे सभी बन्ध रणक्षेत्र बीच, फटती रही देख जिन्हें छाती भी मेरी, किन्तु कभी बोला नहीं, भेद कभी खोला नहीं, कह न सका-रोको समर, गूँगे मुख पर थी लगी अर्गला काल देवता की, चाहता यदि मैं सङ्कल्पित हो, बचा देता देश राष्ट्र विघटित न होता ऐसे, होती न माँगें सूनी बहनों की, माताएँ बन्ध्या होती नहीं, नीड़ जिसे नष्ट किया अपने ही हाथों से, सम्पूर्ण राष्ट्र को खण्डित किया मैंने।"[2]

राधा के हृदय में जो स्नेहाग्नि कृष्ण ने जलाई थी, उसे कभी आकर देखा नहीं। राधा धुआँ उगलती रही, जलती रही, उसकी ही आँखें सावन हुई और बैरिन बाँसुरी उसे ही सताती रही किन्तु कृष्ण नहीं आए। कृष्ण छली और क्रूर इतिहास हैं, मीठी कसक हैं। राधा एक जलन है, पीड़ा है, दर्द है, धड़कन है।[3] राधा एक आधुनिक नारी की भाँति आधुनिक जीवन से पूर्णत: परिचित होकर अपनी मन:स्थिति के भार को नापती है, विश्लेषित करती है। वायदे, आश्वासन, धर्म, स्वधर्म उसे अर्थहीन शब्दों से जान पड़ते हैं। इसे इसके पागलपन की संज्ञा नहो दी जा सकती, यह तो राधा के यथार्थ जीवन से प्रेरित स्वानुभूति का सहज प्रकाशन है। वह वैयक्तिक सुख-अभिलाषा को त्यागकर कनु के विचारों को सम्पुष्ट करने का आग्रह रखती है-

और जब तुमने कहा था-"माथे पर पल्ला डाल लो।"
तो क्या तुम चिता रहे थे
कि अपने इस निजत्व को अपने आन्तरिक अर्थ को
मैं सदा मर्यादित रखूँ,
रसमय और पवित्र रख
नववधु की भाँति।[5]

1-योगनिद्रा-कृष्णानन्द पीयूष, पृष्ठ 12, 2-वही, पृष्ठ-33, 34, 3-वही, पृष्ठ 33, 34, 4-वही, पृष्ठ 44, 5-कनुप्रिया-धर्मवीर भारती, पृष्ठ-33

आधुनिक युग का मानव सत्य और असत्य के शाश्वत मूल्य को नहीं ग्रहण कर पा रहा है। वह अपने स्वार्थ के अनुसार उचित-अनुचित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की परिभाषा बदलता रहता है। आज सभी सिद्धान्त खोखले हो गये हैं। पुरातन मूल्यों, परम्पराओं एवं ईश्वर के प्रति डिगती आधुनिक दृष्टि को गांधारी के निम्न कथन में व्यक्त किया है-

जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया
वंचक है।[1]

बुद्धिवादी आधुनिक मानव को जब यह ज्ञान हो गया कि कोई भी सिद्धान्त अथवा आदर्श परम सत्य तक पहुँच नहीं सकता तब स्वभावत: वह एक गहरी प्रश्नाकुलता में डूब जाता है। उसे जीवन की इस निरर्थकता एवं व्यर्थता का कटु और तिक्त अनुभव होता है और तब उसे कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व सब अर्थहीन मालूम पड़ते हैं और वह अनुभव के द्वारा जान पाता है कि केवल वही सत्य है जो अनुभव से प्राप्त होता है, कनुप्रिया कहती है-

कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व
शब्द, शब्द, शब्द.....।
मेरे लिए नितान्त अर्थहीन हैं-
मैं इन सबके परे अपलक तुम्हें देख रही हूँ
हर शब्द को अंजुरी बनाकर,
बूँद-बूँद तुम्हें पी रही हूँ।[2]

कृष्ण आधुनिक जटिल व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। उद्देश्य-प्राप्ति के लिए उन्हें कभी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ती है, कभी मर्यादा का त्याग, कभी छल एवं असत्य का वरण भी और इसलिए जब गांधारी का भयंकर शाप उन्हें मिलता है तो वे उसे भी सहर्ष स्वीकार करते हैं-

माता! प्रभु हूँ या परात्पर
पर पुत्र हूँ तुम्हारा, तुम माता हो। ....
अठारह दिनों के भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं ही मरा हूँ, करोड़ों बार ....
जीवन हूँ मैं तो मृत्यु भी तो
मैं ही हूँ माँ।
शाप यह तुम्हारा स्वीकार है।[3]

जो कृष्ण कवियों एवं साहित्यकारों द्वारा परब्रह्म के रूप में चित्रित होते रहे हैं तथा जिन्हें केवल मर्यादित तथा सत्य के आग्रही के रूप में देखा गया है उस कृष्ण को अन्धायुग में एक नव्य भूमिका मिली है। कृष्ण देवत्व एवं दानवत्व की सन्धि-रेखा पर खड़े हैं। वह परिस्थितियों से प्रेरित होकर सत्य की रक्षा करते हैं तो सत्य का त्याग भी, मर्यादा का वहन करते हैं तो अमर्यादा का ग्रहण भी। आधुनिक युग में कृष्ण

1-अन्धायुग-धर्मवीर भारती, पृ. 24, 2-कनुप्रिया-धर्मवीर भारती, पृ. 77, 3-अन्धायुग-धर्मवीर भारती, पृ. 76

को पहली बार अमर्यादित रूप में चित्रित किया गया है और तब कृष्ण का व्यक्तित्व उस जटिल मनुष्य के व्यक्तित्व के रूप में उभरता है जो पाप-पुण्य, सत्य-असत्य, मर्यादा-अमर्यादा के झूले पर दोलायमान रहता है। संशयग्रस्त कृष्ण सत्य-असत्य का निर्णय अन्तिम रूप से भी नहीं कर सकते। परिस्थितियों के अनुसार ही इसका निर्णय किया जा सकता है। कृष्ण के सम्बन्ध में विदुर के उक्त स्वरूप को रूपायित करते हैं-

"मैं विदुर हूँ, कृष्ण का अनुगामी, भक्त और नीतिज्ञ
पर मेरी नीति साधारण स्तर की थी,
और युग की सारी स्थितियाँ असाधारण हैं
और अब मेरा स्वर संशयग्रस्त है,
क्योंकि लगता है कि मेरे प्रभु
उस निकम्मी धुरी की तरह हैं,
जिसके पहिए उतर गये हैं
और जो खुद घूम नहीं सकती।"[1]

इस अन्धे युग में सभी पथभ्रष्ट एवं युद्धरत हैं। केवल कृष्ण ही अनासक्त एवं तटस्थ हैं। जब वे कौरवों को अपनी सेना देकर सहायता करते हैं और स्वयं पाण्डवों की ओर चले जाते हैं तब उनकी यह तटस्थता उनके व्यक्तित्व को विभाजित कर देती है। वे स्वयं निर्णय करने में असमर्थ हैं कि पक्ष किसका लिया जाये। कौरवों की मदद करके एक प्रकार से पाण्डवों की शक्ति को ऋणात्मक बना दिया है। इसीलिए संशयग्रस्त कृष्ण सत्य-असत्य की परिस्थिति सापेक्ष मानकर परिस्थिति के अनुसार कार्य करने लगते हैं। कृष्ण युद्ध की पीड़ा को एकाकी झेलते हैं और कृष्ण उस मानव के प्रतीक बन जाते हैं जो यह मानता है कि कोई भी आदर्श एवं मर्यादा उसका उद्धार नहीं कर सकती। पीड़ा लेकर, दु:ख सहना उसकी नियति है और उसका उद्धार अनेक हाथों से होगा। अन्धायुग में इसकी पुनरावृत्ति विभिन्न पात्रों के माध्यम से हुई है। कृष्ण के द्वैध व्यक्तित्व के कारण बलराम उन्हें "कूट बुद्धि" कहते हैं-

जानता हूँ मैं तुमको शैशव से
रहे हो सदा ही मर्यादाहीन।"[2]

गान्धारी और अश्वत्थामा उन्हें अन्यायी कहते हैं। उनके अनुसार दुर्योधन का वध कृष्ण ने अधर्म की रीति से करवाया था। गांधारी कहती है-"अन्यायी कृष्ण इसके बाद अश्वत्थामा को जीवित नहीं छोड़ेंगे।"[3] इसी प्रकार वे कृष्ण पर प्रभुता के दुरुपयोग का स्पष्ट आरोप लगांती हैं-

"इंगित पर तुम्हारे ही भीम ने अधर्म किया
क्यों नहीं तुमने वह शाप दिया भीम को
जो तुमने दिया निरपराध अश्वत्थामा को
तुमने किया प्रभुता का दुरुपयोग।"[4]

कृष्ण के इन अन्तर्विरोधों का निराकरण अन्धायुग के अन्तिम पड़ाव "प्रभु की मृत्यु" में हो जाता है। भारती जी शब्द-ब्रह्म की वन्दना के साथ-साथ भक्तों की भी वन्दना करते हैं।[5]

1-अन्धायुग-धर्मवीर भारती, पृष्ठ-76, 2-वही, पृष्ठ-63, 3-वही, पृष्ठ-83, 4-वही, पृष्ठ-101, 5-वही, पृष्ठ-121

राधा के चरित्रांकन के लिए फेरिमिलिबो, कनुप्रिया और "राधा" (जानकीवल्लभ शास्त्री कृत) में नवीन भूमि का सृजन किया गया है। फेरिमिलिबो में आदि से अन्त तक राधा के प्रेम एवं तप-साधना का प्रवाह उमड़ता रहता है और वह प्रेम साधना में खरी उतरती है।[1] "कनुप्रिया" की राधा-कृष्ण के महाभारतीय-चरित्र का भी विश्लेषण करती है। योगेश्वर कृष्ण स्वधर्म और अधर्म का निर्णय नहीं कर पाते। राधा कहती है कि न्याय-अन्याय की कसौटी क्या है? कृष्ण जब इस कसौटी का निर्णय नहीं कर पाते तब कहते हैं कि जो पैर की ओर हो वह स्वधर्म है और जो सिर की ओर हो वह अधर्म है। राधा इसमें विश्वास नहीं रखती-

"न्याय-अन्याय, सद्‌सद, विवेक-अविवेक-
कसौटी क्या है? आखिर कसौटी क्या है?
और तुम्हें कोई कसौटी नहीं मिलती
और जुए की पांसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म .....।"[2]

युद्ध में जहाँ शत्रु परास्त होता है वहाँ जेता की भी हानि होती है। युद्ध की विभीषिका से भयभीत राधा को चिन्ता है कि कृष्ण जिस आम की डाल पर टेक लेकर वंशी बजाया करते थे वह आज काट डाली जायेगी, गाँव उजड़ जायेंगे, छायादार पावन अशोक वृक्ष खण्ड-खण्ड हो जायेगा।[3] आज के मानव की तरह कृष्ण उसे सान्त्वना देते से प्रतीत होते हैं-

गर्व कर बावरी !
कौन है जिसके महान् प्रिय की, अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ हों?[4]

भक्ति एवं रीतिकालीन कवियों की राधा की भाँति आधुनिक युग की राधा कुंजों में विहार करने वाली ही नहीं है, वह घर का "गृह-काज" भी करती है-

यह जो मैं गृह काज में अलसाकर अक्सर
इधर चली आती हूँ
और कदम्ब की छाँव में शिथिल
अस्तव्यस्त अनमनी सी पड़ी रहती हूँ...।[5]

राधा का जन्म पीड़ा के उर से हुआ है।[6] वह पंख कटी विहगी, आँधी की कदली है। वह जीवन और मृत्यु के संघर्ष के बीच जी रही है। वह प्रेम की लहर अब संभाल नहीं पा रही है-

"मैं पंख-कटी विहगी, आँधी की कदली,
अधजली पतङ्गी, मरु-तट-उछली मछली,
जीने दे रहा समाज न वृन्दावन का
मरने न दे रहा महामोह मोहन का।
दी छिपा आग, अब धुआँ छिपा लूँ कैसे?
पी गई जहर, अब लहर सँभालूँ कैसे?"[7]

1-फेरिमिलिबो, अनूप शर्मा, पृ.167-168, 2-कनुप्रिया-धर्मवीर भारती, पृ.81, 3-वही-पृ.70, 4-वही, पृ.71, 5-वही-पृष्ठ 19, 6-राधा-जानकीवल्लभ शास्त्री, पृष्ठ-73, 7-वही, पृष्ठ 10-11

(ग) सुभद्राहरण और कृष्ण की नवीन भूमिका

श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि सुभद्रा को पाने की लालसा जब अर्जुन के मन में जाग गई तब वे त्रिदण्डी वैष्णव का वेश धारण कर द्वारका पहुँचे और वहाँ चार महीने तक वर्षाकाल में रहे।[1] बलराम एक दिन आतिथ्य के लिए उन्हें बुलाकर भोजन-सामग्री श्रद्धापूर्वक प्रदान करते हैं। भोजन के समय वहाँ उन्होंने विवाह योग्य परम सुन्दरी सुभद्रा को देखा। उनका मन उसे पाने के लिए क्षुब्ध हो जाता है। एक दिन सुभद्रा देव-दर्शन के लिए दुर्ग से बाहर निकली, उसी समय महारथी अर्जुन देवकी-वसुदेव और श्रीकृष्ण की अनुमति से सुभद्रा का हरण कर लेते हैं।[2] कृष्णायन में द्वारका प्रसाद मिश्र द्वारा इस कार्य में कृष्ण की भूमिका का सुन्दर चित्रण किया गया है। यहाँ अर्जुन सुभद्रा को प्राप्त करने के लिए त्रिदण्डी रूप नहीं धारण करते हैं। श्रीकृष्ण के साथ रैवतक पर्वत पर भ्रमण करते हुए सहसा अर्जुन की दृष्टि एक लावण्यमयी "यदुभामिनि" के ऊपर पहुँच जाती है। उन्होंने देखा कि इसका सम्पूर्ण सौन्दर्य कृष्ण जैसा है। दोनों एक-दूसरे के प्रति अनुरक्त हो जाते हैं। दोनों के उर-प्रणय को देखकर कृष्ण प्रसन्न हो जाते हैं। अर्जुन को सन्तुष्ट करते हुए कृष्ण कहते हैं-

भगिनि सुभद्रा यह प्रिय मोरी, मृग-शिशु-सदृश चपल मति भोरी।
मातु, पिता, यदुजन, नृपति, पुरजन-प्राण पियारि,
तजहु सखा परिताप उर, सुन्दरि अबहुँ कुँवरि।[3]

अर्जुन संकोच करते हैं किन्तु "मोर मनोरथ-तरु जनु फूला" कहकर कृष्ण उन्हें सुख प्रदान करते हैं। अर्जुन के यह कहने पर कि "याचहुँ पितु ढिंग जाय कुमारी" हँसते हुए कृष्ण "यदुकुल माहीं, माँगे मिलत कबहुँ कछु नाहीं" कहकर सुभद्रा हरण के लिए प्रेरित करते हैं-"

"चहत बरन तौ करि हरण, करहु स्वपुर प्रस्थान।"[4]

हरण प्रस्ताव सुनकर अर्जुन "कस अधर्म प्रभु! चहत करावा" का अनुभव करने लगते हैं। कृष्ण उन्हें बताते हैं कि मेरे अग्रज धर्मविमुख, कुमति, गर्वित दुर्योधन के साथ हठात् विवाह कर देंगे जो अनुचित है। मैं चाहता हूँ कि मेरी सुकुमारी भगिनी तुम्हारे जैसा सुन्दर पति प्राप्त करे। कृष्ण कहते हैं-

हरण, स्वयंवर, कन्या-दाना प्रचलित तीनहु आजु विधाना।
सबकर हित अधर्म नहिं होई, दीन्ह तुमहिं मैं सम्मति सोई।
मम अनुजा मोरहिं अनुशासन, व्यर्थ कुतर्क करत कत निज मन।
दादुर रटत सरोवर रहहीं, तबहुँ तृषार्त धेनु जल पियहीं।[5]

प्रस्थान के समय पांचाली के लिए दिया गया कृष्ण का सन्देश समरसता का प्रतिपादन करता है-

सहित सुभद्रा गृह निज जायी, पांचालिहिं अस कहेउ बुझायी-
प्रिय भगिनी यह केशव केरी, सेवा हेतु पठायी चेरी।
जानि सपत्नी याहि जनि मानव निज अपमान,
द्रुपद-सुता-पद पार्थ-हिय, लैन सकति तिय आन।"[6]

1-श्रीमद्भागवत 10/86/3-4, 2-वही, 10/86/9, 3-कृष्णायन-द्वारकाप्रसाद मिश्र, पृष्ठ-200, 4-वही, पृष्ठ 201, 5-वही, पृष्ठ-201, 6-वही, पृष्ठ-202

कृष्ण को प्रेमपूर्वक प्रणाम अर्पित कर अर्जुन "बैठायी स्पन्दन पुलकि, अनुरागिनि गहि बाँह।" फिर रक्षकों ने पीछा किया किन्तु असफल होने पर सभाद्वार पर सूचना देते हैं। संकटकालीन नगारा बज गया, सम्पूर्ण द्वारावती प्रकम्पित हो गई। यदुवंशियों के लिए यह कड़ी चुनौती थी। बलराम कृष्ण से विरोध प्रकट करते हैं-

भयेउ न यदुकुल आजु लगि, अस अनर्थ अपकार,
कीन्हेउ जस यह गेह बसि, अर्जुन सखा तुम्हार।[1]

कृष्ण धैर्यपूर्वक इसका प्रतिवाद करते हुए कहते हैं कि यदुवंशी तो प्रतिदिन कितनी राजकुमारियों का हरण करते हैं। कुरु वंश की कन्या का विवाह साम्ब के साथ हठात् हुआ था और उसी वंश के अर्जुन ने कन्या हरण करके क्या अनुचित किया? क्या अर्जुन जैसा पराक्रमी, उत्साही, सुकृती, गम्भीर, उत्तम रूप, शील, गुण वाला कुमार कहाँ मिलेगा?-

गहि विवेक देखहु मन मांही, योग्य सुभद्रा अस वर नाहीं,
जो हम करत सोइ तेहि कीन्हा, हरि कन्या बल परिचय दीन्हा।[2]

कृष्ण के इस प्रकार समझाने पर बलराम कहते हैं कि जब कृष्ण ने स्वयं सुभद्रा को अर्जुन के साथ रथ पर बैठा दिया, तब न कहीं हरण है और न युद्ध का प्रसंग ही उपस्थित होता है। मैं तो कृष्ण को शैशव से जानता हूँ-

शैशव ते मैं श्यामहि जानत, बिनु उत्पात निरस जग मानत।
रचि प्रसंग आपुहि सुरझावहिं, आगि लगाय बुझावन धावहिं।[3]

बलराम जी ने दहेज के रूप में बहुत मणि, स्वर्ण, रत्न, हेम-भण्डार इन्द्रप्रस्थ पहुँचा दिया।

हरण के द्वारा वरण की जिस प्रथा का समर्थन कृष्ण ने किया वह आपद् धर्म अथवा अपवाद रूप में भले ही स्वीकार कर लिया जाये किन्तु सामान्य धर्म-सामान्य लोकाचार तो सम्मत्याश्रित वरण-कन्यादान वाली प्रथा पर आश्रित वरण ही होगा। कृष्ण के न्याय के सम्बन्ध में एक तथ्य यहाँ ध्यातव्य है कि कन्या की इच्छा के विरुद्ध कहीं भी हरण नहीं हुआ है।

(घ) नारी चित्रण का सुधारात्मक रूप

भक्तों के युग में नारी लांछित रही है। सुधारकों के युग में नारी की तरफ से वकालत की गई या उसे विद्रोह के लिए उत्प्रेरित किया गया। आधुनिक युग में "कृष्णायन" महाकाव्य का नारी विषयक चित्रण इसके विपरीत है। उसमें नैसर्गिक नव्यता एवं उदात्तता का संयोग मुखरित हुआ है। चीरहरण एक कुप्रथा मिटाने के लिए किया गया था और गोपियों ने भी कृष्ण के इस कृत्य को सुधारात्मक रूप में ही स्वीकार किया। वे कहती हैं-"जदपि कीन्ह घनश्याम ढिठाई, तौहूँ नीकी चलनि चलाई।"[4] कृष्ण का नारी-उद्धारक रूप समाज सुधार की भावना पर आधृत है। भौमासुर द्वारा अपहृत "शत सोरह सहस" (सोलह हजार एक सौ) कन्यायें जब पनाह माँगने लगीं और कहा-

पर गृह वासहिं दोष तें राखी सीय न राम।
बरबस दूषित नारिहित, नाथ कहाँ अब ठाम।[5]

1-कृष्णायन, पृष्ठ-203, 2-वही, पृष्ठ-204, 3-वही, पृष्ठ-204, 4-वही, पृष्ठ-39, 5-वही, पृष्ठ-186

तब सत्यभामा की संस्तुति पर-

लीलापति कल्याणमति अपयश सुयश अतीत।
कृपाकटाक्षहिं मात्र तें कीन्हीं बाम पुनीत।[1]

इसी औदार्य का एक और सुन्दर संकेत है जब कृष्ण ने जाम्बवान के यहाँ रघुवर चरित्र के लेख देखे थे-

पूर्व जन्म निज जीवन गाथा, बाँची रोमांचित यदुनाथा।
पढ़ि सीता अपवाद अपावन, त्यागन बहुरि अरण्य भयावन।
निष्प्रेही निर्मम निष्कामा, नहि बिनु भक्ति मिलत घनश्यामा।[2]

अस्तु जिसकी उन पर परम भक्ति है, उसके त्याग का प्रश्न ही क्यों उठना चाहिए। 16100 रानियों को अपनाने के लिए समाज में कृष्ण के ऊपर जो अंगुलि-निर्देश किया जाता रहा है उसे आधुनिक काल में राजनैतिक रूप प्रदान किया गया है। सुराज्य स्थापना, विपक्षियों के संहार, मित्र शक्तियों का संग्रह और संगठन कार्य करते हुए कृष्ण को राजनैतिक आवश्यकता के रूप में अनेक राजकन्याओं से विवाह करना पड़ता है। द्वारका काण्ड में रुक्मिणी, सत्यभामा, सूर्यपुत्री कालिन्दी आदि से विवाह होता है। यद्यपि नैतिक रूप से इतनी कुमारियों के साथ विवाह करना मर्यादित नहीं है तथापि कवि का चित्रण कृष्ण के समाज सुधारक रूप को प्रदर्शित करता है। कुमारियों का निम्न कथन कितना न्यायसंगत है-

कहहु नाथ! अब हम कह जाहीं।
नष्ट शील दूषित पर पापू
अपनहिं दृष्टि पतित हम आपू।
पतित पावनहु तुम भगवाना,
सकत न करि जो शरण प्रदाना
तौ प्रभु! भुवन चतुर्दश माहीं,
ठौर अभागिन हित कहुँ नाहीं।[3]

भौमासुर द्वारा सतीत्व-भङ्ग ये निर्दोष नारियाँ असहाय स्थिति में हैं। जिन स्त्रियों के लिए संसार में स्थिर होने के लिए बित्ताभर भी जमीन न हो, जो उच्च कुल की होकर भी अपने ही कुल में निरादृत, अस्वीकृत रहती, अपना मानापमान, गौरव आदि सब कुछ भूलकर सेविकाओं की भाँति कृष्ण के यहाँ रहने की याचना करती हों उनको कृष्ण द्वारा स्वीकार करना सर्वथा धर्मसम्मत था। व्यभिचार की भावना से प्रेरित इसे इसलिए भी नहीं माना जा सकता है क्योंकि उनकी पत्नी रुक्मिणी का अनुमोदन प्राप्त है-

विकल नारि-दुःख नारि विशेषा,
विनवति पतिहिं निवारहु क्लेशा।[4]

इस प्रकार कृष्ण ने कन्याओं को पनाह देकर स्मृति वाक्य "न त्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते" को चरितार्थ कर देते हैं। कृष्ण का यह कार्य आधुनिक युग की एक नवीन परिसंकल्पना है।

उपर्युक्त प्रसंगों के विवेचन से हमें यह ज्ञात होता है कि आधुनिक हिन्दी कविता में राधा और कृष्ण के परम्परागत स्वरूप को नवीन आयाम प्रदान किया गया है।

1-वही, पृष्ठ-186, 2-वही, पृष्ठ-159, 3-वही, पृष्ठ-186, 4-वही, पृष्ठ-186

6 आधुनिक कृष्ण कविता में प्रेम तथा सौन्दर्य का स्वरूप

प्रस्तुत अध्याय को दो विभागों में विभाजित किया गया है। प्रथम में आलोच्य काव्यों में प्रेम भावना तथा द्वितीय में सौन्दर्य भावना की समीक्षा प्रस्तुत की गई है। प्रेम तथा सौन्दर्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। बिना सौन्दर्य के प्रेम उत्पन्न नहीं होता। इसके लिए साहचर्य की आवश्यकता होती है। आगे हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि आधुनिक कृष्ण कविता में वर्णित सौन्दर्य अनुराग सापेक्ष है अथवा नहीं। वस्तुत: सम्पूर्ण जगत उस विभ्राट मंगलमय विराट का चेतन रूप है, शरीर है। हृदय की यही चेतना अपने में सत्य, शिव और सुन्दर को आत्मसात् किये हुए है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त का ऐसा उद्घोष है-

"वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।
लोचनों में लावण्य अनूप, लोकसेवा में शिव अविकार।"

शृंगार भावना, सौन्दर्य और प्रेम के सहज रूप को एक-दूसरे से अलग करके देखना, समझना और आत्मसात् करना सम्भव नहीं है। शृंगार भावना की सरिता सौन्दर्य की गंगोत्री से निकलकर प्रेम के पयोधि में मिलने के लिए गतिमान होती है।[1] प्रेम एवं सौन्दर्य के अलग-अलग विवेचन से आधुनिक कृष्ण काव्यों में उपनिबद्ध प्रेम एवं सौन्दर्य के स्वरूप का उन्मीलन हो सकेगा।

(क) प्रेम का परिचय

आध्यत्मिक क्षेत्र में प्रेम को ईश्वर कहा जाता है। ब्रह्म को "नेति-नेति" कहकर वेद मौन हो जाते हैं। प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय बना रहता है। लौकिक सन्दर्भ में हम देखते हैं कि प्रेमालाप का सुअवसर मिलने पर हृदय में आनन्द का अनुभव होता है, उसका वर्णन वाणी कभी कर नहीं सकती। जगत में जिस प्रेम का वर्णन वाणी द्वारा होता है, वह प्रेम का बाहरी रूप है। प्रेम तो अनुभव की वस्तु है। प्रेम का अनुभव होता है मन में और मन रहता है सदा प्रेमास्पद के पास। राम का संदेश हनुमान जी अशोक वाटिका में सीता को देते हैं-

"तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मनु मोरा।
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं, जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं।"-(रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड)

प्रभु राम का सन्देश सुनते ही सीता प्रेममग्न होकर देह की सुधि भूल जाती हैं "मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही।" श्रीराम अपने हृदय के प्रेम को प्रकट नहीं कर सके, कारण था मन का अभाव, मन तो सीता में लगा था। मन के अभाव में वाणी प्रमेयालम्बनरिक्त हो जाती है। अस्तु, प्रेम की प्राप्ति हुए बिना तो प्रेम को कोई जानता नहीं और प्राप्ति होने पर वह अपने मन से हाथ धो बैठता है। इस प्रेम-मग्नता में यदि वह कुछ कहता है तो वह प्रेम का बाह्य रूप हो सकता है। मीराबाई के शब्दों में कहा जा सकता है-"घायल की गति घायल जाने" अर्थात् प्रेमानुभव गूँगे का फल है-"अविगत गति कछु कहत न आवे"। प्रेम गुणातीत होता है क्योंकि प्रेमी को गुण-दोष देखने का अवकाश ही नहीं मिलता। प्रेम में कुछ भी कामना नहीं होती, क्योंकि प्रेम में प्रेमास्पद को सुखी देखने की एक इच्छा को छोड़कर अन्य किसी स्वार्थ की वासना ही नहीं रहती। अस्तु, प्रेम जो एकनिष्ठ है, वह कामनारहित होता है। आत्म-विसर्जन ही प्रेम का मूलमन्त्र है। प्रेमास्पद का हित और सुख ही प्रेमी का परम सुख है।

1-सूर की शृंगारवर्णन-डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ-27

प्रेम की परिभाषा

रूपगोस्वामी "हरिभक्तिरसामृतसिन्धु" में प्रेम का परिचय ज्ञापित करते हैं-

सम्यङ्मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।

भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥" -(पूर्वविभाग, चतुर्थ लहरी)

अर्थात् हृदय के अतिशय कोमल हो जाने से अतिशय ममत्व उत्पन्न होता है, वही प्रगाढ़ भाव पण्डितों द्वारा "प्रेम" कहा जाता है। भरत मुनि के अनुसार चित्त की द्रवावस्था ही प्रेम है। सत्त्वोद्रेक की अवस्था में जब मानव मन प्रयोजन-निरपेक्ष होकर द्रवीभूत हो जाये और आलम्बन को अपनी ममता का दान देने लगे, तब प्रेम का प्रादुर्भाव मानना चाहिए। नैयायिकों का इस पर विरोध है कि मन तो निरवयव अवयव रहित है, अस्तु अवयव के द्रवीभूत होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। कुछ पण्डितों का कथन है कि चित्त सावयव है क्योंकि एक-एक सत्त्व के अंश से एक-एक इन्द्रियाँ उदय लेती हैं और इन ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से ही अन्तःकरण की उत्पत्ति कही जाती है। इस सम्बन्ध में नैयायिकों के प्रति आपत्ति प्रस्तुत करने की तर्कना बड़ी सटीक एवं समीचीन प्रतीत होती है।[2] अस्तु, अन्तःकरण का आलम्बन के साथ तदाकार या तादात्म्य बन जाना ही प्रेम है। वैज्ञानिकों द्वारा प्रेम के संबंध में विभिन्न मत उत्थापित किये गये हैं जिसका सार-संक्षेप निम्न है-

1-प्रेम का घनिष्ठ सम्बन्ध काम अथवा लैंगिक आकर्षण से है।

2-प्रेम कामावेग को अतिक्रान्त कर प्रेमियों को परस्पर सूक्ष्म भावात्मक अथवा आध्यात्मिक सूत्रों में बाँध देता है।

3-प्रेम इन्द्रियों का नहीं अपितु सम्पूर्ण व्यक्तियों का एकान्त मिलन है।

4-प्रेम मातृत्व-पितृत्वमूलक कामना से अनुप्राणित है।

5-प्रेम का कोमल प्रकाश संकीर्णता का अतिक्रमण कर लोक-व्यापी बन जाता है।[3]

प्रेम और काम तत्त्वतः अभिन्न है। श्रुतियों और गीता में भी अनेक बार "काम", "रमण" और "रति" आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु वहाँ उनका अश्लील अर्थ नहीं है। गीता में तो "धर्माविरुद्धकाम" को परमात्मस्वरूप बतलाया गया है। प्रेम की कोटियों में रति, काम और प्रेम का नामोल्लेख किया जाता है। आजकल इनके अर्थबोध में भिन्नता आ गई है। अर्थ की विरजता एवं मर्यादित प्रांजलता पर विचार किया जाये तो उत्तमता की दृष्टि से प्रेम का स्थान प्रथम होगा, काम का द्वितीय और तृतीय स्थान होगा रति का। रति का स्थान संभोग के निकट माना जाना चाहिए, ऐसी मेरी धारणा है। काम चैतन्य की वृत्ति है और प्रेम उसका प्रकाश है। प्रेम अपने मूल रूप में काम है और काम परिष्कृत रूप में प्रेम है। काम जब अपनी नैसर्गिक शक्ति को सुकुमारता और माधुर्य से नियन्त्रित करके आत्मप्रकाश करता है, तभी प्रेम का पीयूष उत्पन्न होता है। प्रेम के सम्बन्ध में आप्तपुरुषों, भक्तों एवं विद्वानों तथा साहित्य की विविध विधाओं द्वारा यत्र-तत्र प्रतिपादित स्वरूप-भावों का दिग्दर्शन निम्न भावधारणाओं में किया जा सकता है जिसके सम्बन्ध में पदे-पदे प्रमाण प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। प्रेम के सम्बन्ध में ये तथ्य अत्यन्त समादरणीय हैं-

---

2-"मृत बछड़े के सार चर्म के अवलोकन के विभ्रम या प्रभाव से मूर्खों द्वारा भी अल्प दूध देने वाली गायें दुह ली जाती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि गाय उस चर्म के अवलोकन से द्रवित हो गई है, तभी तो दूध देती है। अतएव चित्त या अन्तःकरण द्रवशील है।"-(सूर का शृंगार वर्णन-डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ-45, 46), 3-सूर का शृंगार वर्णन, पृ० 47-48

प्रेम की पूर्णता कभी होती ही नहीं। मुझे पूर्ण प्रेम हो गया, इस प्रकार का अनुभव प्रेमी कभी करता ही नहीं। प्रेम की कोई सीमा नहीं है। प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता है, निरन्तर बढ़ते रहना उसका स्वरूप है। प्रेम में सब कुछ अर्पण हो जाता है, यहाँ तक कि प्रेमी स्वयं भी प्रेमास्पद के अर्पित हो जाता है। सम्पूर्ण त्याग या सम्पूर्ण समर्पण ही प्रेम का स्वभाव है। जो प्रेम विभिन्न वस्तुओं में बँटा हुआ है, वह वस्तुतः प्रेम ही नहीं है। प्रेम वाणी का विषय नहीं है। प्रेम उत्पन्न हो जाने पर मन, बुद्धि अर्पण नहीं करने पड़ते, ये स्वतः अर्पण हो जाते हैं। प्रेमी का सुख इसी में है कि उसका प्रेमास्पद सुखी रहे-"तत्सुखसुखित्वम्"। प्रेम एक में ही होता है। भगवत्प्रेम का प्रादुर्भाव होने पर जगत-राग नहीं चल सकता। सांसारिक प्रेम में भी यह निश्चित है कि जहाँ त्याग नहीं है, वहाँ प्रेम नहीं है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग होगा ही। प्रेम की महिमा विचित्र है। इतने बड़े भगवान् इतने छोटे हो जाते हैं कि बच्चों में आकर बच्चे बनकर खेलते हैं। एक बार खेल हो रहा था; खेल की यह शर्त थी कि जो हारे, वह घोड़ा बने। भगवान् कृष्ण हारे तथा घोड़ा बने-

"उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।

वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणी सुतम॥" -श्रीमद्भागवत 10/18/24

प्रेम मार्ग में क्रिया का विरोध नहीं है, अपितु उसमें क्रिया और भी सुन्दर ढंग से होती है। हमारी क्रिया से प्रेमास्पद को सुख पहुँचता है-इस भाव से क्रिया में और भी रस, माधुर्य, सौन्दर्य, उत्साह और भाव बढ़ जाता है।

प्रेम की सार्वभौमिकता

"प्रेम" शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत सहानुभूति, उदारता, कृपालुता तथा संसार की किसी भी वस्तु के प्रति प्रियता या पसन्द का भाव ध्वनित हो सकता है। इस प्रकार मानव का प्रेम असंख्य भावधाराओं में प्रवाहित होता रहता है। प्रेम की इस सार्वभौमिक व्यापकता का समर्थन करते हुए पण्डितों का कथन है; प्रेम धागों का एक बण्डल है जो मानव आचरण के प्रत्येक पक्ष में उलझे हुए हैं। उद्यान को खोदने जैसे साधारण व्यापार से लेकर चित्ररंग के रँगने, किसी नगर को लूटने तथा साम्राज्य की स्थापना करने जैसे प्रत्येक कार्य में इन धागाओं में से एक-न-एक का सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।[4] प्रेम के इस विशाल क्षेत्र में हृदय आश्रय के लिए मुख्यतः दो आलम्बन हैं। प्रथम मानव और दूसरी प्रकृति। प्रकृति के अन्तर्गत मानव को छोड़कर संसार की असंख्य वस्तुएँ प्रेम का आलम्बन बन सकती हैं जो आश्रय की भाव प्रवणता को या तो समझ नहीं पातीं अथवा यदि समझती हैं तो उसका उचित प्रत्युत्तर नहीं दे पातीं। दूसरे हैं मानव जो आश्रय के समान बुद्धि एवं कल्पना से समन्वित चेतन प्राणी हैं तथा जो आश्रय की भाव-भूमियों तक कल्पना की उड़ान भर सकते हैं और समीचीन प्रतिपादन भी दे सकते हैं। इस उदाहरण द्वारा इसे समझा जा सकता है-फूलमाली के प्रेममूलक उपलालन का, परिपोषण का वह प्रत्युत्तर नहीं दे सकते जो शकुन्तला ने दुष्यन्त के प्रेममूलक आचरण का दिया था। अतएव, प्रकृत प्रेम द्विध्रुवीय सांसारिक व्यापार है तथा स्वभावतः अन्योन्याश्रित है। अर्थात् आश्रय एवं आलम्बन दोनों प्रेम की कविता के सर्जन एवं आस्वादन में समान भाव से क्रियाशील होते हैं। यहाँ प्रभाताश्रय एवं प्रमेयालम्बन दोनों का मानव होना आवश्यक है जिससे रागात्मक प्रवाह दोनों दिशाओं में प्रसार पा सके।

4-सूर का शृंगार वर्णन-डॉ० रमाशंकर तिवारी, पृष्ठ-45

मनुष्यों में आंशिक रूप से विभिन्न प्रकार की प्रेमलीलाएँ चलती रहती हैं। आधुनिक कृष्ण कविता में इन समस्त प्रेम प्रसंगों का उद्घाटन करना प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य है। ये प्रेमधाराएँ मुख्यत: निम्न हैं-

1-माता-पिता के हृदय का वात्सल्य स्नेह।

2-पति-पत्नी का माधुर्य प्रेम।

3-मित्र का पवित्र सख्यत्व।

4-पुत्र की मातृ-पितृ भक्ति।

5-गुरु का शिष्य के प्रति स्नेह।

6-शिष्य की गुरुभक्ति।

7-भ्रातृ-भगिनी का स्नेह।

8-भाई-भाई का प्रेम।

9-सेवक-सेव्यभाव का प्रेम।

उपर्युक्त सभी जागतिक प्रेम जब सब जगह से सिमटकर एक भगवान् में लग जाते हैं तब वह प्रेम परम दिव्य हो जाता है। इसी एकान्त विशुद्ध प्रेम की निर्मल मूर्ति हैं-गोपी और इस प्रेम के पुंजीभूत रूप ही हैं-श्यामसुन्दर-"पुंजीभूतं प्रेम गोपाङ्गनानाम्"। इस दिव्य प्रेम को "भक्त-भगवन्त" की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

सामान्यत: प्रीति, भाव, राग, अनुराग, स्नेह तथा प्रणय का व्यवहार प्रेम के लिए होता है। वैष्णव भक्तों ने रति के तीन प्रकार बताए हैं-समर्था, समंजसा और साधारणी। समर्था रति उसे कहते हैं जिसमें श्रीकृष्ण के सुख की ही एकमात्र स्पृहा और चेष्टा होती है। यह अप्राकृत है और ब्रजधाम में राधा जी इसकी अधिकारिणी हैं। समंजसा रति उसे कहते हैं जिसमें श्रीकृष्ण के और अपने दोनों सुख की समीहा रहती है और साधारणी रति उसका नाम है, जिसमें केवल अपने ही सुख की आकांक्षा रहती है। इन तीनों में समर्था रति सबसे श्रेष्ठ है। प्रेम के "मधुवत्" घृतवत् और लाक्षावत्-ये तीन भाव कहे जाते हैं। मधुभाव का प्रेम वह है, जो मधु की भाँति स्वाभाविक ही मधुर है, जिसमें स्नेह, आदर, सम्मान, सेवा आदि अन्य किसी भाव का न तो जरा-सा मिश्रण ही है और न आवश्यकता ही है, जो नित्य, निरन्तर अपने ही अनन्य भाव में आप ही प्रवाहित है। यह प्रेम होता है केवल प्रेम के लिए। इसमें प्रेमास्पद का सुख ही अपना परम सुख होता है। धृतभाव का प्रेम वह है, जिसमें पूर्वस्वाद और माधुर्य उत्पन्न करने के लिए घृत में नमक, चीनी आदि की भाँति अन्य रसों के मिश्रण की आवश्यकता है। साथ ही घृत जैसे सर्दी पाकर कड़ा हो जाता है और गर्मी पाकर पिघल जाता है, वैसे ही विविध भावों के सम्मिश्रण से इस प्रेम के भी रंग बदलते रहते हैं। यह प्रेमास्पद का सम्मान पाकर बढ़ता है और उपेक्षा-घृणा पाकर मर-सा जाता है। "लाक्षाभाव" का प्रेम वह है, जो चमड़े के समान स्वाभाविक ही रसहीन और कठोर होने पर भी जैसे चमड़ा अग्नि का स्पर्श पाकर पिघल जाता है, वैसे ही प्रेमास्पद को देखकर उदय होता है। प्रेमास्पद द्वारा भोगसुख प्राप्त करना ही इसका लक्ष्य है।[5] चन्द्रावली को घृतवत् और कुब्जा को लाक्षावत् कहा जा सकता है। इसी प्रकार राग के भी तीन प्रकार माने गये हैं-मंजिष्ठा, कुसुमिका, शिरीष। मंजिष्ठा नामक बेल का रंग जैसे धोने

5-"श्रीराधा-माधव-चिन्तन"-हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृष्ठ-532

पर या किसी प्रकार से नष्ट नहीं होता और अपनी चमक के लिए किसी दूसरे वर्णन की भी अपेक्षा नहीं रखता, उसी प्रकार "मंजिष्ठा" नामक राग भी निरन्तर स्वभाव से ही चमकता और बढ़ता रहता है। यह राग विकार-ग्रस्त नहीं होता। यह राग श्री राधा-माधव के अन्दर नित्य प्रतिष्ठित है।

"कुसुमिका" राग उसे कहते हैं, जो कुसुम्भ के फूल के रंग की तरह हृदय नेत्र को रँग देता है और मंजिष्ठा, शिरीषादि दूसरे रागों को अभिव्यंजित करके सुशोभित होता है। कुसुम्भ के फूल का रंग स्वयं पक्का नहीं होता, किन्तु किसी दूसरी कषाय वस्तु को साथ मिला देने पर वह पक्का और चमकदार हो जाता है। "शिरीषा" राग अल्पकाल-स्थायी होता है। जैसे नये खिले हुए शिरीष के पुष्प में पीली-सी आभा दिखायी देती है, परन्तु कुछ ही समय में वह नष्ट हो जाती है, वैसे ही यह राग भी भोगसुख के समय उत्पन्न होता है और वियोग में मुरझा जाता है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के रति, प्रेम और राग माने जाते हैं-

1-उत्तम-रति "समर्था" प्रेम "मधुवत्" और राग "मंजिष्ठा"।

2-मध्यम-रति "समंजसा, प्रेम" घृतवत्" और राग "कुसुमिका"।

3-अधम-रति "साधारणी", प्रेम "लाक्षावत" और राग "शिरीषा"।

प्रेम का तात्त्विक निरूपण

काम कला ही प्रेम कला है। ऋग्वेद में "काम" की ही प्रधानता है। काम के बाद रूप बनता है, आनन्द प्राप्त होता है। प्रेम और सौन्दर्य दोनों मानसी होते हैं, रूप नहीं। प्रत्यक्षीकृत होने पर रूपवान होते हैं। जीवन में युवावस्था का आगमन, युवावस्था में मधु-मद का प्रवेश और मधु-पद में आनन्द की उपस्थिति कोई देख नहीं पाता। इसीलिए गोपियों के इस कथन में प्रेम के मानसी रूप का प्रकाशन होता है-

"क्या बतलावें, वह वंशीधर कैसे आया हममें?
ताल न आया होगा ऐसा कभी किसी की सम में।" -द्वापर, पृष्ठ 186

रूप द्वारा उर में मोह उत्पन्न होता है, मोह से मन में मुग्धता आती है, मुग्धता से चित्त उद्विग्नता को प्राप्त होता है। यह संसार मोह-जाल की क्रीड़ास्थली है। अपने पुष्पों के विशिख-बल से कल्पित मूर्तिवाला "पंचशर" विश्व को बेधकर उन्मादित कर देता है। "मोह" और अनंग की विचित्र शक्ति है। यद्यपि इनसे प्रभावित "भूरि-आसंग-लिप्सा" को प्रेम नहीं कहा जाता विद्वानों द्वारा किन्तु यह प्रेम-मार्ग का प्रमुख तत्त्व है। प्रेमास्पद के सद्गुणों एवं बुद्धि की वृत्तियों से प्रणय नित्य नवल, दिव्य एवं स्थायी होता है। रूपासक्ति का प्रेम मोह-संभोग से प्रशमित हो जाता है। निष्कामी प्रणय की वृत्तियाँ सात्विकी एवं पवित्र होती हैं, उसमें आत्म-उत्सर्ग की भावना होती है।[6] मोह-वश प्रणय-भ्रान्ति का लक्ष्य वासना होती है, जिसे कथमपि समीचीन नहीं कहा जा सकता। प्रिय सुख की कामना से हृदयोद्भूत उत्सर्गशीला-वृत्ति को प्रणय कहा गया है-

हो के उत्कण्ठ प्रिय-सुख की भूयसी लालसा से।
जो है प्राणी हृदय-तल की वृत्ति उत्सर्ग-शीला।
पुण्याकांक्षा सुयश-रुचि वा धर्म-लिप्सा बिना ही।
ज्ञाताओं ने प्रणय अभिधा दान की है उसी को।[7]

6-प्रियप्रवास, पृष्ठ 246-247, 7-वही, पृष्ठ 248,

और इस प्रणय के अन्तिम चरण में प्रणयी आत्म-उत्सर्ग के लिए तैयार हो जाता है और अपनी सुधि खो बैठता है।[8] प्रेम मोह से बड़ा है। प्रेम मणि है तो मोह काँच है-

जो है प्यारा प्रणय-मणि सा काँच सा मोह तो है।
ऊँची-न्यारी रुचिर महिमा मोह से प्रेम की है।"[9]

चातकी स्वाति-नक्षत्र की मेघ-वृष्टि चाहती है, "प्रेम-लता जीवन के लिए दो आँखों का पानी" चाहती है। प्रेमराज्य में आशा फूल है और निराशा फल है।[10] चक्षुराग सच्चा प्रेम नहीं होता है, प्रेम तो हृदय की सुयोग्य निधि है।[11] प्रेम सुख का मूल है। सर्वत्र विजय प्रेम की ही होती है। प्रेम जीवन की सिद्धि है, जीवन साधना की सहचरी है। प्रेम रहस्यों का रहस्य है। यह जगत यदि रसाल-तरु है तो प्रेम मधुवन की कोयल है। हृदय रूपी यन्त्र में प्रेम का स्वर ही सत्य है।[12] प्रेम अनादि है, भव्य है, अनन्त है और अनूप है-

तू अनादि तू भव्य, महत तू, मुक्ति रूप है।
तू अनन्त तू दिव्य, जगत में तू अनूप है।" -फेरिमिलिबो, पृष्ठ-216

आधुनिक कृष्ण कविता में प्राय: भक्त-कवियों ने प्रेम के महत्त्व एवं विविध स्वरूपों का बड़ी मार्मिकता से चित्रण किया है। प्रेम की प्रबलता के कारण ही ईश्वर उसके वश में रहता है। अखण्ड ब्रह्माण्ड का सर्जक "ब्रज-अहीर-नँदपूत" बन जाता है; जिसकी योग माया से "जगत नियंत्रित" होता है, उसको नन्द की घरनी आँगन में अँगुली पकड़कर चलना सिखाती है। "कोटि कल्प तप" करके भी जिसकी "कृपाकोर" को विधि, हर, हरि प्राप्त नहीं कर पाते वही यशोदा की गोदी में रोते हुए भी सन्तुष्ट हैं, वह अपने को ऊखल में बँधवाता है और यशोदा की सांटी से डरता है।[13] जो अपनी माया से विश्व को नचाता है, उससे राधा प्रेम के बल पर अपनी सेवा करवाती है-"क्रीत-दास करि पद पलुटावत।" राधा-कृष्ण का प्रेम मन, वाणी से परे है, इसे वही समझ सकता है जिसे राधा की कृपा-दृष्टि प्राप्त है। प्रेम की अत्यन्त विचित्र एवं वक्रगति होती है। प्रेम न तो जोड़ने से जुड़ता है और न तोड़ने से खंडित होता है। वह तो अधिकारी जीवों के लिए महापुरुषों की कृपा-रूप एक देन है, ऐसा रसिकों का सिद्धान्त है। जितनी मात्रा में प्रेम का रंग अन्त:करण पर चढ़ता जाता है, उतनी ही मात्रा में प्रेमी सांसारिकता से ऊपर उठता जाता है।[14] प्रीति तो पहले अमृत रस प्लुत-सी दिखाई पड़ती है एवं पश्चात् जहर-सा फैलाती हुई अनुभव में आती है। प्रेमिका को पहले मधुर मिलन की अवस्था में जो बात साधारण विनोद सरीखी प्रतीत होती है, वही वियोग की अवस्था में प्राणघातक-सी बन जाती है।[15] भक्त कविवर कृपालुदास कहते हैं कि "प्रीति की रीति न जाने कोय"। कवि लोग कहते हैं कि मछली और जल, भ्रमर और कमल, चातक और स्वाति नक्षत्र का मेघ, हिरण और बीन की ध्वनि, दीपक एवं पतंगों का प्रेम सच्चा है किन्तु ध्यानपूर्वक विचार करने पर यह स्वार्थ पर आधारित प्रतीत होता है। मछली अपनी प्राण-रक्षा, पपीहा प्यास-तृप्ति के लिए क्रमश: जल एवं बादल से प्यार करते हैं। भ्रमर को कमल के प्रति अनन्यता न होने के कारण उसका प्रेम दूषित लोलुपता का प्रतीक बन गया है। मृग एवं शलभ नाद और दीपक पर मरकर अमरत्व प्रदान करने वाले प्रेम को कलंक का टीका लगाते हैं।[15] वस्तुत: प्रेम स्वार्थ एवं परमार्थ से परे ही किसी अनुपम तत्त्व

8-वही, पृष्ठ 248, 9-वही, पृष्ठ 248, 10-एक प्रीति की लता चाहती, दो आँखों का पानी, आशा फूल, निराशा फल है, इतनी मूल कहानी।-(द्वापर, पृ० 199), 11-"चक्षुराग अनुराग न सांचा"-कृष्णायन, पृष्ठ-110, 12-फेरिमिलिबो, पृष्ठ 216, 13-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-105, 14-प्रीति की अति अड़ुबंगी रीत। जोरत जुरे, न तोरत टूटे रसिकन की अस नीत। -वही, पृ०108, 15-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-109, 16-वही, पृष्ठ-110

का नाम है। मानसी प्रेम को हृदय में छिपाकर रखा चाहिए, क्योंकि प्रेम हृदय की अनुपम निधि है, ऐसा रसिक जन और विद्वान-जन कहते हैं, किन्तु जब प्रेम-निधि में जल-प्लावन हो जाता है तब वह मन-बुद्धि को भी डुबा देता है। प्रेम के अंग-अंग में नित्य नूतन, अगाध तरंगें उठा करती हैं जिसकी उद्धव सरीखे ज्ञानी भी थाह नहीं पा सके। प्रेम को तब तक बड़ी सावधानी से सुगोप्य रखना चाहिए जब तक स्वाभाविक रूप से सात्त्विक भावों (स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कम्प, स्वरभेद, वैवर्णीय, आँसू एवं मूर्छा) का उदय न हो जाय-

"प्रीति की अति अटपट गति हाय!
"गोपनीय अति" कहत रसिक-जन, सोचत उचित लखाय।
पै जब प्रेम सिन्धु बढ़ि उमड़त, मन-बुधि देत डुबाय।
जहँ मन-गमन न बुधि-बल-संबल तहँ को केहि समुझाय।
यह "कृपालु" गोपन तब ही लौं, जब लौं करि सक जाय।" -(प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-112)

प्रेम के विविध रूप

(1) वात्सल्य, स्नेह एवं पुत्र का प्रतिदान

प्रिय प्रवास में प्रथम चार सर्गों की कथा सन्ध्या से लेकर दूसरे दिन प्रात: तक समाप्त हो गई है। इस प्रबन्ध में कृष्ण के जन्मोत्सव आदि का प्रसंग नहीं है। आत्मकथन रूप में यशोदा विगत दिनों का स्मरण करती हैं। यशोदा और नन्द को वियोग-वात्सल्य का अनुभव तब होता है जब कंस के दूत रूप में अक्रूर गोकुल आकर कृष्ण बलराम सहित नन्द को उपढ़ौकन आदि लेकर मथुरा चलने का निमन्त्रण देते हैं। अपने श्वेत "मुख-लोम" को पकड़े हुए नन्द रात्रि में बिलखते हैं और यशोदा सोये हुए कृष्ण के पास बैठकर अश्रुप्रवाह से अपने वदन को प्लावित कर रही है।[17] कृष्ण कहीं जाग न जाये, इस भय से करुण क्रन्दन नहीं कर रही हैं। महरि का कोई प्रबोधन न होने के कारण वे अधिक पीड़ित हैं क्योंकि प्रात:काल होते ही कृष्ण मथुरा चले जायेंगे।[18] यशोदा का मन कंस द्वारा की जाने वाली विरोधात्मक कार्यवाही की आशंका से भरा हुआ है। वे अपने कुल-देवता को मनाती और भवानी से कहती हैं "जननि के जिय की सकला व्यथा, जननि ही जिय है कुछ जानता" शलतोशल, चाणूर-मुष्टिक और कुवलयापीड जैसा गजेन्द्र रण के निमित्त सुसज्जित हैं। उनका आहत हृदय जगज्जननी भवानी से पूछता है-

"द्विरद क्या जननी उपयुक्त है।
इक पयोमुख बालक के लिए।"[19]

हे माँ! प्रबल हिंसक जन्तु-समूह में मृग-शावक के समान विवश होकर मेरे पुत्र को वहाँ जाना पड़ रहा है। इस प्रकार यशोदा बार-बार सुप्त कृष्ण के मुख वस्त्र हटा-हटाकर देख रही थीं-

विनय यों करतीं ब्रजांगना, नयन से बहती जलधार थी।
विकलता वश वस्त्र-हटा-हटा, वदन थी सुत की अवलोकती। -प्रियप्रवास, पृष्ठ-35

द्वापर की यशोदा सुखी हैं, घर की रानी तथा अवतारी बालक की माता हैं, तभी आत्मा से उनकी तृप्ति निकलती है-

"तेरा दिया राम सब पावें, जैसा मैंने पाया।"[20]

16-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-110, 17-प्रियप्रवास, पृष्ठ 24, 25, 18-वही, पृ.26, 19-वही, पृ.31, 20-द्वापर, पृ.25

देवकी का मातृ-हृदय सदैव रोता-कलपता रहा है। अपने दुधमुँहे बच्चों के लिए। और ये बच्चे मरे नहीं हैं, मारे गये हैं।[21] देवकी कहती हैं-

"ओ हो, मृदुल मुकुल से भी वे मसल दिये इस खल ने।
मांसपिण्ड, मक्खन के लौंदे निगल लिये इस खल ने।" -(द्वापर, पृष्ठ-89)

- मेरे उन "छै-छै" बच्चों ने जनने और हनने वालों को भी पलभर नहीं देखा किन्तु "प्रेम-वैर" की सीमा इतने में ही छलक गई। प्रेम तो मेरा निष्फल हो गया और बैरी कंस की शत्रुता बलवती हुई। उन बच्चों का दोष इतना ही था कि वे मेरे बच्चे थे। मेरी सारी प्रसव-वेदना असफल हो गई। मेरा कलेजा छै टुकड़ों में उड़ रहा है किन्तु हाथ मेरे दो ही हैं, हे निर्मोही प्रियतम तू ही बता इन सबको कैसे थामूँ। क्या मेरे बच्चे भूमि-भार थे? मेरे बच्चे बहुत मीठे थे, कच्चे थे, लेकिन वे भी बच नहीं पाये-

ऐसे मीठे थे मेरे फल, कंस खा गया कच्चे।
कौन कहे, कैसे क्या होते, बचकर मेरे बच्चे। -(द्वापर-पृष्ठ 92)

वात्सल्य-वंचिता देवकी कंस-ध्वंस होने तक बच्चों को जन्म देती रहेगी-

इसी कोख से जनती जाऊँ उन्हें निरन्तर तब लौं,
ध्वंस न कर दें कंस राज्य वे मेरे जाये जब लौं।" -(द्वापर, पृष्ठ-95)

देवकी का आत्मनिवेदन दु:ख का हाहाकार है। कंस जब मारा जाता है और नन्द द्वारा देवकी को कृष्ण बेटा मिल जाता है उसका मातृ-हृदय केवल सुख से ही नहीं भरता बल्कि वह अन्य माता के हृदय को समझने की क्षमता रखती है। यह सोचकर वह दु:खी है कि कृष्ण को अब तक अपना पुत्र समझकर स्नेह देने वाले नन्द और यशोदा को कितना दु:ख हुआ होगा। वह कृष्ण के बदले में नन्द की बेटी गँवा चुकी है, बेटा पाकर भी नन्द को उनकी बेटी वापस नहीं दे सकती। उसका संवेदनशील हृदय रोता है-

"बेटा कैसे लूँ लौटाए
बिना तुम्हारी बेटी।" -द्वापर, पृष्ठ-136

उग्रसेन दम्पति भी जेल में बन्द हैं, उनके बेटे कंस ने ही शासन-राजसत्ता हस्तगत करने के लिए बन्दी बना दिया है। यहाँ उग्रसेन का वात्सल्य चिन्तन भारतीय-परम्परा का अनुसरण करता है। "कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति" का मार्ग अपनाकर उग्रसेन कहते हैं कि यदि बेटा कंस निर्मम हो गया तो क्या हम दोनों भी निर्मम हो जायें? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, हम अपनी सन्तान का मोह नहीं छोड़ सकते, अब भी वह अपना ही है-

फिर भी रहें पिता-माता हम, सुत न रहे सुत चाहे,
वह भूला, हम भी भूलें तो, किसको कौन निबाहे।" -द्वापर, पृष्ठ-100

"आत्मा वै जायते पुत्र:" मानकर बेटे कंस को अभिशाप देने को दम्पति तैयार नहीं हैं-

"न दो उसे अभिशाप अन्तत:
तुमने जिसे जना है,
स्वल्प मात्र लेकर ही तो वह।
राजा आज बना है।" -(द्वापर, पृष्ठ 101)

21-द्वापर, पृष्ठ-88,

"कृष्णायन" में सूर की परम्परा पर कृष्ण के वात्सल्य रस की धारा बहाई गई है। जन्म की सूचना पाकर गोपियों के यूथ के यूथ अक्षत, रोचन, दूब, दधि, "कंचन थार" में भरकर नन्दकुमार को देखने के लिए चल पड़ीं। अनूप बालक को देखकर "पियहिं दृगन जनु सुधा स्वरूपा" और आशीर्वाद देती है "जियहु महरि सुत! कोटि बरीसा।" यशोदा भी वत्स, लाल, सुत, छौना कहकर, बहुत से खिलौना देकर अंगुष्ठ पान करते हुए कृष्ण को पालने पर सुलाती है-

"जागत जो लय-कालहू, संसृति सकल सोवाय।
पलना रही सोवाय तेहि, यशुमति लोरी गाय।" -(कृष्णायन, पृष्ठ-16)

बलराम पूछते हैं-

"को यह मातु! कहाँ ते आवा? बाबा यहि केहि हाट बिसाहा?
लागत यहि अति सुघर सलोना, लेहौं ऐसहिं महूँ खिलौना।"[22]

यशोदा "तुम्हरेहि खेलन हेतु मँगावा" कहकर बलराम को खुश कर देती हैं। बलराम उन्हें गोद में लेना चाहते हैं क़िन्तु कृष्ण रुदन मचा देते हैं। यशोदा दौड़ीं और "दीन्हेउ नटखट बाल जगायी?" कहकर खीझती हैं। बलराम अपनी मुग्धता का परिचय देते हैं-"मैं नहिं जानत यह अस रोना, छुइहौं अब नहिं मातु खिलौना।" इस प्रकार कृष्ण "कृष्णायन" में विविध बाल-लीलायें करते रहते हैं।[23]

"प्रेमरसमदिरा" में कृपालुदास ने "बाल लीला-माधुरी" के अन्तर्गत वात्सल्य के अनेक मनमोहक चित्र खींचे हैं। नन्दमहर के घर वधाई बज रही है क्योंकि नन्दरानी ने आज "पूत" उत्पन्न किया है। नवमी तिथि को दूध, दही, मक्खन आदि को छिड़कते हुए नर-नारियों ने गोकुल में कीचड़-ही-कीचड़ कर दिया है। आँगन में बालक को पालने में झुलाती हुई यशोदा आनन्द प्राप्त कर रही हैं और लोरी गा रही हैं-

"पालने झूलत बाल गोपाल।
लोरी गावति, मातु झुलावति, लखि-लखि होति निहाल।"[24]

कौन माँ ऐसी है जो अपने लाल के बड़े होने की कामना नहीं करती-

"बड़ो कब ह्वै हैं हमरो लाल।
कब चलिहैं घुटुरुवन- बन आँगन, करिहैंहि हमहिं निहाल।
कब कर अँगुरि पकरि ह्वै ठाढ़ो, चलिहहिं लटपट चाल।"[25]

माँ की इच्छा है कि कृष्ण मुझे मैया कहकर बुलावें-"कबै कहि मैया। मोहिं बुलाय"। कृष्ण ठुमकते हुए चलने लगे हैं और अपनी अटपटी चाल से माँ को रिझाते हैं।[26]

इसी प्रकार "नन्द घर निरतत नन्द कुमार" "रूठे कान्ह मनावति माय", "रेनु-तन-मण्डित सुन्दर श्याम", "हमरो कौन बनैगो लाल", अरी मोरे ललना सों कौन लरी?" और "पकरि गयो माखन चोरत कान्ह" आदि चित्रणों से कृपालुदास जी यशोदानन्द को वात्सल्य रस का पान कराते रहते हैं।[27]

भारत के इतिहास में देवकी जैसी माँ कहीं नहीं है जिसे अपनी सन्तानों को पयोधर पान कराने का अवसर ही नहीं मिला। हिन्दी साहित्य के कवियों ने देवकी की वेदना को नहीं पहचाना। हरिऔध जी ने यशोदा की अन्तर्वेदना को "प्रियप्रवास" में मुखर किया। यशोदा, उर्मिला, माण्डवी, विष्णुप्रिया जैसे उपेक्षित चरित्रों के उद्गाता मैथिलीशरण गुप्त रहे हैं, किन्तु देवकी उनकी भी संवेदनप्रवण दृष्टि एवं

22-कृष्णायन, पृष्ठ-17, 23-वही, पृष्ठ-17, 24-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-117, 25-वही, पृष्ठ-119, 26-वही, पृष्ठ-122, 27-वही, पृष्ठ 118 से 130 तक

लेखनी से छूट गई। श्री उमाकान्त मालवीय की सर्जन तूलिका से माँ देवकी के जिस रूप का चित्रांकन हुआ है वह संसार की माताओं का सार्वभौमिक स्वरूप है। नन्द की कन्या पाकर देवकी को सन्तोष हुआ कि मेरे "युगल दुग्ध फल" अकारथ नहीं होंगे किन्तु कंस वैसा नहीं होने देता-

"मातुल-कंस को प्रहरियों ने शिशु-प्रसव की सूचना दी और वह भयभीत हिंसक पशु की भाँति लड़खड़ाता दौड़ा आया, उसने मेरे अंक से खींच लिया कन्या को-मैं रोई, गिड़गिड़ाई-भैया! तुम्हें तो मेरे आठवें पुत्र से भय था, यह तो हुई है कन्या, तुम्हारी भांजी!"[28]

देवकी को दुःख है कि उसने अपने बेटे को बचाने के लिए किसी दूसरे की "कोख-कलिका" को बलि दे दिया। यह स्वार्थ की पराकाष्ठा है।[29] "सोहर की टीसती अनुगूँज" के अन्तर्गत अपने कन्हैया के विषय में कल्पना करती है-

"यशोदा के पार्श्व में नीलोत्पल-सा, मेरा कृष्ण सो रहा होगा-सार्थकता प्राप्त हुई होगी यशोदा के शंखोपम पृथुल पयोधरों को और, इधर मेरे पीन, वर्तुल उरोजों में हिलकोरती पयस्विनी मेरी ही शत्रु बनी बैठी है। यशोदा का दूध मेरे श्रीकृष्ण की शिराओं में, धमनियों में रुधिर बन संचारित होगा। उक्तियों में जब उसे "छठी दूध" याद दिलाने की बात कही जायेगी, तो उसे यशोदा का ही दूध याद आयेगा।"[30] उसे भागीरथी गंगा की याद आती है जिसने अपने सात पुत्रों को अपने ही हाथों मार डाला था। जाह्नवी से वह अनुभव-सहारा चाहती है और गंगा से कहती है-

"तुमने, एक दो नहीं अपने सात पुत्रों की हत्या की, किन्तु पुत्र-हत्या का पातक तुम्हें क्यों नहीं लगा? क्या, युग्म अमृत-कलशों में क्षीर-सागर के ज्वार ने उफान नहीं मारा था? उसका क्या किया था तुमने? क्या तुम्हारे युग्म क्षीर-फल वृन्त पर लगे-लगे मेरे पयोधरों की भाँति, जिससे किसी शिशु का पोषण नहीं हो पाया, अजा के गलस्तन जैसे ही व्यर्थ-निरर्थक नहीं रहे?"[31]

आलोच्य काव्यों में कुन्ती के वात्सल्य-स्नेह का चित्रण विशेषतः कर्ण के पक्ष में गोपनीय ढंग से हुआ है। कुन्ती अपने ज्येष्ठ पुत्र कर्ण के लिए सदैव कलपती रहती है। चाहे राजा-द्रुपद का द्रौपदी-स्वयम्वर हो या धृतराष्ट्र की रंगशाला हो, सर्वत्र कर्ण जाति के नाम पर अपमानित होता रहा है और इन घटनाओं को देख-सुनकर कुन्ती अपने मन में सदैव रोती रही है। सम्पूर्ण राज-समाज के सम्मुख जब कृपाचार्य कर्ण का वंश पूछते हैं और अर्जुन की प्रशंसा करते हैं तब कर्ण अश्रुपूरित नेत्रों से व्याकुल हो जाता है। कुन्ती अपने वात्सल्य को न तो प्रकट कर पाती है और न अपमान ही सह पाती है-

"लखी पृथा निज सुत-दशा, त्यागत जनु तनु प्राण,
कहि न सकी, "यह मम सुवन" सहि न सकी अपमान।
गिरी धरणि अकुलाय, धाय सँभारेउ कुल-तियन,
उठी चेत पुनि पाय, जनु शर-आहत भीत मृगि?[32]

भीम ने "सूत-सुवन तुम सारथि-नन्दन उचित न शस्त्र-ग्रहण तजि तोदन" कहकर कर्ण का अपमान करते हैं। अपने ही पुत्र द्वारा अपने पुत्र का अपमान देखकर कुन्ती मर्माहत हो जाती है और अपने पूर्व कृत्य की पश्चात्तापाग्नि में जलती रहती है।[33] कर्ण के सेनापतित्व में युद्ध के श्रीगणेश की पूर्व सन्ध्या

28-देवकी, पृष्ठ-46, 29-वही, पृष्ठ-47, 30-वही, पृष्ठ 53-54, 31-वही, पृष्ठ-31, 32-कृष्णायन, पृष्ठ-150, 33-वही, पृष्ठ-151

में कुन्ती साहस बटोर कर कर्ण के पास वात्सल्य रस लेकर जाती है और सब कुछ गोपनीय बातें कर्ण से कह देती है। कर्ण और कुन्ती दोनों अपनी भाग्य-विडम्बनाओं का कथन करते हैं। कुन्ती कहती है-

"राधा का सुत तू नहीं तनय मेरा है,
जो धर्मराज का वही वंश तेरा है।"[34]

कर्ण अन्यान्य बातों का न्यायतः कथन करता है किन्तु माता का कहीं अपमान नहीं करता है। वह माता-पिता दोनों को सम्मानित करता है-

"डूबते सूर्य को नमन निवेदित करके,
कुन्ती के पद की धूल शीश पर धरके
राधेय बोलने लगा बड़े ही दुःख से,
तुम मुझे पुत्र कहने आई किस मुख से।" -(रश्मिरथी, पृष्ठ-73)

कुन्ती और कर्ण के वात्सल्य तथा मातृ-भक्ति सम्बन्धी प्रकरण को दिनकर जी ने उद्घाटित करके समाज के कई मानवीय सम्बन्धों को उजागर किया है, जिसकी हम आगे अन्यान्य मानवीय सम्बन्ध वाले अध्याय में सम्यक् चर्चा करेंगे।

उपर्युक्त वात्सल्य का प्रतिदान पुत्रों द्वारा दिया गया है। ऐसे पुत्रों में कृष्ण, पाण्डव, कौरव, कर्ण, कंस आदि आते हैं। कंस-वध करके कृष्ण गोकुल जाने की इच्छा व्यक्त करते हैं किन्तु मथुरा की परिस्थितियाँ उन्हें जाने नहीं देतीं। व्याकुल नन्द से लिपटकर कृष्ण अपनी पितृ-भक्ति प्रस्तुत करते हैं-

"हृदय लगायेउ धाय हरि, कहेउ सनेह सुभाय,
रहिहौं आवत जात पुर, सुत निज विसरि न जाय।"[35]

पाण्डव सदैव अपनी माँ कुन्ती को सम्मान देकर सुखी करते रहे हैं और कौरव अपने पिता धृतराष्ट्र और गांधारी को सदैव अपने कृत्यों से दुःखी बनाते रहे हैं। कंस अपने माता को बन्दी बनाकर पुत्र जाति को कलंकित करता है[36] और कर्ण अपने पराक्रम से अपनी दोनों माताओं कुन्ती और राधा को सम्मानित करता है। कर्ण कुन्ती के चरण की धूलि अपने सिर पर रखता है।[37] वात्सल्य और मातृभक्ति का कैसा सहज प्रवाह दोनों के मिलन में दिखाई पड़ता है-

"माँ ने बढ़कर जैसे ही कंठ लगाया,
हो उठी उत्कंठित पुलक कर्ण की काया।
संजीवनी-सी छू गयी चीज कुछ तन में,
बह चला स्निग्ध प्रस्रवण कहीं से मन में।
फिर कंठ छोड़ बोला चरणों पर आकर,
मैं धन्य हुआ बिछुड़ी गोदी को पाकर।" -(रश्मिरथी, पृष्ठ-85)

कृष्ण अपना सन्देश यशोदा को उद्धव द्वारा प्रेषित करते हैं उसे उनके मन की व्यथा और माता के प्रति प्यार झलकता है-

34-रश्मिरथी, पृष्ठ-70, 35-कृष्णायन, पृष्ठ-92, 36-मधुपर्क, पृष्ठ 202, 37-रश्मिरथी, पृष्ठ-73, एवं जयभारत, पृष्ठ 347,

पठयेउ नेह-सँदेश हरि, जब तें बिहुरेउँ माय।

माखन देत न कोउ मोहिं, कोउ न कहत कन्हाय।"[38]

अमृत-रस-वाणी सुनकर नन्दरानी सुप्त प्रतिबुद्ध हो जाती हैं और पूछती हैं-"औरहु कछु मोहिं कहेउ कन्हाई", तब कान्ह कहते हैं कि "मइया! मुझे तुम्हारी याद रात-दिन आती है। मथुरा पर असुर चढ़ाई करते हैं और मुझे शिशु समझकर मारने दौड़ते हैं, वे नहीं जानते कि माता यशोदा ने "पय पियाय मोंहिं बली बनावा।"[39]

माँ जब मैं तेरा स्मरण करता हूँ तब "निमिष माँहि अरिजात पराई।" वे यशोदा को आश्वस्त करते हैं-

"देश-धर्म-त्रासक असुर, देहौं जबहिं नसाय।

करिहौं तनिक विलम्ब नहिं, अइहौं मइया धाय।"[40]

किन्तु माँ! इस बात का ध्यान रखना कि मेरे खिलौने सुरक्षित रहें-

"तब लगि लकुटी कमरी मोरी, धरेउ सैंति भँवरा चकडोरी।

राखेउ मुरली कतहुँ लुकाई, लै जनि राधा जाय चुराई।[41]

(2) दाम्पत्य-प्रेम

आधुनिक कृष्ण काव्यों में पति-पत्नी के माधुर्य प्रेम का वर्णन परकीया एवं स्वकीया दोनों रूपों में हुआ है। मथुरा जाने के पूर्व गोकुल में कृष्ण का प्रेम राधा और गोपियों से अभिसम्बद्ध रहता है। राधा और गोपियों में कुछ स्वकीया हैं और कुछ परकीया। आलोच्य काव्यों में राधा को स्वकीया एवं परकीया दोनों रूपों में चित्रित किया गया है। राधा और कृष्ण के प्रेम का विस्तृत वर्णन "प्रणयभोग" के अन्तर्गत हम प्रस्तुत कर चुके हैं। यहाँ गोकुल के बाद मथुरा जाने पर कृष्ण जहाँ-जहाँ प्रेमसूत्र में बँधे हैं, उनका संक्षिप्त उल्लेख प्रस्तुत किया जायेगा। कृष्ण की आठ पटरानियों का वर्णन "कृष्णायन" प्रबन्ध काव्य में है। ये हैं रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, सत्या, मित्रवृन्दा, भद्रा और लक्ष्मणा। इनमें रुक्मिणी और मित्रवृन्दा का प्रेम कृष्ण के रूप-श्रवण पर आधारित है और शेष रानियाँ स्वयम्बर द्वारा या कृष्ण के पौरुष द्वारा जीत कर लाई गई हैं।

कुब्जा का नाम गोपियाँ प्राय: सौति के रूप में लेती रही हैं और आश्चर्य व्यक्त करती रही हैं कि कुरूप कुब्जा, जो निम्न जाति की है, उस पर कृष्ण कैसे आसक्त हो गये और उसे अपने प्रेम का प्रतिदान क्यों देने लगे। वस्तुत: कुब्जा का प्रेम रूप-सापेक्ष है; वह कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही आसक्त हो जाती है। कृष्ण के शशि-मुख के लिए उसके नयन चकोर हो जाते हैं, वह छवि-सिन्धु में समाहित हो गई। कृष्ण की मुसकान एवं सौंदर्य को देखकर उसके सैंकड़ों "उर प्रसून" खिल गये और "हरि-छवि-दोल प्राण जनु झूले" की स्थिति में वह प्रेम-विह्वल हो जाती है। सहज रूप में उसके हाथ कब उठे, कब चन्दन लिए और कब श्यामल गात पर लेपन कर दिये, "रूपरसमाती" कुब्जा इसे जान नहीं पाई।[42] इस मुग्ध नृप चेरी मालिन पर कृपा-दृष्टि करके कृष्ण ने उसे रूपवती बना दिया-

चापि तासु पद निज चरण, अँगुरी चिबुक लगाय।

कौतुक उचकावत भई, निमिष माँहि ऋजु काय।"[43]

३८-कृष्णायन, पृष्ठ-121, 39-वही, पृष्ठ-121, 40-वही, पृष्ठ-122, 41-वही, पृष्ठ-122, 42-कृष्णायन, पृष्ठ-74, 43-वही, पृष्ठ-74,

इस पुष्पस्पर्श से पुलकित होकर अमृतरस से भीग गई वह वाम कुब्जा, अनवद्यांगी हो गई, अंगों में आनन्द समा गया और ऐसे में हरि का मुसकराना उस नारी को लाज-नत कर देता है। कुब्जा उस दिन कंस के दरबार में नहीं गई। कृष्ण का सौंदर्य-माधुर्य ही ऐसा है जिसमें से कोई उबर नहीं पाता। कृष्ण की अलौकिक वृत्ति की चर्चा कंस की दोनों रानियाँ अन्त:पुर में कंस से करती हैं-

ये शिशु दोउ न शौरि-कुमारा, ये कोउ देव मनुज-तनु धारा।

मम ताम्बूल-वाहिका चेरी, आवत पंथ कृष्ण तनु हेरी

भयेउ ताहि कछु निमिषहिं माहीं, आई लौटि भवन पुनि नाहीं।[44]

अन्य सेविकाओं को भी उन्हें देखने के लिए भेजा, वे भी लौटकर नहीं आयीं। प्रमाता अपने मन:परक भावों का आलम्बन पाकर प्रेमाधीन हो जाती है, यही दशा कुब्जा की हुई-

"मेरे मन की मूर्ति ढली थी, उसके साँचे में वह

खेल रहा था नारायण ही, नर के ढाँचे में वह।"[45]

मैथिलीशरण गुप्त के "द्वापर" में कुब्जा आत्मकथन के द्वारा अपने हृदयगत भावों का जो उद्‌गार व्यक्त करती है उससे कृष्ण के प्रति उसके प्रेम की झलक का अनुमान लगता है। माथे पर चन्दन और चरणों पर पुष्प चढ़ाकर वह कृष्णाधीन हो गई। आत्मसमर्पिता को कृष्ण के स्पर्श से रूप-सौन्दर्य मिल गया। स्पर्श से नसों में बिजली चौंक पड़ी, हृदय को नया स्पन्दन प्राप्त हुआ और काया पलट गई।[46] एक क्षण में कृष्ण ने जो रसधारा सृष्टि में बहाई उसमें उसका भी हिस्सा था, उसके मन का शतदल फूट पड़ा। प्रेम की यह विचित्र प्रकृति है कि प्रेमास्पद से दूर होने पर स्थिर हो जाता है-

"अब फिर कभी मिलूँगा, कहकर हँसता चला गया वह,

ज्यों-ज्यों दूर गया, मानस में, धँसता चला गया वह।[47]

मन में प्रेम का गजर बज जाने पर एकान्त चिन्तन चाहिए प्रेमी को-

किन्तु मुझे निर्जन अभीष्ट था

चिन्तनार्थ कुछ मन के।"[48]

प्रेम त्याग से अनुरंजित होता है और वह प्रेम कैसा जिसमें आत्म-समर्पण न हो। कुब्जा कृष्ण के लिए सब कुछ कर सकती है-

"मेरा अतिथि देव आवे तो, मैं सिर माथे लूँगी,

उसने मुझको देह दिया, मैं उसे प्राण भी दूँगी।"[49]

गढ़े हुए धन के समान कृष्ण उसके मन में हैं किन्तु वह शारीरिक-पुलक चाहती है और कृष्ण के चरणों में प्रस्वेद बनकर प्रवाहित होने की कामना रखती है।[50]

कृष्ण-गुण-श्रवण से अनुरक्त रुक्मिणी ने प्रण ठान लिया, "बरहुँ हरिहिं, न तु त्यागहुँ प्राणा।"[51] प्रणत-पाल श्रीकृष्ण से प्रेम-गाँठ जोड़ने वाली प्रेमिका का हरण कृष्ण द्वारा कर लिया जाता है। इस कार्य के मूल में प्रेमिका की भावना प्रधान मानी गई है। कन्या की भावनाओं को दबाकर विवाह नहीं किया जा सकता, यह कृष्ण का आदर्श रहा है। अपने परिवार तथा समाज में कृष्ण द्वारा इस भावना का सदैव सम्मान किया गया है। वे कहते हैं-

---

44-वही, पृष्ठ-80, 45-द्वापर, पृष्ठ-144, 46-वही, पृष्ठ-147, 47-वही, पृष्ठ-148, 48-वही, पृष्ठ-150, 49-वही, पृष्ठ-155, 50-वही, पृष्ठ-158, 51-कृष्णायन, पृष्ठ-133,

"विदलित भगिनि-मनोरथ पदतल, व्याहत चौरहिं ताहि रुक्मि खल।

ताते लोक-नीति अनुसारा, हरण रुक्मिणी धर्म हमारा।"[52]

भ्रातृ-प्रेम और प्रियतम-प्रेम की अनूठी धारा एक साथ प्रवाहित करने में द्वारका प्रसाद मिश्र की अनूठी प्रतिभा शैली की उत्कृष्टता को व्यक्त करती है। "विरमु चोर (आभीर)" कहता हुआ रुक्मि कृष्ण का पीछा करता है। कृष्ण के रथ पर बैठी उसकी भगिनी भाई के प्रेम और प्रेमी से आप्लावित होकर अश्रुपात करती है-

"लखति कबहुँ निज प्राण-धन, कबहुँक बन्धु अधीर,

आवत जस जस पास रथ, उमड़त नयनन नीर।"[53]

अनेक दुर्वचन कहता हुआ कृष्ण पर शर प्रवाह की वर्षा करता है। कृष्ण की भुजाओं से शोणित-स्राव होता है। रुक्मिणी उभय पक्ष से दु:खी है-

"अश्रु भरे रुक्मिणि-नयन, भये सरोष अंगार,

इक कर पोंछति हरि-रुधिर, इक लोचन जलधार।"[54]

द्वारिका पहुँचने पर-"मुदित देवकी वधू विलोकी, आनंद-अश्रु सकति नहिं रोकी।" गर्ग मुनि वैदिक रीति से विवाह कराते हैं-

"लोक-रीति श्रुति विधि यथा, करि साक्षीह विवाह।

प्रणयनि माया सँग भयेउ, माया नाथ-विवाह।[55]

इसी प्रकार मित्रविन्दा का स्नेह चक्षुराग से प्रारम्भ होता है। विद्याध्ययन के लिए उज्जैन जाते समय कृष्ण मालवपति के सदन में रुकते हैं। उनकी रूपवती पुत्री मित्रविन्दा कृष्ण को देखकर उनके अभिराम रूप को हृदय में धारण कर लेती है। उसके नेत्र रूप-निधि पर रम जाते हैं और वह असहाय हो जाती है।[56]

मालव-पति की रानी हरि-छवि देखकर, अपनी पुत्री के अनुरूप जानकर कृष्ण के साथ सुता के विवाह का प्रस्ताव करती है। मालव-पति कन्या की स्वीकृति के बिना कोई निर्णय नहीं लेना चाहते। वे कहते हैं-

"पै जाने बिनु तनया भावा, उचित न करब हरिहिं प्रस्तावा।"[57]

मित्रविन्दा के हृदयाकाश पर विषाद-घन छा गया, वदनसरोज विवर्ण के अधीन हो गया और प्रात:कालीन राकेश की भाँति वह श्री-हत हो गई। कन्या के मन की थाह लेने के लिए जैसे ही माता ने उसके मर्म का स्पर्श किया तैसे ही मित्रविन्दा के दृग् सलिल प्रवाहित हो गये। वृन्त-छिन्न किसलय की भाँति कुंवरि मातु अंक में मूर्छित हो जाती है। धीरे-धीरे माता ने समझाया और लज्जा का आवरण हटा दिया; तब मित्रविन्दा हृदय खोलकर माँ से बता देती हैं-

"कही मित्रविन्दा सब गाथा, जेहि विधि भवन लखे यदुनाथा।

जित-मनसिज हरि छवि अभिरामा, बसी अमिट जेहि विधिहृद्धमा।

मिलिहैं कबहुँ मोहिं बनवारी, गइउँ बिदर्भ साध उर धारी।"[58]

52-वही, पृष्ठ-135, 53-कृष्णायन, पृष्ठ-139, 54-वहा, पृष्ठ-139, 55-वही, पृष्ठ-142, 56-वही, पृष्ठ-99, 57-वही, पृष्ठ-100, 58-वही, पृष्ठ-109

स्वयंवर प्रथा द्वारा मित्रविन्दा कृष्ण का वरण करती है। रुक्मिणी और मित्रविन्दा सहोदर भगिनी की तरह द्वारिका में रहने लगीं। श्रीकृष्ण की अन्य स्वकीया पटरानियाँ निम्न हैं, जिनसे विभिन्न प्रसंगों में प्रेम सम्बन्ध जुड़े हैं-

(1) जाम्बवती

जाम्बवान की कन्या है, जो कि त्रेतायुग में रामावतार में भी थे, जिनको स्यमन्तक मणि के हेतु जाम्बवान् से युद्ध करके श्रीकृष्ण लाये थे।

(2) सत्यभामा

सत्राजित यादव की कन्या है, जिनको भी श्रीकृष्ण उपर्युक्त रीति से लाये थे।

(3) कालिन्दी

सूर्य की बेटी हैं, जिन्होंने स्वयं तप करके श्रीकृष्ण को प्राप्त किया था।

(4) सत्या

काशी के नग्नजित् की कन्या है, जिनको सात बैलों को रस्सी से नाथने की प्रतिज्ञा-पूर्ति द्वारा लाये थे।

(5) भद्रा और लक्ष्मणा

स्वयंवर द्वारा प्राप्त किया था। द्वारिका पुरी में श्रीकृष्ण का पूर्ण स्वरूप विकसित हुआ था जिसमें प्रेमादि शक्तियों से रहित अल्प शक्तियों का प्राकट्य हुआ था। मथुरा में श्रीकृष्ण की शक्तियों का प्राकट्य वृन्दावन से कम था और वृन्दावन में श्रीकृष्ण का पूर्णतम स्वरूप प्रकट हुआ था, क्योंकि वहाँ लीलायें सर्वश्रेष्ठ प्रेम माधुर्य युक्त थीं। अस्तु, प्रेम की दृष्टि से द्वारिका, मथुरा और वृन्दावन के श्रीकृष्ण उत्तरोत्तर विकास पाते रहे हैं।

3-राधा का प्रेमादर्श

"मधुपर्क" में राधा का प्रेम सार्वभौमिक हो जाता है। वह कुंजों की छुई-मुई नहीं है। राष्ट्र और समाज के हित में कृष्ण का साथ देना उसके प्रेम की कसौटी है। वह दु:ख और सुख को समत्व भाव से मानकर प्रेम पुजारी बनना चाहती है।[59] तन, मन, धन देकर वह कृष्ण में समा चुकी है-संसार में उसने सर्वस्व प्राप्त कर लिया है।[60] प्रेम अपने आलम्बन को बाधित नहीं करना चाहता। राधा-कृष्ण को स्वतन्त्र करती हुई कहती हैं कि अपने कर्तव्य-पथ पर आप अग्रसर होते रहें, मेरे लिए आपकी याद ही बहुत है-

"मेरे तप्त प्रेम से तेरी बुझ न सकेगी क्षुधा हरे।

निज पथ धरे चला जाना तू, अलं मुझे सुधि-सुधा हरे।"[61]

कदाचित् राधा तुझे भूल जाये तो "लेना तू शोध हरे।" मैं चाहती हूँ कि अथाह प्रेम सागर में सूर्य ग्रहण के अवसर पर नारद जब कृष्ण को सन्देश देते हैं कि ब्रज-जन भी आये हैं, राधा भी आई है। ब्रज का नाम सुनते ही कृष्ण दृग्-नीर बहाने लगते हैं। वृषभानुनन्दिनी की सुधि से अपनी सुधि भूल जाते हैं, कम्पन होने लगता है, प्रेम-अम्बुधि में डूब जाते हैं। धन्य है नन्द का प्रेम जिसने अलख जंजीरों से कृष्ण के हृदय को बाँध रखा है, धन्य है यशोदा का प्रेम जो मन, वचन, कर्म से अगोचर है, धन्य है राधा का प्रेम जो

59-मधुपर्क, पृष्ठ-235, 60-वही, पृष्ठ-236, 61-वही, द्वापर पृष्ठ-14

आकाश में ध्रुव के समान है जिसने चारों तरफ श्याम के नैन तारामण्डल की तरह नाचते रहते हैं, धन्य है कृष्ण का प्रेम जो सभी प्रेमिकाओं में भरा है, आधा रुक्मिणी के पास है किन्तु राधा के पास पूरा है-

"धन्य स्याम को प्रेम भर्‌यो तिह-हिय में पूरो।
आधो रुक्मिनि पास, न राधा पास अधूरो॥"[62]

वियोगिनी राधा के पास कुरुक्षेत्र में कृष्ण के पहुँचने पर उसका दु:ख कपूर की भाँति उड़ जाता है-

"तिय जुग हाथ पसारि मिली पिय-अंक भाँति यों।
मुदित मुदित-उर मिलति चमकि कैं सौदामिनि ज्यों॥
पिय विजोग को अनल उड्‌यो या बिधि कपूर-सम।
नैन नीर बहि चल्यो सुसीतल सुधा-पूर-सम॥"[63]

आज राधा का प्रेम विजयी हुआ। ब्रजमण्डल में राधा की मुस्कान से भी अधिक सुन्दर आज उसके आँसू हैं। राधा कुमुदिनी के लिए कृष्ण के हाथ चन्द्र हो गये और स्पर्श मात्र से ही विगत दिनों के दु:ख भूल गये। कृष्ण कहते हैं-

"निज आँसुन सों मोहि मालिका मम उर डारी।
बिजित भये हम आज, बिजै अब भयी तुम्हारी॥"

यह अवसर कठिन तप से प्राप्त हुआ है, वियोग के दिन राधा ने कैसे बिताये, वह स्वयं कहती है-अपने हृदय में भावमय सुन्दर मन्दिर बनाकर उसमें आशा देवी की स्थापना कर दी। यह आशा आपके दर्शन की थी। आपके चरण-स्पर्श का ध्यान लगाकर बैठ गई। ऊपर दिन में तपन और रात्रि में तारे चमकते रहे और यही सब नीचे यमुना में प्रतिबिम्बित होते रहे। वही आशा आज प्रभा के रूप में चमक उठी है। प्रेम-तपस्या-तपित देवता दमकने लगे हैं। मेरे लिए तो "धन्य आपु धनि घरी बिरह-दु:ख-दोष-निवारिनि" आज हो गई।"[64] शान्ति की कामना के लिए राधा का अनुभूत विचार है कि विश्व को प्यार की दृष्टि से देखा जाये।[65] प्रेमिका राधा को कृष्ण अपनी बाध्यता बता रहे हैं। कृष्ण विधि की विडम्बना पर चिन्ता व्यक्त करते हैं कि दो मिले हुए हृदयों के शरीर को विधाता ने क्यों अलग कर दिया।[66] संसार में प्रेम की जितनी व्यापकता है उससे अधिक विस्तार राधा के चिन्तन का है-

"प्यारे आवें सुब्रयन कहैं प्यारे से गोद लेवें।
प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।"[67]

काव्यशास्त्रियों के द्वारा प्रेम की जितनी व्यापकता बताई गयी है उन सबसे आगे है राधा का यह प्रेम। यह प्रेम की परिभाषा से ऊपर की वस्तु है। प्रेम-भाव से ही सुख मिल सकता है, ऐसी घोषणा है राधा की-

"भावों ही से अवनितल है स्वर्ग के तुल्य होता"[68]

62-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-174, 63-वही, पृष्ठ-189, 64-वही, पृष्ठ-190, 65-वही, पृष्ठ-264, 66-वही, पृष्ठ-243, 67-वही, पृष्ठ-253, 68-वही, पृष्ठ-253,

4-गोपी-कृष्ण

जगत-पीड़ा से राधा व्यथित है, ब्रजवासियों के दु:खों से चिन्तित है। वह चाहती है कि कृष्ण कर्त्तव्य-च्युत न होते हुए यहाँ आवें और प्रेमी-प्रेमिकाओं को तथा अपने जनक-जननी को सुख प्रदान करें।[69]

गोपियों का चित्त कुँवर कृष्ण में बस गया है और आँखें शोभा सिन्धु में फँस गई हैं, अस्तु कृष्ण को वे अपने हृदय से नहीं निकाल सकतो, भले ही हृदय निकालकर प्राण दे दें।[70] यौवनाम्बोधि की लहर सर्वांगों में उठ रही है जो ज्ञान और बुद्धिरूपी तरी को भी तोड़ दे रही है, सभी बालिकायें कृष्ण के ही लिए अभी तक कुमारी हैं। उद्धव जी, यदि कृष्ण नहीं आये तो जीवनभर ये कुमारी बालकायें अपना कंटकाकीर्ण दिन कैसे बितायेंगी।[71] ऐसे रोमांचकारी दु:खों को कैसे देख सकेगा-

"पीड़ायें जो "मदन" हिम के पात के तुल्य देगा।
स्नेहोत्फुल्लाविचक-वदना बालिकाम्भोजिनी को॥"[72]

प्रेम की अंधता को कृष्ण जानते हैं; प्रेमी का हृदय ही प्रेम की गरिमा को पहचानता है।[73] कृष्णानुरक्ता बेहाल गोपियाँ "लेहु श्याम! कोउ लेहु गोपाला" कहकर श्याम को बेचती हैं।[74]

5-देवकी-वसुदेव

वन्दिनी देवकी पर वसुदेव का असीम प्यार था, इसीलिए कंस का अत्याचार सहते रहे। देवकी वसुदेव के पराक्रम को ललकारती हुई कहती है-"पुरुष ज्वालामुखी का पर्याय होता है, अन्याय का प्रतिकार उसका व्यवसाय है, जलता हुआ लहू उसकी पूँजी है, उसकी आय है।"[75] अपनी इस प्रिया के केश-कर्षण करते अपावन हाथों को, क्यों नहीं काटकर फेंक दिया तुमने? वरन् इसके विपरीत तुम गिड़गिड़ाए।[76] प्रेम का फल सन्तान है, उसे भी देने में वसुदेव हिचके नहीं क्योंकि प्रीति में व्यक्ति बड़े से बड़ा बलिदान कर सकता है। यदि उन्हें देवकी से मोह न होता तो कंस के समक्ष क्यों गिड़गिड़ाते? देवकी समाप्त हो जाती और पुत्रहन्ता पातक से बच जाते। देवकी वसुदेव को पुत्र-हन्ता मानती है। वह कहती है-मेरी प्रीति ने तुम्हें इतना कमजोर कर दिया कि तुम ऐसा जघन्य समझौता करने को बाध्य हुए। पाँच बच्चे जब क्रूर कंस के हाथों चीखते चले गये तब देवकी समर्पिता प्रेमिका के रूप में कहती है-"वसुदेव! जैसे भी हो तुम मेरे हो और जैसी भी हूँ अब मैं तुम्हारी हूँ, मुझसे विलग तुम्हारी तो कोई गति भी हो सकती है, किन्तु तुमसे विलग मेरी कोई गति नहीं, नियति नहीं।"[77] कंस के नाश के लिए वह तब तक सन्तानोत्पत्ति करना चाहती है जब तक वह मर न जाये-

"हाँ हाँ, धर लो, मुझे अंक में भर लो मेरे भोगी।
योगी हो तुम, संभोगी भी और तुम्हीं अद्योगी।
इसी कोख से जनती जाऊँ उन्हें निरन्तर तब लौं
ध्वंस न कर दें कंसराज्य वे मेरे जाये जब लौं।"[78]

69-प्रियप्रवास, पृष्ठ-259, 70-वही, पृष्ठ-197, 71-वही, पृष्ठ-199, 72-वही, पृष्ठ-200, 73-वही, पृष्ठ-201, 74-वही, पृष्ठ-49, 75-देवकी, पृष्ठ-15, 76-वही, पृष्ठ-16, 77-वही, पृष्ठ-26, 78-द्वापर, पृष्ठ-95

6-प्रकृति-प्रेम

प्रकृति के ऐसे पदार्थ जो प्रमाताश्रय की भावप्रवणता को समझ नहीं पाते या समझ पाते हैं तो उसका प्रतिदान नहीं दे सकते, उनसे भी राधा-कृष्ण की प्रेम-गाँठ जुड़ी थी, जैसे-पशु, कीट, चींटी, वृक्ष आदि। अक्रूर के साथ कृष्ण-गमन के सम्भावित वियोग से दु:खी पक्षी रात्रिभर उड़ते रहे, बसेरा नहीं ग्रहण किया। सबकी दशा दु:खद है-

"धेनु रँभाहिं, पच्छि अकुलाहीं, राम! श्याम! कहि जनु बिलखाहीं।
शुक सारिकहुँ जात विरहागी, फरफरात, हरि-हरि रट लागी।
रोवत श्वान निरखि नभ ओरा, छायी ब्रज क्रन्दन-ध्वनि घोरा।" -(कृष्णायन, पृष्ठ-63)

कृष्ण का गायों से प्रेम बाल्यावस्था से ही है। आज वे भी कृष्ण वियोग से रो रही हैं-

"रोता ही था जब वह तभी नन्द की सर्व गाएँ।
दौड़ी आईं निकट हरि के पूँछ ऊँची उठाये।
वे थीं खिन्ना विपुल विकला वारि था नेत्र लाता।
ऊँची आँखों कमल मुख थीं देखती शंकिता हो।" -(प्रियप्रवास, पृष्ठ-51)

इसी प्रकार नन्द के द्वार का "काकातूआ" भी अपनी व्याकुल ध्वनि से ब्रजवासियों को और दुखित कर रहा था। राधा चींटियों को भी भोजन देती हैं, तरु-पत्र को भी वृथा नहीं तोड़तीं। वृक्षों के भी प्रति उनकी दया-वृत्ति प्रबल थी-

"आटा चींटी विहगगण थे वारि औ अन्न पाते।
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीटादि में भी।
पत्तों को भी न तरु-वर के वे वृथा तोड़ती थीं।" (प्रियप्रवास, पृष्ठ-268)

सकल भूत-सम्वर्द्धना में निरत होने के कारण राधा विश्व प्रेमिका के रूप में समादृत हुई और अवनि-जन के सच्चे स्नेही कृष्ण लोक-विश्रुत हो गये।

अन्यप्रेम

"कृष्णायन" में भाई-भाई, भाई-भगिनी, गुरु-शिष्य एवं मित्रगणों के प्रेम का यथास्थान संकेत है जैसे कंस-देवकी, कृष्ण-सुभद्रा, वसुदेव-मालव-महिषी, कृष्ण-सुदामा, कृष्ण-गोपबाल आदि। ईश्वर-प्रेम के आश्रय हैं-अक्रूर, विदुर, भीष्मपितामह, उद्धव आदि। आधुनिक कृष्ण कविता में कृष्ण प्रेम के केन्द्र-बिन्दु हैं। ब्रजमण्डल में बाँसुरी और कृष्ण की छवि-माधुरी पर गोपियाँ कृष्ण की समर्पिता प्रेमिका हो जाती हैं और मथुरा तथा द्वारिका में कृष्ण का रूप एवं पौरुष व्यंजक गुण प्रमाता के लिए आलम्बन बन जाते हैं। आलोच्य काव्यों में राधा-कृष्ण विषयक प्रेम की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि यह प्रेम उत्तरोत्तर लोक-प्रेम एवं जनहिताय बनता जाता है। केवल ब्रजभाषा काव्यों में राधा के मध्यकालीन प्रेम के दर्शन होते हैं। ब्रजभाषा काव्यों में "मधुपर्क" एक ऐसा प्रबन्ध काव्य है जिसने खड़ी बोली के "प्रियप्रवास" और अवधी के "कृष्णायन" की भाँति राधा के प्रेम को स्थायित्व प्रदान किया है, वस्तुत: उपर्युक्त काव्यों की त्रिवेणी ने आगे के रचनाकारों के लिए प्रेमादर्श उपस्थित करके राधा-कृष्ण के प्रेम को बल प्रदान किया है।

(ख) सौन्दर्य का सामान्य निरूपण

(1) वैचारिक रूप

ऋग्वेद में "सूनर" "सूनरी" इत्यादि शब्दों का प्रयोग "सुन्दरता" के अर्थ में हुआ है।[1] जो कुछ भी विद्या-अविद्या, सत-असत्-रूप इस सृष्टि में है, वह सब सर्वभूतेश्वर ब्रह्म में ही स्थित है।[2] अतएव, सम्पूर्ण वस्तु जगत उस ब्रह्म की अभिव्यक्ति है; समस्त काव्यचर्चा और रागरागिनी आदि जो कुछ भी हैं, वे सब सौन्दर्य-रूप शब्द ब्रह्म के शरीर हैं।[3] गीता के दशवें अध्याय के इकतालीसवें श्लोक में कृष्ण को, संसार के सौन्दर्य, बल, शोभा आदि का स्रोत बताया गया है; वे कहते हैं-"जो-जो भी विभूति युक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान।"[4] अर्थात् सौन्दर्य ब्रह्म का प्रकाश है।

"सौन्दर्य" शब्द का वैयुत्पत्तिक अर्थ-भलीभाँति आर्द्र करने वाला, कैंची की तरह काटने वाला तथा जीवन या आनन्द देने वाला बताया गया है।[5] वस्तुत: सौन्दर्य-दर्शन से द्रष्टा आकर्षित एवं आनन्दित होता ही है। अलंकारशास्त्र में अभिनवगुप्त ने "चारुत्व" (सौन्दर्य) को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है, "चारुत्वप्रतीतिस्तर्हि काव्यस्यं आत्मास्यात्।" पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य को "रमणीयार्थ-प्रतिपादक" बताते हुए रमणीयता (सौन्दर्य) की व्याख्या इस प्रकार की है-

"रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता।
लोकोत्तरत्वं चाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोनुभव साक्षिंको जाति विशेष:।" (रसगंगाधर)

अर्थात्, रमणीयता में लोकोत्तर आह्लाद अथवा चमत्कार की विशेष स्थिति मान्य है। पंडितराज के अनुसार "रस" ही इस रमणीयता का उत्पादक है-"रस: रमणीयताम् आवहति।" आचार्य भरत के अनुसार आस्वाध पदार्थ ही रस है: "रस इति क: पदार्थ:? अत्रोच्यते। आस्वाधत्वात्।" अर्थात् इन्द्रियजन्य होने पर भी रस मूलत: मानसिक अथवा अतीन्द्रिय है। अस्तु, सौन्दर्य भावना भी एक अतीन्द्रिय मानसिक अनुभव है। इसे चैतन्य की पूर्णावस्था में आत्मा के आनन्द का आस्वादन कहा गया है। "रसो वै स:" अर्थात् मधुमती भूमिका का रसानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर है; क्योंकि दोनों अवस्थितियों में एक ही प्रकार का आनन्द, एक ही प्रकार की संविद-विश्रान्ति उद्भूत होती है। स्पष्ट है कि सौन्दर्यभावना का पूर्ण परिपाक ही रस है और कोई वस्तु उसी अनुपात में सुन्दर बन जाती है जिस अनुपात में वह रूप तथा द्रव्य के सामंजस्य एवं सार्वभौमिकता को प्राप्त करती है।[6]

भारतीय चिन्तकों ने रस-रूप एवं आनन्दरूप ब्रह्म की ज्योति को ही, विश्व में दृष्टिगोचर होने वाले, सम्पूर्ण सौन्दर्य का मूल उद्गम बताया है। विशेषत: सौन्दर्य की अति प्रचलित परिभाषा, जो भारतीय चिन्तनधारा में प्रमुख है, यों प्रस्तुत की गई है; "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयताया:।"[7] अर्थात्

1-ऋग्वेद (8/29/1, 1/48/10, 1/48/8), 2-विष्णुपुराण 1/22/78, 3-वही, 1/22/84, 4-यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तंदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम्॥ 10/41, 5-डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : "आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य", पृष्ठ-141, 6-डॉ० रमाशंकर तिवारी : सूर का शृंगार वर्णन, पृष्ठ-29, 7-शिशुपालवध -माघ, (4/10)

जो क्षण-प्रतिक्षण नवलता को प्राप्त हो, उसे ही सौन्दर्य का स्वरूप कहा जायेगा। यही कारण है कि बिहारी की नायिका का, जिसका सौन्दर्य क्षण-प्रतिक्षण नवलता को प्राप्त होता है, सौन्दर्यांकन बड़े-बड़े गुमानी कलाकार भी नहीं कर सके-

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि-गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥[8]

आचार्य शुक्ल कहते हैं-"कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्त: सत्ता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है ... जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार-परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी।"[9] जिन वस्तुओं में लावण्य है, उन्हें अलंकार की आवश्यकता नहीं सताती, सहज-स्वाभाविक शोभावान के लिए कोई भी वस्तु अलंकार बन सकती है।[10] कुछ कवि सौन्दर्य को विषयगत स्वीकारते हैं-

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ॥ -(बिहारी-रत्नाकर) दोहा 432

बिहारी के इस स्वर में स्वर मिलाते हुए अंग्रेजी के कवि कालरिज कहते हैं-

'O Lady? We receive but that we give' (Dejection An Ode) अर्थात् रमणी हम तुममें वही पाते हैं जो तुझे देते हैं। प्रसाद जी ने श्रद्धा के सौंदर्यांकन में विषय गतता के साथ-साथ उस विषयीगत मन की साध का भी महत्त्व प्रस्तुत किया है, जो सौन्दर्यानुभूति में वृद्धि करती है-

"कुसुम कानन अंचल में मन्द
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु, पराग शरीर
खड़ा हो ले मधु का आधार।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र
नवल मधु राका मन की साध,
हंसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब
मधुरिमा खेला सदृश अबाध।" -(कामायनी: श्रद्धासर्ग)

ध्वनि-शास्त्र में किसी अनिर्वचनीय उपादान को सौन्दर्य का तत्त्व मानकर स्थूल सौन्दर्य से ऊपर की बात कही गई है।[11] इसलिए "सुजान" सर्वगुणालंकृता बिहारी की नायिका के मात्र उस चितवन के शरणागत हो जाते हैं, जिसका स्वरूप ही अनिर्वचनीय है-"वह चितवन और कछु जिहि बस होत सुजान।"

8-बिहारी सतसई (टीका)-देवेन्द्र शर्मा, पृष्ठ-273, 9-चिन्तामणि (भाग-1) पृष्ठ 164-165, 10-सरसिज मनु विद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोलक्ष्म लक्ष्मीं तनोति इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्। -अभिज्ञान शाकुन्तलम् (1/19), 11-प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्। यत् यत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु॥ ध्वन्यालोक 1/4

मूल रूप से भारतीय सौन्दर्य-धारणा का निरूपण इस प्रकार करना अधिक समीचीन होगा-"गोचर सौन्दर्य अपने मूल रूप में परब्रह्म के अखण्ड रूप का ही सहोदर है, वह वस्तुनिष्ठ है, किन्तु उसका रसास्वादन पूर्णतया मानसिक है।[12]

2-मनोवैज्ञानिक योगदान

"सौन्दर्य" की प्रतिस्थापना मनोविज्ञान का समाश्रयण करती है, अर्थात् किसी वस्तु के सौन्दर्य की उच्चतम एवं न्यूनतम सीमा का निर्धारण मनोविज्ञान पर आधृत है। मन की विविध दशाओं में सौन्दर्य का उत्कर्ष एवं अपकर्ष होता रहता है, अस्तु, सौन्दर्य के इस मनोवैज्ञानिक-रहस्य का उद्घाटन करना परमावश्यक है। सौन्दर्य के मनोवैज्ञानिक धर्म निम्न हैं-

(क) जागतिक पदार्थों के प्रति आसक्ति

संसार की वे सभी वस्तुएँ, जिनके प्रति हमारा आभ्यन्तरिक खिंचाव होता है, हमारे लिए प्रिय हैं और जिनसे हम दूर पलायन का उपक्रम करते हैं, वे सभी वस्तुएँ अप्रिय होती हैं। वस्तु की प्रियता से वस्तु में सौन्दर्य का आभास होता है। इसी प्रियता एवं अप्रियता को आधार मानकर डॉ० रमाशंकर तिवारी ने सौन्दर्य के रूप का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है-"वस्तुत: मनुष्य का सम्पूर्ण आभ्यन्तरिक जीवन उसकी प्रियताओं एवं विप्रियताओं का सामंजस्य संघटन है। सामान्यत: यह कहने में कोई बड़ी आपत्ति की बात नहीं होगी कि हमारी प्रियताओं की परिधि में समाविष्ट होने वाली वस्तुएँ "सुन्दर" हैं तथा जिन गुणों के कारण वे हमारी प्रिय बन सकी हैं, उन गुणों की संज्ञा ही "सौन्दर्य" है।"[13]

(ख) रुचि का आधार

भिन्न रुचि वाले इस संसार में सभी मनुष्य किसी-न-किसी गुण या विशिष्टताओं से अभिभूत रहते हैं, अर्थात् एक ही सुन्दर वस्तु किसी को आकर्षित करती है और किसी को नहीं क्योंकि "भिन्नरुचिर्हि लोक:"। अपने मनोनुकूल किसी वस्तु में यदि हम विशिष्ट गुणों का दर्शन करते हैं, हमें उस वस्तु में सौन्दर्य का आभास होता है। वस्तुत: विषयगत प्रमेय एवं विषयगत प्रमाता की विशिष्टताओं का साम्य ही सौन्दर्य का निर्धारक प्राण है।

(ग) सौन्दर्य-प्रतीति में प्रेम या प्रियता का महत्त्व

जो जिसका प्रेमपात्र होता है, उसमें उसको दोष या कुरूपता के दर्शन नहीं होते, अपने प्रेमास्पद को समृद्धशाली एवं सुखी देखने के लिए वह कठिन से कठिन कार्य सम्पन्न करने के लिए भी उद्यत रहता है। माली मिट्टी खोदने का परिश्रम पुष्प के कारण ही सहन करता है, माली पुष्प से प्रेम करता है। वह पुष्प को मिट्टी से अधिक पसन्द करता है। अस्तु, प्रेम या प्रियता के कारण भी वस्तुओं या व्यक्तियों में सौन्दर्य का निर्धारण होता है।

(घ) इच्छाओं की पूर्ति

मनुष्य के अचेतन मस्तिष्क में कुछ अतृप्त आकांक्षाएँ सदैव विद्यमान रहती हैं, उन आकांक्षाओं की तृप्ति जिनसे होती है, उनमें वह व्यक्ति सौन्दर्य का दर्शन करता है। किसी वस्तु के दर्शन से मनुष्य का अन्त:करण ही प्रसन्न होता है; अन्त:करण में किसी का अभाव है जिसकी पूर्ति जिस वस्तु से होगी, वही उस व्यक्ति के लिए सौन्दर्यशालिनी होगी।

12-डॉ० रमाशंकर तिवारी : सूर का शृंगार वर्णन, पृष्ठ-35, 13-वही, पृष्ठ-35

(ङ) वासनात्मक आधार

आकांक्षाएँ अनुभूतिजन्य होती हैं, जिन वस्तुओं का, रूप-रंगों का, गुणों का और स्वरलहरियों का सान्निध्य हमें प्राप्त हो चुका है, उनकी ही प्राप्ति की लालसा उत्पन्न होती है। जब तक व्यक्ति "आदम के ज्ञान का फल" नहीं रखता, तब तक किसी वस्तु, रंग-रूप और व्यक्ति विशेष से उसकी कोई आसक्ति नहीं होती। महाकवि कालिदास ने भी रमणीयता की रसानुभूति के वासनात्मक आधार ही की घोषणा की है-

"रम्याणि वीक्ष्य मधुराँश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि।"[14]

दुष्यन्त कहता है कि "सुखी प्राणी भी रमणीय वस्तु को देखकर और मधुर शब्द सुनकर जो उत्कण्ठित होता है तो निश्चित ही वह जन्मान्तर के स्वाभाविक प्रेम का अनुभव स्मरण करता है।" अर्थात् उसकी सौन्दर्य-भावना उन वस्तुओं की स्मृति पर आश्रित है जिन्हें उसने देखा, सुना, सूँघा, आस्वादित तथा स्पर्श किया है। भोज एवं रूपगोस्वामी ने इसे "वैषयिकी रति" की संज्ञा दी है।[15] अतएव, सौन्दर्यभावना मानव की अभ्यासजन्य प्रवृत्ति है।

3-शृंगारपरक सौन्दर्य का स्वरूप

शृंगार-सौन्दर्य में प्रायः मानव रूप का सौन्दर्य चित्रित होता है। मानव-सौन्दर्य में विशेषतः नारी-सौन्दर्य की प्रबलता होती है। रूप-सौन्दर्य के घटक तत्त्वों का स्वरूप निम्नवत् है-

(क) वीर्य-क्षोभ की क्षमता

नारी के स्वस्थ एवं मांसल सौन्दर्य में अन्य शक्तियों के साथ ही कामोद्दीपन की शक्ति भी प्रबल होती है। नारी के मांसल-सौन्दर्य को देखकर सहृदय व्यक्ति में वीर्य-विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। पार्वती के अनवद्य रूप को देखकर अखण्ड योगी शंकर को भी वीर्य-विक्षोभ हो आया था (कुमारसंभव के प्रसंग में) उसी इन्द्रिय-क्षोभ को नारी-रूप की कसौटी माना गया है। अर्थात् जिस नारी में इन्द्रिय-क्षोभ उत्पन्न करने की जितनी अधिक क्षमता होगी, वह उतनी ही सौन्दर्यशालिनी मानी जायेगी। यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि अत्यन्त रूपवती नारी या नायिका के रूप को देखकर यदि किसी वीर्यहीन व्यक्ति को वीर्य-क्षोभ नहीं होता, तो क्या उस नायिका के रूप में कमी है? इस प्रश्न के उत्तर में अभिनव गुप्त द्वारा रूप-द्रष्टा की सहृदयता की कसौटी भी उसे ही माना गया है, अर्थात् रूप-दर्शन से द्रष्टा को वीर्य-विक्षोभ अवश्य हो जाये अन्यथा वह वीर्यविहीन या जड़ होगा। श्री गुप्त जी ने सौन्दर्य को काम-रस का तत्काल उद्दीपक प्रतिपादित किया है।[16]

(ख) सुश्लिष्ट सन्धि बंध

रूपगोस्वामी के अनुसार अंग-प्रत्यंग का सुश्लिष्ट संधिबंधयुक्त यथोचित सन्निवेश ही सौन्दर्य की संज्ञा ग्रहण करता है। समग्र के साथ अवयवों का यथोचित सुगठित एवं सुन्दर होना आवश्यक होता है और तभी सौन्दर्य का विकसित रूप प्रत्यक्ष हो सकेगा।

14-अभिज्ञानशाकुन्तलम्-पंचमांङ्कः (पृष्ठ-324), 15-डॉ० रमाशंकर तिवारीः सूर का शृंगार वर्णन, पृष्ठ-37, 16-वहीः सूर का शृंगार वर्णन, पृष्ठ-38

(ग) सौन्दर्य में प्रतिक्षण नवीनता का आभास

रमणीयता वही है जो क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त हो, अनुक्षण किसी छवि का उन्मीलन तथा बार-बार दर्शक या भावक को नये-नये ढंग से आकर्षित करे। यह सौन्दर्य वर्ण, आकार की सीमाओं से परे मानसिक सूक्ष्म रूप ही है जो अग्राह्य एवं अनिर्वचनीय होता है। इसे ही भारतीय आचार्यों ने "लावण्य" की संज्ञा प्रदान की है, जो मोतियों में छाया की आभ्यन्तर तरलत्व के समान अंगों में चमकती रहती है। बिहारी की नायिका में ऐसा ही सौन्दर्य था जिसका चित्र बड़े-बड़े गुमानी कलाकार भी नहीं खींच पाये।

(घ) अवस्था निरपेक्षता

सुन्दर रूप वालों का रमणीयत्व सभी अवस्थाओं में अक्षुण्य बना रहता है। यदि काल का कुछ प्रभाव पड़ता भी है, तो वह अल्पकाल के लिए ही, वल्कल वस्त्र धारण करने पर भी शकुन्तला का रूप अधिक मनोज्ञ था।[17] अर्थात् सौन्दर्य का आकर्षण विपरीत परिस्थितियों में भी घटता नहीं।

(ङ) सौन्दर्य की पूर्णता

जिसमें पूर्ण सौन्दर्य है उसे सौन्दर्य वृद्धि हेतु बाह्य प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं होती है। भास के प्रतिमा नाटक में वल्कल वस्त्र धारण करने वाली सीता अवदातिका से पूछती है-"किन्नु खलु ममापि शोभते"-अवदातिका-" सर्व शोभनीय सरूपं नाम" कहकर सौन्दर्य की पूर्णता की विज्ञप्ति करती है-सुन्दर रूप पर सब अच्छा लगता है। सुन्दर रूप से सौन्दर्य-प्रसाधन-अलंकरणों में भी शोभा वृद्धि होती है। सीता के सौन्दर्य से वल्कल वस्त्र स्वर्णिम बन जाता है। अवदातिका कहती है-"तव खल शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्।" आपको तो अच्छा लगता ही है, यह तो "सुवर्ण" का सा बन गया है। सेवार से आवृत्त कमल और कलंक से युक्त चन्द्रमा शोभा पाते हैं; कालिदास ने "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्"[18] कहकर इसी सौन्दर्य की पूर्णता की ओर संकेत किया है।

सौन्दर्य स्वर्गीय वस्तु है, इसीलिए स्वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले सर्वाधिक आकर्षक पदार्थ-चन्द्रमा, अमृत, चन्द्रकिरण इत्यादि सौन्दर्य के उपादान माने गये हैं। प्रकृति के रमणीय उपादानों से भारतीय कवियों ने मानव-सौन्दर्य की सृष्टि में अधिक सहायता ली है। सम्पूर्ण हिन्दी एवं संस्कृत साहित्य ऐसे मानव-सौन्दर्य के वर्णनों से भरा हुआ है, जिनमें प्रकृति को उपादान के रूप में स्वीकार किया गया है।

(च) सौन्दर्य

आधुनिक कृष्ण कविता में मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत विशेषतः राधा और कृष्ण के रूप का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने येन-केन-प्रकारेण किया है। कुछ कवियों की दृष्टि प्राकृतिक-छटा की ओर भी उन्मुख हुई है, किन्तु ऐसे काव्य-शिल्पियों की संख्या अत्यल्प है। रूप-वर्णन में निमग्न कवियों द्वारा सौन्दर्य की काव्यशास्त्रीय रूप का निरूपण कहीं दृष्टिगत नहीं होता।

(छ) प्रकृति का सौन्दर्य

"प्रियप्रवास" प्रबन्ध काव्य का मंगलाचरण सन्ध्या-वर्णन से प्रारम्भ होता है। दिवसान्त में नभ-लालिमा प्रस्फुटित होने लगती है, सूर्य-रश्मियों की शोभा तरु-शिखाओं पर विद्यमान हो गई है। अपने शिशुओं से बिछुड़े पक्षी आकाश में कोलाहल करते हुए स्वनीड़ोन्मुख हो गये हैं क्योंकि अपनी सारी व्यथा नीड़ों में छिपाकर प्रातःकाल ही वे अपने बच्चों से वियुक्त हो गये थे। धीरे-धीरे आकाश की लालिमा बढ़

17-"सर्वावस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम्" (शाकुन्तलम्), 18-अभिज्ञान शाकुन्तलम् (1/19)

रही है, सूर्य बिम्ब का तिरोधान प्रारम्भ हो गया है। "पादप-शीश-विहारिणी" सूर्य की किरणें अब पर्वतों के शिखरों पर आरूढ़ हो गई हैं। कालिन्दी के पुलिन पर कृष्ण की मुरली बज उठती है। "धावित-धेनु" गोरजमणित दिशाओं, ग्वाल-बालों एवं गायों के मध्य कृष्ण ऐसे सुशोभित हुए जैसे अन्धकार को नष्ट कर चन्द्रमा आकाश में विलसता है।[19] सूर्य भी अस्त हो गया और अन्धकार का सर्वत्र साम्राज्य व्याप्त हो गया। विधि की कैसी बिडम्बना है कि परिवर्तनशील प्रकृति क्षण-प्रतिक्षण मानव के विविध भावों का आलम्बन बनती रहती है। सूर्य की जो अरुणिमा अब तक विश्व को अनुरंजित कर रही थी वही अब कालिमा को वहन कर रही है। विलोचनों की गति विरम गई है, रागमयी दिशा मलिन हो गयी है, सरसीरुह भी सकुचने लगे हैं, विहगों का कलरव स्थगित हो गया है, विटपों की नीरवता शान्ति-दान करने लगी है और रात्रि की निस्तब्धता चतुर्दिक विकीर्ण होने लगी है।[20] सुनसान निशीथ प्रलयकाल के समान प्रसुप्त है। तारागण टिमटिमाकर पृथ्वी पर प्रकाश वितरित कर रहे हैं। रात्रि अन्धकार के विविध रूपों का चित्रण प्रकृति के मानवीय रूप को द्योतित करता है। यशोदा की विकलता देखकर रात्रि भी रो पड़ती है-

विकलता उनकी अवलोक के, रजनि भी करती अनुताप थी।
निपट नीरव ही मिष ओस के, नयन से गिरता बहु-वारि था। -(प्रियप्रवास, पृष्ठ-35)

और पृथ्वी भी मौन रुदन से विषाद व्यक्त करती है "परम कातर हो रह मौन ही, रुदन थी करती ब्रज की धरा"[21] प्रकृति का सौन्दर्यांकन यहाँ प्रेमनिष्ठ न होकर मनस्परक है। प्रकृति अपना स्वरूप बदलती रहती है किन्तु राधा को उसमें अपनी व्यथा के दर्शन होते हैं। वह सोचती है कि तारागण मेरे दु:ख से व्याकुल हैं-

"रह-रह इनमें क्यों रंग आ जा रहा है।
कुछ सखि! इनको भी हो रही बेकली है।"[22]

प्रात:कालीन बालरवि की लोहित किरणों की लालिमा राधा को किसी कामिनी के बहते हुए रुधिर का आभास देती है। वियोगिनी राधा को उदीयमान रविबिम्ब में अग्नि के गोले का भ्रम हो जाता है। उसे आशंका है कि यह अग्नि-पिण्ड ब्रजधरा को भस्म कर देगा।[23] सूर्य-बिम्ब के सौन्दर्य को प्रमातृनिष्ठ मानने की परम्परा हिन्दी और संस्कृत साहित्य दोनों में विकसित हुई। आचार्य केशवदास प्रभात-सूर्य को "शोणित कलित कपाल" और "दिग्भामिनी के भाल का सिन्दूर" मानते हैं। माघ ने अपने प्रभात वर्णन में कहा है कि सूर्य रात्रि भर समुद्र की वाड़वाग्नि में तपता रहा है, इसीलिए वह खैर की लकड़ी के जलते हुए कुन्दे के समान लाल है। प्रात:कालीन सम्पूर्ण प्रकृति राधा के दु:खों से दुखित है। प्रकृति एवं मानव-व्यथाओं का समन्वय सर्वत्र दृष्टिगत हो रहा है।[24]

गोवर्द्धन पर्वत अपनी उच्चता से सदर्प घोषित कर रहा है कि ब्रज भूमि का सुन्दर मानदण्ड है। उसके अंक में जो पुष्प वृक्ष हैं वे भी मेरु की उत्फुल्लता को प्रदर्शित कर रहे हैं। अथवा "श्री-पद्मा-पति" के "सरोज-पग" की पुष्पों के द्वारा गोवर्द्धन पूजा कर रहा है। इसी प्रकार निर्झर, वायु आदि का मानवीय रूप चित्रित है।[25] गोवर्द्धन की अटलता, कौशल-मूलता और "न्यारी-क्षमाशीलता" को देखकर ऐसा लगता है, मानो निम्नस्थ भू भाग पर शासन कर रहा है-

19-प्रियप्रवास, पृष्ठ-3, 20-वही, पृष्ठ-8, 21-वही, पृष्ठ-35, 22-वही, पृष्ठ-23, 23-वही, पृष्ठ-44, 24-वही, पृष्ठ 45-46, 25-वही, पृष्ठ 98-99

"होता था यह ज्ञात देख उसकी शास्ता-समा-भंगिमा।
मानो शासन है गिरीन्द्र करता निम्नस्थ-भू भाग का।" -(प्रियप्रवास, पृष्ठ-99)

पर्वत प्रान्तर भाग की विशाल तरु-मण्डली सिर उठा-उठाकर वृन्दावनाधीश का मार्ग देख रही है। नाम परिगणन शैली के माध्यम से हरिऔध जी ने जम्बू, अम्ब, कदम्ब, निम्ब, जम्बीर, आँवला, लीची, दाड़िम, नारिकेल, इमिली, इंगुदी, नारंगी, अमरूद आदि अन्य अनेक वृक्षों के सुहावने स्वरूप का वर्णन किया है। रसाल की रसालता ब्रजभूमि को रससिक्त कर रही थी-

"सुपक्वता पेशलता अपूर्वता।
फलादि की विमुग्ध करी विभूति थी।
रसाप्लुता सी बन मंजु भूमि को।
रसालता थी करती रसाल की।[26]

वर्तुलाकार कदम्ब अपनी विनम्र शाखाओं से दर्शकों के लिए नयनाभिराम बना हुआ है। नीरोगता का प्रतीक निम्ब वृक्ष अपने पंचांग प्रभा (नीम की मंजरी, पत्ती, फल, छाल आदि सभी मानव स्वास्थ्य के सहायक हैं) से वृन्दावन भूमि को निरोग बनाता हुआ गुणी-वैद्य की भाँति खड़ा है। श्याम रंग के फलों को अपने पत्ररूपी हथेली पर लिये हुए फलवान प्रफुल्लित फालसा स्वागत के लिए सदैव खड़ा रहता है। सुरम्य शाखा-पल्लवों से युक्त "सदम्बु-निम्बु-तरु" अपनी "सदम्बुता" प्रकाशित कर रहा है। अपने फलों की अपक्वता और पत्तियों की "स्थिरता-विहीनता" को दिखाता हुआ आँवला उतावले व्यक्तियों की चंचल-वृत्ति को प्रकट कर रहा है। अपनी शाखाओं को प्यार के मिष बढ़ाता हुआ, परोपकारी जन के समान अशोक वृक्ष शोकग्रस्त को अशोक बना रहा है।[27] तरुओं का समूह कलिन्दजा में पुष्प-फल गिरा रहे हैं। तरुवृन्द की इस क्रिया को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो ये सभी यमुना की पूजा में प्रवृत्त हैं।[28] वृक्षों की ऐसी शोभा देखकर लताओं का उनसे लिपटना स्वाभाविक था। माधवी एवं लवंग लता की सुषमा "तरु-पुंज-अंक" में प्रफुल्लित थीं।[29] शुकों का "केलि-मत्त" दल मीठे फलों को खाकर उसका कदंश नीचे गिरा रहा है। कपोती अपने कंत के साथ स्व-काकली वाणी सुना रही है। पपीहा, शारिका, चकोरिका स्व प्रेमलतामता में सिक्त हैं।[30] रैवतक पर्वत की अभिराम शोभा का वर्णन उद्दीपन रूप में हुआ है-

"पुष्पित अद्रि-शिखर मनहारी, लिपटीं फूलि लता सुकुमारी।
कुरुवक मनहुँ मनोभव-वाणा, विकसित भेदि हृदय, मन प्राणा।
पूँछ पसारि नाच वन मोरा, करत शिखिनि-सँग मिलिकर शोरा।
तरु तरु कुहक कोकिला कारी, "पीव ! पपीहा उठत पुकारी।"[31]

पावन विष्णु प्रयाग को "स्वर्ग-दर्पण" बताते हुए कहते हैं कि यहाँ के उन्नत हिमगिरि अपनी ऊँचाई के कारण आकाश से होड़ करते से दिखाई दे रहे हैं। मेघ गिरि-शृंग का स्पर्श चाहते हैं और वृक्षगण मेघों को छूना चाहते हैं। सभी अपनी सीमा से निकलकर "असीम" के गौरव-छोर को प्राप्त करना चाहते हैं।[32] अलकापुरी, अलकनन्दा नदी, कैलाश शिखर तथा गंधमादन पर्वत की शोभा और अलौकिकता विचित्र है। गंधमादन की दिव्यता अत्यन्त रमणीय है-

26-प्रियप्रवास, पृष्ठ-100, 27-वही, पृष्ठ 100 से 104, 28-वही, पृष्ठ-109, 29-वही, पृष्ठ-110, 30-वही, पृष्ठ-112, 31-कृष्णायन, पृष्ठ-199, 32-वही, पृष्ठ-187

"दिव्यमहीरुह चहुँदिशि छाये, सन्तानक मंदार सोहाए।
पाटल, कुटज, अशोक, अनेका, पुष्पित रम्य एक ते एका।

स्वर्ण कुसुम बहु अन्य मनोरम, दिव्य सुवास युक्त सब स्वर्णिम।[33] रास-रंग के प्रारम्भ में कहीं-कहीं शरन्निशा और शरद-चाँदनी की मनोज्ञता का वर्णन उद्दीपन रूप में ही हुआ है। यह चाँदनी वृन्दावन-प्रीति और रस-रीति को सर्वत्र उजागर कर रही है-

"जीवन में, जोबन में, गाय गोप गोधन में,
वृन्दावन-प्रीति रसनीति लै चढ़ाइ गई
कूलनि कछारनि में, गिरि गच ढारनि में
बागनि बहारनि में, चाँदनी समाइ गई।" (मधुपर्क, पृष्ठ-128)

यह चाँदनी अयोध्या से नन्दगाँव आई है-

"अवधपुरी मैं हुलसाइ नन्दगाँव धाई,
सरद जुह्नाई, ह्वै दुहाई रामचन्द्र की।" (मधुपर्क, पृष्ठ-129)

शरन्निशा की ललामता संयोग एवं वियोग को छोड़ने वाली थी-"अभिन्न संयोग वियोग योगिनी।" उसकी स्फुट कान्ति प्रभामयी थी-

"विशुद्ध कान्ति-स्फुट थी प्रभामयी
बढ़ा हुआ ऊर्ध्व नभ-प्रदेश में।
मृगाङ्क रेखा वपु में प्रसार के
द्विजेश था कानन-सा नरेश-सा।"[34]

"मधुपर्क" के गायक देवीरत्न अवस्थी "करील" ने अपने प्रबन्ध का श्रीगणेश ऊषारानी के अवतरण से किया है-

"सुन्दरता सुख-खानि उसा उतरी रतिरानी,
लीला-लास-विलास कलित कवि-कोबिद-बानी।"[35]

शरद का समागम पाकर प्रभात रसानन्द की वृष्टि कर रहा है-

"पावन पुन्य प्रभात भुवन रुचि रस बरसावत,
सरद समागम पाइ परम अनुराग जगावत।"[36]

पावन प्रकृति, वृन्दावन, यमुना, वंशीवट और सम्पूर्ण ब्रजमाधुरी का प्रांजल चित्रण यत्र-तत्र हुआ है।[37]

मनुष्य का सौन्दर्य

मानवीय सौन्दर्य में पुरुष और नारी दोनों का सौन्दर्य समाहित है। हिन्दी और संस्कृत वाङ्मय में दोनों के रूप-सौन्दर्य की पृथक् परम्परा उपलब्ध है। नारी-सौन्दर्य के साथ ही साथ आधुनिक कृष्ण कविता में शृंगार-प्रिय कवियों ने पुरुष-सौन्दर्य के ललित एवं उद्दीपक चित्र प्रस्तुत किये हैं। पुरुष-सौन्दर्य के चित्रण में कवियों की दृष्टि कृष्ण तक ही केन्द्रित रही है। प्रसंगगत सन्दर्भों में यत्र-तत्र अर्जुन, भीम और कर्ण आदि के पौरुष-व्यंजक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है, जिसे विशेषत: महाभारतीय कथा के

33-कृष्णायन, पृष्ठ-188, 34-रम्यरास, पद सं०-2, 35-मधुपर्क, पृष्ठ-1, 36-वही, पृष्ठ-1, 37-रम्यरास-पद संख्या 3, 4, 5, 6, 7

उपजीव्य प्रबन्धों में देखा जा सकता है। ब्रजभाषा काव्यों में पुरुष-सौन्दर्य का चित्रण नकारात्मक ही कहा जा सकता है। खड़ी बोली अथवा अवधी के कृष्ण काव्यों में नारी एवं पुरुष दोनों के सौन्दर्यांकन विद्यमान हैं किन्तु चित्रण के केन्द्रबिन्दु राधा-कृष्ण ही हैं। विदर्भदेश की राजकुमारी रुक्मिणी का प्रेम-पत्र लेकर जब विप्र कृष्ण के पास पहुँचते हैं, तब उसके सौंदर्य का परिचय पहले दे देते हैं। उसके सौन्दर्य के घटक तत्त्वों का संयोग विचित्र है।

उसका शरीर कुमुद के समान है और मुख पूर्णेन्दु है, वेणी मधुकर है तो अधर मधु और ऐसे में उसकी हँसी शारदीय चन्द्रिका का स्वरूप प्रदान कर सभी उपांगों को सौरस्यपूर्ण बना देती है-

"कुमुद देह, पूर्णेन्दु मुख, कर पद उषा विलास,
वेणि श्रेणि अलि मधु अधर, शरद चन्द्रिका-हास।" -(कृष्णायन, पृष्ठ-133)

स्वयंवर के पूर्व रुक्मिणी सखियों के साथ मन्दिर द्वार पर कुल-आचार सम्पन्न करने आती है। उसकी उपस्थिति से प्रकाशित ऐसा लगता है मानो पूर्णिमा अपनी कौमुदी के साथ तारागणों को लेकर आ गई है। "सद्यस्नात अंग उजियारे, शुभ्र वसन, मणि भूषण धारे" राजकुमारी "धन-जल-पूत महीजनु सोहति" और कास-सुमन के समान दर्शकों का मन मोह रही है। यहाँ राजकुमारी के आंगिक लावण्य का वस्तुनिष्ठ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रसाद जी के शब्दों में यह सौंदर्य चेतना का उज्ज्वल वरदान है। इस सौन्दर्य में चेतना है, प्रमाता को अपनी ओर खींचने की ऊर्जा है। जैसे ही उस रमणी ने हरि-दर्शन हेतु दृग उठाये तैसे ही मनसिज के अनन्त वाण राजाओं के ऊपर बरसने लगे और उस रूप-माधुरी के वशीभूत होकर राजाओं का गाम्भीर्य जाता रहा, वे भ्रान्त हो गये, उनके हस्त आयुध और धैर्य खिसक गये-

"गत-गांभीर्य, भ्रान्त नर नाथा, खसे हस्त-आयुध धृति साथा।
नष्ट ज्ञान, निश्चेष्ट शरीरा, विस्मृत आत्ममहिप रणधीरा।"[38]

ऐसे ही सौन्दर्य के लिए "चितवन और कछु जिहिं बश होत सुजान" कहा गया है। यहाँ बिना आभूषण के ही नायिका सुशोभित हो रही है ऐसा ही लावण्यमय रूप कृष्ण-भगिनी सुभद्रा का है। रैवतक पर्वत पर अर्जुन द्वारा जिस रूप का दर्शन किया गया वह अनूप-मनोहर था। चन्द्रमा के समान उसका मुख, कमल के समान कोमल गात, मधुर मन्द मुस्कान और उज्ज्वल अरुणाधर ऐसे के मानो मंजुल-किसलय में सुमन-दल दिखे हों। वह गमन करती हुई अरुणोत्पल की लालिमा बिखेर रही है-

"अरुणोत्पल पद शोभाशाली, गवनति पथ विचरित जन लाली,
चकित धनंजय रूपनिहारा, हरिहिं हैरि मन करत विचारा।
हरिसौष्ठव, हरिवदन लुनाई, हरि छवि जनु नारि तनु आई।"[39]

इस प्रतीयमान सौन्दर्य का प्रभाव यह हुआ कि अर्जुन और सुभद्रा दोनों एक-दूसरे के रूप पर मोहित हो गये। दोनों के व्यथित मन-प्राण सकाम हो गये-

"ताही क्षण पार्थहिं निरखि, भई मुग्धवर वाम"

x x x x x

"व्यथित पार्थ मन-प्राण सकामा"[40]

यह सौन्दर्य अनुराग सापेक्ष है। जो अपने प्रिय को चारुता प्रदान कर सके सौन्दर्य वह है। कुब्जा के लिए कृष्ण का रूपप्रमातृनिष्ठ है। उसके मन की मूर्ति के अनुसार ही कृष्ण उसे दिखाई पड़े-

38-कृष्णायन, पृष्ठ-137, 39-वही, पृष्ठ-200, 40-वही, पृष्ठ-200,

"मेरे मन की मूर्ति ढली थी, उसके साँचे में वह,

खेल रहा था नारायण ही, नर के ढाँचे में वह।"[41]

यही कुब्जा कृष्ण के आंगिक सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाती है। "कसी क्षीण कटि, पीन वक्ष था, कच कंधार ढँके थे,"[42] चिबुक, दन्तहास और ओष्ठों को देखकर उसका चित्र कृष्ण का चरण चूमने के लिए उद्यत हो गया। नासिका की शोभा देखकर उसे विश्वास हो गया कि ऐसे स्वरूप को देखकर कोई कुटिल (बक्र, कुबड़ा) रह ही नहीं सकता।[43]

आलोच्य काव्यों में कहीं-कहीं राधा के सौन्दर्य का नखशिख वर्णन भी प्राप्त है। यह पूर्णत: आंगिक वर्णन है। केश, भाल, कर्ण, भृकुटि, नेत्र, नासिका, अधर, दसन, कपोल, चिबुक, मुख, कण्ठ, स्तन, भुजदण्ड, बाँहों आदि का वर्णन अत्यन्त मनमोहक है, माधुर्य एवं शक्ति-व्यंजक है।[44] भक्त कवियों का नखशिख वर्णन माधुर्य शृंगार का समाश्रयण करता है।[45] राधा के नेत्र सुख-दु:ख को नष्ट करने वाले हैं। उनकी नासिका स्ववंश की प्रकाशिका है। राधा के उन्नत उरोज सुन्दरता के प्रतिमान हैं, मानदण्ड हैं, लोक-लाभ हितैषी हैं, कंचन कलश हैं, पीन-अदीन-पृथुल पयोधर हैं, अवतारी हैं, गौरव विधान हैं।[46] और उनकी विशिष्ट योग्यता है-

"पुन्य प्रगटावन, जुड़ावन करे जनि के"

जोबन जगावन कौ सर्व सुखकारी ये।" -(मधुपर्क, पृष्ठ-112)

सारी शक्ति इन पयोधरों में समाहित है। ये भक्ति रस के कोश हैं। कामना-नाशक हैं। हरि के उपासक हैं। पुण्य के पालक हैं। सुयश के चालक हैं। ये राधा-उर-मंदिर के शंकर हैं-

"राधा उर मन्दिर उरोज शिवशंकर से,

जन अभिनन्दन तैं कसमस कसके।" -(मधुपर्क, पृष्ठ-112)

रास-वर्णन में गत्यात्मक सौन्दर्य का दिग्दर्शन होता है-

"लङ्क कौं लचाइ कल कण्ठ कौं भँवाइ जब,

बाहु वै झुमाइ नाचै कीरति कुमारी है

जंघनि के जोर पींडुरीनि की मरोर पर,

भ्रमित मनोज न करत सिसकारी है।" -(मधुपर्क, पृष्ठ-141)

राधा का अवस्था सापेक्षरूप-

"अधरान पैं सोन जुही सी लसै,

नव आँखिन आँखि चुसावन लागी।

सकुची, सिमटी, झिझकी सी रहै,

निज आँगिय आँग दुरावन लागी।

अरसानि की बानिहिं आनि गही,

अँगुरी अँगुरी चटकावन लागी।" -(राधा-डॉ० किशोरी लाल गुप्त) पृष्ठ-7

कृष्ण-रूप को देखकर सुन्दरता स्वयं लज्जित हो जाती है-

41-द्वापर, पृष्ठ-144, 42-वही, पृष्ठ-142, 43-वही, पृष्ठ-143, 44-मधुपर्क, पृष्ठ 108 से 115 तक, 45-काव्य-नवनीत, पृष्ठ 46 से 63 तक, 46-मधुपर्क, पृष्ठ-112

"सुन्दरताहु जासु लजाई ललित त्रिभङ्गी छवि मो मन भाई।" -(प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-349)

और राधा का सौन्दर्य अनुपमेय है। वह छवि माधुर्य की अन्तिम सीमा है।[47]

भक्त कवि कृपालुदास ने राधा-कृष्ण के विपरीत सौन्दर्य का चित्रांकन किया है। राधा कृष्ण का वेष बनाकर नन्दलाल को छलना चाहती है और कृष्ण "नाझनि" का रूप धारण कर राधा के देश जाते हैं।[48] राधा लली के मुख की शोभा देखकर शृंगार लज्जित हो जाता है।[49] और कृष्ण की रूपमाधुरी को देखकर कोटि काम संकुचित हो जाते हैं।[50] राधा के विरुद्ध छोटी तरणी खेकर लाने वाली अनवद्यांगी योजन गन्धा श्रम से उद्दीप्त है, वह तप्तस्वर्णशोभाभरणी है। उसे अलंकार की अपेक्षा नहीं है। राजा शान्तनु को "उभरे अंग साँस बढ़ने से हिलकोरे से लेते थे" इस रूप में अपूर्व मोहकता दिखाई पड़ी।[51] उसकी केशराशि यमुना की लहरों का स्पर्श कर रही थीं और यौवनग्रस्त होते हुए भी उसका बाल भाव आभासित था। अंगों का सपाट वर्णन न करते हुए भी श्री मैथिलीशरण गुप्त के सरल-सहज शब्दों में योजनगंधा का यौवन उद्घाटित हो गया-

"खड़ा कछोटा, किन्तु कँधेला पड़ा पड़ा उड़ चलता था।

गोरे बाहुमूल में फूला-फूला यौवन फलता था।" -(जयभारत, पृष्ठ-31)

रूप का ऐसा जादू, ऐसा अमिट प्रभाव कि प्रमाता अपने को सँभाल न सके। राजा शान्तनु उस यौवन सुरभि का परिचय पूछने लगते हैं-

"अद्भुत सुरभि-भरी फूली-सी कल्प-वृक्ष की बेटी हो?

भोली-भाली भी कुछ अल्हड़, निर्मल नई नवेली हो,

क्रीड़ा तरी लिये निर्जन में डरती नहीं अकेली हो?" -(जयद्रथवध, पृष्ठ-31)

प्रकृति के उपादानों का आलम्बन रूप हिडिम्बा नामक राक्षसी के सौंदर्य में दृष्टिगत होता है। भीम को वह पृथ्वी के रत्नों की शलाका, मूर्तिमती राका के रूप में दिखायी पड़ी। उसके अंग फूल हैं, कच भ्रमर हैं, हरी शाटिका-वेष्टित है, करपद पल्लव के समान हैं। ऐसा लगता है मानो वह चलती-फिरती सौन्दर्य की वाटिका है-

"अंग मानो फूल, कच भृंग, हरी शाटिका,

कर-पद-पल्लवा थी जंगम-सी वाटिका!

ओस मुसकान वन ओंठों पर आई थी,

सुरभि-तरंग वायुमण्डल में छाई थी।" -(जयभारत, पृष्ठ-75)

सुन्दरता से वासना का जन्म होता है। रूपवती सैरन्ध्री पर कीचक आसक्त हो जाता है। यद्यपि राजा विराट के यहाँ द्रोपदी दासी के रूप में मलीन वस्त्रों का प्रयोग कर अपने व्यक्तित्व को सदैव छिपाती रही है तथापि उसका राजसी रूप-लावण्य मलिन वस्त्रों में छिपने वाला नहीं था-

"वसन-वहि-सी तदपि छिपी रह सकी न शोभा।"

अति लिपटी भी शैवाल में कमल-कली है सोहती,

घन सघन-घटा में भी घिरी चन्द्रकला मन मोहती।" -(जयभारत, पृष्ठ-243)

47-प्रेमरसमदिरा, पृष्ठ-220, 48-वही, पृष्ठ 202, 203, 49-वही, पृष्ठ-189, 50-वही, पृष्ठ-155, 51-जयभारत, पृष्ठ-31

कीचक राजा विराट की रानी सुदेष्णा का भाई है। द्रौपदी के रूप का लोभी वह अपनी भगिनी से भी उसे प्राप्त करवाने का प्रस्ताव कर देता है। सुदेष्णा घृणा से तप्त हो जाती है और काम तथा प्रेम का अन्तर बताती हुई सौन्दर्य को चरित्र के लिए घातक बताती है-

"सुन्दरता यदि विधे, वासना उपजाती है,
तो कुल-ललना हाय! उसे फिर क्यों पाती है?
काम-रीति को प्रीति नाम नर देते हैं बस,
कीट तृप्ति के लिए लूटते हैं प्रसून-रस।"[52]

पुरुषों की काम-वृत्ति और छल-रीति की व्यंजना मार्मिक है। वैसे यह सार्वभौमिक सत्य है कि सुन्दर रूप को चोर लगते ही हैं। "जयभारत" में कहीं-कहीं पुरुषों के रूप का पौरुष-व्यंजक सौन्दर्य उद्घाटित हुआ है। बली भीम का रूप इस प्रकार वर्णित है-

"मद था नेत्रों में दर्प का, मुख पर थी अरुणच्छटा।
निकला हो रवि ज्यों फोड़कर, युगल गजों की घनघटा।"[53]

राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का चित्रण हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में प्रकृति एवं मानवीय सौन्दर्य का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया गया है। आलोच्य काव्यों में राधा-कृष्ण के साथ ही अन्यान्य नारी-पुरुष के सौन्दर्य का प्रकाशन हुआ है। उक्त समस्त वर्णनों के आधार पर कुछ महत्त्वपूर्ण विचार-बिन्दु उभरे हैं जिन पर विचार कर लेना समीचीन होगा।

सामान्य टिप्पणी

आधुनिक कृष्ण कविता में सौन्दर्य का वस्तुनिष्ठ वर्णन हुआ है। यह सौन्दर्य इन्द्रिय ग्राह्य सौन्दर्य है, रूप का मांसल वर्णन हुआ है विशेषत: राधा और कृष्ण के प्रसंगों में। इस रूप में चेतना है, एक विशेष आभा है जो दर्शक को मोह लेती है। कृष्ण की रूपमाधुरी पर गोपियाँ बिनु मोल बिकती रहती हैं और कृष्ण राधा-गोपी के सौन्दर्य पर अपने को न्यौछावर कर देते हैं। नख-,शिख वर्णन की परम्परा आधुनिक काल में विकसित हुई है। "मधुपर्क" और "काव्य नवनीत" में इसका सांगोपांग चित्रण हुआ है। परम्परागत उपमानों का प्रयोग हुआ है जिसे हम राधा-कृष्ण के रूप वर्णन में दिखा चुके हैं। प्रकृति के उपमानों का स्वाभाविक चित्रण मानवीय सौन्दर्य में किया गया है। प्रकृति के मनोज्ञ दृश्य एवं उसके सहज सौन्दर्य को स्थान-स्थान पर कवियों ने महत्त्व प्रदान किया है। पुरुष की अपेक्षा नारी के सौन्दर्यांकन में कवियों की भावना अधिक रमी है। रूप का आंगिक-वर्णन अधिक सौरस्यपूर्ण है। अलंकारों की चारुता से मण्डित सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। रासरंग एवं झटित-क्रिया-कलापों में राधा-कृष्ण के गत्यात्मक सौन्दर्य उद्घाटित हुए हैं। रूप वर्णन में रंगों की प्रियता का भी ध्यान कवियों ने दिया है। काव्य शास्त्रज्ञों का कथन है कि उस सौन्दर्य में चेतना हो, चंचलता हो और पवित्रता हो, वह उच्चकोटि का होता है। इस आधार पर भी आलोच्य काव्यों का रूप वर्णन खरा उतरता है। कहा जाता है कि सौन्दर्य कभी पाप की ओर प्रवृत्त नहीं होता। यह बात सत्य है किन्तु यदि वह अनुराग सापेक्ष नहीं है, स्नेह नहीं उत्पन्न करता तो उसकी ऊर्जा मलिन हो जाती है-ऋणात्मक हो जाती है। वह सौन्दर्य ही क्या जो प्रिय को, प्रमाता को आह्लाद न दे सके। सौन्दर्य से प्रेम उत्पन्न होता है और वह प्रेम पुष्ट होकर वासना का रूप धारण कर लेता है। योजनगंधा,

52-जयभारत, पृष्ठ-252, 53-वही, पृष्ठ-255

सुभद्रा, सैरन्ध्री और हिडिम्बा के रूप-लावण्य को देखकर राजा शान्तनु, वीरपुंगव अर्जुन, विराट का सेनापति कीचक और वनवासी पाण्डव भीम सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासु हो जाते हैं और उनके अन्तर्मन में प्रेम की स्थापना हो जाती है। शान्तनु और कीचक तो वासना विकारग्रस्त होकर अपने प्रेमास्पद से रति दान की याचना भी करते हैं। अर्जुन और भीम मर्यादा परिधि में रहकर सौन्दर्य के क्षोभ को सहते रहते हैं।

सौन्दर्य वर्णन की एक नवीन विशेषता यह है कि राधा के सौन्दर्यांकन में पौरुष-व्यंजकता का आधान किया गया है, जैसे "मधुपर्क" की सार्वभौमिक रास योजना में। यहाँ वासना का प्रतिबिम्ब भी स्थापित नहीं हो पाता। राधा का यह सौन्दर्य प्रेम, श्रद्धा और सम्मान का प्रतीक बन जाता है। सुदेष्णा अपने भाई का पक्ष लेती हुई द्रौपदी से कहती है-

"तू है ऐसी गुण-शालिनी, जो देखे मोहे वही,
फिर इसमें उसका दोष क्या, चिन्तनीय है बस यही।" -(जयभारत, पृष्ठ-260)

अर्थात् कीचक में जो वासना की दोष-वृत्ति आई उसका कारण द्रौपदी (सैरन्ध्री) का रूप-लावण्य था। मेरा भाई निर्दोष है। रानी सुदेष्णा की इस तर्कना से मुझे सन्तोष नहीं है। क्या द्रष्टा की मनस्परक संवेदना और भावों की चिन्तना उसे वासना के कर्दम तक नहीं ले जाती ? वस्तुत: वासना प्रेम-पयोधि का शैवाल है, कर्दम है।

*****



7

आधुनिक कृष्ण कविता में अन्यान्य मानवीय सम्बन्धों एवं सन्दर्भों का सन्निवेश

भक्ति एवं रीतिकाल में राधा के जीवन की मानवीय परिधि सीमित थी। उसका सम्बन्ध विशेषतः कृष्ण और ब्रज की सखियों से था। कवियों ने उसे प्रेम की देवी बनाकर वृन्दावन की कुंजों तक ही सीमित रखा किन्तु आधुनिक काल में उसे समाज से सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर मिला। वस्तुतः हिन्दी-संसार उन कवियों का ऋणी रहेगा जिन्होंने राधा को समाज में स्थापित कर उसे स्थायी रूप से मूल्यवान बना दिया। कृष्ण का समग्र जीवन समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए समर्पित था और प्रत्येक वर्ग से सम्बन्धित था। माता यशोदा-देवकी से लेकर दूर के रिश्ते में बुआ कुन्ती एवं गांधारी तक, जरासंध-कालयवन जैसे शत्रु से लेकर सुदामा जैसे मित्र तक, न्यायी नाना उग्रसेन से लेकर अत्याचारी मामा कंस तक, प्रेमिका राधा से लेकर कुब्जा, रुक्मिणी, सत्यभामा, मित्रविन्दा तक, अन्यायी दुर्योधन-धृतराष्ट्र से लेकर सत्पथगामी युधिष्ठिर आदि पाण्डवों तक, आप्तपुरुष भीष्म-द्रोणाचार्य से लेकर कृपाचार्य और सन्त विदुर तक, राजा से लेकर साधारण प्रजा तक, युद्ध के सेनापति से लेकर साधारण सैनिक तक, अपने प्रिय ग्वाल-बालों से लेकर स्वयं के हत्यारे जरा नामक व्याध तक कृष्ण ने सदैव एवं सर्वत्र अपने व्यवहार से मानवीय समरसता का परिचय दिया है। कृष्ण अच्छे से अच्छे राजा थे, अच्छे मित्र, पुत्र, पिता, पति, योद्धा, भाई और अच्छे से अच्छे शान्तिदूत थे। श्रीकृष्ण व्यक्ति नहीं परम्परा थे। वे दार्शनिक एवं कर्मयोगी, राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक, योद्धा और शान्ति के दूत थे। वे अच्छे से अच्छे गुरु और सखा थे। इसलिए लोग उन्हें ईश्वर मानते थे। मानवीय समाज में लोकरीति एवं भारतीय संस्कृति, लोक विश्वास एवं शकुन-अपशकुन का विशेष महत्त्व है। आज के वैज्ञानिक युग में भी प्राचीन लोक विश्वास समाज से असंपृक्त नहीं है। भारतीय संस्कृति की विशेषता ही ऐसी है कि जिसे सदा के लिए समाप्त किया ही नहीं जा सकता। मानवीय सम्बन्धों को अध्ययन की दृष्टि से तीन भागों में बाँटकर उनका संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जा रहा है-

(1) पारिवारिक सम्बन्ध

जन्म लेने पर बच्चे का सबसे पहला सम्बन्ध माता से जुड़ता है। देवकी दम्पति ने हर्ष और भय दोनों को अनुभव किया कृष्ण जन्म पर। विधि की कैसी विडम्बना है कि बालक कृष्ण के कारण ही उसके जन्म से बहुत पहले से ही माता-पिता को सताया जाता रहा। गोकुल में बालजीवन बिताकर अपने कार्य व्यवहार से कृष्ण सभी के प्रिय पात्र बन गये। उनकी इस प्रियता का अनुमान तब लगता है जब कृष्ण अक्रूर के साथ मथुरा को प्रस्थान करते हैं। प्रियप्रवास में यशोदा के रोने-कलपने की एक लम्बी शृंखला है। मथुरावासी अक्रूर भी ब्रज-दुःख से व्याकुल हो गये और शीघ्र ही कृष्ण का ऐसा प्रेम था कि मथुरा-गमन से विषाद का जो महात्म्य ब्रज में छापा वह कभी मिटा ही नहीं। ब्रज में अचानक उठे हुए "विरह-मेघ" लोचन-वारि के रूप में सदैव वृष्टि करते रहे। ब्रज-वासियों के "नयन-वारि-प्रवाह" से

"विरह-जात-कालिमा" कभी धुल न सकी। फिर भी गोकुल में कृष्ण लौटकर नहीं आए और ब्रज की दुःख-निशा कभी सुख की रात्रि नहीं बन सकी।[1]

कंस-वध के बाद कृष्ण कारागार में सबसे पहले उग्रसेन से मिलते हैं और तब अपने जन्मदाता माता-पिता से मिलते हैं। कृष्णायन जैसे विशाल प्रबन्ध काव्य में भी देवकी-वसुदेव और कृष्ण के मिलन प्रसंग को अधिक महत्त्व नहीं प्रदान किया गया है। हिन्दी साहित्य में देवकी सदैव उपेक्षित रही है। कंस-वध के लिए कृष्ण, उग्रसेन से क्षमा माँगते हुए कहते हैं-"दण्ड्य प्रियहु जो अत्याचारी।" कृष्ण ब्रज लौटने की अपनी इच्छा व्यक्त करते हैं किन्तु उग्रसेन उनसे अपने पुत्र की भाँति राजभवन में रहने की प्रार्थना करते हैं- **"राज-भवन सुत सम बसहू, होहुँ बहुरि सुतवन्त"**[2]

मथुरा राज्य को ठुकराते हुए कृष्ण पिता के रूप में नन्द को महत्त्व देते हुए कहते हैं कि उन्हें उपेक्षित करके मैं तीन लोकों का राज्य भी नहीं ले सकता हूँ। ये मेरे पिता से भी बढ़कर पिता हैं-

"त्रिभुवन राज्य देहि जो कोऊ ले हौं इनहिं निदरिनहिं सोऊ।
पितु ते बढ़ि ये पिता हमारे, बढ़े आजु लगि इनहिं सहारे।
करिहौं सोइ देहिं आदेशू, स्वप्नहु टारि न सकहुँ निदेशू।
इन अधीन, हम इनहिन चेरे-सुनि अवाक सब नंद-दिशि हेरे।"[3]

नन्द इस मार्मिक वचन को सुनकर कहते हैं कि कृष्ण ने मुझे बार-बार पिता कहकर यश का पात्र बनाया है। मेरी इच्छा है कि हरि सदा मेरे साथ ब्रजधाम में रहें। पुनः न्याय-बुद्धि से नन्द चाहते हैं कि वसुदेव अपना पुत्र ले लें। उनके हक को लेकर मैं अनीति नहीं करूँगा। मुझे तो बहुत यश मिल गया कृष्ण की सेवा से। यद्यपि कृष्ण को देते हुए मेरी छाती काँप रही है फिर भी मैं "पर-थाती" को सौंपना ही उचित समझता हूँ। वे कहते हैं-

कहिहौ लौटि यशोदहिं जायी, आयेऊँ मधुपुर श्याम गँवायी।[4]
विगलित वाष्प-सलिल नँद-वाणी निरखत हरिहिं बहत दृग पानी।

वसुदेव धैयपूर्वक "बूड़त वंश राखि तुम लीन्हा" कहकर नन्द से कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं-

सुखहिं सखा नहिं, सत्य सनेही, तुमसे उरिन न धरिशत देही।
मानेहु ऐसिहिं सतत मिताई, सुत दै सखा बिसरि जनि जाई।[5]

नन्द जैसे मित्र से वसुदेव कैसे उरिण हो सकते हैं? बूड़ते हुए वंश को नन्द ने कृष्ण को जिलाकर बचा लिया।

आलोच्य काव्यों में उद्धव के ब्रज जाने और गोपियों को उपदेश देने की चर्चा सर्वत्र है किन्तु कृष्णायन में "उद्धव-गोपी-संवाद" मानवीय आधारों पर अग्रसर है। गोपियाँ कृष्ण पर दोषारोपण करती हैं कि अभी तक मधुपुरी से लौटकर नहीं आए। उद्धव कहते हैं-"श्याम हमारे वैसे ही हैं जैसे आप सबके। इतने दिनों तक ब्रज में रहकर हास-हुलास की वर्षा करते रहे हैं और हम सभी यदुजन कंस का अत्याचार सहते रहे हैं। किसी ब्रजवासी ने हम लोगों की सुधि नहीं ली। अभी दो दिन भी कृष्ण अपने घर में नहीं रह पाये हैं और तुम लोग हम सब पर दोषारोपण कर रही हो। बताओ ***"कीन्हीं श्याम कवनि अनरीती।"*** उद्धव कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा में हैं" की ओर संकेत करके मर्मस्पर्शी उत्तर देते हैं-

1-प्रियप्रवास, पृष्ठ-20, 2-कृष्णायन, पृष्ठ-92, 3-वही, पृष्ठ-92, 4-वही, पृष्ठ-92, 5-प्रियप्रवास, पृ. 93,

जेतिक दिन गोकुल बसे, बसहिं जो मधुपुर माहिं।

लोक शास्त्र दुहुँ दृष्टि से अपराधी हरि नाहिं।"[6]

उद्धव के उक्त वचन से खीझकर गोपियाँ कहती हैं कि "यदुजनों के साथ कृष्ण का क्या रिश्ता है? जब तक श्याम यहाँ गाय चराते रहे, तब तक कोई भाई-बन्धु नहीं दिखाई पड़ा। अक्रूर के साथ कृष्ण मथुरा गये तो किसी ने अपने घर में कृष्ण को रहने नहीं दिया, कृष्ण ने वृक्ष के नीचे रात्रि में बसेरा लिया। प्रात: जब कुवलयापीड और मल्लगणों के द्वारा कंस ने कृष्ण को मरवाना चाहा तो सुफलक सुत और उद्धव वहाँ दिखायी नहीं पड़े। यशोदा माता के आशीर्वाद से जब कन्हाई ने कंस का वध कर दिया तब घर-घर से भाई-बन्धु निकलने लगे। गोपियों की मर्मभरी यह व्यथा कृष्ण के प्रति हार्दिक अपनत्व को प्रकट करती है-

यशमति आशिष कंस बधि, विजयी भये कन्हाय।

घर-घर ते हरि बन्धु बनि, निकसे यदुजन आय।[7]

लम्बी अवधि के बाद कुरुक्षेत्र में कृष्ण और नन्द-यशोदा का मिलन अत्यन्त हृदय-स्पर्शी है। नन्द का शकट देखते ही कृष्ण रथ त्यागकर पैदल चलने लगते हैं और "कान्ह" कहते हुए पिता के चरणों को पकड़ लेते हैं। यशोदा ने ललक कर बेटे को अंक में भर लेती हैं। यशोदा के गर्म आँसुओं के लिए कृष्ण के आनन्दाश्रु हिम-जल बन गये। कृष्ण के मस्तक, चिबुक, कपोल, मुख, हाथ और पीठ पर हाथ फेरते हुए माता को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ। जिसने भी यह दृश्य देखा वह ब्रह्मानंद में लीन हो गया-

लखेउ मातु-सुत-सम्मिलन, जिन तेहि क्षण, तेहि ठौर

ब्रह्मानन्द-निमग्न ते, भये और के और द्वै।[8]

मातृ-सेवा कृष्ण की प्राथमिकता है, वे मातृ-अनुशासन को सर्वोत्तम शासन मानते हैं। उनका विचार है कि माता के दूध को कोई मूल्य नहीं दे सकता-

हरि संसद को उपदेसि कहैं, जननी कै है दूध कौ मोल नहीं।

उन प्यार दुलार के बोलनि तें, मन भावनौ दूसरौ बोल नहीं।[9]

अनुशासन है जननी कौ बड़ै सिगरे जग के अनुशासन तैं।"

कृष्ण कहते हैं कि जिस भारत में पिता के आदेश पर राम और भीष्म ने धन, धाम, राज्य त्याग दिया, उसी धरती पर कंस ने पिता को जेल में डालकर मथुरा राज्य हस्तगत किया। अब कंस-वध के बाद मेरे माता-पिता नाना उग्रसेन की सहायता करेंगे।[10] उग्रसेन अपने नवोदित विचारों को व्यक्त करते हुए कंस के प्रति उदारता प्रकट करते हैं-

योग्य वयस्क व्यक्ति की थाती, कोई उसे न देवे।

तो उसका अधिकार, उसे वह, बलपूर्वक ले लेवे।"[11]

पुराने व्यक्ति यदि स्थान न रिक्त करें तो नये कहाँ बैठें-"नये कहाँ बैठें सोचो, यदि हटें न यहाँ पुराने?" यदि हम कंस बेटे को राज्य सौंपकर वन चले गये होते तो कारागृह में क्यों आते? हमें इसका क्षोभ नहीं मानना चाहिए।[12] कंस की यज्ञशाला में पहुँचने के पूर्व कृष्ण ने कौतुक में ही उस दुर्धर्ष धनुष को तोड़कर फेंक दिया जिसके बहाने से कंस ने कृष्ण को बुलवाया था। देवकी जनकपुर में धनुष तोड़ने की

6-कृष्णायन, पृ.123, 7-वही, पृ. 123, 8-वही, पृ. 293, 9-वही, पृ. 206, 10-मधुपर्क, पृष्ठ-202, 11-द्वापर, पृष्ठ-101, 12-वही, पृष्ठ-101

घटना को याद करके कहती हैं-"राम को पुरस्कार में सीता मिलीं मगर मेरे कृष्ण को....? कंस-वध की सूचना पाकर देवकी भाई-बहन के सम्बन्धों का स्मरण करती है-" तो फिर अब मेरी पूजा-थाल में पड़ा यमद्वितीया का ऐपनतिलक युगों तक सिसकेगा? रक्षाबन्धन के सूत्र अपनी व्यर्थता पर रोयेंगे? और विजयादशमी के अवसर पर भाई के कानों पर कुण्डल जैसे शोभित, जौ के हरि किसलय अकारथ सूख जायेंगे।"[13] वह अपनी नियति पर पश्चात्ताप करती है और आत्मकथन द्वारा बेटे कृष्ण से पूछती है-"कृष्ण! तुमने यह क्या किया? अपने ही मातुल का वध? क्या हुआ, यदि उसने तुम्हारी माँ को, पिता को बन्दी रख छोड़ा था? क्या हुआ यदि उसने तुम्हारे अन्य भाइयों को मौत के घाट उतार दिया? लेकिन, तुम यह क्यों भूल गये कि वह तुम्हारी माँ का भाई था।"[14] अन्त में वह अपने भाग्य पर स्थिर होकर कहती है कि मुझे भाई के लिए बेटे की बलि और बेटे के लिए भाई की बलि देनी ही थी "तो, यह मेरी नियति थी क्या कि भाई के लिए बेटे और बेटे के लिए भाई की बलि दूँ?"[15] कंस के वध पर वह यशोदा के दूध को बधाई भी देती है।[16]

राजमहिषी गांधारी जीवनभर आँखों पर पट्टियाँ बाँधकर रानी बनी रही और अंधे पति की नपुंसकता उन्हें सदैव घेरे रही। उसे कभी प्यार नहीं मिला, मात्र राजदरबार का सम्मान प्राप्त हुआ। मानव-मन की विशेषता है कि जीवन की संध्या में जब वह जीवन को संक्षिप्त करके गुण-दोष के आधार पर उसकी समीक्षा करता है तब अपनी भूलों एवं अपूर्ण इच्छाओं को स्मरण करता है और तब पश्चात्ताप की अग्नि में जलना उसकी अनिवार्य नियति बन जाती है। योग-निद्रा के समय कृष्ण के पास गांधारी जाती है और व्यथा खोलती है-"जानते हो, कृष्ण! कुरुकुल में आई तो, पाया नहीं प्रेम कभी, मिला मुझे केवल सम्मान, पर मैं भूखी प्रेम की, पाश जिसमें बँधी मैं, वह तो राजाज्ञा थी, पाश नहीं प्रेम का, वह राज शक्ति की झूठी प्रवंचना थी, प्रेम महाराज का मिला न कभी क्षण को भी, मन को न छाँह कभी, तन को न ठाँव।"[17] अपने पुत्रों के अत्याचारों का जिसने कभी विरोध नहीं किया वही उन पुत्रों के समाप्त हो जाने पर निर्मल मन हो जाती है। मन की यथार्थ भूमि पर वह कितनी पवित्र हो जाती है। गांधारी कहती है-"मेरे ही पुत्रों के हाथों नारी अपमानित हुई, तभी मुझे ऐसा लगा था, दु:शासन ने नहीं खींचा था चीर पांचाली का, हाथ मेरे पुत्रों के मुझको ही घेरे रहे, कौरव सभा में खड़ी द्रौपदी नहीं थी, मैं स्वयं थी (एक नारी थी), मैं ही हुई थी निर्वसना।"[18] इसी प्रकार कृष्ण वृन्दावन को अपने जीवन की सबसे बड़ी कमजोरी मानते हैं।[19]

इसी की पुष्टि करती हुई राधा, कृष्ण से अन्तिम समय में पूछती है-"आग जो जलाई थी तुमने, वह क्या देखा नहीं? मैंने ही ज्वाला सही, धुआँ उठा मुझमें ही, आँखें ये सावन हुई मेरी ही, पर तुमने स्वयं क्या किया? तुमने स्वयं क्या सहा दाहकता?"[20]

कुन्ती, कृष्ण और कर्ण

महाभारत के विनाशकारी युद्ध को रोकने के लिए भीष्म और कृष्ण ने कर्ण को उसके जन्म के रहस्य को बताकर उसके क्षत्रिय होने की बात प्रकट करते हैं और कुन्ती पश्चात्ताप की उसे जानकारी देते हैं। वह माता कुन्ती के प्रति क्रोध न व्यक्त करके भाग्य को दोष देता है। वह कहता है कि यदि यही बात बाल्यावस्था में प्रकट हो गई होती तो मेरा जीवन अमृत से विष न बनता और मुझे जीने का सहारा मिल गया होता।[21] वह अब तक के किए गये सभी कर्मों में द्रौपदी के चीरहरण को अनुचित मानता है किन्तु पहले

13-देवकी, पृष्ठ-153, 14-वही, वही-154, 15-वही, पृष्ठ-154, 16-वही, पृष्ठ-153, 17-योगनिद्रा, पृष्ठ 27-28, 18-वही, पृष्ठ-30, 19-वही, पृष्ठ-42, 20-वही, पृष्ठ-44, 21-कृष्णायन, पृष्ठ-277

वह यह नहीं जानता था कि कृष्णा उसकी अनुज वधू है।[22] कृष्ण न्याय दृष्टि से, भेद दृष्टि से कर्ण को समझाते हैं कि यदि वह युधिष्ठिर का साथ दे तो रण रुक सकता है किन्तु कर्ण किसी भी दशा में दुर्योधन का साथ छोड़ने को तैयार नहीं है। वह कृष्ण से कहता है कि यह रहस्य युधिष्ठिर से न बताना-

"पर एक विनय है मधुसूदन! मेरी यह जन्म कथा गोपन।
मत कभी युधिष्ठिर से कहिए, जैसे हो, इसे दबा रहिए।"[23]

जब कृष्ण सफल नहीं हुए तो कुन्ती स्वयं कर्ण के पास जाती है और ग्लानियुक्त दुःखभरी वाणी में स्वयं को कर्ण की माँ होने का उद्घाटन करती है। वह कहती है कि तुम पाण्डवों के विरुद्ध न लड़ो। मैं चाहती हूँ कि मेरे ही पुत्र मेरे पुत्र को न मारें।[24] वह कहता है कि मैं केशव के मुख से यह सब सुन चुका हूँ, मुझे अब अधिक दुःखी न बनाओ। किसी भी दशा में वह अब अपने वंश में नहीं जायेगा-

"है वृथा यत्न हे देवि! मुझे पाने का, मैं नहीं वंश में फिर वापस जाने का।
दी बिता आयु सारी कुलहीन कहा कर, क्या पाऊँगा अब उसे आज अपनाकर।[25]

कुन्ती पूर्व समय का वर्णन करके कर्ण के जन्म को याद करती है-

"पेटिका-बीच में डाल रही थी तुझको, टुक-टुक तू कैसे ताक रहा था मुझको।
वह टुकुर-टुकुर कातर अवलोकन तेरा, औ शिलाभूत सर्पिणी-सदृश मन मेरा।
ये दोनों ही सालते रहे हैं मुझको, रे कर्ण! सुनाऊँ व्यथा कहाँ तक तुझको।"[26]

माँ के प्रति ममता जगने पर कर्ण सिसककर रोने लगा। कुन्ती ने पहले लाल को जैसे ही कण्ठ से लगाया, कर्ण के शरीर से संजीवनी ही फूट पड़ी। जैसे पहली वर्षा में नदी भीगती है उसी प्रकार वह भी माता से लिपटकर भीगता रहा।[27]

कर्ण अपनी माँ को आश्वासन देता है कि यदि दुर्योधन जीत गया तो मैं तुम्हारे पास चला आऊँगा।[28] मैं किसी भी दशा में अर्जुन को नहीं छोड़ूँगा। हर दशा में तुम्हारे पास पाँच पुत्र रहेंगे।[29] कुन्ती और कर्ण का पारस्परिक वार्तालाप भाग्य के मारे हुए माता-पुत्रों की आह भरी कहानी है। कुन्ती अपनी व्यथा कृष्ण से कहती है-

हाँ वह कर्ण ही फूल प्रथम था मेरी क्वारी धरती का,
मनोज्ञ, सुवर्धन, किन्तु मैं निष्ठुर हो बहा आई गंगा में,
क्योंकि तब नारी क्वारी माता नहीं होती थी?"[30]

कर्ण ने माता कुन्ती का कहीं अपमान नहीं किया किन्तु अपने सिद्धान्त से कभी डिगा नहीं। माता का स्नेह उसे दुर्योधन से अलग न कर सका। माता के पैर छूकर कर्ण के आँखों में आँसू आ गये-

हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर, दो बिन्दु अश्रु के गिरे दृगों से चूकर।
बेटे का मस्तक सूँघ, बड़े ही दुःख से, कुन्ती लौटी कुछ कहे बिना ही मुख से।[31]

(2) सामाजिक सम्बन्ध

अपने परिवार एवं मित्रों के लिए तो सभी त्यागवृत्ति अपनाते हैं किन्तु जन्म धन्य है उस महापुरुषों का जो दूसरों के लिए मरते हैं। माता यशोदा, नन्द और राधा का रोना-कल्पना तो स्वाभाविक है किन्तु जब समाज का प्रत्येक वर्ग कृष्ण के वियोग से व्यथित है तब कृष्ण की चारित्रिक विशालता का परिचय

22-जयभारत, पृष्ठ-338, 23-रश्मिरथी, पृष्ठ-45, 24-वही, पृष्ठ-45, 25-वही, पृष्ठ-80, 26-वही, पृष्ठ-83, 27-वही, पृष्ठ-85, 28-वही, पृष्ठ-88, 29-वही, पृष्ठ-88, 30-योगनिद्रा, पृष्ठ-40, 31-वही, पृष्ठ-40

मिलता है। ग्राम की एक वृद्धा आकर कृष्ण के कमल-मुख को छूकर बलैया लेती है और कहती है-"बेटा तू कहीं न जा। तेरी माँ पागल हो रही है। यदि राजा कंस रूठेगा तो मैं ब्रज का वास ही छोड़ दूँगी और वनों में जाकर फल-फूल खाकर जीवन बिता दूँगी। राजा जो भी दण्ड लेगा वह सभी मैं दे दूँगी। यहाँ तक कि यदि वह मेरा हृदय माँगेगा तो उसे भी देने में मैं कभी हिचकूँगी नहीं-

जो चाहेगा नृपति मुझ से दंड दूँगी करोड़ों।
लोटा थाली सहित तन के वस्त्र भी बेच दूँगी।
जो माँगेगा हृदय वह तो काढ़ दूँगी उसे भी।
बेटा तेरा गमन मथुरा मैं न आँखों लखूँगी।[32]

कृष्ण-गमन सुनकर दूसरे लोग रो रहे हैं तो तुम्हारी माँ की क्या दशा होगी जिसके एक ही लाड़िला बेटा है।[33] जिस समाज की रक्षा में कृष्ण का जीवन समर्पित था उस महान नेता के लिए सबका चिन्तित होना स्वाभाविक था। उनका आदर्श था कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा। साथियों को प्रेरित करते हुए वे कहते हैं-

वढ़ो करो वरी स्वजाति कामला, अपार दोनों विध लाभ है हमें।
किया स्वकर्त्तव्य उबार जो लिया, सुकीर्ति पाई यदि भस्म हो गये।"[34]

साथियों के भय एवं भ्रान्त होते ही कृष्ण स्वयं दावानल में प्रवेश करते हैं-

स्वसाथियों की यह देख दुर्दशा, प्रचंड दावानल में प्रवीर से।
स्वयं धँसे श्याम दुरन्त-वेग से, चमत्कृता-सी वन-भूमि को बना।"[35]

युद्ध का निमन्त्रण लेकर सहायतार्थ अर्जुन और दुर्योधन कृष्ण के पास पहुँचते हैं। सोते हुए श्याम के सिरहाने दुर्योधन और पैर की ओर अर्जुन बैठे हैं। सुप्तप्रतिबुद्ध होने पर कृष्ण पहले अर्जुन को देखते हैं और फिर पीठ की ओर दुर्योधन को। दुर्योधन कहता है कि मैं पहले आया हूँ, मेरी आप ससैन्य सहायता कीजिए। कृष्ण कहते हैं कि यह बात सत्य है कि आप पहले आये हैं किन्तु मैंने पहले धनंजय को देखा है, मेरे आप दोनों अतिथि हैं, आप अग्रज हैं और अर्जुन शिशु के समान हैं, अस्तु पहले मैं इसे याचना का अधिकार देता हूँ। पार्थ की ओर देखकर कहते हैं कि एक तरफ मेरी नारायणी सेना रहेगी और एक ओर मैं निरायुध होकर सहायता करूँगा। अस्तु, तुम क्या चाहते हो-

कहहु धनंजय! प्रश्न हृदय-गुनि, चहत निरायुध मोहि के वाहिनि।[36]

अर्जुन अपनी आस्था कृष्ण की ओर व्यक्त करते हैं जिससे दुर्योधन बहुत प्रसन्न हो जाता है। बलराम जी अर्जुन के प्रति बढ़ती हुई कृष्ण की प्रीति की ओर संकेत करते हैं। कृष्ण इस प्रीति को धर्म अनुराग कहकर न्यायिक सिद्ध करते हैं-

प्रिय न पाण्डु-सुत, प्रिय मोहिं त्यागा, प्रिय मोहिं शील, धर्म अनुरागा।
सत्य बुद्धि करुणा-हृदय नय दृग सेवा हाथ।
धर्म-सुवन सम कहँ भुवन, धर्म-मूर्ति नरनाथ।"[37]

श्रीकृष्ण की मानवीय न्यायप्रियता की प्रशंसा भीष्म और द्रोण उस समय करते हैं जब धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण का भौतिक सत्कार करना चाहते हैं। श्रीहरि का सत्कार तो पाण्डवों को अधिकार देकर किया जा सकता है-

32-प्रियप्रवास, पृष्ठ-50, 33-वही, पृष्ठ-51, 34-प्रियप्रवास, पृष्ठ-150, 35-वही, पृष्ठ-151, 36-कृष्णायन, पृष्ठ-266, 37-वही, पृष्ठ-267,

एकहि विधि श्री हरि-सत्कारा-पावहिं पाण्डव निज अधिकारा।
यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा, यहि ते बढ़ि नहिं यदुपति-पूजा।"[38]

विदुर कहते हैं कि कृष्ण को कभी धर्म से अलग नहीं किया जा सकता-

कोटिन करहु प्रयत्न कोउ, त्रिभुवन-विभव दिखाय।
धर्म, धर्म-सुत ते कबहुँ, सकत न हरि विलगाय।[39]

द्वैत्य-कर्म से निवृत्त होकर कृष्ण जब चलने लगते हैं तब दुर्योधन उन्हें भोजन का निमंत्रण देकर अतिथेय बनने की इच्छा व्यक्त करता है किन्तु कृष्ण जग-रीति बताकर अस्वीकार कर देते हैं। वे कहते हैं विपत्ति में पड़ने पर या प्रेम-वश ही परान्न ग्रहण किया जाता है। न तो तुम्हारी प्रीति मेरे साथ है न मैं विपत्तिग्रस्त हूँ, अस्तु तुम्हारे यहाँ भोजन करने का कोई प्रश्न ही नहीं है-

मोहि सँग प्रीति तुम्हारी नहिं, विपत्ति-ग्रस्त मैं नाहिं,
केहि कारण भोजन करहुँ, कस निवसहुँ गृह माहिं।[40]

तुमने भाई का राज्य छल से छीन लिया और उन्हें वल्कल देकर वन में भेज दिया, लोभी को किसी से प्रीति नहीं होती, उसके मन में स्वार्थ ही रहता है। तृणावृत कूप की भाँति लोभ का "संवृत-आशय" दारुण होता है। तुम्हारा अन्न-अर्जित धन है, हृदय कुत्सित है और सत्कार दूषित है। दुष्टों का दूषित अन्न खाने पर उसके प्रभाव से देवता भी नहीं बच सकते, अस्तु मुझे क्षमा करो। ऐसा कहकर कृष्ण विदुर के यहाँ अतिथि बनते हैं।[41]

अर्जुन और कर्ण दो सगे भाइयों को आपस में न लड़ने के लिए कृष्ण-कुन्ती और भीष्म सभी प्रयास करते हैं किन्तु दोनों युद्ध-रत हो जाते हैं। कर्ण अपने रथ के धँसे पहिए को जब उठाता है तब अर्जुन उसके ऊपर बाणों की वर्षा बन्द नहीं करते। कर्ण रण-धर्म का ध्यान दिलाता है कि विरथ, अशस्त्र के ऊपर प्रहार न करना धर्म है। जब तक मैं अपना चक्र निकाल न लूँ तब तक विराम ले लो। अर्जुन विगत दिनों का स्मरण दिलाता हुआ कर्ण से पूछता है "लाक्षागृह में समस्त पाण्डवों को जलाते समय, कपट-द्यूत से धन हर लेते समय, सभा में द्रौपदी के केशों को खींचते समय, वल्कल पहनाकर हम लोगों को वन भेजते समय तुम्हें धर्म क्यों नहीं याद आया? तुम्हारे मुख से धर्म की बात वैसे ही हास्यास्पद है जैसे-वधिक के मुख से करुणा-कथा का वाचन।.निरस्त्र अभिमन्यु का वध तुम लोगों ने किया, सभागृह में भी तुमने धर्म नहीं त्यागा था?"[42] इन कथनों से कर्ण को निरुत्तर करता हुआ अर्जुन कर्ण का वध कर देता है। कृष्णायनकार ने विभिन्न मानवीय सम्बन्धों में दया, न्याय, उदारता का प्रदर्शन किया है। गुरु-पुत्र अश्वत्थामा को बाँधकर जब अर्जुन लाते हैं और भीम तलवार लेकर उसे मारने के लिए उद्यत होते हैं, तब अश्वत्थामा की दशा भयावह हो जाती है-

"लज्जा-रज-मुख म्लान, रज्जु-बद्ध बलि पशु मनहुँ।
सिहरे द्रौणी प्राण, सन्मुख खड्ग कराल लखि॥"

सहसा द्रौपदी अश्रुपूरित नेत्रों से दयार्द्र हो जाती है और पति से वध न करने की प्रार्थना करती है। वह द्विज अश्वत्थामा को गुरु-पुत्र के कारण पूज्य बताती है-

38-वही, पृष्ठ-275, 39-वही, पृष्ठ-275, 40-वही, पृष्ठ-277, 41-कृष्णायन, पृष्ठ-277, 42-वही, पृष्ठ-244

"ये तौ गुरु-सुत पावन नाता, पूज्य गुरुहिं सम गुरु-अँगजाता।
कीन्हे गुरु जे अस्त्र-प्रदाना, रच्छे तिन तुम्हार रण प्राणा।
तिनहिं सहाय शत्रु संहारी, राज्य जय तुम अधिकारी।[43]

अपने हत्यारे जरा नामक व्याध के साथ कृष्ण का मानवीय सम्बन्ध शत्रुता का नहीं था। विकल व्याध को हरि गले लगाकर मोक्ष प्रदान करते हैं-

"निर्विकार हरि बधिक उठावा-"होहु अभय"-कहि कंठ लगावा।
तजन चहेहुँ मैं आजु शरीरा, तुम निमित्त, कत शोक-अधीरा।"
त्यागेउ तत्क्षण व्याध तनु, प्रकटेउ दिव्य विमान,
दीन्ह स्वर्ग प्रमुदित हृदय, निज बधिकहिं भगवान्।"[44]

विधृता के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त ने पुरुषों की नारी विषयक वासना पर तीक्ष्ण प्रहार किया है। क्या नारी वासना की मूर्ति ही है। क्या वह पुरुषों की बहिन, बेटी और माँ नहीं है-

"हाय! वधू ने क्या नर-विषयक एक वासना पाई?
नहीं और कोई क्या उसका पिता, पुत्र या भाई?
नर के बाँटे क्या नारी की नग्नमूर्ति ही आई?
माँ, बेटी या बहिन हाय! क्या संग नहीं वह लाई?"[45]

शिशुपाल, कृष्ण और जरासंध

कृष्ण के पौरुष और आत्मबल को जब कोई चुनौती देता तब विक्रम-वारिनिधि केशव उसका धीरभाव से सटीक उत्तर देते हैं। कृष्ण ब्रज जाने की तैयारी में हैं, इसी बीच उद्धव से ज्ञात हुआ कि मगधेश मथुरा पर विशाल सेना लेकर आक्रमण कर रहा है। शिशुपाल और मगधनाथ की सेनाओं ने मथुरा को घेर लिया। मथुरावासियों को "दुर्लभ अब मोहिं ब्रज दरस" कहकर कृष्ण आश्वस्त करते हैं। चेदिपति, जरासंध का दूत बनकर मथुरा आता है और उग्रसेन की भरी सभा में कहता है कि यदि कंसारि गोप-सुत (कृष्ण) को महिपाल उग्रसेन सौंप दें तो युद्ध नहीं होगा, ऐसा मगधेश का आदेश है-

"कंस मगधपति प्रिय जामाता, गोप-सुतन करि कपट निपाता।
दण्ड प्रचण्डदेन हित आजू, आयेउ चढ़ि भारत अधिराजू।
सौंपहिं जो भूपति कंसारी, निमिषहिं माहिं मिटहिं रणरारी।"[46]

कृष्ण को गोप-सुत कहना और उन्हें जरासंध को सौंप देने की बात सुनकर यदुवंशी क्षत्रिय नाराज हो गये, कृष्ण मुस्कराने लगे और बलराम ने शस्त्र सम्भाल लिया। खीझकर वृद्धनृप उग्रसेन कहते हैं-

कवन गोप-सुत यह कंसारी, माँगत जेहि मगधेश प्रचारी?
यह सुवंश यदुवंश समाजू, यहाँ न ग्वाल गोप सुत काजू।

शिशुपाल इसके उत्तर में व्यंग्यपूर्वक गोविन्द का नाम लेता है, इतना सुनते ही बलराम और सात्यकि के खड्ग-हस्त उठ पड़े। संकेत से कृष्ण ने रोका और हँसते हुए कहा कि शूद्र, वैश्य और ब्राह्मणों का विचार तो राजदरबार में होता है किन्तु क्षत्रिय होने का निर्णय तो समर के अतिरिक्त कहीं नहीं है। मैं क्षत्रिय हूँ या अन्य, इसका उत्तर मैं युद्ध में दूँगा। कृष्ण ने शिशुपाल द्वारा कथित युद्ध की चुनौती को स्वीकारते हुए कहा-

43-कृष्णायन, पृष्ठ-441, 44-वही, पृष्ठ-500, 45-द्वापर, पृष्ठ-35, 46-कृष्णायन, पृष्ठ-112

रहिहैं पुर सेना सकल, यदुजन, वृद्ध भुआल,

मथिहैं मागध-बल-उदधि, नन्द गोप के लाल।"[47]

द्विज-वृन्दों के स्वस्तिवाचन के मध्य जननी और गुरुजनों से आशीष लेकर यदुनाथ "समर-महि" में पहुँचकर पांचजन्य का कठोर रव कर देते हैं, आकाश, पृथ्वी, दिगन्त काँप उठते हैं। कृष्ण को अकेले देखकर मगधेश व्यंग्य से कहता है-"को यह नट ? रण महि कस आवा।" विहँसते कृष्ण ने कहा-"मिलेउ संदेशू, बाँधन मोहिं चहत मगधेशू।" मैं अकेला यहाँ हूँ, तुम्हारा पौरुष देखना चाहता हूँ, बाँधने में देरी क्यों कर रहे हो-

आयेउँ आपु बँधावन काजा, संग न वाहिनि स्वजन न राजा।

लखन चहौं पौरुष प्रभुताई, बाँधत नहिं कस देर लगाई।"[48]

मगधेश प्रलाप करता हुआ कृष्ण की निन्दा करता है और अपने पौरुष की प्रशंसा करता है। कृष्ण ने कहा-"करत समर चढ़ि काह विकत्थन," गोप और राजा की समीक्षा, हमारे तुम्हारे पौरुष की परीक्षा क्षण भर में हो जायेगी। मगधेश की सारी सेना को कृष्ण और बलराम ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। हलधर के मूसल-प्रहार से मगधेश ने भी युद्ध बन्द कर दिया और हार कर भाग गया-

लज्जित वीत-प्रभाव मगेशा, गयेउ विवर्ण त्रस्त निजदेशा।

विजय-वाद्य यदु सैन्य बजाये, लूटे मगध-शिविर मन भाए।"[49]

इस प्रकार शत्रु के प्रति अनुचित शब्दों का प्रयोग न करते हुए भी कृष्ण ने मगधपति को समर से पलायन करने के लिए बाध्य कर दिया।

राजा-प्रजा का सम्बन्ध

देश को स्वतंत्र कराने के लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन गाँधीजी और अन्य क्रान्तिकारियों द्वारा चलाया गया था, उसका पूरा-पूरा प्रभाव "मधुपर्क" पर पड़ा है। राजा कंस के अत्याचारों का विरोध करते हुए राधा और कृष्ण प्रजातंत्र, गणतंत्र, जनतंत्र और मानव तंत्र की स्थापना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि समाज के प्रत्येक वर्ग को जागरूक होना चाहिए और राष्ट्रीय उत्थान के लिए सबका सहयोग लिया जाना चाहिए। इसीलिए वे सारे देश को एकताबद्ध करना चाहते हैं-

मिलौ ह्वै एक सारे देश बासी, खिलौ ह्वै एक सारे देश बासी।

हिलौ ह्वै एक सारे देश बासी, रिजौ ह्वै एक सारे देश बासी।"[50]

जो राजा सुविधायें जुटाकर प्रजा को सन्तुष्ट नहीं करता, आनन्द की वृष्टि नहीं करता, प्रजा को मजबूत नहीं करता, जो प्रजा की रक्षा नहीं करता उसका विरोध करो, उसके अधिकार छीन लो, उसका कार्य-व्यापार बन्द कर दो, उसको क्षार बना दो। कोई भी राजा किसी राज्य का अधिकारी नहीं है, वह राज्य का संहार नहीं कर सकता, अपकार नहीं कर सकता और उसे प्रजा के सुख को हरने का कोई अधिकार नहीं है। राजा ऐसा होना चाहिए जो प्रजा को अपना प्राण और सन्तान माने, लोक का सम्मान करे, ज्ञान का सन्धान करे और सर्वधर्म के प्रति आस्थावान हो।[51] राजा को लोकानुरंजन का कारण बनना चाहिए,

47-कृष्णयन, पृष्ठ-113, 48-वही, पृष्ठ-114, 49-वही, पृष्ठ-117, 50-मधुपर्क, पृष्ठ-162, 51-वही, पृष्ठ 162-163, 52-वही, पृष्ठ-158

उसे लोकरंजन और लोकमंगल का सेतु, केतु और प्रेता बनना चाहिए, उसे लोक-कल्याण के लिए संग्रह करना चाहिए, उसे मर्यादा एवं शास्त्र-रीति को पहचानना चाहिए। प्रभु ऐसा होना चाहिए जो जनगण का उद्धार करे और शान्ति-सुख की वृद्धि करे।[52]

जो राजा पिता का मंच तोड़ता हो, प्रजा का सिर फोड़ता हो "जहाँ राजा चिचोरै और निचोरै", धरा कौ धाइ कै तोरै मरोरै।" जहाँ राजा इच्छानुचारी, अन्यायकारी, आतंकधारी और धर्माधिकारी अनारी हो। जहाँ राजा प्रजा का रक्त चाहता हो, प्रजा का घरबार जलाता हो, पालन और निर्वाह न करता हो, दुर्वृत्त होकर पीड़ा पहुँचाता हो।[53] जो राजा सत्य धर्म का प्रतिकार करता हो, दुष्कर्म का विस्तार करता हो, प्रजा से मारपीट करता हो, नित्य पापाचार करता हो। ऐसे राजा का विरोध करना चाहिए, विद्रोह के लिए प्रजा को जगाना सद्धर्म है।[54] राधा कहती है कि धर्म, कर्म, मर्म के ज्योतिवाही मनुष्यों का तथा संसार के सभी स्वर्गाधिकारी, वर्गाधिकारी, सर्गाधिकारी और दुर्गाधिकारी का कर्त्तव्य है कि ऐसे अत्याचारी राजा का विरोध करें।[55] राधा का समर्थन करते हुए जनगण सभा में मंचोपरि कृष्ण श्री राजा के आदर्शरूप का प्रकाशन करते हैं। वे कहते हैं-इस देश में हरिश्चन्द्र, पृथु, शिवि, दधीचि, मान्धाता जैसे त्यागी हो चुके हैं। महाराजा दशरथ, राम लोकसेवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। सभी लोक-शक्ति के वश में रहकर लोक की प्रतिष्ठा, सेवा, मान, बढ़ाने में अग्रगण्य रहे।[56] प्रजा को अपना पुत्र मानकर सुख की राशि उँड़ेलते रहे किन्तु अपने राजा कंस को देखो कितना अनर्थकारी है। वे कहते हैं-

लोकरंजन के काजैं प्रजात्मा ह्वै महाव्रती।

रामचन्द्र तजी सीता, का तजै कंस रावरौ।"[57]

कंस जैसे राजा का विरोध सभी वर्गों को महाक्रान्ति करके करना चाहिए, ऐसा कृष्ण का विचार है-

सूद्र बैस्य तथा छत्री ब्राह्मण सर्व एक है,

कहौ क्रान्ति ! महाक्रान्ति ! जीवै ! जागै ! जनोन्मुखी।"[58]

राजा की शक्ति सेना है और सेना का पोषण अन्न से होता है। जब तक किसान को उत्पादन हेतु प्रोत्साहित नहीं किया जायेगा, केवल सताया ही जायेगा तब तक सेना कैसे मजबूत होगी। सेना क्या वाण और कृपाण खायेगी ? लोहे के हथियार कैसे बनेंगे जब लोहार दुःखी रहेगा। हाथी और घोड़े क्या खायेंगे जब चारा-दाना चुक जायेगा। खेतों, खलिहानों में अन्न की बरसा होनी चाहिए।[59] कृष्ण भारतवासियों को सावधान करते हुए कहते हैं-

"संघर्ष नहीं या द्वै दिन कौ जुग-जुग के हित संघर्ष ठयौ।

मगधेश्वर फिरि-फिरि आवैगौ भरि भरि कै नित उत्कर्स नयौ।

तासौ अब गन भगवन्त करैं उत्पादन धरती पर भारी।

उत्पादन की प्रभुता लहि कै जन बनै जगत के हितकारी।"[60]

यहाँ "मगधेश्वर" का नाम लेकर कवि ने अंग्रेजों की ओर संकेत किया है। कवि की मान्यता है कि जब देश धन्य-धान्य से परिपूर्ण रहेगा तब कोई मगधेश्वररूपी अंग्रेज हमारे देश को गुलाम नहीं बना पायेगा। अस्तु हमें अन्नोत्पादन की ओर सतर्क रहना चाहिए। गण संसद को सम्बोधित करते हुए कृष्ण कहते हैं-

53-मधुपर्क, पृष्ठ-163, 54-वही, पृष्ठ-163, 55-वही, पृष्ठ-161, 56-वही, पृष्ठ-169, 57-वही, पृष्ठ-170, 58-मधुपर्क, पृष्ठ-172, 59-वही, पृष्ठ-255, 60-वही, पृष्ठ-255

जाकें घर हल-मूसल पोढ़े ताकौं जग में चढ़ि को जीतै।
सिव शक्ति जहाँ घर-घर राजैं तिनकौं जग में बढ़ि को जीतैं।
बोले गनसंसद के सदस्य जय ! जय ! हल-मूसल के बर की।
जय खेतनि की, खरिहाननि की, जय धरिनी-धारक हलधर की।"[61]

इस प्रकार "जय जवान जय किसान" का उद्घोष करते हुए संसद ने कृष्ण का समर्थन किया। श्री लालबहादुर शास्त्री और कवि करील जी गाँधी के शिष्य थे, स्वतन्त्रता आन्दोलन में जेल की यात्राएँ की थीं और 17 वर्षों तक कवि, गाँधी जी का स्वयंसेवक रहा है। यहाँ गाँधी जी के विचारों का प्रभाव कवि पर परिलक्षित हो रहा है। अपने प्रधानमंत्रित्व काल में शास्त्री जी ने देश की रक्षा के लिए "जय जवान जय किसान" का नारा उद्घोषित किया था। राजा और नेता का आदर्श रूप कवि ने कई स्थलों पर व्यक्त किया है जिसका मूलाशय है कि राजा और नेता को जनता के समान भाव वाला होना चाहिए। राम, कृष्ण, बुद्ध, गाँधी, तिलक ऐसे ही नेता थे। जब नेताओं के पैर अपनी धरती से उखड़ जाते हैं और उनको अपनी धरती में नरक और दूसरे की धरती में स्वर्ग दिखाई पड़ने लगता है तो लोक अनुशासनविहीन हो जाता है। इस अनुशासन के उदाहरण आज हमारे देश में सर्वत्र सुलभ हो रहे हैं। भगवान् कृष्ण के समय में जरासंध, कंस, शिशुपाल और दन्तवक्र जैसे समाज के कल्याण के लिए शपथ ग्रहण करने वाले, लोकनायक जब जनता के स्तर से अपने को बहुत विपरीत दिशा में ले गये, उन्होंने उनका विरोध किया। जनता ने कृष्ण का सहयोग किया। कृष्ण ने कंस को समाप्त किया। जरासंध जैसे अत्यन्त शक्तिशाली सम्राट को 17 बार परास्त किया। उन्होंने शिशुपाल और दन्तवक्र जैसे अत्याचारी अधिपतियों को भी नाम शेष कर दिया। उन्होंने भारतवर्ष को फिर से बनाने में सारी शक्ति लगा दी। कृष्ण वही खाते-पीते थे जो जनता खाती-पीती थी वे उसी प्रकार पहनते-ओढ़ते थे जिस प्रकार जनता पहनती-ओढ़ती थी, वे उसी धरती से अपना सम्बन्ध जोड़े रहे, जिस धरती पर उनकी जनता उनके साथ बसती थी, इसलिए वे स्वत: सफल होते रहे, पर अपनी इस सारी सफलता को वे प्रजारूपी जन-गण के लिए समर्पित कर दिया करते थे। प्रजा से कर इस प्रकार लेना चाहिए-

जिमि रस लेत मधुप बिनु तरु-क्षति, लेय प्रजा ते कर तिमि नरपति।"[62]

राजा और प्रजा का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित होना चाहिए-

रक्षत प्रजहिं नृपति सब काला, रक्षहिं प्रजहु विपति भूपाला।
विज्ञ प्रजहिं कर्त्तव्य बतावहिं, धनिक वेहिं, नृप-कोष बढ़ावहिं।
शिल्पी करहिं शस्त्र-निर्माणा, सब मिलि करहिं राज्य-कल्याणा।
परहिं विपति जब देश पै, सकल भेद विसराय,
चारि वर्ण, योगी-यतिहु, आयुध लेहिं उठाय।"[63]

व्यक्तियों की मर्यादा यदि बनी रहे तो शक्ति की कोई सीमा नहीं है। अनुशासन वेग और शक्ति को बढ़ाता है।[64] मनुष्यता मानव में रहती है, विशाल भवन या धन में नहीं रहती है।[65]

61-वही, पृष्ठ-256, 62-कृष्णायन, पृष्ठ-468, 63-कृष्णायन, पृष्ठ-468, 64-द्वापर, पृष्ठ-49, 65-वही, पृष्ठ-54, 66-वही, पृष्ठ-56

राष्ट्रोत्थान में यदि प्रत्येक प्रजा कर्मों की खेती करे तो अनुशासन का विकास अवश्य होगा।[66] गो-द्विज-द्वेषी राजा का सर्वनाश करना होगा। अपनी आत्मबलि से मातृभूमि की रक्षा करनी चाहिए। अनय राज और निर्दय समाज से लड़ो-

न्याय धर्म के लिए लड़ो तुम, ऋत-हित समझो-बूझो।
अनय राज, निर्दय समाज से, निर्भय होकर जूझो।
राजा स्वयं नियोज्य तुम्हारा, यदि तुम अटल प्रजा हो।"[67]

योग-निद्रा : स्वधामगमन

कृष्ण के स्वधामगमन के अवसर पर विभिन्न मानवीय सम्बन्धों का संस्पर्श होता है। कृष्ण की मृत्यु साधारण जन की मृत्यु नहीं है, वह एक अनासक्त योगी की निद्रा है। वह निद्रा भी साधारण नहीं है। भारतीय साहित्य, धर्म एवं संस्कृति के महिमावान पुरुष श्रीकृष्ण जीवन की सन्ध्या में जब अपने विगत जीवन पर दृष्टि-पात करते हैं, तब उन्हें व्यतीत जीवन खोखला, प्रवंचनामय एवं छलनामय प्रतीत होता है-"कहा था मैंने जो भी आज तक लगता है वह सब मात्र छलना था, गीता में जो भी कहा वह सब प्रवंचना ही थी, युग को दिया था जो धर्म-पथ चलाने को वह पथ ही गलत निकला, राह वह मेरे युग-धर्म की खो गई कहीं, द्वापर जिसके कारण अंधेरे से ग्रसित हुआ।"[68]

जब "जरा" व्याध कृष्ण के तलवे में "कृष्णसारमृग" का माथा समझकर शर-सन्धान कर देता है तब मृत्यु की पीड़ा का स्वगत अनुभव कृष्ण करते हैं-ओफ! बड़ा कष्ट! मृत्यु-कष्ट, दुर्निवार! आह! कितना दाहक है। संधान यह मृत्यु का।"[69] पूर्ण पुरुषोत्तम से व्याध क्षमा माँगता है। कृष्ण उसके कार्य में अपनी ही स्वीकृति मानते हुए उसे आश्वस्त करते हैं।[70] क्योंकि पुत्र-शोक से व्याकुल गांधारी ने जब कृष्ण को यह शाप दिया था कि वे ही यादव-वंश के विनाश के कारण बनेंगे और वंश-विनाश के उपरान्त स्वयं भी किसी घने जंगल में व्याध के हाथों से मारे जायेंगे।[71] तब कृष्ण ने उसे सहज भाव से स्वीकार किया था।[72] इस स्वीकारोक्ति में कृष्ण सभी माताओं के पुत्र हैं, अर्जुन का सम्पूर्ण योग-क्षेम वहन करने वाले परात्पर हैं।

उत्तरा के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र गिराने वाले अश्वत्थामा को जो शाप उन्होंने दिया था वह स्वयं को ही दिया था। इसका प्रायश्चित वे बधिक के बाण से घायल होकर करते हैं और बाण लगते ही अश्वत्थामा की सारी पीड़ा दूर हो जाती है। अश्वत्थामा इसे युयुत्सु, संजय और वृद्ध बधिक के सम्मुख स्वीकार करता है-"जिसको तुम कहते हो प्रभु! वह था मेरा शत्रु, पर उसने मेरी पीड़ा भी धारण कर ली, जख्म है वदन पर मेरे, लेकिन पीड़ा सब शान्त हो गई बिल्कुल।"[73] अठारह दिनों के भीषण संग्राम में जितने सैनिक मृत्यु को प्राप्त हुए, उन सभी के रूप में बार-बार कृष्ण ही मरते रहे हैं।[74] प्रभु कृष्ण का यह मरण नहीं, रूपान्तरण है। इस रूपान्तरण में कृष्ण का एक अंश निष्क्रिय, आत्मघाती एवं विगलित रहेगा क्योंकि प्रभु ने संजय

67-वही, पृष्ठ-64, 68-योग-निद्रा, पृष्ठ-12, 69-वही, पृष्ठ-9, 70-रोते हो/क्यों हे अहेरी तुम! तेरी इस भूल में मेरी ही स्वीकृति है।" वही, पृष्ठ-10, 71-प्रभु हों या परात्पर हो, किसी घने जंगल में साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे। प्रभु हो, पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।"-अंधायुग, पृष्ठ-102, 72-जीवन हूँ मैं, मैं तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ। शाप यह तुम्हारा स्वीकार है। अश्वत्थामा के अंगों से रक्त, पीव, स्वेद बनकर बहूँगा मैं ही युग-युगान्तर तक। वही, पृष्ठ-102, 73-अन्धायुग-पृष्ठ 128, 74-वही, पृष्ठ-102

युयुत्सु और अश्वत्थामा का दायित्व अपने ऊपर लिया है। महाभारत-युद्ध में संजय तटस्थ द्रष्टा के रूप में निष्क्रिय रहे हैं, कौरवों का पक्ष त्यागकर धर्मपथगामी पाण्डवों के साथ रहकर युयुत्सु को युद्ध के अवसान पर माता से दुत्कार, ग्लानि, घृणा प्राप्त होती है, अत: वह आत्मघात कर लेता है और अश्वत्थामा कृष्ण से ही अभिशाप से गलित अंगों वाला बन जाता है। शेष सभी लोगों को कृष्ण का दायित्व लेना होगा। प्रभु का दायित्व प्रत्येक मानव-मन के उस वृत्त में रहेगा जिसके सहारे वह प्रत्येक परिस्थितियों का अतिक्रमण करके ध्वंसों की आधार-शिला पर नूतन निर्माण करेगा। मर्यादा जीवन की संजीवनी है। कृष्ण कहते हैं-"मर्यादा मत तोड़ो, तोड़ी हुई मर्यादा कुचले हुए अजगर-सी गुंजलिका में कौरव-वंश को लपेटकर सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी।"[75] मर्यादायुक्त आचरण, नूतन सृजन, साहस, ममता और रस के क्षणों में कृष्ण जन्मते रहेंगे। उनका रूपान्तरण होता रहेगा।[76] जीवन के अन्तिम क्षणों में साधारण मानव के मानस-गगन में भावातिरेकता एवं जीवन के उथल-पुथल के जैसे चित्र उपस्थित होते हैं, उसी प्रकार कृष्ण उनका चिन्तन करते हैं।

राधा, कुन्ती, गांधारी की प्रेम छायाएँ भ्रमवश सामने खड़ी-सी प्रतीत होती हैं और वे उनके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाते बल्कि स्वयं प्रश्न बने रहते हैं।[77] मथुरा, वृन्दावन मादक करील-कुंजों का स्मरण करते हुए मृत्युलोक से चलते समय यह कहकर चल देते हैं-

"अच्छा, तो चलूँ तनिक सोऊँ नीद गाढ़ी मैं।"[78]

(3) लोक-विश्वास

भारतीय समाज में बहुत-सी ऐसी आधारहीन मान्यताएँ और विश्वास प्रचलित हैं, जो परम्पराएँ बन चुकी हैं और उन पर लोक-विश्वास स्थिर है। ये लोक-विश्वास भारतीय समाज के अंग बन चुके हैं। विवाह के अवसर पर लोकाचार, जन्म के अवसर पर सोहर एवं लोकरीति, मृत्यु के अवसर पर मातम शुभाशुभ शकुन, दिशा-शूल, टोना, टोटका, नजर लगना और उसका उपचार, ग्राम देवता की उपासना, शाप आदि का वर्णन राधा-कृष्ण प्रसंगों में बहुशः हुआ है। इन लोक-तत्त्वों से मानवीय सम्बन्धों में प्रगाढ़ता एवं आस्था का सर्जन होता है।

पूतनोद्धार के बाद सकुशल बच जाने वाले कृष्ण को माँ "गौ-पुच्छ" से झारती हैं और नन्द स्वस्ति वाचन करते हैं-

"झारेउ शिर गोपुच्छ भँवायी, कीन्ह स्वस्ति वाचन नँदरायी।
आरति बनिता वृन्द उतारी प्रकुपित देत पूतनहिं गारी।"[79]

बच्चों को कभी-कभी "नजर" लग जाती है और झाड़-फूँक से ठीक हो जाता है, ऐसा जन-विश्वास है। सोते कन्हैया झझक उठते हैं, यशोदा का उर शंकालु हो गया क्योंकि संध्या से ही बालक रो रहा है, निश्चय ही किसी की कुदृष्टि पड़ गई है। टोना झारना आवश्यक है-

लै लै राई नोन उतारति, कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति।
दोउ कर जोरि शीश लगि लावति, सजल नयन कुल-देव मनावति।
मेटेहु मेरे बाल के, रोग दोष जंजाल।
बार-बार यशुमति कहेउ, सुख सोये नन्दलाल॥"[80]

75-अन्धायुग, पृष्ठ-19, 76-वही, पृष्ठ-130, 77-योग-निद्रा, पृष्ठ 26, 46, 78-वही, पृष्ठ 58, 79-कृष्णायन, पृष्ठ 18, 80-वही, पृष्ठ-21

किसी कार्यारम्भ पर छींक होना, यात्रारम्भ में मार्जारी द्वारा राह काटना, श्वानों का द्वार पर रोना, सिर-स्पर्श करके काग का उड़ना अशुभ एवं अमंगल माना जाता है। कहा जाता है कि ये भगवान् के दूत हैं जो भावी अमंगल की सूचना पहले दे देते हैं। श्याम कालीदह में कूद पड़े, उनका अन्वेषण हो रहा है और अपशकुन मिल रहे हैं-

खोजन चलीं छींक भई भारी, लौटि अजिर दिय दोष निवारी।
चली बहुरि निकसी मार्जारी, काटेसि राह, विकल महतारी।
नन्दहु घर आवत मन मारे, रोवत देखे श्वान दुआरे।
परसि शीस इक काग उड़ाना, काँपे महर अशुभ अति माना।[81]

कृष्ण की कृपा से द्रौपदी अम्बर-पारावार में डूब गई और सम्मान बच गया, कृष्ण के "खल-भुज-भंजन-रक्त बिनु, बधिहौं नहिं ये बार" इस प्रण के तुरन्त बाद हस्तिनापुर की यज्ञशाला में श्रृगाल प्रवेश करता है, पादप पर उल्लू बोलने लगता है-

अग्नि होत्र-हित निर्मित शाला, प्रविशेउ सहसा धाय श्रृगाला।
करत अशुभ स्वर अति भयकारी, पादप उठेउ उलूक पुकारी।
औरहु विहग अमंगल मूला, बोले विपुल शब्द प्रतिकूला।"[82]

द्वारका में श्रृगाल पूजा-स्थल पर पहुँचकर अपवित्रता बिखेर देता है, उल्लू बोलते हैं। कृष्ण इसे अपशकुन मानकर द्वारका छोड़कर क्षेत्र में चले जाते हैं-

निवसहिं हम सब जाय प्रभासा।"[83]

इन अपशकुनों का भावी प्रभाव भी अमांगलिक ही सिद्ध हुआ है। द्रौपदी की प्रतिज्ञा और श्रृगाल का धृतराष्ट्र की यज्ञशाला में प्रवेश करना कुरुवंश के नाश की पूर्व सूचना थी। "अंधायुग" में प्रथम प्रहरी कहता है-"अपशकुन तो निश्चय ही होते हैं रोज-रोज, सूरज में मुण्डहीन काले-काले कबन्ध हिलते नजर आते हैं, कहते हैं द्वारिका में आधी रात काला और पीला वेश धारण किये काल घूमा करता है।"[84] प्रहरी की अपशकुन-सम्भावना के कुछ दिन बाद कृष्ण का रूपान्तरण-अवसान होता है। लोक विश्वास के अनुसार विधवा स्त्रियों को सीमन्त पर सिन्दूर और हाथों में चूड़ियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। गांधारी अपनी वधुओं के साथ ऐसा ही करती है-"मेरे सब पुत्र एक-एक कर मारे गये, अपने इन हाथों से मैंने उन फूल-सी वधुओं की कलाइयों से चूड़ियाँ उतारी हैं, अपने इन आँचल से सिंदूर की रेखायें पोंछी हैं।[85]

भारतीय मानस के अनुसार यदि सच्चे हृदय से किसी को आशीर्वाद दिया जाये या संकट में ईश्वर से प्रार्थना की जाये तो वह निश्चित रूप से फलित होता है और किसी के अत्याचार, दुष्कर्म एवं उत्पीड़न से त्रस्त कोई जन हार्दिक संवेदना से खीझकर शाप देता है या अनिष्ट की मानसिक कल्पना कर लेता है तो वह भी कालान्तर में अपना प्रभाव अवश्य डालता है। गांधारी का दिया हुआ शाप इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।[86] देवकी आशीर्वादात्मक वधाइयाँ यशोदा को कंस-वध के बाद देती है-"यशोदा के दूध! तुम धन्य हो, तुम्हें हार्दिक वधाइयाँ।"[87]

81-कृष्णायन, पृष्ठ-33, 82-वही, पृष्ठ-240, 83-वही, पृष्ठ-493, 84-अन्धायुग, पृष्ठ 119-120, 85-वही, पृष्ठ-24, 86-वही, पृष्ठ 101, 102, 87-देवकी, पृष्ठ-153,

काग का गृह-शीर्ष पर बैठना अतिथि या स्वजन के आगमन की पूर्व सूचना मानी जाती है। विरहिणी राधा काग को देखकर उससे यही प्रार्थना करती है कि मेरे प्रियतम यदि आ रहे हों तो मेरे घर पर बैठ जाओ, मैं तुझे दूध-भात खाने को दूँगी-

जो आते हों कुंवर उड़ के काक तो बैठ जा तू।
मैं खाने को प्रतिदिन तुझे दूध और भात दूँगी।[88]

यात्रा में जल या दही से भरा हुआ घट मिल जाने पर शुभ माना जाता है और इससे यह विचार स्थिर हो जाता है कि यात्रा का उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा। कृष्ण के कहीं जाते समय गोपियाँ घड़ा भरकर बड़ी देर तक उनके रास्ते में यात्रा-सगुन के लिए खड़ी रहती थीं-

उसका सगुन साधने को हम, शिरोभार सहती थीं।
धरे भरे घट पथ में कब तक नित्य खड़ी रहती थीं।[89]

हमारे समाज में विवाह आदि माँगलिक अवसरों पर दही, जलपूर्ण कलश, मीन, कुमारी कन्याओं के मंगल गीत, सौभाग्यवती स्त्रियाँ, चन्दन, पुष्प, नारियल का फल, विप्रों का स्वस्ति-वाचन आदि सगुन कल्याणकारी माने जाते हैं। द्वारिका से प्रभास क्षेत्र में जाते समय कृष्ण की यात्रा में उक्त सगुनों की व्यवस्था ग्रामीणों द्वारा हुई।[90] संदेश भेजने और प्राप्त करने के लिए प्रेमीजनों द्वारा पक्षियों को अधिक विश्वासपात्र माना गया है। जन-विश्वास के अनुसार पक्षी की उपस्थिति ही प्रिय के आगमन का पूर्वाभास है। वियोगिनी प्रेमिका पक्षी से प्रार्थना करती है-

उड़ि जा पंछी खबर ला पी की।
जाय विदेस मिलो पीतम से कहो बिथा विरहिन के जी की।
सोने की चोंच मढ़ाऊँ मैं पंछी जो तुम बात करो मेरे ही की।
"माधवी" लाओ पिय को सँदेसवा जरनि बुझाओ वियोगिन ती की।"[91]

संदेश देने के मामले में "कौआ" अत्यन्त संवेदनशील माना गया है। मुण्डेर पर बैठा काग शुभ संदेश-दाता है। प्रात:काल नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता है। कहा जाता है कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा विजयदशमी के दिन प्रात: नीलकण्ठ को देखते हैं और इसीलिए उनके दरबार में बहेलियों की भीड़ लगी रहती है। दायीं आँख का स्फुरण मंगल-द्योतक माना जाता है। कारागार निवासिनी देवकी ऐसे ही सगुन का प्रत्यक्ष दर्शन करती है-"भोर की ब्रह्म-वेला में नीलकण्ठ का दर्शन और फड़कना दायीं आँख का, मुँडेर पर बैठ कागा सगुन उचारे। कागा! मेरे कृष्ण की कुशल-क्षेम लाओ, तुम्हारी चोंच को सोने से मढ़ा दूँ, तुम्हें दूध-भात मिसिरी के ही कौर खिला दूँ।"[92] दधि-अक्षत का तिलक, गुरु-विप्र तथा माता-पिता के चरणों की वन्दना कल्याण प्रदायक है, इसलिए कृष्ण इन सगुनों के प्रायोजक हैं-

दधि अच्छत कों तिलक भाल लहि मातु तैं,
पुरुष सिंह दोऊ बाकैं चरननि लगे।
चढ़े कृष्ण रथ बिप्रदेव गुरु बन्दिकै।"[93]

88-प्रियप्रवास, पृष्ठ-60, 89-द्वापर, पृष्ठ-193, 90-फेरिमिलिबो, पृष्ठ-70, 91-भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ-383, 92-देवकी, पृष्ठ 147, 93-मधुपर्क, पृष्ठ 183

सुसुप्तावस्था में स्वप्नों की प्रकृति के अनुसार शकुन-अपशकुन की समीक्षा की जाती है। प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त्त में देखे गये स्वप्न प्राय: सत्यसिद्ध होते हैं। चित्रकूट में सीता निशावशेष के पूर्व स्वप्न देखती हैं कि राम के वियोग में दु:खी भरत आये हैं। उनके साथ अवध का समाज है, सासुगण मलिन हैं, स्वरूप बदल गया है। स्वप्न सुनकर राम चिन्ताकुल हो जाते हैं और लक्ष्मण से बचाते हैं कि यह स्वप्न अच्छा नहीं है। यहाँ ज्ञात यह है कि अपने पिता की मृत्यु से राम अभी अनभिज्ञ हैं। थोड़ी देर बाद भरतागमन से अशुभ सूचना मिलती है और विधवा माताओं का उन्हें दर्शन होता है-

उहाँ राम रजनी अवसेषा, जाके सीयँ सपन अस देखा।
सहित समाज भरत जनु-आए, नाथ वियोग ताप तन ताए।
सकल मलिन मन दीन दु:खारी, देखीं सासु आन अनुहारी।
लखन सपन यह नीक न होई, कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।"[94]

स्वप्न में पके हुए आम का प्राप्त होना पुत्र-प्राप्ति का सगुन माना जाता है, ऐसा लोक-विश्वास है। देवकी पुत्र जन्म के पूर्व ऐसा ही स्वप्न देखती है-"पुरुष प्रकृति के संयोग की अनिवार्य परिणति। बीजारोपण की रात मैंने देखा था एक स्वप्न ब्रह्मवेला में। किसी ने मेरे आँचल में पके-पके बड़े सुन्दर पीले-पीले आम डाल दिये हैं और मैंने यह समझ लिया था कि यह पुत्र जन्म होने का शकुन-संकेत है।[95]

*****



94-रामचरित मानस-गोस्वामी तुलसीदास, अयोध्या काण्ड, 95-देवकी, पृष्ठ-21

8 उपसंहार-समीक्षात्मक पर्याकलन तथा निष्कर्ष

भारतीय मानस को प्रभावित करने वाले महापुरुषों में श्रीकृष्ण का प्रमुख स्थान है। अत्यन्त प्राचीन काल से राधा-कृष्ण का स्वरूप-विग्रह भक्तों का आश्रयदाता रहा है। संस्कृत वाङ्मय और हिन्दी साहित्य का अधिकांश भाग श्रीकृष्ण-चरित्र से ओतप्रोत है। राधा और श्रीकृष्ण "यथा क्षीरे च धावल्यं" एक-दूसरे से संप्रक्त हैं। राधा-कृष्ण-सन्दर्भों के कुछ उत्स वेदों में भी प्राप्त होते हैं। महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार महान् विद्वान नीलकण्ठ जी एवं पण्डित माधवाचार्य शास्त्री जी ने वेद के मन्त्रों में राधा-कृष्ण से सम्बन्धित विभिन्न सन्दर्भों को स्वीकार किया है। श्रीकृष्ण के जीवन की विविधताओं एवं असामंजस्यपूर्ण कृत्यों को आधार बनाकर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण की द्वैतता की कल्पना करने की भूल की है। डॉ० रामकृष्ण भण्डारकर इस द्वैतता के समर्थक हैं, इसीलिए कुछ भारतीय विद्वानों के लिए भी यह विचार समीचीन-सा प्रतीत होने लगा है। डॉ० भण्डारकर के समर्थकों में डॉ० ग्रियर्सन और केनेडी का यहाँ तक कहना है कि कृष्ण का रूपान्तरण क्राइष्ट से हुआ है। इसका खण्डन करते हुए डॉ० मुंशीराम शर्मा कहते हैं कि भारतीय समाज में कृष्ण इतने प्राचीन हैं कि तब तक क्राइष्ट की नानी तक का जन्म नहीं हुआ था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पं० बालगंगाधर तिलक और पं० बलदेव उपाध्याय का मत है कि भागवत और महाभारत के कृष्ण एक ही हैं, उनके कई होने की कल्पना नितान्त भ्रामक एवं आधारहीन हैं। मेरी यह निश्चित धारणा है कि अपने बालजीवन में ब्रजलीलाएँ करने वाले और जीवन के उत्तरार्द्ध में कुशल राजनीतिज्ञता एवं कर्मयोग का उपदेश देने वाले कृष्ण एक ही थे। यह उनके ऊर्जस्वी विभ्राट व्यक्तित्व का प्रभाव है कि वे जीवन के सफल-अंगों से अपना संस्पर्श बनाये रहे और उनके चरित्र की विरजता सर्वत्र विभासित होती रही। यही उनके महामानवत्व का प्रमाण है कि उनका चरित्र अनेक भावों का आलम्बन बना हुआ है। वेदों और पुराणों में श्रीमद्भागवत तक राधा दुग्ध में घृत की तरह कृष्ण में गुप्त हैं। भागवत के परवर्ती पुराण ब्रह्मवैवर्त में राधा का कृष्ण के साथ गौरवपूर्ण उल्लेख है। श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराणों को आधार मानकर प्राचीन तथा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में राधा-कृष्ण से सम्बन्धित प्रचुर साहित्य-सर्जन हुआ है। भक्तिकाल के विभिन्न भागवत सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण मुख्यत: माधुर्य भक्ति के माध्यम से चित्रित हुए हैं। माधुर्य भक्ति मानव हृदय की सहज मूल प्रवृत्ति है। राधा और कृष्ण का मिलन ही माधुर्य है। माधुर्य भक्ति का निरूपण विभिन्न सम्प्रदायों में भिन्नश: हुआ है, किसी सम्प्रदाय में राधा को और किसी सम्प्रदाय में कृष्ण को महत्त्व दिया गया है, किन्तु कुंज-लीला की परम्परा लगभग सभी में उपलब्ध है। भक्तिकाल में सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास, कुंभनदास आदि कृष्ण भक्तों द्वारा माधुर्य भक्ति की जो स्नेह-स्रोतस्विनी प्रवाहित की गई उस पर पुराणों का पूरा-पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है, विशेषत: श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण ही इन भक्तों के उपजीव्य रहे हैं। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य में भक्ति, दर्शन, सृष्टि, अवतारवाद और राजवंशों का वर्णन आदि ऐसी काव्यगत विशेषताएँ हैं जो पुराणों से ही आई हैं। सूरदास पर भागवत की कृष्णलीला का पूर्ण प्रभाव पड़ा है, ऐसा पण्डितों का मत है। कृष्ण के जीवन का समग्र रूप हमें इस काल में पूर्णत: दृष्टिगत नहीं होता। जो कुछ है भी उसमें क्रमबद्धता नहीं है। वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों में कृष्ण के पूर्व जीवन के प्राय: सभी सूत्र उपलब्ध हैं। ब्रज लीलाओं के बाद मात्र

एक बार राधा की भेंट कृष्ण से हो जाती है। बहुत दिनों के बाद कृष्ण मिले हैं, आज भी उसके स्नेह की वही ललक है, वही उमंग है, उसका प्रेम कभी वासी नहीं होता। भक्तिकाल में माधुर्य रस का वेग अत्यन्त उद्दाम था जिसके ठहराव के लिए आगे कोई वातावरण न मिला अस्तु, वह अधिक गतिशील होता गया। रीतिकाल में भक्ति का उज्ज्वल स्वरूप वासनात्मक प्रेम में परिवर्तित हो गया और राधा-कृष्ण प्रेमालम्बन के रूप में साधारण नायक-नायिका बन गये। आध्यात्मिक प्रेम सांसारिक हो गया। रीतिकाल के काव्य-शिल्पियों की भूमिका राधा-कृष्ण के पारम्परिक रूप को विध्वंस करने में अधिक सक्रिय रही।

आधुनिक काल में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक उत्थान के कारण हमारा हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ। विभिन्न आन्दोलनों के फलस्वरूप कवि-मानस का गतिशील होना स्वाभाविक था; अस्तु, प्राचीनता के साथ नवीन विचारों का उदय हुआ। रीतिकाल के राधा-कृष्ण अब प्रेमी-प्रेमिका न होकर देश-धर्म के रक्षक एवं मानवता के त्राता बन गये। आधुनिक काल में भारतेन्दु से लेकर माधवीलता शुक्ल तक विपुल कृष्ण-काव्यों का सर्जन ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली में हुआ है। इन काव्य ग्रन्थों की प्रकृति दो प्रकार की रही है। प्रथम के अन्तर्गत भक्त कवि हैं जिन्होंने पुरानी परम्परा का पालन करते हुए राधा-कृष्ण का चरित्र गान किया है। इस पुरानी परम्परा के कवियों की एक लम्बी शृंखला है और इनकी विशेषता यह है कि ये सभी ब्रज भाषा के ही कवि हैं। इन काव्यों की रचना-प्रवृत्ति दो प्रकार की है। कुछ में राधा-कृष्ण की भक्तिपरक लीलाओं का गान है और दूसरी रचनाएँ शतक परम्परा की हैं, जिनमें रत्नाकर का उद्धव शतक प्रतिनिधि रचना है। शतक परम्परा में उद्धव ज्ञानोपदेश के लिए ब्रज जाते हैं और गोपियों तथा राधा को निर्गुण प्रेम की ओर प्रेरित करने का असफल प्रयास करते हैं। ब्रज भाषा काव्यों की संख्या अत्यधिक है। इन रचनाओं का रसबोध और वर्ण्य विषय भक्तिकालीन परम्परा का समाश्रयण करता है। कुछ रचनाओं की काव्य-कला और प्रतिपाद्य विषय सूर के अधिक निकट हैं, जैसे-प्रेमरसमदिरा, गोविन्द विलास, प्रेम की पीर, ब्रजमाधुरी सुधा, गोपाल विलास, युगल पद वंदन और माधव-माधवी आदि। कुछ रचनाओं में परम्परा एवं नवीनता का योगदान है जैसे सत्यनारायण कविरत्न का भ्रमरंदूत और रामप्रसाद त्रिपाठी की मुक्तमाला। नवीन परम्परा से मण्डित कवियों की भाषा अवधी और खड़ी बोली है जिनमें राधा-कृष्ण को लोक-हित-रक्षक एवं मानवतावादी चित्रित किया गया है। कृष्णायन, प्रियप्रवास आदि प्रतिनिधि ग्रन्थ इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। कुछ कवियों ने महाभारतीय कथा का वर्णन किया है जिसमें राधा को स्थान नहीं मिला है। कृष्ण तो सर्वत्र कहीं-न-कहीं किसी कोण से प्रस्तुत हो गये हैं। कुछ काव्यग्रन्थों की रचना स्वतन्त्र रूप से राधा पर ही हुई है, ऐसे कवियों में श्री जानकी वल्लभ शास्त्री, डॉ० किशोरीलाल गुप्त और श्री दाऊदयाल गुप्त हैं। सर्वाधिक रचनाएँ भ्रमरगीत परम्परा में हुई हैं। काव्य कृतियों का नामकरण भले ही भ्रमरगीत व्यंजक न हों किन्तु उनकी विवेचनात्मक काव्य-सम्पदा भ्रमरगीत की ही है। भक्त कवियों की लेखनी राधा-कृष्ण की ब्रजलीलाओं तक ही सीमित रही किन्तु अवधी और खड़ी बोली के कवियों ने जहाँ श्रीकृष्ण के पौरुष-व्यंजक चरित्र की विरजता का वर्णन किया है वहीं राधा को मानव-जीवन के मूल्यों की साधिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवित्व एवं भक्ति की दृष्टि से इन समस्त कृष्ण काव्यों में दो प्रकार की रचनाएँ हुई हैं। कवित्वमूलक काव्यों पर स्वतन्त्रता आन्दोलन की लड़ाई और विगत दो विश्वयुद्धों का विशेष प्रभाव पड़ा है। नवीन सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से प्रभावित होकर जो काव्यधारा प्रवाहित हुई उसका काव्य-शिल्प उच्चकोटि का है, ऐसी

रचनाएँ खड़ी बोली एवं अवधी की हैं जबकि भक्तिमूलक काव्यों पर ब्रजभाषा का वर्चस्व सर्वाधिक है। "मधुपर्क" नामक एक कृति ब्रजभाषा में होते हुए भी राधा-कृष्ण के सामाजिक रूप का चित्रण करके उन्हें राष्ट्रीय-गौरव प्रदान करती है। भक्तिकाल में कृष्ण के राजनीतिक पुरुष एवं गीताशास्त्र के उपदेष्टा-रूप का प्रभाव नहीं पड़ा। भक्तों की लेखनी वृन्दावन और गोकुल तक ही सीमित रही लेकिन आधुनिक काल में राधा-कृष्ण के समग्र जीवन का चित्र उपस्थित हो जाता है।

पुराणों की भाँति आलोच्य कृष्ण काव्यों में भी कृष्ण को ब्रह्म, ईश्वर, जगत-नियन्ता, धर्मपालक, सच्चिदानन्दघन, अव्यक्त, अज, अनामय और सर्वान्तर्यामी माना गया है। "कृष्णायन" में अर्जुन को समझाते हुए कृष्ण कहते हैं कि जो मुझे सर्वत्र देखता है और सम्पूर्ण विश्व को मुझमें देखता है उसमें मैं और वह मुझसे कभी बिछुड़ता नहीं, जो एकत्व भाव से मेरा भजन करता है वही योगी मुझमें निवास करता है। राधा तन्मयता के क्षणों में अपने को कृष्ण की शक्ति, योगमाया एवं सम्बल होने की घोषणा करती है। कृष्ण विराट, सीमाहीन हैं। राधा और कृष्ण एक-दूसरे के सहयात्री हैं। अनन्त काल से वे एक साथ चलते रहे हैं। यह ऐसी जीवन-यात्रा है जिसका अन्त कभी नहीं होता है। आधुनिक कृष्ण कविता में लीलागान परम्परा का विशिष्ट अवदान है। मध्यकालीन कवियों ने लीलागान करके राधा-कृष्ण के अलौकिकत्व की ओर संकेत किया है जबकि आधुनिक काल में समाज के सम्मुख कृष्ण के मानवोचित कृत्यों का प्रकाशन करना अभीष्ट है। आधुनिक लीलागान में समाज सुधारक, जनकल्याण, परोपकार, जनतन्त्र-प्रजातन्त्र का स्वरूप अधिक विकसित हुआ है। परम्परा तो भागवत की है किन्तु उसका प्रस्तुतीकरण नव्य है। वस्तुतः आधुनिक कवियों का लीलागान देश, जाति, धर्मनीति, राजनीति, अर्थनीति, दण्डनीति का समसामयिक समाश्रयण करता है। इस काल के भक्त कवियों ने प्राचीन परम्परा को पुनः गतिशील बनाने का प्रयास किया है। ऐसे ग्रन्थों में आध्यात्मिक चर्चा अधिक हुई है। आलोच्य काव्यों पर विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों की छाप नगण्य के बराबर है। ब्रजभाषा में लिखित कुछ कृतियों के ऊपर वैष्णव सम्प्रदायों की पूजापद्धतियों का प्रभाव छायारूप में देखा जा सकता है। मध्यकालीन राधा-कृष्ण के सौन्दर्यांकन की परम्परा आधुनिक काल में विघटित नहीं है। आधुनिक काल में विविध कवियों ने पूर्ववर्ती उपमानों को ग्रहण किया है। कृष्ण की भाँति राधा भी अपनी रूप-छवि से संसार को छविशाली बना रही है। वियोगावस्था के व्रत-तपादि में लीन राधा का सौन्दर्य बढ़ जाता है। आधुनिक कविता में राधा-कृष्ण के शृंगार-परक सौंदर्य के साथ ही साथ वीर रस में अभिव्यंजक सौंदर्य का वर्णन मधुपर्क में किया गया है।

राधा-कृष्ण के प्रणय-भोग का स्वरूप संभोग एवं विप्रलम्भ की पृथक्-पृथक् अवस्थाओं में कवियों द्वारा वर्णित है। संयोग के अन्तर्गत प्रथम तो प्रेम के विकास का स्वाभाविक क्रम है और बाद में विभिन्न स्थितियों का विस्तार से चित्रांकन है। यह संभोग-चित्रांकन आलोच्य-काव्यों की शैली-प्रकृति के अनुसार दो प्रकार की है। भक्त कवियों का मन कुंज और रास के परम्परागत संभोग की ओर प्रवृत्त हुआ है और नवीन चेतना के संवाहक रचनाकारों का वर्णन मनोवैज्ञानिक एवं सहजानुभूति पर आधारित है। आचार्यों द्वारा प्रतिपादित प्रणय-भोग की सभी स्थितियों का स्वरूप आलोच्य काव्यों में विद्यमान है, किन्तु पूर्वराग की तड़पन का अभाव है। संभोग के पूर्व की स्थितियों का वर्णन तो है किन्तु इन्हें पूर्वराग कहना अनुचित होगा। मेरी दृष्टि में यह दशा प्रेमांकुरण एवं प्रेमविकास की है, कारण यह है कि प्रथम दर्शन से ही राधा-कृष्ण के हृदय में परस्पर जिस अनुराग की जाग्रति हुई उसके उपलालन का अवसर अनायास ही

उन्हें मिलता गया। खरिक-गमन, गोदोहन-कार्य तथा एक-दूसरे के घर के आवागमन उन्हें वियुक्त होने में विघ्न उपस्थित करते थे। पूर्वराग के ईषत चित्र धर्मवीर भारती की "कनुप्रिया" और जानकीवल्लभ शास्त्री की "राधा" में देखे जा सकते हैं। आधुनिक काल में कवियों का उद्देश्य राधा-कृष्ण को नया रूप प्रदान करना था, विलासिता के रीतिकालीन कीचड़ से निकालकर आदर्श मानव एवं आदर्श प्रेम की संस्थापना करनी थी। अस्तु शृंगार के विभिन्न अंगों एवं काम-दशाओं का वैसा क्रमागत वर्णन सुलभ नहीं है जैसा भक्ति एवं रीतिकालीन कवियों ने प्रस्तुत किया है। इसीलिए मैंने कवि-उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए राधा-कृष्ण के प्रणय भोग को शृंगार के शास्त्रीय नपने से मापने का प्रयास कम किया है।

कृष्ण के समग्र जीवन को चित्र की दृष्टि से दो रूपों में देखा जा सकता है। गोकुल और ब्रज के लीलाओं में वे गोपीजन-वल्लभ, नन्दनन्दन और राधा-प्रेमी के रूप में चित्रित हैं। मथुरा प्रवास से लेकर "स्वधामगमन" तक का जीवन लोकहिताय समर्पित था, जिसमें कृष्ण के पराक्रम एवं वैदुष्यपूर्ण राजनीतिज्ञता का स्फुरण है। आधुनिक काव्यकारों ने युगानुकूल यथार्थ एवं आदर्श जीवन-मूल्यों को स्थापित करने के लिए कृष्ण के प्राचीन रूपों में बौद्धिक परिवर्तन किया है। ईश्वर प्रेम का स्थान मानव सेवा एवं अधर्म-नाशक रूप ने राष्ट्रोत्थान का स्थान ले लिया है। आस्था-अनास्था के इस युग में प्राचीनता को नवीन जीवन मूल्य प्रदान किया गया है। वस्तुतः कृष्ण का उत्तर जीवन आज की परिस्थितियों में अधिक तुष्टिकारक हो गया है। कृष्ण का प्रारम्भिक जीवन यद्यपि आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है तथापि हरिऔध और देवीरत्न अवस्थी जैसे सुकृती कलाकार की तूलिका से गोपाल, गोपीजनवल्लभ, राधावल्लभ का जो नव्य रूप बन सका है, वह परवर्ती कवियों का चेतना-स्रोत बनता रहेगा। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रियप्रवास और मधुपर्क कृष्ण-कथा-काव्यों में नवीन दिशा बोधक मील के पत्थर हैं। कृष्ण के उस महान् यशस्वी व्यक्तित्व को भक्ति एवं रीतिकाल में स्थान नहीं मिला जिसमें जीवन के यथार्थ आदर्श भरे पड़े हैं। इसके अन्तर्गत वे कर्त्तव्यनिष्ठ वीर, योद्धा, शान्ति के दूत, लोकधर्म-रक्षक, असुर-संहारक, आर्यधर्म पालक और नीतिकला के संवाहक हैं। आधुनिक ब्रजभाषा काव्यों में भक्तिकालीन प्रेमिका राधा का वर्णन दोहा, सोरठा, पदों एवं विभिन्न छन्दों के माध्यम से हुआ है। आधुनिक कृष्ण काव्यों पर मानववाद, व्यक्तिवाद, मार्क्सवाद, गाँधीवाद आदि दर्शनों का प्रभाव पड़ा है। "प्रियप्रवास, कृष्णायन, मधुपर्क, कनुप्रिया, पुरुषोत्तम आदि काव्यों में राधा के नवीन रूप का अंकन हुआ है।

राधा-कृष्ण प्रसंगों में परम्परा का निर्वाह करने वाले कवियों की भावोद्वाहिका ब्रजभाषा ही रही है, अवधी और खड़ी बोली की कृतियों पर स्वतन्त्रता आन्दोलन एवं आधुनिक बुद्धिवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है जिसमें परम्परा एवं नवीनता का सुन्दर सामंजस्य है। प्राचीनता एवं परम्परा को धता बताने वाले कवियों के राधा-कृष्ण बिल्कुल नये-नये हैं। इस नवीन काव्य शृंखला में प्रियप्रवास, मधुपर्क, कनुप्रिया, राधा (जानकीवल्लभ शास्त्री कृत), द्वापर, योगनिद्रा, फेरिमिलिबो, देवकी आदि कृतियाँ आती हैं। आलोच्य काव्यों में प्राचीनता एवम् नवीनता की स्थापना करना मेरा आग्रह नहीं है। वास्तविकता यह है कि किसी ने परम्परा का गान ज्यों-का-त्यों किया और किसी ने उसे अपना बनाकर गाया। अपना बनाकर गाने वाले सन्दर्भों में राधा-कृष्ण का कुछ नव्य हो जाना असम्भव नहीं है। कुछ विद्वानों को उपर्युक्त रचनाओं की प्राचीनता में नव्यता के और नवीन काव्यों में राधा-कृष्ण के परम्परागत प्राचीन रूप के दर्शन हो सकते हैं, किन्तु ऐसे प्रसंगों की संख्या अत्यल्प ही होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

आधुनिकता के इस युग में लोगों का मानवतावादी दृष्टिकोण अधिक गतिशील हुआ है। वे अब कृष्ण को लीलामय आराध्य नहीं, अनुकरणीय लोक-हितकारी महामानव के रूप में देखना चाहते हैं किन्तु भावुक भक्तों को कोरी इतिवृत्तात्मकता से सन्तोष नहीं होता, वे अवतारवाद की परम्परा को छोड़ना नहीं चाहते और आधुनिक युगधर्म के मानवतावाद की उपेक्षा करना उनके लिए संभव नहीं है। ऐसे कवियों के प्रतिनिधि पं० द्वारिका प्रसाद मिश्र हैं। आधुनिक कृष्ण कविता की खड़ी बोली एवं अवधी की रचनाओं में मर्यादा के निर्वाह की भरपूर चेष्टा की गई है। लीलाओं के चित्रण का उद्देश्य लोकरंजन नहीं, लोक-रक्षण एवं आदर्श-प्रतिष्ठा की रक्षा करना है। कृष्ण-सुदामा की मित्रता, रास की सार्वजनिक भूमिका, सुभद्रा-हरण, नारी चित्रण की स्वाभाविकता और देवकी का मार्मिक प्रसंग नवीन भूमि पर चित्रित हुआ है। कुछ प्रबन्ध काव्यों में भारत की सांस्कृतिक चेतना के समृद्ध स्वरूप की धरोहर भी सुरक्षित है। कर्मयोगी कृष्ण समाज और देश के प्रति अपने धर्मपालन में तत्पर दिखाये गये हैं। राधा-कृष्ण-सन्दर्भों में नवजीवन की अंगड़ाइयाँ तथा नव्य चेतना का स्फुरण होते हुए भी उन पर भारतीयता की अमिट छाप है। परम्परित रचनाओं का सर्जन भारतेन्दु से लेकर आज तक होता चला आ रहा है। गत शताधिक वर्षों के इस काव्यनिचय एवं रचनाधर्मिता की निरन्तरता को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि राधा-कृष्ण की यह परम्परा टूटने वाली नहीं है।

राधा की जीवन परिधि सीमित थी, विशेषत: उसका सम्बन्ध कृष्ण और सखियों तक सीमित रहा। भक्ति एवं रीतिकालीन कवियों ने उसे प्रेम की देवी बनाकर वृन्दावन के कुंजों तक सीमित रखा किन्तु आधुनिक काल में उसे समाज से सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर मिला। वस्तुत: हिन्दी संसार उस कवियों का सदैव ऋणी रहेगा जिन्होंने राधा को, समाज में स्थापित करके, राधा के स्वरूप को स्थायी रूप से अमूल्य बना दिया है। कृष्ण का समग्र जीवन समाज के प्रत्येक वर्ग से सम्बन्धित रहा है। ब्रज की कुंज गलियों से लेकर महाभारत के युद्ध तक सर्वत्र कृष्ण की समरसता समाज को अभिसिक्त करती रही है। वे अच्छे से अच्छे राजा, प्रजा, मित्र, पुत्र, पति, पिता, योद्धा, शान्तिदूत थे।

श्रीकृष्ण व्यक्ति नहीं परम्परा थे, दार्शनिक और कर्मयोगी थे, राजनीतिज्ञ एवं समाज-सुधारक थे, अच्छे शान्ति दूत एवं कुशल योद्धा थे। मानवीय सम्बन्धों में भारतीय संस्कृति, लोकरीति एवं लोकविश्वास का विशेष महत्त्व है। आलोच्य-काव्यों में इन सबका यथास्थान उपयोग हुआ है।

हमारा वेदान्त कहता है कि सभी मनुष्य परस्पर बराबर हैं, सभी एक ही ईश्वर की सन्तानें हैं, अस्तु उनमें कोई विभेद नहीं है। राधा और कृष्ण के राष्ट्रीय स्वरूप से इस भावना का पोषण होता है। भारतीय इतिहास में विश्रुत ऋषि और मुनियों की त्यागवृत्ति राधा-कृष्ण में समाहित है।

आधुनिक हिन्दी कृष्ण कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें कृष्ण के उत्तर जीवन का लोक-हितकारी एवं पुरुषार्थ-व्यंजक पराक्रमी रूप उद्घाटित हुआ है। मेरा विश्वास है कि राधा-कृष्ण का सामाजिक जनरक्षक रूप आगे के कवियों के लिए आधार-बिन्दु बनेगा। परिस्थितियाँ जैसा मोड़ ले रही हैं और प्राचीन मान्यताओं के प्रति जैसा विरोधी स्वर मुखर हो रहा है, उससे भारतीय जीवन में राधा-कृष्ण के राष्ट्रीय स्वरूप की प्रासंगिकता अधिक समीचीन है।

****



डॉ. ओंकार त्रिपाठी : एक परिचय

जन्मस्थान	–	ग्राम कहरासुलेमपुर, पोस्ट परसकटुई (वाया किछौछा) जिला फैजाबाद (अब अम्बेडकरनगर)
जन्मतिथि	–	12–07–1945 ई.
पिता का नाम	–	स्व. श्रीवासुदेव मणि त्रिपाठी
माता का नाम	–	स्व. श्रीमती राजदेई त्रिपाठी
शैक्षिक उपलब्धियाँ	–	एम. ए. (हिन्दी) एल.टी. शास्त्री, आचार्य (संस्कृत साहित्य), साहित्यरत्न (संस्कृत), पी–एच. डी.
अभिरुचि	–	विद्या–व्यसन, सहज निर्मल जीवन प्रणाली, पठन–पाठन और लेखन, भारतीय संस्कृति, लोकचेतना और सनातन आस्था में अकम्प विश्वास।
सर्जनात्मक विद्या	–	(क) साहित्यिक समीक्षा एवं समालोचना। (ख) समसामयिक समीक्षा एवं समालोचना। (ग) आकाशवाणी से समय–समय पर हिन्दी वार्ताओं का प्रसारण।
प्रकाशन	–	1– जय हनुमान : एक समीक्षा 1972 ई.। 2– मानसमुक्तामणि, समाज, धर्म एवं दर्शन, अवध–अर्चना, अवध कमेण्ट वीक, मानस चंदन, वन्देभारती, जनमोर्चा तथा दो दर्जन से अधिक पत्र–पत्रिकाओं में शोधालेख प्रकाशित।
सम्मान/पुरस्कार	–	1– "साहित्यश्री"– सम्मान अखिल भारतीय, साहित्य–कला–मंच चाँदपुर, बिजनौर की ओर से। 2– "संस्कार–भारती सम्मान 2001" उ. प्र. शिक्षा एवं भाषा मंत्री माननीय डॉ. नेपालसिंह द्वारा मुरादाबाद में। 3– "आधुनिक समाज की पृष्ठभूमि में रामराज्य की अवधारणा" विषयक राष्ट्रीय शोधालेख प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पाने पर मानस सेवा समिति अयोध्या द्वारा प्राप्त राष्ट्रीय पुरस्कार।
सम्प्रति	–	प्रधानाचार्य राजकीय आश्रम पद्धति इण्टर कालेज वरवा, मसौधा, फैजाबाद पूर्व प्रधानाचार्य विद्या मन्दिर इण्टर कालेज मिल्कीपुर फैजाबाद
सम्पर्क	–	एल. आई. जी. 57, कौशलपुरी–1, फैजाबाद 224001 उ. प्र.
दूरभाष	–	09984078983